मार्कण्डेयपुराण-भाषानुवाद

प्रथम अध्याय ।

यद्योगिभिर्भवभयार्तिविनाशयोग्यमासाद्य वन्दितमतीव विविक्तचित्तैः ।
तद्वः पुनातु हरिपादसरोजयुग्ममाविर्भवत्क्रमविलंघितभूर्भुवःस्वः ॥
पायात्स वः सकलकल्मषभेददक्षः क्षीरोदकुक्षिफणिभोगनिविष्टमूर्त्तिः ।
श्वासावधूतसलिलोत्कणिकाकरालः सिन्धुः प्रनृत्यमिव यस्य करोति सङ्गात् ॥
नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

व्यासजी के शिष्य परमतेजस्वी जैमिनि मुनिने, तप वेदपाठ आदि में तत्पर महा मुनि मार्कण्डेयजी से बूझा कि ॥ १ ॥ हे भगवन् ! महात्मा व्यासजी ने जो महाभारत की कथा कही है वह जैसी जातिशुद्धियुक्त और शुद्ध शब्दों के समूह से शो...यमान है तैसेही नानाप्रकार के शास्त्रों के समूह से परिपूर्ण है; उस में पूर्वपक्ष (प्रश्न) और उत्तरपक्ष (जवाब) दोनों हैं जैसे देवताओं में विष्णु, जैसे दो चरणवालों में ब्राह्मण, जैसे सकल आभूषणों में चूडामणि, जैसे शस्त्रों में वज्र और जैसे इन्द्रियों में मन श्रेष्ठ है तैसेही इस संसार में सकल शास्त्रों में महाभारत श्रेष्ठ है ॥ २॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ उस में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का तथा विरोधरहित ठीक रीति से व्यवहार में लाने की रीति भी अलग २ कही है॥ ॥ ६ ॥ इसकारण यह महाभारतही उत्तम धर्मशास्त्र, सर्वोत्तम अर्थशास्त्र, अति उत्तम कामशास्त्र और परमोत्तम मोक्ष शास्त्र है ॥ ७ ॥ हे महाभाग ! बुद्धिमान् व्यासजी ने इसको चारों आश्रम और धर्मों के आचार और स्थिति का साधन रूप रचा है ॥ ८ ॥ हे तात ! यह महाशास्त्र महाभारत, बहुत विस्तार के साथ है तथापि इसको उदारबुद्धि व्यासजी ने ऐसा रचा है कि–किसीप्रकार का विरोध इसको अस्तव्यस्त नहीं करसक्ता है । श्रीवेदव्यासजी के वाक्यरूप जलप्रवाह ने, वेदरूप अतिऊँचे पर्वत परसे उतर कर कुतर्करूप वृक्षों की पंक्तियों को उखाडते हुए, सकल पृथ्वी को पवित्र करा है ॥ ९ ॥ १० ॥ कृष्णद्वैपायन का रचा हुआ यह पञ्चम वेद बडेभारी सरोवर की समान है; सुन्दर मधुर सकल

शब्द, इसके महाहंस, नानाप्रकार के कथानक इस के उत्तम कमल और सकल बडी २ कथाएँ इसका बडाभारी जल समूह है ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! सो मैं बहुत अर्थ से भरे, वेदके विस्ताररूप इस भारत की कथाको यथावत् सुनने की इच्छा से आपकी शरण आयाहूं १२ भगवान जनार्दन ने निर्गुण होकर भी किस निमित्त से मनुष्यरूप अवतार धारा था, क्योंकि जिनको वसुदेव के पुत्र कृष्ण कहते हैं वह तो जगत् की उत्पत्ति, पालन और प्रलय करनेवाले हैं ॥ १३ ॥ तथा वह एकही द्रौपदी किस निमित्त से पाच पाण्डवों की रानी हुई ? इस में हमें बडा सन्देह है ॥ १४ ॥ बलदेवजी ने स्वयं पाप के दूर करनेवाले होकर भी किस निमित्त से तीर्थयात्रा करके ब्रह्महत्या का पातक दूर करा ? ॥ १५ ॥ जिन के कि पाण्डव नाथ, वह महारथी महात्मा द्रौपदी के पांचों पुत्र किस निमित्त से अनाथ की समान अविवाहित दशा में मारेगये ? ॥ १६ ॥ आप मुझ से मूढ बुद्धि पुरुषों को सदा ही ज्ञान विज्ञान का उपदेश करते हो, अतः यह सब वृत्तान्त विस्तार के साथ आपको मुझसे कहना उचित है ॥ १७ ॥ अठारह दोषों से रहित महामुनि मार्कण्डेय,जैमिनि मुनि का ऐसा वचन सुनकर कहनेलगे ॥१८॥ मार्कण्डेयमुनि ने कहा–यह समय हमारा नित्य नैमित्तिक क्रिया करने का है इस कारण विस्तार के साथ कहने में यह समय ठीक नहीं होगा ॥ १९ ॥ हे जैमिने ! जो विस्तारके साथ कहकर तुम्हारे सन्देह को दूर करेंगे, उन पक्षियों का वृत्तान्त कहता हूँ सुनो ॥ २० ॥ वह–पिङ्गाक्ष, विबोध, सुपुत्र और सुमुख नामवाले चारोंशास्त्र का विचार करनेवाले और तत्त्वज्ञानी द्रोणपुत्र हैं ॥ २१ ॥ जिन की बुद्धि वेद और शास्त्र के अर्थ को जानने में कभी नहीं रुकती है ऐसे, विन्ध्याचल की गुफा में रहनेवाले उन पक्षियों के पास तुम जाओ और उन से यह विषय बूझो ॥ २२ ॥ जब उन बुद्धिमान् मार्कण्डेयजी ने ऐसा कहा तब ऋषिश्रेष्ठ जैमिनि, अचरज में होकर नेत्र फैलाकर इधर उधर को देखतेहुए उत्तर में कहने लगे ॥ २३ ॥

जैमिनि बोले–हे ब्रह्मन् ! यह तो बड़ी अद्भुत बात है कि–मनुष्य की समान पक्षियों की वाणी है, वह पक्षी की योनि में जन्म पाकर भी जो परमदुर्लभ ज्ञान को प्राप्तहुए यह और भी अद्भुत बात है ॥ २४ ॥ यदि उन का जन्म पक्षी की योनि में हुआ तो उन को ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ ? और वह पक्षी द्रोणपुत्र क्यों कहाते हैं ? वह द्रोण कौन हैं ? कि–जिस के वह चारों पुत्र उत्पन्न हुए, तिन गुणवान् महात्माओं को धर्मज्ञान कैसे हुआ ॥ २५ ॥ २६ ॥

मार्कण्डेयजी ने कहा कि–पहिले इन्द्र, अप्सरा और नारदजी का समागम होने पर नन्दनवन में जो वृत्तान्त हुआथा उस

को सावधान होकर सुनो॥ २७॥ देवर्षि नारदजीने नन्दनवनमें जाकर देखाकि–देवराज इन्द्र अप्सराओं के मध्य में उन के मुखकी ओर को टकटकी लगायेहुए बैठे हैं॥ २८॥ ऋषिश्रेष्ठ नारदजी से दृष्टि मिलते ही इन्द्र उठखड़ाहुआ और आदरके साथ अपना आसन इनको दिया॥ २९॥ वल और वृत्रासुरको मारनेवाले तिस इन्द्रको उठाहुआ देखकर उन देवाङ्गनाओं ने भी उठकर देवर्षि नारद जी को प्रणामकरा और विनयपूर्वक नम्रता के साथ खडीरहीं॥ ३०॥ और फिर उन देवाङ्गनाओं ने पूजनकरा. तदनन्तर नारदजी बैठगये और फिर इन्द्र के भी बैठजानेपर नारदजी यथोचित सम्भाषण करके मनोहर वातें करनेलगे॥ ३१॥ तदनन्तर वातों के वीच में ही इन्द्रने उन महामुनिसे कहाकि इन नृत्य करनेवालियों में जो आपको अभिमत हो उसको नृत्य करने की आज्ञा दीजिये॥ ३२॥ रम्भा वा कर्कशा अथवा उर्वशी, एवं तिलोत्तमा घृताची वा मेनका जिस में आपकी रुचि हो उसको आज्ञा करिये॥ ३३॥ द्विजवर नारदजी इन्द्रके इसवचन को सुन विशेष ध्यान देकर, विनयपूर्वक नम्रहोकर बैठीहुई उन अप्सराओं से वोलेकि–॥ ३४॥ यहाँ तुम सवों में से जो अपने को सवसे अधिक रूप, उदारता और गुणवती मानती है वहमेरे आगे आकर नृत्यकरे॥ ३५॥ जो रूप और गुणसे हीन है, निःसन्देह उसके नृत्य करनें से कोई सिद्धि नहीं है, क्योंकि–सव प्रकार सुन्दर अङ्गोंके साथ कराहुआ नृत्यही नृत्य कहासक्ता है इससे अन्य नृत्य खिलवाड़ है॥ ३६॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि–नारदजी के ऐसा कहतेही उन में से एक २ ने उठकर नारदजी को प्रणाम करा और फिर सव आपस में कहने लगीं कि अरी मैंही अधिक गुणवती हूँ तू नहीं, तू नहीं॥ ३७॥ उन के ऐसे विवाद को देखकर भगवान् इन्द्र ने कहा कि–तुम सव नारद मुनि सेही वूझो, वही तुम में जो अधिक गुणवती होगी उसको वतादेंगे॥ ३८॥ हे जैमिनिजी! इन्द्रके कहने के अनुसार उन्होंने नारदजी से वूझा तव नारदजी ने जो वाक्य कहा उसको मुझ से सुनो।३९। कहा कि–मुनिवर दुर्वासा हिमालय पर तपस्या कररहे हैं, तुममें से जो अपने वलसे उनको डिगासकेगी उसको ही मैं सवसे अधिक गुणवती समझूँगा॥४०॥ नारद मुनि के इस वचन को सुनकर सवने गरदन हिलादी और आपसमें कहनेलगीं कि–यहकार्य तो हम से होना कठिन है॥ ४१॥ उन में मुनियों के तपको डिगाने का अभिमान रखनेवाली एक वपू नामक अप्सरा थी उस ने कहा कि-जहाँ वह दुर्वासामुनि विराजमान हैं तहाँ मैं जाऊंगी॥४२॥ आज मैं उस हिमालय पर जाकर देहरूप रथ के सवार उन दुर्वासा मुनिको कामदेवरूप शस्त्र के प्रहार से, उन के इन्द्रियरूप घोडों की लगामों

को काटकर, उन की बुद्धिरूप सारथी को कुमार्ग में लेजाऊँगी (मार्गभुला-दूँगी) ॥ ४३ ॥ वह ब्रह्मा, विष्णु वा स्वयं महादेवजी ही क्यों न हों आज कामदेव के बाणों से उनके हृदय को छिन्नभिन्न करके घायल करडालूँगी ४४ उस समय ऐसा कहकर फिर वह वपू नामवाली अप्सरा, जहाँ मुनि के तपके प्रभाव से आश्रमके समीप के हिंसक सिंहादि पशुभी शान्तस्वभाववाले हैं ऐसे हिमालयपर्वत पर गई ॥ ४५ ॥ पुंस्कोकिला के समान मधुर कण्ठवाली वह श्रेष्ठ अप्सरा, जहाँ वह दुर्वासा मुनि थे उस आश्रम से एक कोस दूरीपर बैठकर गानेलगी ॥ ४६ ॥ उसके गीत की धुन को सुनकर दुर्वासा मुनि चित्त में विस्मित हुए और जहाँ वह सुन्दरमुखी बाला थी तहाँ गये ॥ ४७ ॥ तहाँ तिस सर्वाङ्ग सुन्दरी को देखकर चलायमान होतेहुए अपने चित्तको रोका और उसको तप से डिगाने के निमित्त आई हुई जानकर क्रोधके वेग से अपने को भी भूलगये ॥ ॥ ४८ ॥ और फिर वह परमतपस्वी महर्षि, उससे यह वचन कहनेलगे कि–अरीमदोन्मत्त आकाश में फिरनेवाली तू जो मुझे दुःख देने के निमित्त, दुःख सहकर इकट्ठे करेहुए तप में विघ्न करने को आई है ॥४९॥ इसकारण अरी खोटी बुद्धिवाली ! तू मेरे क्रोध से कलङ्कित होकर पक्षी की योनि में जन्म पाकर सोलह वर्ष पर्यन्त समय को बितावेगी५०। अरी अधम अप्सरा ! अपने रूपको त्यागकर पक्षी का रूप धारने पर तेरे गर्भ से चारपुत्र उत्पन्न होंगे ॥ ५१ ॥ परन्तु उनकी लालन पालन आदि किसीप्रकार की प्रीतिको विना भोगे ही शस्त्र से प्राणान्त होनेपर शापसे छूटकर फिर स्वर्ग को आवेगी, इस से और उत्तम तेरे निमित्त नहीं होगा इस कारण जो कुछ मैंने कहा—इस में अब तू द्विरुक्ति न करना (दखल न देना) ॥ ५२ ॥ क्रोध के कारण जिन के नेत्र लाल २ होरहे हैं ऐसे वह दुर्वासामुनि; जिस के हाथों में वलय आदि आभूषण शब्दायमान होरहे हैं ऐसी उस अभिमानिनी अप्सराको ऐसा असह्य वचन सुनाकर अपने उस आश्रम को त्याग, जिसके प्रवाह की गुणावली प्रसिद्ध है ऐसी आकाशगंगा के तटको चलेगये ॥ ५३ ॥ प्रथम अध्याय समाप्त.

द्वितीय अध्याय

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि—अरिष्टनेमिके पुत्र पक्षियों के राजा गरुड नामक थे,गरुडजी का पुत्र सम्पाति नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ १ ॥ उसका पुत्र भी सुपार्श्व नामवाला वायु की समान गतिवाला और शूर हुआ, सुपार्श्व का पुत्र कुम्भि और कुम्भि का पुत्र प्रलोलुप हुआ॥२॥ उस के भी दो पुत्रहुए एक कङ्क और दूसरा कन्धर ॥ ३ ॥ उन में से कङ्क ने कैलासके शिखरपर जाकर देखा कि-कुवेर का अनुचर कमलदलनयन विद्युद्रूप

नामसे प्रसिद्ध राक्षस स्त्रीसहित, सुन्दर निर्मलमाला और वस्त्र पहिने और मद्य पियेहुए एक शोभायमान स्वच्छ शिला की चटान पर बैठा है ॥ ४ ॥ ५ ॥ कङ्क के देखतेही वह राक्षस कोपमें भरकर कहने लगा कि-अरे अधम पक्षी! तू यहां कैसे आया? ॥ ६ ॥ अरे! स्त्री के समीप बैठेहुए मेरे पास को तू कैसे चला आता है? बुद्धिमान् पुरुष इसप्रकार मैथुन के समय कभी किसी के पास नहीं जाते हैं ॥ ७ ॥

कङ्कने कहाकि-यह हिमालय तो साधारण रूप से सब ही प्राणियों के विचरने का स्थान है, इसकारण इसमें जैसा तेरा वैसे ही मेरा तथा और प्राणियों का भी अधिकार है फिर तुम्हारी इस में ममता (मेरा है ऐसा कहने का अधिकार) क्या? ॥ ८ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-कङ्कके ऐसा कहतेही, राक्षसने तत्काल उस के ऊपर तरवार का प्रहार करके उस के खण्ड २ करडाले; उसका भ्राता पक्षियोंका राजा कन्धर, मेरे भ्राता के घाव आकर उस में से भयानक रूप से रुधिर बहरहा है और वह फड़फड़ाताहुआ मूर्छित पड़ा है, यह सुनकर क्रोध के मारे अपनपे को भी भूलगया और उसने विद्युद्रूप राक्षस के मारडालने का मन में विचार करा ॥ ९ ॥ १० ॥ वह कन्धर पक्षी हिमालय के शिखरपर पहुँचकर, जहां कंक घायल हुआ पड़ा था तहां गया और प्रथम उस अपने ज्येष्ठभ्राता का प्रेतकर्म करा। ११। तदनन्तर क्रोध और अमर्ष (नागवारा) के कारण नेत्र फैलायेहुए नागराज की समान हांपताहुआ और पक्षों (परों) की प्रबल पवन से बडे२ पर्वतोंको कम्पायमान और वेग से मेघमाला को तित्तर वित्तर करताहुआ, लाल२ नेत्रकरे, मानो क्षणभर मेंही शत्रुका क्षय करडालेगा इस प्रकार दोनों परों से हिमालय को ढकता हुआ जहाँ उसके भ्राता का मारनेवाला राक्षस था तहाँ आपहुँचा॥ १२॥ १३॥ और देखा कि-केतकीके पत्तेके गर्भ की समान भयानक मुखवाला वह निशाचर मद्यपान मेंही अपनी बुद्धि को लगाकर, लाल २ तिरछे नेत्र करे, शिखामें पुष्पों की माला लपेटे और शरीरपर हरिचन्दन थोपेहुए सुवर्ण के पलँग पर लेटरहा है॥ १४॥ १५॥ और पुंस्कोकिलकी समान अतिमधुर कण्ठकी ध्वनिवालीमदनिका नामवाली विशालनयना स्त्री उसकी बाईं जांघ के आश्रय से लेटरही है ॥ १६ ॥ तब तो जिसके रोम २ में क्रोध भररहा है ऐसा वह कन्धर पक्षी उस कन्दरा में स्थित राक्षस से कहनेलगा कि-अरे दुष्टात्मन्! आ, मेरे साथ युद्धकर॥ १७॥ क्योंकि-तूने मेरे बडे भ्राता को विश्वासकी दशा में (धोखे में) मारडाला है, तिस से तुझ मद्यप को मैं यमालय में भेजूंगा ॥ १८॥ विश्वासघातीपना करने पर वा स्त्री और बालक को मारडालने पर जो२ लोक वा जो २ नरक मिलते हैं, आज मेरे हाथस

माराजाकर तू तहां ही जायगा ॥ १९ ॥
मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-उस समय स्त्री के समीप में पक्षिराज कन्धर के ऐसे वचन कहनेपर क्रोध में भराहुआ वह राक्षस पक्षी से कहने लगा ॥ २० ॥ अरे ! तेरे भ्राता को यदि मैंने मारा है तो वह तो मैंने अपना पुरुषार्थ दिखाया है और अरे पक्षी ! आज इस तरवार से मैं तुझे भी मारडालूंगा ॥ २१ ॥ अरे अधम पक्षी ! यहां क्षणमात्र ठहरारह, जीताहुआ बचकर नहीं जायगा, ऐसा कहकर उसने अञ्जन के पुञ्जकी समान दमकतीहुई तरवार उठाई ॥ २२ ॥ तदनन्तर पक्षिराज और यक्षराज के योधा का, गरुड़ और इन्द्र की समान भयङ्कर युद्ध हुआ ॥ २३ ॥ तदनन्तर उस राक्षस ने क्रोध में भरकर वेगसे बुझतेहुए अंगार की समान चमकतीहुई तरवार उठाकर पक्षिराज कन्धर के ऊपर छोड़ी ॥ २४ ॥ पक्षिराज ने भूतल से कुछएक ऊपर को कूदकर, जैसे गरुड़ सर्प को पकडे तैसे चोंच से उस तरवार को पकडलिया ॥ २५ ॥ और चरण के नीचे दबा चोंच से मरोड़ कर वह तरवार तोड़डाली फिर पक्षिराज बहुत ही क्रुद्ध हुआ तदनन्तर खड्ग के टूटजानेपर उन दोनों का बाहुयुद्ध हुआ ॥ २६ ॥ तदनन्तर पक्षिराज ने राक्षस की छातीपर चढकर क्षणभर में उस के मुख, पैर, हाथ और शिर को तोड़ मरोड़डाला ॥ २७ ॥ उस राक्षस के मारेजाने पर उसकी स्त्री पक्षिराज की शरण में गई और कुछएक भयभीत सी होती हुई कहने लगीकि-मैं तुम्हारीस्त्री होऊँगी ॥ २८ ॥ तदनन्तर वह पक्षिश्रेष्ठ कन्धर उस स्त्री को लेकर अपने घर आया राक्षस को मारकर उस ने इसप्रकार अपने भ्राता का बदला लिया ॥ २९ ॥ मेनका की पुत्री वह मदनिका इच्छा करनेमात्र से ही नानाप्रकार के रूप धारण करसक्ती थी सो कन्धर के घर आते ही उस सुन्दरी ने पक्षी का रूप धारण करलिया ॥ ३० ॥ उस दशा में कन्धर ने तिस मदनिका के से तार्क्षी नामवाली कन्या को उत्पन्न करा, दुर्वासा के शापाग्नि से भस्म हुई वपू नामवाली श्रेष्ठ अप्सरा ने इस कन्या के रूप से जन्म धारण करा, तब कन्धर ने उस का नाम तार्क्षी रक्खा ॥ ३१ ॥ जिन में जारितारि छोटा है और द्रोण बड़ा है । ऐसे २ परमबुद्धिमान् पक्षियों में श्रेष्ठ मन्दपाल के चार पुत्र थे ॥ ३२ ॥ उन में सब से छोटा वेदवेदांग का पारगामी और धर्मात्मा था, उस ने कन्धर की सम्मति के अनुसार तार्क्षी को वरलिया ॥ ३३ ॥ तदनन्तर कुछ समय बीतजाने पर तार्क्षी ने गर्भ धारण करा, उस दशा में सात पक्ष (३ ॥ मास) बीतजाने पर वह तार्क्षी कुरुक्षेत्र को गई ॥ ३४ ॥ उस समय कौरव और पाण्डवों का अतिदारुण युद्ध होरहा था, सो होनहार कार्य के बलवान् होने से वह रण में घुसगई ॥ ३५ ॥ तहां देखा कि-भगदत्त और अर्जुन का युद्ध होरहा है और उन

के वाणों से आकाश ऐसा छारहा है जैसे कि पटवीजनों से ॥ ३६ ॥ इसी समय अर्जुन के धनुष में से वडे वेग के साथ छूटेहुए एक सर्प की समान श्यामवर्ण वाण के फलने से समीप में आकर उस तार्क्षी के पेटकी खालको छिन्न भिन्न करदिया ॥ ३७॥ उस से गर्भ की थैली के कटजाने पर चन्द्रमा की समान चार अण्डे उस समय भी आयु के शेष होने के कारण जैसे रुई के ढेरपर गिरे ऐसे धीरे से पृथ्वीपर गिरपडे ॥ ३८ ॥ उन चारों अण्डों के गिरने के समयही, भगदत्तके सुमतीक नामवाले गजराज के कण्ठ में बँधाहुआ वडाभारी घण्टा अर्जुन के वाण से बन्धन कटजानेपर गिरपडा ॥ ३९ ॥ और वह चारों ओर समभाव से पृथ्वी को विदारण करके मांस के ऊपर रक्खे हुए उन पक्षी के अण्डों को ढकताहुआ स्थित होगया ॥ ४० ॥ इधर उस राजा भगदत्त के मारेजाने पर भी वहुत दिनोपर्यंत कौरव और पाण्डवों की सेनाओं का युद्ध हुआ ॥ ४१ ॥ फिर युद्ध के समाप्त होनेपर युधिष्ठिरके महात्मा शन्तनुपुत्र भीष्मजी के समीप सकलधर्मों को सुनने को जानेपर॥ ४२ ॥ हे द्विजोत्तम ! जहां घण्टे के भीतर चार अण्डे थे उस स्थानपर शमीक नाम से प्रसिद्ध एक जितेंद्रिय ब्राह्मण आपहुँचे ॥ ४३ ॥ वालक अवस्था होनेके कारण उन चारों अण्डों में उस समयपर्यंत वाणी की प्रकटता नहीं हुईथी अतः विशेषरूप से ज्ञानोत्पत्ति होनेपरभी चींचीं कूची शब्दही कररहे थे, उस शब्दको तहां शिष्यसहित ऋषि ने सुना और अचरज में होकर घण्टे को उघाड़ा तो उसके भीतर माता पिता और वेपर के बच्चों को देखा ॥ ४४ ॥४५॥ भगवान् शमीक ऋषि ने उन बच्चोंको उस दशा में तहां देख विस्मय होकर अपने साथ आयेहुए ब्राह्मणोंसे कहा कि ॥४६॥ देवताओं की मर्दन करीहुई दैत्यसेना को भागतेहुए देखकर ब्राह्मणश्रेष्ठ स्वयं उशना शुक्राचार्यजी ने ठीक कहा था कि– ॥ ४७ ॥ तुम भागो मत लौट आओ, किसलिये कातर होकर शूरता और यश को त्यागकर भागेजाते हो ? भला कहाँ जाकर न मरोगे ? ॥ ४८ ॥ विधाता ने जितनी सृष्टि रची है, उस की जवतक मृत्यु मन से कल्पना नहीं करी है तवतक चाहे भागो चाहे युद्ध करो अवश्यही जीते रहोगे ॥ ४९ ॥ देखो ! कोई अपने घर में ही मरते हैं, कोई भागतेहुए ही मरजाते हैं और कोई अन्न खातेहुए तथा जल पीतेहुए ही मरजाते हैं ॥ ५० ॥ और कोई विलासी पुरुष विलास में तत्पर होकर ही, और कोई २ मनोरथों को भोगतेहुए सव प्रकार से रोगशोकरहित और शस्त्र के प्रहार से घाव न आने पर भी प्रेतराज यम के वश में होजाते हैं ॥५१॥ दूसरे तपस्या करतेहुओं ही को यमराज के दूत लेगए और दूसरे योगाभ्यास में तत्पर होकर भी मृत्यु के हाथ से न वचे ॥ ५२ ॥ देखो ! पहिले देवराज इन्द्र ने

शम्बरासुर के मारने को वज्र फेंका उस से असुर के हृदय में घाव होने पर भी वह मरण को प्राप्त नहीं हुआ ॥ ५३ ॥ और देखो! जब समय आगया तो उस ही इन्द्र ने, उस ही वज्र से, वही दैत्य दानव तत्क्षण प्रहारकर मारडाले ॥५४॥ ऐसा जानकर भय न करो, लौटआओ, ऐसा कहने पर वह दैत्य मरण के भय को त्यागकर लौटआये ॥५५॥ देखो! ऐसा जो शुक्राचार्य का वचन था उस को इन श्रेष्ठ पक्षियों ने सत्य करदिया; जो यह उस मनुष्योंकी सीमा को लांघनेवाले भी युद्ध में मरण को नहीं प्राप्त हुए ॥ ५६ ॥ हे ब्राह्मणों! देखो तो! कहाँ अण्डों का गिरना! और कहाँ घण्टे का गिरना! और कहाँ मांस-चर्बी और रुधिर से पृथ्वी का छाजाना ॥ ५७ ॥ हे ब्राह्मणों! निःसन्देह यह कोई असाधारण प्राणीहोंगे, यह साधारण पक्षी नहीं हैं यह दैवकी अनुकूलता लोक में इन के महाभागपने को दिखानेवाली है ॥५८॥ ऐसा कहकर वह ऋषि उन बच्चों को देखकर फिर यह वचन बोले कि-इन पक्षियों के बच्चों को लेकर जाओ लौटकर आश्रम को चलेजाओ ॥५९॥ आश्रम में इन पक्षियों को उस स्थान में रखना जहाँ इन अंडे से निकले बच्चों को चूहे, बिल्ली, बाज और नौलों का भय न हो ॥ ६० ॥ अथवा हे ब्राह्मणों अधिक यत्न करने से कौन लाभ है? सकलजीवों को उन के कर्म ही मारते हैं कर्म ही रक्षा करते हैं, जैसे कि-यह पक्षी बचगये ॥६१॥ तथापि मनुष्यों को सकल कार्यों में यत्न करना चाहिये, क्योंकि—यत्न करने पर सज्जनों का उलाहना नहीं उठाना पड़ता है ॥ ६२ ॥ महर्षि शमीक की ऐसी आज्ञा के अनुसार उन मुनियों के कुमारों ने, उन पक्षियों के बच्चों को यत्न के साथ लेकर, जहाँ वृक्ष पौधोंपर भौंरों के समूह गुञ्जार रहे हैं ऐसे अपने मनोहर तपोभूमि के आश्रम में आये ६३ उस समय उन महर्षि शमीक ने भी अपने मनकी इच्छानुसार मूल, फूल, फल और कुशाओं को लेकर क्रम से ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, इन्द्र, यम, अग्नि, वरुण, बृहस्पति, कुवेर, वायु, धाता, विधाता और विश्वेदेवों की, वेद की विधि के अनुसार नानाप्रकार की पूजारूप सत्क्रिया करीं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

द्वितीय अध्याय समाप्त ॥

अथ तीसरा अध्याय

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे विप्रेन्द्र! मुनिश्रेष्ठ शमीकऋषि, प्रतिदिन भोजन, जल और यथोचित रक्षा करके उन पक्षी के बच्चों का पोषण करनेलगे ॥ १॥ वह एक महीने में ही सूर्य के रथ के मार्ग में पहुँचनेलगे, उस समय मुनिकुमार कुतूहल से चञ्चलदृष्टि होकर उन को देखते थे ॥ २ ॥ वह नदी, समुद्र और नगरों सहित रथ के चक्राकार पृथ्वी को देखकर फिर आश्रम को आगये ॥ ३ ॥ उस

समय उन महात्मा पक्षियों का चित्त प-रिश्रम से घबड़ागया, इसप्रकार तहां रहते २ स्वाभाविक प्रभाव से उन का ज्ञान भी प्रकट होगया ॥ ४ ॥ उन सब पक्षियों ने शिष्यों के ऊपर कृपा करके धर्म का निश्चय करतेहुए शमीकऋषि की प्रदक्षिणा करके उन के चरणों को प्र-णाम करा ॥ ५ ॥ और कहनेलगे कि–हे मुने! तुम ने हमें भयङ्कर मृत्यु से ब-चाया है और हमें स्थान भोजन तथा जल देनेवाले तुम ही हमारे पिता और गुरु हो ॥ ६ ॥ हम गर्भ में थे तब ही माता मरगई पिता ने हमारा पालन नहीं करा केवल आपने ही हमें जीवन-दान दिया है। क्योंकि बालक अवस्था में आपने ही हमारी रक्षाकरी है ॥ ७ ॥ हम पृथ्वी पर कीड़ों की समान सूखरहे थे, आपका तेज पूर्ण है। आपने उस तेज के प्रभाव से ही घण्टे को उ-घाड़कर हमारा दुःख दूर करा है ॥ ८ ॥ और कब किसप्रकार यह बलहीन पक्षि-योंके बालक बढ़कर आकाश में हमारे सामने फिरेंगे? और कब मैं इन को भू-मिसे वृक्षपर चढ़कर तहां से दूसरे वृक्षपर को उड़तेहुए देखूंगा ॥ ९ ॥ और कब मेरी यह स्वाभाविक कान्ति, मेरे समीप विचरतेहुए इन पक्षियों के पंखोंकी वायु से उड़ीहुई धूलिसे ढकेगी ॥ १० ॥ हे तात! ऐसी नानाप्रकार की चिन्ता करते हुए आपने हमारा पालन करा है, सो हम इस समय बड़े होगए और विशेष ज्ञानको भी प्राप्त हुए हैं, कहिये अब आपकी कौनसी आज्ञा बजावें? ॥ ११ ॥ महर्षि शमीक उनका ऐसा संस्कारयुक्त स्पष्ट वाक्य सु-नकर सकलपुत्रों से घिरेहुए और पुत्र शृंगीऋषि सहित, हृदय में कुतूहल और शरीरपर रोमाञ्चयुक्त होकर कहनेलगे कि तुम्हें स्पष्ट वाणी की शक्ति किसकारण से प्राप्तहुई है सो ठीकरकहो, किसके शापसे तुम ने यह परम विकार पाया है जिससे कि तुम्हारा यह रूप पक्षी का और वाणी मनुष्य कीसी हुई है सो तुम्हें मुझ से कहना चाहिये ॥ १२ ॥ ॥ १४ ॥ पक्षी कहने लगे कि पहिले विपल स्वान् इस नाम से प्रसिद्ध एक श्रेष्ठ मुनि हुआ था उस के सुकृप तथा तुम्बरु यह दो पुत्र हुए ॥ १५ ॥ सुकृप के हम चार जितेन्द्रिय पुत्र थे, हम विनय आचार और भक्तिके साथ सदाही पिता के सामने नम्र रहते थे ॥ १६ ॥ वह ऋषि सकल इन्द्रियों को वश में करतेहुए तप-स्या करनेलगे, उस समय हम उनकी इच्छा के अनुसार समिधा, फूल तथा और भी सब भोजन की सामग्री लाते थे इसप्रकार हम और वह उस बन में रहते थे सो एकसमय इन्द्रपक्षीका रूप धारकर तहां आये उन के दोनों पक्ष टूटेहुए थे, शरीर बहुतबड़ा और बुढापे से ग्रसित होनेके कारण शिथिलता युक्त तथा दोनों नेत्र लाल २ थे वह इस प्रकार पक्षी के वेष में हमारे सत्य, शौच, क्षमा और आचारवान तथा अतीव उदारचित्त पितृ

देव की परीक्षा करने और हमें शाप देने को तहां आये ॥ १७ ॥ ॥ २० ॥

उन्होंने पक्षीरूप में आकर पिताजी से कहा कि–हे द्विजेंद्र ! आपको मुझ भूँखे की रक्षा करना उचित है, हे महाभाग ! मैं भोजन की इच्छा करता हूँ, आप मेरे एकमात्र आश्रय हूजिये ॥ २१ ॥ हे महाभाग ! मैं विन्ध्याचल की गुफा में रहता था, तहाँ से पक्षियों के परों की पवन के अतिवेग के झोके से उड़कर मैं यहाँ आकर गिरा हूँ। सो मैं यहाँ भूमि में गिरकर मूर्छित होगया, सातदिनतक यह भी नहीं मालूमहुआ कि–मैं कहाँ हूँ, तहाँ ही पड़े२ आठवें दिन मैं चेतनता को प्राप्तहुआ ॥ ॥२२–२३॥ चेतनता होते ही भूँख से घवड़ाकर आप की शरण आया हूँ, मैं आप से भोजन माँगता हूँ, मन के अतिखिन्न होने से आनन्द का लेशमात्र भी नहीं है; तिससे हे निर्मलबुद्धे ! मेरी रक्षा करने को अटलनिश्चय करो; हे ब्रह्मर्षे ! मेरे प्राणों की रक्षा होनेयोग्य भोजन दीजिये; इसप्रकार कहनेपर पक्षिरूपी इन्द्र से, पिता जीने कहा कि–प्राणों की रक्षा के निमित्त मैं तुम्हें इच्छित भोजन दूँगा; ऐसा कहकर उन द्विजश्रेष्ठ ने फिर उस पक्षीसे बूझा कि तुम्हारे लिये मैं किस भोजन का प्रबन्ध करूँ ? तब उस पक्षी ने कहा कि–मेरी परमतृप्ति तो मनुष्य के मांस से होती है ॥ २४–२८ ॥

तब ऋषि ने कहा कि-हेपक्षिन् ! तुम्हारी कुमार अवस्था बीतगई, तुम्हारी तरुणाई भी गई; निःसन्देह अवतुम्हारी वृद्धअवस्था है । जिस अवस्था में सकलप्राणियों की सारी इच्छा दूर होजाती हैं, उस वृद्धअवस्थाको प्राप्त हुए भी तुम ऐसे कठोरचित्त क्यों हो ? । कहाँ मनुष्य का मांस ? कहाँ यह तुम्हारा बुढापा ? इस से सिद्ध होता है कि–सर्वथा दुष्टस्वभाव वालों को कहीं भी शान्ति नहीं मिलती है। अथवा मुझे ऐसा कहने से भी कौन प्रयोजन है ? अङ्गीकार करके सदा देना ही चाहिये ऐसा हमारे मन का निश्चयहै पिता जी ने पक्षिरूप इन्द्रसे ऐसा कहकर और तैसा ही करने का निश्चय करके शीघ्र ही हमें बुलाया, और गुणों के अनुसार प्रशंसा करके वह मुनि हृदय में दुःखित होतेहुए अतिकठोर वचन कहने लगे; हम भक्ति के साथ विनय से शिर झुकाये और हाथ जोड़ेहुएबैठे थे। उन्होंने कहा कि द्विज श्रेष्ठों तुम सबही मेरे साथ पूर्ण मनोरथ और ऋण से मुक्त हुए हो सो कि तुम जैसे मेरे पुत्र हुए तैसेही तुम्हारे भी श्रेष्ठ सन्तानउत्पन्न होगई है । यदि पिता परमगुरुरूप से पूजनीय तुम्हें प्रतीत होतो निष्कपट हृदय से मेरी आज्ञा का पालन करो । उन के ऐसा कहते ही हमने आदर के साथ कहा कि–आप जो आज्ञा करेंगे, उसका पालन होही गया ऐसा निश्चय रखिये ॥ २९–३७ ॥

तब पिताजी ने कहा कि–यह पक्षी भूँखप्यास से व्याकुल होकर मेरी शरण में आकर प्राप्त हुआ है सो जिसप्रकार

तुम्हारे मांस से क्षणभर को इस की तृप्ति हो और तुम्हारे रुधिरसे इसकी प्यासदूर होय, ऐसा शीघ्रही करो । हम इसबात को सुनने से हृदय में चोटलगकर काँपने लगे और घबड़ागए; उससमय हम, हाय कैसा कष्ट है! हाय कैसा कष्ट है! ऐसा कहते हुए कहने लगे कि-यह बात कभी नहीं होगी। बुद्धिमान पुरुष पराये शरीर के लिये अपने शरीर को नष्ट वा घायल कैसे करसक्ता है ? विचारकर देखिये-आत्मा और पुत्र इन दोनोंमें किसी प्रकार का भेद नहीं है। पिता, देवता और मनुष्यों के जो ऋण कहे हैं पुत्र उन ऋणों को ही दूर करता है और पुत्र शरीरकभी नहीं देता है। इसकारण हम यह कार्य्य नहीं करेंगे. पहिले भी कभी किसीने ऐसा नहीं करा है, प्राणी जीवित रहता है तो अनेकों कल्याण पाता है और जीवित रहता हुआही पुण्य करता है। मरजानेपर देह के नाश के साथ २ धर्मादि भी शान्त होजाते हैं, धर्म को जाननेवालों का कहना है कि-सब प्रकार से अपनी रक्षा करें। हमारा ऐसा वचन सुनकर पिताजी क्रोध से मानों जलउठे और दृष्टि से हमें मानो भस्म करते हुए से फिर कहनेलगे। हम से प्रतिज्ञा करेहुए वचन का तुमने उल्लंघन करा इसकारण मेरे शाप से भस्म होकर पक्षी की योनि में जन्म पाओगे। वह हम से ऐसा कहकर ही, शास्त्र के अनुसार अपनी अन्त्येष्टि और और्ध्वदैहिक क्रिया (प्रेतकर्म) करने के अनन्तर उस पक्षिरूप इन्द्र से कहनेलगे, हे श्रेष्ठपक्षी! तुम इस विषय में किसी प्रकार का सन्देह न करके मुझे भक्षण करो; मैंने यहाँ यह अपनाशरीर तुम्हारा भोजनरूप करा है। हे पतङ्गश्रेष्ठ! एक सत्य का पालन करनाही ब्राह्मणका ब्राह्मणपना कहाता है। सत्य का पालन करने से जो फलमिलता है, दक्षिणासहित बहुत से यज्ञों के करने से तथा दूसरे सबप्रकार के कर्मों के करने से भी वैसा फल नहीं मिलता है। इसप्रकार ऋषि के वचन को सुनकर उसने अपने हृदय में बड़ा आश्चर्य माना और उससमय पक्षि का रूप धारण करनेवाला इन्द्रमुनि से कहने लगा। हेद्विजराज! तुम योगसमाधि लगाकर इस अपने शरीर को त्यागदो, क्योंकि-हे विप्रेन्द्र! मैं जीतेहुए जीवका कभी भक्षण नहीं करता हूँ। उस के इस वचन को सुनकर मुनिने योगसमाधि लगाई उन मुनि के ऐसे निश्चय को जानकर इन्द्र भी अपने साक्षात् स्वरूप को धारकर कहनेलगे। हे द्विजराज! मैंने जानलिया तुम ज्ञानमय शरीर होगगे हो, अब बुद्धि के द्वारा जानने योग्य विषय को जानो; हे निष्पाप! मैंने तुम्हारी परीक्षालेने की इच्छा से ऐसा अपराध करा है। तुम्हारी बुद्धि सर्वथा परमपद में स्थित होगई है, अतएव मेरे इस अपराध की क्षमाकरो कहो अब आपकी क्या इच्छा है, मैं उस को पूरी करूंगा सत्य वचन का पालन करने से तुम्हारे ऊपर मेरी

परम प्रीति उत्पन्न हुई है । आज से लेकर तुम्हें इन्द्रका ज्ञान प्रकट होगा, तथा तुम्हारी तपस्या और धर्म में कभी किसी प्रकार का विघ्न नहीं होगा । इस प्रकार कहकर इन्द्र के चलेजानेपर कोप में भरेहुए महामुनि पिताजी को शिर से प्रणाम करके हमने यह कहा ॥४८-५६॥

हे तात ! हम को जीवन प्यारा है; इसकारण मरण से डरगये थे, आप परमबुद्धिमान् हैं इसकारण हमें क्षमा करिये । यह शरीर खाल हड्डी और मांस का समूह है, और चरबी तथा रुधिर से भराहुआ है; इस में लिप्तहोना ठीक नहीं है, परन्तु हम ऐसे आसक्त होगये५७-५८

हे महाभाग ! परमबली काम क्रोध आदि शत्रुओं से जैसे यह लोक पराधीन होकर मोहित होता है सो सुनो । यह पुर (देह) परमविशाल है, प्रज्ञा इसकी छारदीवारी है हड्डियें इस में खम्भ खूँटे आदि हैं, धर्म इस की दीवार है, मांस और रुधिर इस की लहेसन है इस के नौ द्वार हैं, यह चारों ओर रगों के जाल से लिपटाहुआ है; चैतन्यविशिष्ट पुरुषरूपी राजा इन में निवास करता है । उस के दो मंत्री हैं उन के नाम बुद्धि और मन हैं, इन दोनों का परस्पर मेल नहीं है, यह दोनों परस्पर बैर निकालने को सदाही यत्न करते हैं राजा के चारशत्रुहैं, वह सदाही राजका नाश करने की इच्छा करते हैं, उन के नाम काम, क्रोध, लोभ और मोह यहहैं वह राजा जिस समय उन नौ द्वारों को रोककर स्थित होता है, उससमय सुखबल और निर्भय होजाता है और उससमय शत्रु भी उस का तिरस्कार नहीं करसक्ते हैं परन्तु जिस समय सब द्वारों को खोल कर छोड़देता है उससमय रागनामक शत्रु नेत्रादि द्वार से प्रवेश करता है, यह राग सर्वव्यापी, बहुत फैला हुआ और पांचो द्वारोंमें प्रवेश करसक्ता है, इसके इसप्रकार नेत्रादि द्वार से प्रवेश करनेपर दूसरे तीनों भयानक शत्रु भी इसके पीछे २ प्रवेश । करते हैं राग इन्द्रिय नामवाले सकल द्वारों में प्रवेश करके, मनतथा और सबों के साथ मिलजाता है । फिर मन और इन्द्रियों को वश में करके, अपने आप वश में नहो सब द्वारों को वश में करताहुआ प्रज्ञारूपी छारदीवारी को तोड़डालता है । मन ने उसका आश्रयलिया है ऐसा देखकर बुद्धितत्काल भागजाती है. तब तहां मंत्री रहित, नगरवासियों से त्यागाहुआ और शत्रुओं से छिद्र पाया हुआ होनेके कारण राजा का नाश होजाता है । इसप्रकार राग, लोभ, मोह और क्रोध, यह सब दुष्टात्मा अपने २ कार्य में लगकर मनुष्य की स्मरण शक्तिका नाश करदेते हैं, राग से क्रोध की उत्पत्ति होती है, क्रोध से लोभ का जन्म होता है, लोभ से अतिमोह उत्पन्न होता है, मोह से स्मरण शक्ति का नाश होता है, स्मृति का नाश होने से बुद्धि का नाश होता है, बुद्धि का नाश होने से एकसाथ नष्ट होजाता है । इसप्रकार हमारी बुद्धि नष्ट होगई और

उस के साथ हम राग और लोभ के वश में होकर जीवन की लालसा में पड़गये थे यही विचार कर हमारे ऊपर प्रसन्न हूजिये देखिये आप सत्पुरुषों में आगे गिने जाते हैं इसलिये हमें जो शाप दिया है; वह जिस प्रकार हमारे ऊपर प्रभुता नचलासके; हम जैसे निरन्तर क्लेशों से भरी हुई तामसी योनिको प्राप्त नहीं, तैसा करिये । यह सुनकर पिताजी ने कहा कि-हे पुत्रों ! मैंने जोकुछ कहा है वह कभी मिथ्या नहीं होगा, क्या कहूं आज पर्यन्त मैंने कभी मिथ्या नहीं बोला है । प्रतीत होता है इसविषय में दैवही प्रधान है निरर्थक पुरुषार्थ को धिक्कार हैं, देखो इसदैव ने ही बल करके ऐसा कभी विचार में भी नलायाहुआ अकार्यहम से कराया है। खैर जो कुछ हो, तुम ने मुझे प्रणाम करके प्रसन्नकरा है तिस से पक्षी को योनि में जाकर भी तुम परमज्ञानी होओगे । और ज्ञान के बल से वास्तविक मार्ग दिखातेहुए, क्लेश और पापसमूहों को दूर करके, मेरे अनुग्रह से सन्देहरहित होकर परमसिद्धि को पाओगे। तुम मेरे परमप्रेमी पुत्र हो । जैमिनिमुनि के प्रश्नरूप सन्देहों का समाधान करते ही तुम मेरे इस शाप से छूटजाओगे, मैंने तुम्हारे ऊपर यह अनुग्रह करा है ॥ ५९-७९ ॥

हे भगवन् ! पहिले पिताजी ने दैववश हमें यह शाप दिया था फिर बहुत सा समय बीतजानेके अनन्तर हम दूसरी योनिको प्राप्तहुए। और रणमें उत्पन्न हुए तब आपने हमारा पालन करा, हे ब्राह्मण श्रेष्ठ । इस प्रकार हम इस पक्षियोनि को प्राप्त हुए हैं । संसार में ऐसा कोई नहीं है, जिस को दैव के वश में न होना पड़े; प्राणीमात्र दैव के वशीभूत होकर चेष्टा करते हैं ॥ ८०-८२ ॥

मार्कण्डेयजी ने कहा कि-महाभाग भगवान शमीकमुनि, उनके ऐसे वचन को सुनकर समीप में स्थित द्विजातियों से कहने लगे। मैंने पहिलेही तुम से यह कहाथा, यह साधारण पक्षी नहीं हैं, कोई असाधारण प्राणी होंगे क्योंकि मनुष्यों के क्षयकारी घोर युद्ध में भी यह नहीं मरे । फिर महात्मा शमीक के प्रसन्न होकर आज्ञा देने पर वह चारों लता वृक्ष आदि से युक्त पर्वतों में श्रेष्ठ विन्ध्याचल पर चलेगये वह धर्मपक्षी अब तक तहाँ रहते हैं; तपस्या, स्वाध्याय और समाधि इन में चित्त लगाए रहते हैं । इसप्रकार मुनिवर्यसे सत्कारको प्राप्त हुए वह पक्षी रूपधारी मुनिपुत्र, विन्ध्याचलपर अति पवित्र जलवाले अति गहनस्थान में मन को वश में करे हुए रहते हैं॥८३-८७॥ तीसरा अध्याय समाप्त ॥*

चौथा अध्याय प्रारम्भ

मार्कण्डेयजीने कहा-द्रोण के पुत्र वह सब पक्षी इसप्रकार ज्ञानी हुए हैं, वह विन्ध्याचल पर रहते हैं, उनकी सेवा करो और उन से बूझो । जैमिनि, मार्कण्डेय जी का यह वचन सुनकर विन्ध्याचल

पर उन धर्म पक्षियों के समीप गये। पर्वत के पास पहुँचकर उन के पढने का शब्द सुना, सुनकर आश्चर्य में होकर चिन्ता करने लगे । यह श्रेष्ठपक्षी श्वास को वश में करके स्थान की सुन्दरता के साथ बराबर अति स्पष्टरूप से पढ रहे हैं, किसी प्रकार के दोष का सम्पर्क नहीं है । हमें यही आश्चर्य लगता है कि----यह पक्षी की योनि में उत्पन्न हुए तो भी सरस्वती इन को नहीं त्यागती है । बान्धव, मित्र और दूसरे सब इच्छित विषय सहज त्याग गये परन्तु केवल सरस्वती ने इन को नहीं त्यागा । ऐसे चिन्ता करते २ वह पर्वत की गुहामें घुसे, घुसकर देखा—पक्षी शिलातल पर बैठकर मुख के दोषों को त्याग कर पढ़ रहेहैं, उन को देखते ही वह एकसाथ शोक और हर्ष के मध्य में पड़कर उन सबों को अभिवादन करके कहने लगे । तुम्हारा मंगल हो, मैं व्यास जी का शिष्य जैमिनि, तुम्हारा दर्शन करने को उकताकर आया हूँ ऐसा जानो पिता जी के अनुक्रुद्ध होकर शाप देने से आपको जो पक्षी की योनि मिली है इस का दुःख न मानना, क्योंकि-यह दैवी घटना है । देखो कोई अति सम्पदा वाले वंश में उत्पन्न और उदार होकर, सम्पदा का नाश होजाने पर शबर से ज्ञान को प्राप्त हुआ । जो दाता है वह भिक्षुक होजाता है, जो मारने वाला है वह माराजाता है, जो गिरानेवाला है वह गिरादियाजाता है, तप के नष्ट होजाने पर ऐसी घटना होती है । मैंने ऐसी बहुतसी विपरीत बातें अनेकोंवार देखी हैं, इस जगत् में निरन्तर भाव, अभाव और क्षय नाश होते हैं, क्षणमात्र को भी उन का विराम नहीं है । यह सब अच्छीप्रकार विचारकर, तुम किसी विषय में शोक न करना, शोक और हर्षके वश में न होना ही ज्ञानका साक्षात् फल है ॥ १-१४ ॥

फिर उन सबों ने जैमिनि को पाद्य अर्घ्यपूर्वक अभिवादन करके प्रणाम करतेहुए अनामय बूझा । फिर व्यासजी के शिष्य तपोनिधि जैमिनि, उन के पंखों की पवन से घबराहट से छूटकर, श्रम को दूर करके सुख से बैठे तब वह कहने लगे । आज हमारा जन्म सफल है, आज हमारा जीवन भी सार्थक हुआ, क्योंकि आज हमने आपके देववन्दित चरणकमलों का दर्शन करा है । जो पिताजीका कोपरूप अग्नि उत्पन्न होकर हमारे देह में रहता था, आज आपके दर्शनरूप जल का सिंचन होने से वह भी शान्त हुआ । हे ब्रह्मन् ! आप कुशल हैं ? आप के आश्रम में के मृगपक्षियों का भी कुशल है ? आपके उस आश्रम में जो सब लता, गुल्म, त्वक्सार और जो तृणजाति के वृक्ष हैं वह सब भी कुशल हैं ? । अथवा हमने आदर के साथ यह जो सब बातें कहीं यह सर्वथा सङ्गत नहीं हैं, क्योंकि— जिनको आपका संग है उनका अमङ्गल कहाँ ? इससमय अपना प्रसाद देतेहुए

अपने आने का कारण कहिये; देवताओं की समान आपके सङ्ग का मिलना साक्षात् बड़ाभारी पुण्योदयहै,न जाने हमारा कौनसा बड़ाभारी भाग्य आपको हमारे नेत्रों के सामने लाया है ॥ १५॥२१॥

जैमिनिमुनि ने कहा कि-हे श्रेष्ठ पक्षियों ! सुनो, जिसलिये मैं इस विन्ध्याचल की रेवा के जल से सींचीहुई रमणीय गुफा में आया हूँ । भारतशास्त्र में मुझे अनेकों सन्देह हुए हैं, उन को बूझने के लिये मैं पहिले भृगुकुल के चलाने वाले महात्मा मार्कण्डेयजी के पास गया था । उन के पास जाकर मैंने महाभारत के सन्देह बूझे थे,मेरे बूझने पर उन्होंने कहा कि विन्ध्याचलपर महात्मा द्रोणपुत्र रहते हैं वह इसका अर्थ तुम से विस्तार के साथ कहेंगे । उनकी आज्ञा के वशीभूत होकर मैं इस महागिरि पर आया हूँ,सो तुम सब सन्देहों को एक २ करके सुनो और सुनकर उनकी व्याख्या करो२२-२५

पक्षियों ने कहा-यदि हमारी समझमें आसकेगा तो वह सब कहेंगे,आप उस को निःसन्देह होकर सुनें, जो हमारी समझ में आवेगा उसको क्यों न कहेंगे? हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! चारवेद, सब धर्मशास्त्र, सबवेद, के अङ्ग, और दूसरे भी वेदानुकूल सब विषय हमारी बुद्धि में समाये हुए हैं, तथापि प्रतिज्ञा नहीं करसक्ते । अतएव महाभारत में जो सन्देह हुए हों उन को विश्वस्तचित्त से कहिये, हे धर्मज्ञ ! हम उन को कहेंगे, यदि नहीं कहेंगे तो हमें मोह प्राप्त होगा॥२६-२९॥

जैमिनि ने कहा कि-तुम्हारा आत्मा निर्मल है, अतः महाभारत के जितने विषयों में मुझे सन्देह हुए हैं उन सब को सुनो; सुनकर उन की मीमांसा करना उचित है । सब कारणों के कारण और सब के आधार उन वासुदेवभगवान् ने निर्गुण होकर भी मानुषशरीर क्यों धारण करा ? वह इकली द्रुपदकुमारी कृष्णा (द्रौपदी) पाँच पाण्डवों की रानी कैसे हुई ? इस में बड़ा सन्देह है । महावली हलधारी बलदेवजी ने, तीर्थयात्रा करके ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त किसकारण करा ? । पाण्डव जिनके नाथ ऐसे महारथी महात्मा द्रौपदी के पुत्र किस कारण अविवाहित अवस्था में अनाथ की समान मरण को प्राप्तहुए ? । महाभारत के विषयमें मुझे यह सब सन्देह होरहे हैं, सो सब आप मुझ से कहें, जिससे मैं कृतार्थ होकर सुख के साथ अपने आश्रम को चलाजाऊँ ॥ ३०-३५ ॥

पक्षियों ने कहा कि-सकल देवताओं के स्वामी, जिन का पारावार नहीं है, सदा विराजमान रहनेवाले, जिन का किसी प्रकार का नाश उदय नहीं होता है, जो सब देहों में आत्मारूप से, अन्तर्यामीरूप से और चैतन्यरूप से शयन करते हैं, जो अनिरुद्ध आदि चार मूर्त्तियों में विद्यमान हैं, जो त्रिगुण हैं और किसी गुण के विषय नहीं हैं, जो सब से श्रेष्ठ, गुरु और वरणीय हैं, जो साक्षात् अमृत

स्वरूप हैं, जिन से सूक्ष्म कोई नहीं है, और जिन से बडाभी दूसरा नहीं है,जो जगत् के आदि और जन्मरहित हैं जो सकल विश्वको व्याप्त करेहुए हैं, जो प्रकट होना-अन्तर्धान होना-दृष्ट और सकल अदृष्टों से सर्वथा भिन्न हैं,यह जगत् जिनकी सृष्टि है, और अन्त में जिन से संहार को प्राप्त होनेवाला कहाता है, उन प्रभविष्णु विष्णु को नमस्कार करके और जिन्हों ने चारों मुखों की सहायता से सकल ऋक् साम को प्रकाशित करके त्रिलोकी को पवित्र करा है उन आदि देव ब्रह्माजी को समाधि के द्वारा नमस्कार करके । तथा जिन के एकही वाण से बेहाल होकर असुर याज्ञिक पुरुषों के करेहुए सकलयज्ञों को नष्ट नहीं करसक्ते हैं उन महादेव जी को भी प्रणाम करके अद्भुतकर्मा व्यासजी के सकल मतको कहेंगे, जिन व्यासजी ने महाभारत के वहाने से धर्म आदि सकल विषय प्रकट करे हैं ॥ ३६-४२ ॥

तत्त्वदर्शी मुनियों ने,जलों को 'नार' नाम से कहा है, पहिले वह नार विष्णु के अयन (आश्रय) हुए थे इस से उन का नाम 'नारायण, हुआ है हे ब्रह्मन् उन सर्व शक्तिमान् भगवान् नारायणने अपने को सगुण और निर्गुणभेद से चार स्थानो में बाँटा है और उनकी सहायता से सबको व्याप्त करके विराजमान हैं । उन में से उनकी एक मूर्त्तिका तो किसीप्रकार वर्णन नहीं होसक्ता विद्वानों ने उस मूर्त्ति को निरवच्छिन्न शुक्लवर्ण की देखा है, वह मूर्त्ति सब अङ्गों में सबलोकों को प्रकाशित करने वाली प्रकाश की पंक्ति से भरी हुई है,वही योगियों की अन्तिम वा एकमात्र निष्ठास्वरूप है, यह मूर्त्ति त्रिगुण से पर और दूर स्थित और समीप स्थित है ऐसा जानो उसका नाम वासुदेव है, ममता से रहित विनाहुए उस का दर्शन किसी प्रकार नहीं होता है । उसमूर्त्ति का रूप वर्ण आदि, किसीप्रकार की कल्पना का स्वरूप वा गठन नहीं है, वह शुद्धमूर्त्ति सदाही सबप्रकार से प्रतिष्ठित होकर विराजमान रहती है, दूसरी मूर्त्ति 'शेष' नाम से प्रसिद्ध होकर मस्तकपर इस भूमि को धारण करेहुए है, वह तामसी प्रसिद्ध है, क्योंकि वह तिर्यक्योनि का आश्रय करेहुए है । तीसरी मूर्त्ति प्रजा का पालन करने में तत्पर होकर कर्म का अनुष्ठान करने में लगी हुई है, इस मूर्त्ति में सत्त्व गुण अधिक है और धर्मको स्थापन करनेवाली है ऐसा जानो चौथीमूर्त्ति जलमें रहती है और शेषशय्या का आश्रय करके शयन करती है, रज उस का गुण है, वह मूर्त्ति सदा सृष्टि करती है ॥ ॥ ४३-५० ॥

श्रीहरि की जो तीसरी मूर्त्ति प्रजा का पालन करने में तत्पर है, वही पृथ्वी पर निरन्तर धर्म की व्यवस्था करती है । वही धर्मनाश के हेतु, अतिघमण्डी असुरों का नाश करती है; वही देवता, साधु तथा

अन्यधर्म की रक्षा करने में तत्पर पुरुषों का पालन करती है, हे जैमिने ! जिस २ समय धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है उस २ समय यह मूर्त्ति अपनी सृष्टि करती है । इस मूर्त्ति ने ही पहिले वराह होकर, मुख से सकल जलों को हटाकर एकदाढसे पृथ्वी को, कमलिनी की समान उखाड़ा था । इस मूर्त्ति ने ही फिर नृसिंहरूप से प्रकट होकर हिरण्यकशिपु का प्राणान्त और विप्रचित्ति आदि अन्य दानवों का नाश करा था। इस मूर्त्ति के आगे के वामन आदि दूसरे अवतारों की गिनती करने का साहस वा सामर्थ्य नहीं है, इस मूर्त्ति का इस समय यह माथुर नामक अवतार प्रकट हुआ है ॥ ५१–५६ ॥

इस प्रकार यह सत्त्वगुणी मूर्त्ति ही अकेली अवतारूप विग्रह धारण करती है, यह प्रद्युम्न नामसे प्रसिद्ध होकर रक्षा के कार्य में तत्पर है । देवपन, मनुष्यपन, तिर्यक्पन, चाहे जिस में हो, यह मूर्त्ति वासुदेव की इच्छा के अनुसार सदा तिस २ स्वभाव को धारण करती है । यह मैंने तुम से वर्णन करा; इस समय सब के प्रभु विष्णुभगवान् ने कृतकृत्य होकर भी जो मानुपशरीर धारण करा है, उसका उत्तर फिर सुनो ॥ ५७-५९॥ चौथा अध्याय समाप्त.

पाँचवाँ अध्याय प्रारम्भ.

पक्षियों ने कहा कि–पहिले प्रजापति त्वष्टा का त्रिशिरा नामवाला जो पुत्र था, वह जब नीचे को मुख करके तपस्या करनेलगा तब,देवराज इन्द्र ने शङ्कित होकर उसको मारडाला। हे ब्रह्मन् ! पहिले त्वष्टा के पुत्र के मारेजानेपर ब्रह्महत्या से दबेहुए इन्द्रके तेज की बड़ी हानि हुई । उस अतिनिंदित कार्य के करने से इन्द्र का तेज धर्म में प्रविष्ट होगया तब इन्द्र तेजोहीन होगया। तब पुत्र का मारा जाना सुनकर प्रजापति त्वष्टा ने क्रोध में भरकर जटा की एकलट को उखाडतेहुए यह वचन कहा । आज देवताओं सहित तीनोंलोक मेरे वीर्य को देखें,वह ब्रह्महत्यारा दुष्टात्मा इन्द्र भी साथ में मेरे वीर्य को देखै । मेरा पुत्र अपना कार्य सिद्ध करने में लगाहुआ था, इन्द्रने उस को गिराया है ऐसा कहकर क्रोध से नेत्रों को लाल करेहुए, उस जटा को अग्नि में हवन करदिया । उसीसमय उस में से ज्वालामाली महासुर प्रकट हुआ । उसका शरीर बहुत बडा, दाढे अतिविशाल, और उसकी कान्ति बिखरेहुए अञ्जन के समूह सी थी । इन्द्र के शत्रु, महाबली, अमेयात्मा वृत्रासुर त्वष्टा के तेज से युक्त होकर, छोडाहुआ एकबाण जितनीदूर जाता है उतना प्रतिदिन बढने लगा । इन्द्र, तिस महादैत्य वृत्रासुरको अपने मारने के लिये प्रकटहुआ देखकर, भय भीत हो, मेलकरलेने की इच्छा से सप्तर्षियों को भेजा । सब प्राणियों के हित का व्रत धारनेवाले ऋषियों ने प्रसन्नचित्त से वृत्रासुर के साथ इन्द्र के कितने ही नियमों को बाँधकर मित्रता करली । इन्द्रने उन बाँधेहुए नियमों को तोडकर वृत्रासुर को मारडाला, तब उन नियमों को तोडने के कारण तिरस्कारको प्राप्त हुए,उन का बलक्षीण होगया। इन्द्रके शरीरमें से अलगहुआ वह बल, बलके अधिष्ठात्री देवता सर्वव्यापी, अव्यक्तस्वरूप वायु में प्रविष्ट हो गया । इन्द्रने जिससमय गौतम का रूप धार-

कर अहल्या को धोखादिया था उससमय उन के रूप में विलक्षणता होगई थी। उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग का लावण्य जो अतीव मनोरम था, वह इन्द्र के दोष युक्त होनेके कारण उनको छोड-कर अश्विनीकुमार में प्रविष्ट होगया। इन्द्र इसप्रकार धर्महीन, तेजोहीन, बलहीन और रूपहीन होगये हैं ऐसा जानकर दैत्योंने उन को जीतने का उद्योग करा। वह इन्द्रको जीतने के साधन की वासनाके वश में होकर परमबली राजाओंके घरों में जन्म धारण करनेलगे।

कुछ समय बीतनेपर पृथ्वी उन के बोझसे दुःखित होकर, जहाँ देवताओं की सभा विराजमान है उस मेरु के शिखरपर पहुँची। वह अधिक भार से अत्यन्त पीडित होगई थी। दैत्य और दानवों ने जो उस के दुःख का हेतु उत्पन्न करा था वह उन को भलीप्रकार समझाया कि—यह सब परमतेजस्वी असुर आप के हाथोंसे मारेजाकर मर्त्यलोकके विषैं राजाओं के घरों में उत्पन्नहुए हैं। उन की बहुतसी अक्षौहिणियोंके भार से दुःखित होकर मैं पाताल में को धसीजाती हूँ। जिस से मुझे शान्तिप्राप्त हो तैसा उद्योग करिये॥

उससमय देवता प्रजाओंका उपकार और भूमि का भार हरने की इच्छा से अपने२ तेज के अंश करके स्वर्गलोक से मृत्युलोक में उतर ने लगे। स्वयं धर्म ने इन्द्रके शरीर में का तेज कुन्ती के गर्भ में स्थापन करा, तिससे धर्मराज युधिष्ठिर का जन्म हुआ। तदनन्तर पवन ने बल को छोड़ा तिस से भीमसेन उत्पन्नहुए। फिर इन्द्र वीर्यांश से अर्जुन और माद्री के गर्भ में इन्द्रके रूप अंश से एक साथ दो पुत्रों की उत्पत्ति हुई। यह दोनों बड़े द्युतिमान् थे इसप्रकार भगवान् इन्द्र ने पाँच पाण्डवरूप से अवतार धारण करा। उन की स्त्री इन्द्राणी अग्नि में से द्रौपदीरूप से प्रकट हुई। यह द्रौपदी इसप्रकार केवल एक इन्द्रकी ही स्त्री है और किसी की नहीं है। योगीश्वर बहुत से देह धारण करलेते हैं जिसप्रकार एकद्रौपदी पाँच की स्त्री हुई सो कहा, अब बलदेवजीका वृत्तान्त सुनो। इति पाँचवां अध्याय समाप्त॥

छठा अध्याय प्रारम्भ.

पक्षियों ने कहा कि—श्रीकृष्णजी अर्जुन से परम प्रेम करते हैं, ऐसा जानकर, क्या करने से सब ओर की रक्षा होसक्ती है, बलरामजी वारंवार यही विचारने लगे। श्रीकृष्ण को छोड़कर मैं दुर्योधन के पास नहीं जासकूँगा और, दुर्योधन शिष्य है, राजा है, जामाता है, किस प्रकार मैं पाण्डवों की ओर होकर उस का वध करूँगा, अतः मैं किसी पक्ष में भी नहीं होऊँगा। जबतक कौरव पाण्डवों का युद्ध समाप्त नहीं होगा तबतक आत्मा के द्वारा आत्माको तीर्थ के जल से प्लावित करूँगा।

इस प्रकार विचारने के अनन्तर वह श्रीकृष्ण, अर्जुन और दुर्योधन से कहकर अपनी सेना को साथ लिये द्वारका को चलेगये। तहाँ पहुँचकर तीर्थयात्राको जाने से पहिले दिन, मधुपानकर अप्सरा समान रेवती का हाथ पकड़कर रैवत नामक बगीचे में गये। उस समय मधुपानसे मत्त होने के कारण उन के पैर डगमगाने लगे, क्रम से सुन्दर रैवत बगीचा उन की दृष्टि के सामने पडा। उस में सकल

ऋतुओं के फलफूल उत्पन्न हुए हैं और सरोवरों सहित महावन तथा कमलों का वन शोभित होरहा था । अनेकों जाति के पक्षी मदमत्त होकर, सुनने में मनोहर मधुर शब्द करतेहुए फिररहे थे, बलदेवजी उस को सुनने लगे । यह बगीचा सब ऋतुओं में फलों के बोझे से झुकाहुआ, पुष्पों के गुच्छों से दमकताहुआ और पक्षियों के शब्द से गुञ्जाररहा था । उन्हों ने तहाँ आम्र, आम्रातक, जम्बीरा, दाड़मी, आविल्वक, कमरख, तिन्दुक, नारियल, पारावत, पनस, काकोल, नलिन, अमलवेत, कादम्ब, गोच, लुचकुच, भिलावा, तिन्दुक, जियापोता, करमर्द, आँवला, हरड़, बहेड़ा और अन्य सकल वृक्षों को देखा । इन के सिवाय अशोक, केतकी, मौलसिरी, पुन्नाग, सप्तपर्ण, चम्पा, कनेर, मालती, पारिजात, कोविदार, मन्दार, बेर, पाटल, देवदारू, साल, ताल, तमाल, ढाक आदि सकल वृक्षभी उन की दृष्टि पडे । चकोर, भृङ्गराज, तोता, चिड़िया, हारीत, जीवजीवक, प्रियपुत्र चातक और अन्य सकल पक्षी, सुनने में मनोहर मधुर शब्द करतेहुए तहाँ फिररहे थे । तहाँ अति निर्मल जलवाले बहुत से सरोवर उन की दृष्टि पड़े । उन सरोवरोंके चारों ओर कुमुद, पुण्डरीक, नीलकमल, कल्हार, और अनेकों कमल खिलेहुए थे । और कादम्ब, चकवाक, जलमुरग, कारण्डव, प्लव, हँस, कछुए मद्गु, और भी बहुत से जलचर जन्तु विचररहे थे ।

महाबली बलदेवजी, स्त्रियों से घिरेहुए मनोहर वन को देखते देखते अति उत्तम लता कुञ्ज में पहुँचगये । तहाँ कौशिक, भार्गव और भारद्वाज आदि अनेकों वंश के ब्राह्मण कथा सुनने को उत्कण्ठित होकर कुशावृषी आदि के आसनोंपर बैठेहुए थे सूतजी उन सबों के मध्य में बैठकर आदिम सुरर्षियों के चरित से भरी पुराण की कथा कहरहे थे । मधुपानसे लालनेत्रवाले बलदेवजी को देखकर, मत्त मानकर सकल द्विज तत्काल खडे होकर उनकी पूजा करनेलगे । केवल सूतजी ही नहीं उठे और उन्होंने पूजा भी नहीं करी, यह देखकर बलदेवजी को क्रोध आगया और उन्होंने आँखें चढाकर सूतजी का प्राणांत करडाला । ब्रह्मासनपरस्थित सूतजी का वधकरनेसे सकल ब्राह्मण बगीचे में से निकलभागे, उस समय बलदेवजी अपनेको पापसे कलङ्कित और उस के कारण अपने पदसे भ्रष्टहुआ मन में जानकर चिंताकरनेलगे । कि–मैंने बडाभारी पातक करडाला है, क्योंकि–ब्रह्मपद पर स्थित सूतजी की हत्याकरी है और यह सब ब्राह्मण भी मुझे देखकर बाहरको चलेगये हैं । साथ२ में मेरे शरीर का गन्धकी समान असुखकारक होगया है, मुझे अपना आत्मा भी ब्रह्महत्यारे की समान अत्यन्त कलुषित प्रतीत होता है । मद्यपान को धिक्कार है ? क्रोध को धिक्कार है अभिमानको धिक्कारहै ? और निडरपने को भी धिक्कार है ? मैंने इन सब दोषोंसे युक्तहोकर ही यह बडाभारी पातक करडालाहै । इसपातक को दूरकरनेके निमित्त बारहवर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत धारण करूँगा और जो बडाभारी पातक करा है उसको सब से कहताहुआ विचरूँगा ऐसा होने से ठीक २ प्रायश्चित होजायगा,

मैंने जो पहिले तीर्थयात्रा के विषय में कहा था सो इस प्रायश्चित्त के मिषसे उलटी बहनेवाली सरस्वती के तटपर जाऊँगा इस कारण ही बलरामजी प्रतिलोमा सरस्वती के तटपर गये; अब आगे द्रौपदी के पुत्रों के चरित की कथा सुनो । छठा अध्याय समाप्त ॥

सातवाँ अध्याय प्रारम्भ.

धर्मपक्षियों ने कहा कि–पहिले त्रेतायुगमें एक हरिश्चन्द्र नामवाले राजर्षि थे, वह सबोंमें श्रेष्ठ, धर्मात्मा और उज्ज्वलकीर्त्तिमान् थे । उन के राज्य में अकाल, व्याधि, अकालमृत्यु और पुरवासियों की अधर्म में रुचि यह नहीं थे । कोई भी बल, वीर्य, धन और तपके घमण्ड से मत्त नहीं था, स्त्रियें यौवन अवस्था के विना आये सन्तान उत्पन्न नहीं करतीथीं, महाबाहु हरिश्चन्द्र ने किसी समय वन में शिकार के अवसरपर मृग के पीछे भागतेहुए सुना कि–कितनी ही स्त्रियें बार२ कहरही हैं कि–हमारी रक्षा करो । उससमय वह मृग का पीछा छोडकर बोलउठे कि--तुम भयमत करो; मुझ रक्षकके होतेहुए कौन दुष्टात्मा ऐसा अन्याय करने में प्रवृत्त हुआ है ।

इससमय सकल कार्यों में विघ्न करनेवाले अतीवप्रचण्ड स्वभाव विघ्नराज, तिन स्त्रियोंके रोने के शब्द की ओर को जाते हुए चिंता करनेलगे । वीर्यवान् विश्वामित्र जी पहिले बहुत कुछ तप करके भी जिन का साधन न करसके उनही भवादि विद्याओं की साधना कररहे हैं तिससे इन्होने नियम करके वाक्य मन और क्रोध का संयम करा है । वही सकल विद्या भय से घवडाकर विलाप कररही हैं । इस समय मैं क्या करूँ ? विश्वामित्रजी स्वभाव से ही परमतेजस्वी हैं, हम इन की अपेक्षा अत्यन्त बलहीन हैं। सब विद्याएँ भी भय से घबडाकर चिल्लारही हैं, किसीप्रकार हम कुछ करसकें ऐसी आशा नहीं होती । अथवा यह राजर्षि हरिश्चन्द्र बारम्बार अभयवचन देतेहुए इधर को ही आरहे हैं, सो मैं इन के ही शरीर में प्रवेश करके इच्छानुसार कार्य को सिद्ध करूँगा ॥

प्रचण्ड स्वभाव विघ्नराजने इसप्रकार विचारकर राजा के शरीर में प्रवेशकरा; उससमय राजा क्रोध में भरकर कहनेलगा कि–कौन पापात्मा वस्त्र के आँचल में अग्नि बाँधरहा है। वह नहीं जानता है कि–मैं बल, प्रताप और तेज के प्रभाव से प्रदीप्त होकर सब का पालन करताहुआ यहाँ आपहुँचा हूँ। आज मेरे सब बाण धनुष में से छूटतेहुए सब दिशाओं को प्रकाशित करके उस पापात्मा के सकल अङ्गों को छिन्न भिन्न करेंगे जिससे वह दीर्घ निद्रा (मृत्यु) को प्राप्त होगा। राजा के ऐसे कहने को सुनकर विश्वामित्रजी को क्रोध आया कि–उसीसमय सकल विद्या अन्तर्धान होगईं। राजा भी इससमय परमतपस्वी विश्वामित्रजीको अचानक देखकर डरगये और पीपल के पत्ते की समान अत्यन्त काँपनेलगे । विश्वामित्र जी ने कहाकि–अरे दुष्टात्मन् ! खडारह ! राजा ने तत्काल प्रणाम करके नम्रता के साथ कहाकि–हे भगवन् ! आर्त्त की रक्षा करना ही हमारा धर्म है; इसकारण मैंने अपराध नहीं करा है किन्तु निजधर्म का पालन करा है । अतःक्रोध

को दूरकरिये, धर्मके जाननेवाले राजाको धनुष चढाकर धर्म के अनुसार युद्ध करना चाहिये, दान करना चाहिये और रक्षा करना चाहिये ॥

विश्वामित्रजी ने कहाकि–यदि तुम्हे अधर्म का भय है तो शीघ्र स्पष्ट करके कहोकि–किस को दान, किस की रक्षा और किस के साथ युद्ध करना चाहिये । राजा ने कहाकि–जो ब्राह्मणों में प्रधान हैं और जिन की आजीविका क्षीण होगई है उन को ही दानदेय । और जिन को भय होरहा है। उन की रक्षा करे तथा जो प्रतिद्वन्द्वी वा विपक्षी हों उन के ही साथ युद्ध करै। ऋषिने कहाकि–तुम राजा हो, यदि राजधर्ममें तुम्हारी पूर्णश्रद्धा हो तो–मैं ब्राह्मण यज्ञ करके ऐश्वर्य भोगने को उत्कण्ठित होरहा हूँ, तुम मुझे मेरी इच्छानुसार दक्षिणा दो ।

पक्षियोंने कहाकि–यह कथन सुनकर राजा अत्यन्त प्रसन्न अन्तःकरण से अपना पुनर्जन्म हुआ समझकर कहनेलगे । हे भगवन् ! आप को जो कुछ आवश्यकता हो निःसंदेह होकर कहिये; जानिये कि–परम दुर्लभ होनेपर भी वह मैंने आप को देदिया । सुवर्ण वा हिरण्य पुत्र वा स्त्री, देह वा प्राण, राज्य वा नगर अथवा स्त्री आप जो चाहेंगे वही दूँगा । विश्वामित्रजी ने कहाकि–हे राजन् ! मैंने तुम्हारीदीहुई वस्तु को ग्रहण करा, प्रथम मुझे राजसूय यज्ञ की दक्षिणा दीजिये । राजा ने कहाकि–हे ब्रह्मन् ! मैं आप को वही दूँगा, इससमय आप इच्छित दान माँगले ॥

ऋषि ने कहा कि–हे वीर ! मैं तुम्हारा पुत्र, स्त्री, देह और मरने पर जो जाता है तिस धर्म को भी नहीं चाहता हूँ । अथवा अधिक क्या कहूँ, मुझे समुद्र, पर्वत, ग्राम और नगरसहित पृथ्वी, घोडे, हाथी और रथों से युक्त सब राज्य, कुटार, खजाना तथा और भी सकल वस्तुएँ देदो ।

पक्षि कहते हैं कि–ऋषि के ऐसा कहने पर राजा ने प्रसन्न अन्तःकरण और प्रफुल्लित मुख से कहा कि–ऐसा ही होगा । तब ऋषि ने कहा कि–यदि तुमने राज्य, सेना, पृथिवी और धन यह सर्वस्व ही मुझे देदिया तो, मैं तपस्वी राजा हुआ अतएव इससमय प्रभु कौन है ? । राजा ने कहा कि–हे ब्रह्मन् ! मैंने तिससमय आप को समग्र पृथ्वी दान करके दी है उससमय से आप प्रभु हुए हैं, इससमय राजा हुए हैं, इस में और कहना ही क्या ? । ऋषि ने कहा कि–हे राजन् ! यदि तुमने मुझे समग्र वसुधा दान करदी है तो जहाँ मेरी प्रभुता है तहां से स्त्री और पुत्रसहित निकलजाओ और इन कमर की तगडी आदि सब गहनो को त्यागकर वृक्षों की छाल धारण करो । राजा ने 'बहुत अच्छा कहकर गहने उतारकर स्त्री और पुत्रसहित तहाँ से गमनकरा तब विश्वामित्रजी मार्ग रोककर कहनेलगे कि–मुझे राजसूययज्ञ की दक्षिणा विनादिये कहां जाते हो ? । राजा ने कहा कि–मैंने आप को यह अकण्टक राज्य दिया है, मेरे पास और क्या है ? इससमय केवल यह शरीर शेष रहा है । ऋषि ने कहा कि–मुझे यज्ञ की दक्षिणा आप को देना होगी, विशेषतः ब्राह्मण को देने को कहीहुई वस्तु न देने से नाश होजाता है जिससे ब्राह्मण प्रसन्न होसकैं ऐसी राजसूययज्ञ की दक्षिणा दो । तुम ने आप ही पहिले कहा था कि–अङ्गीकार करके दानदेय, शत्रु के साथ युद्ध करै और आर्त्त की रक्षा करै ॥

राजा ने कहा कि—हे भगवन्! इससमय मेरे पास कुछ नहीं है, कुछ समय में दान दूँगा मैं यह निष्कपट कहता हूँ ऐसा जानकर प्रसन्न हूजिये। ऋषि ने कहा कि मुझे कबतक बाट देखनी होगी, शीघ्र बताओ नहीं तो तुम को क्रोधाग्नि में भस्म करदूँगा। राजा ने कहा कि हे विप्रर्षे! एक मास के भीतर आप की दक्षिणा का धन देदूँगा, इससमय मैं धनहीन हूँ, इसकारण जाने की आज्ञा दीजिये। ऋषि ने कहा कि—हे नृपवर्य! जाओ, जाओ अपने धर्म की रक्षा करो, जिस से तुम्हारे मार्ग में कोई विपत्ति न हो और जिस तुम्हारे विपक्षपक्ष का भी क्षय न हो॥

पक्षी कहते हैं कि—ऋषि से आज्ञा लेकर राजा चलेगये, जो पैरों चलने को किसीप्रकार योग्य न थी वह शैव्या उन के पीछे २ गई। पुरवासी स्त्री और पुत्र सहित उन को नगर से बाहर जाते देखकर उन के पीछे जातेहुए यह कहकर विलाप करने लगे कि—हे नाथ! हमें किस कारण से त्यागते हो! देखो हम नित्य ही आर्त्त होरहे हैं। हे राजन्! आप जैसे धर्म परायण हैं तैसा ही पुरवासियों के ऊपर भी अनुग्रह करते हो, यदि धर्म में श्रद्धा है तो हमें भी साथ लेचलो। हे राजेन्द्र! मुहूर्त्तभर थमो, हम आप के मुखकमल को नेत्ररूप भौंरों से पीलें न जाने फिर कितने दिनों में इस को देखसकेंगे, जिन के कहीं को चलनेपर सकलराजे आगे और पीछे चलते थे, इस समय केवल यह स्त्री बालक पुत्रसहित उन के पीछे जाते हैं। जिनके कहीं को चलनेपर सकल सेवक हाथियों पर चढ़कर आगे आगे दौड़ते थे, वही राजेंद्र हरिश्चंद्र आज पैरों २ जाते हैं। हा राजन्! तुम्हारा यह सुंदर भौं, सुशोभित त्वचा और ऊँची नासिकायुक्त सुकुमार मुखमार्ग में धूलि पडनेसे मलिन होजायगा तो अतिशोचनीय मूर्त्ति को धारण करेगा। अतएव हे नृपवर्य! ठहरो, ठहरो, अपने धर्म का पालन करो, सब वर्णों का और विशेष करके क्षत्रियों का कठोरहृदय न होनाही परमधर्म है। हे नाथ! अब हमें इन स्त्री, पुत्र, धन, धान्य आदि किसी से प्रयोजन नहीं है, हम सब को त्यागकर छायाकी समान आपके पीछे २ चलेंगे। हा नाथ! हा महाराज! हा स्वामिन्! किस कारण से हम को त्यागते हो! जहाँ आप तहाँही हम होंगे, अधिक क्या कहें जहाँ आप हैं तहाँ ही सुख है, तहाँ ही स्वर्ग है और तहाँ ही नगर है।

पुरवासियों का ऐसा कहना सुनकर राजा को परमशोक हुआ; तत्काल उन के ऊपर दया आजाने से मार्ग में ठहरगये। राजाको पुरवासियों के वाक्यों से व्याकुल देखकर विश्वामित्रजी क्रोध और असहनशीलतासे नेत्रों को फैलाकर तत्काल तहाँ आकर कहनेलगे कि तू मिथ्यावादी, दुराचारी और कुटिलता की बातें करता है, तुझे धिक्कार हैं! देख तू मुझे राज्य दान करके फिर उस को छीनना चाहता है।

ऋषि के ऐसे कठोर वाक्य से कम्पायमान होकर राजा, 'जाताहूँ' ऐसा कहकर प्रिय का हाथखैंचता शीघ्रता से चरण रखता हुआ चलागया। राजाकी स्त्री अत्यन्त कोमलाङ्गी थी इसकारण चलने के परिश्रम से अत्यन्त घबडागई। तिसपर फिर राजाने हाथपकडकर

खेंचा और विश्वामित्र जी ने अचानक उस के ऊपर प्रहारकरा राजाहरिश्चंद्र ने भार्याके ऊपर प्रहार करते देखकर जिव्हा भी न हिलाई और दुःख से पीडित होकर ' जाता हूँ , केवल इतनाही वाक्य कहा ॥

ऐसे समय में पांच विश्वदेवता, राजाहरिश्चन्द्र को ऐसी दशा में देखकर कृपा के वशीभूत हो परस्पर में कहनेलगे, कि—यह परमपापी विश्वामित्र न जाने कौन से लोकमें जायगा देखो इस पापत्मा ने यज्ञ करनेवालों में श्रेष्ठ महाराजा हरिश्चन्द्रको अपने राज्यसे उतारा है। अब हम किस के महायज्ञमें श्रद्धा के साथ निचोड़ेहुए परमपवित्र मंत्रों से अभिमंत्रित सोमरसको पीकर आनन्द का अनुभव करेंगे ? । पक्षी कहते हैं कि—उन के ऐसे कहने से विश्वामित्रजी ने अत्यन्त क्रोध में भरकर उन सबोंको शाप दिया कि—तुमको मनुष्ययोनि में जन्म लेना पड़ेगा । तदनन्तर उनके प्रसन्न करने पर महामुनि विश्वामित्र जी ने फिर कहा कि मनुष्य योनि में जन्म परभी तुम्हारे सन्तानं न होगी। तुम्हारा विवाह और तुम्हें मत्सरताकी प्राप्ति भी नहीं होगी, तुम फिर कामक्रोधरहित देवता होओगे । तदनन्तर वह विश्वदेवता अपने २ अंश से कौरवो में आकर द्रौपदी के गर्भ से पाँचों पाण्डवों के पुत्र हुए । इसकारण ही वह द्रौपदी के पाँचो महारथी पुत्र महामुनि विश्वामित्रजी के शाप से विवाहितदशा को प्राप्त नहीं हुए । मैंने तुम से द्रौपदी के पुत्रों की कथा का सकल वृत्तान्त वर्णन करा, और क्या सुननें की इच्छा है कहो ॥ ॥ सातवां अध्याय समाप्त ॥ * ॥

आठवाँ अध्याय प्रारम्भ ।

जैमिनि कहनेलगे कि—आप ने मेरे बूझने के अनुसार क्रम से सब विषय कहा, अब राजा हरिश्चन्द्र की कथा सुनने को मुझे अत्यन्त कुतूहल होरहा है । आहा ! वह महात्मा होकर भी अत्यन्त कष्ट को प्राप्त हुए थे, हे श्रेष्ठ पक्षियों ! क्या परिणाम में उन्होंने वैसा अत्यन्त सुख भी भोगा था ? । पक्षियों ने कहा कि—राजा हरिश्चन्द्र विश्वामित्र का कथन सुनकर दुःखित होतेहुए धीरे २ चलेगये ; बालक पुत्रवाली सहधर्मिणी शैव्या उन के पीछे २ चली गई, वह धीरे २ दिव्य नगरी वाराणसी में पहुँचे परन्तु वह नगरी साक्षात महादेवजी की है, इस में मनुष्य का अधिकार नहीं है ऐसा विचारकर दुःख से आर्त्त हो अनुकूल रहनेवाली स्त्री के साथ तहां से चलदिये । पुरी में प्रवेश करते समय तहां विश्वामित्रजी को भी उपस्थित देखा, उन को आयाहुआ देखकर विनय के साथ नम्र हो हाथ जोडकर कहा कि—हे मुने ! मेरे यह पुत्र, स्त्री और प्राणमात्र शेष हैं; इन में से जिससे आप का कार्य उत्तमतासे सिद्ध होसके उसको लेलो । अथवा और किसीप्रकार का कार्य हमारे द्वारा होसक्ता हो तो उस के विषय की आज्ञा करिये ।

ऋषि ने कहा कि—हे राजर्षे ! वह प्रतिज्ञा कराहुआ एकमास बीतगया है, सो अपने स्वीकार करेहुए को यदि भूल न गये होओ तो हमें राजसूययज्ञ की दक्षिणा दो । राजाने कहा कि हे भगवन् ! आज मास पूर्ण तो होगया परंतु अभी आधा दिन शेष है, इतने समय की तो बाट देखो, आपको अधिक बाट नहीं देखनी

पडेगी । ऋषि ने कहा कि हे महाराज! अच्छा, ऐसाही सही, मैं फिर आऊँगा और यदि आज तुम नहीं दोगे तो शाप दूँगा ।

पक्षियों ने कहाकि—विश्वामित्रजी इतना कहकर चलेगये, राजा चिन्ता करनेलगा कि—मैं इन को प्रतिज्ञा करीहुई दक्षिणा कैसे दूँगा, वह हमारा समृद्धिमान् मित्रभी कहाँ है ? और इससमय मेरे अपने पास धन नहीं है, और कोई मेरा अपना धनही वाला कहाँ है,मेरा तो कुछ भी नहीं है अतएव प्राण त्यागदूँ वा कहीं को भागजाऊँ। अथवा स्वीकार करेहुए को पूरा न करके यदि नष्ट होगया तो ब्रह्मधनको हरण करके पाप में लिप्त होकर मुझे अधम से भी अधम कीडा होना पडेगा; अथवा किसी का दासभाव स्वीकार करूँगा, नहीं तो अपने को ही विक्रय करडालूँगा ।

पक्षियोंने कहाकि–राजाको, व्याकुल होकर नीचे को मुखकरे कातर हृदय से चिन्ता करते हुए देखकर, उनकी स्त्री तत्काल गद्गदवाणी से कहनेलगी। कि–हे महाराज ! चिन्ता को त्यागकर अपने सत्य का पालन करो, मनुष्य सत्यहीन होनेपर श्मशान की समान त्यागने योग्य होजाता है। हे पुरुष व्याघ्र ! अपने सत्य को पालन करना पुरुष का जैसा परमधर्म है, ऐसा और कुछ नहीं कहा है । जिस का वचन मिथ्या होता है, उस की अग्निहोत्र, वेदपाठ वा दान आदि सकल क्रिया निष्फल होजाती हैं। धर्मशास्त्र में सत्य को ही बुद्धिमान् पुरुषों के उद्धार का एकमात्र उपाय और असत्य को ही निर्बुद्धि पुरुषों के गिरने का हेतु कहा है । राजा कृति, सात अश्वमेध और राजसूय यज्ञ करके भी एकवार मिथ्या वाक्य कहने से स्वर्ग से नीचे गिरगये हैं। हे राजन्! मेरे पुत्र होगया है, यह कहते ही वह ऊँचेस्वर से रोने लगी, आँसुओं के जल से उस के दोनोंनेत्र भर आये ॥

राजा ने उस दशा में उससे सम्भाषण करके कहाकि--हे भद्रे ! यह बालक पासरहा है अतएव सन्ताप को त्याग, हे गजगामिनि ! जो कुछ कहने को उत्कण्ठितहुई थी सो कथन कर । स्त्री ने कहाकि--हे राजन् ! मेरे पुत्र उत्पन्न होगया है, साधुपुरुष पुत्र के निमित्त ही विवाह करते हैं; सो आप मुझे बेचकर, जोकुछ धन मिले उससे ब्राह्मण को दक्षिणा देदीजिये। पक्षियों ने कहाकि–यहबात सुनते ही राजा को मूर्च्छा आगई, फिर चेतनता पाय अत्यन्त दुःखित होकर विलाप करनेलगा । कि–हे भद्रे यही मुझे परम दुःख है कि–तू मुझ से ऐसा कहती है; मैं पापात्मा होने पर भी, क्या तुम्हारी उन मुसकुरान युक्त सकल बातों को भूलसकूंगा ? हाय ! हाय ! हे शुचिस्मिते तू ऐसा कहने को कैसे समर्थ हुई ? जब यह बात कहने में भी कष्ट होता है तो मैं ऐसा कर कैसे सक्ता हूँ ? यह कहकर वह श्रेष्ठ राजा अपने को बार २ धिक्कार देताहुआ मूर्छित होकर भूमि पर गिरपडा ।

राजा हरिश्चन्द्र को ऐसी दशा में देखकर राजरानी अत्यंत दुःखित होकर करुणायुक्त वाक्य कहनेलगी । कि–हा ! महाराज ! किस के शाप से ऐसा हुआ, आप अति कोमल आस्तरण (फर्श) के योग्य होकर भूमिपर पडे हैं । जिन्होने ब्राह्मणों को करोडों गौएँ और धनकादान करा, वह मेरे पति पृथ्वीनाथ

भूमिपर शयन कररहे हैं। हाय! कैसा कष्ट है! हा दैव! इन राजाने तुम्हारा क्या करा है? जो यह इन्द्र और उपेन्द्र के समान होकर भी ऐसी मूर्छा की दशा को प्राप्तहुए हैं। ऐसा कहकर वह सुन्दरी भी भर्त्ता के दुःख के बडे भारी असह्यभार से पीडित और मूर्छित होकर गिरपडी। पिता माता दोनों को, अनाथ होकर भूमिपर गिरतेहुए देख बालकपुत्र अत्यन्त भूँखा और परम दुःखित होकर कहनेलगा कि-हेतात! हेतात! मुझे खाने को दो। हे मातः! हेमातः! मुझे भोजन दे, मुझे बडी भूख लगी है, जीभ सूखी जाती है॥

पक्षियों ने कहा कि–इसी अवसर में महातपा विश्वामित्रजी आपहुँचे, उन्होंने राजा को मूर्छित और पृथ्वीपर गिराहुआ देखकर राजा के ऊपर जल छिडका और कहनेलगे कि–हे राजेन्द्र! उठ उठ, मुझे इच्छित दक्षिणा दे; ऋण को न भुगताने से दिन २ दुःख बढता है। इसप्रकार बरफकी समान अतिशीतल जल से तर होजानेके कारण तत्काल चेतन हो और ऋषि को देखकर राजा फिर मोह को प्राप्तहुए और उन ऋषि को भी क्रोध आगया; उससमय उन्होंने राजा को खूब समझाकर कहा कि यदि धर्म की ओर दृष्टि है तो मेरी वह दक्षिणा दे। देख, सूर्य सत्य के बल से ही तापदेता है, पृथ्वी सत्य से ही स्थित है, सत्य ही परमधर्म नाम से गिनागया है और एक सत्य ही स्वर्ग का अधिष्ठान है। सहस्र अश्वमेध और सत्य इन दोनों को तुलापर रखने से सहस्र अश्वमेध की अपेक्षा सत्य का अधिक भार होता है। अथवा तुझ से अनार्य, पापात्मा, क्रूर, मिथ्यावादी प्रभावशाली राजा से मुझे अब ऐसी शान्ति की बातें करने से क्या प्रयोजन है? सन्मान के साथ समझाकर कहता हूँ, सुन; अरे! यदि आज मेरी दक्षिणा नहीं देगा तो सूर्यास्त होने के अनन्तर तुझे शाप दूँगा। ऐसा कहकर ऋषि के चलेजानेपर, राजा भयभीत होकर विचारनेलगा कि–मैं निर्धन होगया हूँ, ऋषि धनी और निर्दयी होकर अत्यन्त पीडा देते हैं; इस दशा में मैं अधम किधर को भागकर जाऊँ?॥ उससमय राजा की स्त्री फिर कहनेलगी कि– मैंने जो कुछ कहा है वही करो; नहीं तो शापाग्नि से समूल भस्म होकर मरण को प्राप्त होजाओगे। पत्नी के बार२ ऐसे प्रेरणा करने पर राजा ने कहा कि–हे भद्रे! मुझे अब घृणा नहीं है तुझे ही बेचूँगा; अतिनिर्दयी पुरुष भी जो नहीं करसक्ते हैं, मैं वही करूँगा; जब मेरी जिव्हा ऐसे अत्यन्त दुर्वाक्यों को कहसक्ती है, तो करभी सकूँगा॥

स्त्री से ऐसा कहा, फिर वह नगर में जाकर, अन्तःकरण में अत्यन्त व्याकुल हो और नेत्रों में आँसू भरकर यह बचन कहनेलगे कि-।अरे नगरवासियों! सब आकर मेरी कथा सुनो। यदि कहो कि–तू क्या कहता है और कौन है? तो सुनो, मैं अतिनिर्दयी और अमानुष हूँ। अथवा मैं अतिकठोर स्वभाववाला राक्षस हूँ, या उन से भी अधिक पापात्मा हूँ। इस से ही परमप्यारी स्त्री को बेचने आया हूँ, अपने प्राण नहीं त्यागसका। मेरी इन प्राणों से भी अधिक परम अभिलाषा की पात्री को दासी बनानेका यदि तुम में से किसी का प्रयोजन होय तो वह मेरे प्राणों के रहते२ शीघ्रता से बोलो। पक्षी

कहते हैं कि-फिर किसी वृद्ध ब्राह्मण ने आकर राजा से कहा कि-मुझे दासी दे, मैं धन देकर मोललूँगा; मेरे पास बहुतसा धन है। मेरी प्रिया अतीव कोमल प्राणा है; घर का काम नहीं करसकी है; इसकारण मुझे दे। अपनी स्त्री के कार्य, अवस्था, रूप और सुन्दरस्वभाव के अनुसार यह धन लेकर उस को मुझे दे ॥

ब्राह्मण के ऐसा वाक्य कहनेपर राजा का हृदय फटने लगा, वह दुःख बढ़ने के कारण और कुछ न कहसका। उस समय वह ब्राह्मण राजाके धारण करेहुए वल्कल के पल्ले में दृढता से धन बाँधकर उसकी स्त्री के केश पकड़कर खैंचने लगा। माताको खेंचेड़ते हुए देखकर खुलेहुए घुँघराले केशोंवाला बालक रोहिताश्व भी हाथ से उसके वस्त्र को पकड़कर खेंचताहुआ रोने लगा। उस समय राजरानी ने ब्राह्मण से कहा कि-हे आर्य ! मुझे छोड़दो, छोड़ दो, मैं रोहिताश्व को देख लूँ। हे तात ! अब जाने इसको देखसकूँगी या नहीं इस में सन्देह है; बेटा ! आओ, देखो, मैं तुम्हारी माता होकर दासी बनी हूँ। तुम राजपुत्र हो, अब मैं तुम्हारे स्पर्श करने योग्य नहीं रही; इस कारण बेटा ! अब तुम मुझे स्पर्श न करो। फिर वह बालक माता को खिचड़तेहुए देखकर, मा ! मा ! कहकर रोदन करते करते, नेत्रों में आँसू भरेहुए तत्काल दौड़ने को हुआ। ब्राह्मण ने इस प्रकार आतेहुए उस के क्रोध में भरकर लात मारी, तो भी वह मा ! मा ! कहतारहा, किसीप्रकार भी माता को नहीं छोड़ा।

उससमय रानी ने ब्राह्मण से कहा कि-अबआप ही मेरी रक्षा करनेवाले हैं, इसकारण इस बालक को भी मोल लेलो। क्योंकि-मुझ को खरीदलिया है ठीक है; परन्तु इस बालक के बिना मैं कभी भी आप का कार्य ठीक २ नहीं करसकूँगी। मुझ मन्दभागिनी के ऊपर इतना अनुग्रह करने में भी उद्यत हूजिये, जैसे दुधार गौ को बछडे से मिलाते हैं तैसे ही मुझे भी इस बालक से मिलाओ। ब्राह्मण ने कहा कि-यह धन ले, बालक को मुझे दे; धर्मशास्त्र के जाननेवालों ने केवल स्त्री पुरुष का ही सौ, सहस्र, लाख और करोड मूल्य कहा है, बालक का नहीं।

पक्षियों ने कहा कि-फिर ब्राह्मण ने उसीप्रकार बालक का भी वह धन राजा के दुपट्टे में बाँधा और मातासहित उस बालक को लेकर एक वस्त्र से बाँधा। उससमय राजा स्त्री और पुत्र दोनो को बाँधे लियेजातेहुए देखकर अत्यन्त दुःखित हो वारम्वार लम्बे २ श्वास छोडताहुआ विलाप करनेलगा। जिस को पहिले वायु, सूर्य, चन्द्रमा और मेरे सिवाय दूसरा कोई कभी देखभी नहीं सक्ताथा सो वही यह मेरी स्त्री दासीपने को प्राप्त हुई ! । यह बालक भी सूर्यवंश में जन्म धारण करके दूसरे के हाथ बिका ! मेरी बुद्धि पर अत्यन्त ही परदा पड़गया है। सबप्रकार मुझे धिक्कार है ! हा प्रिये ! हा बेटा ! मुझ दुष्ट की दुर्नीति के कारण तुम को प्रारब्धवश यह दशा प्राप्त हुई ! तथापि मुझे मृत्यु न आई ! मुझे धिक्कार है ! ॥

पक्षियों ने कहा कि-राजा के इसप्रकार विलाप करनेलगनेपर वह ब्राह्मण रानी और राजपुत्र को लेकर शीघ्रता से अति ऊँचेघर और वृक्षादिकों को पीछे छोडताहुआ एक

साथ दृष्टि के बाहर होगया। इसी समय में विश्वामित्र भी आगये और धन माँगा, राजा ने भी उन को स्त्री और पुत्र के बेचने से प्राप्त हुआ वह धन देदिया और शोक में भर गये। विश्वामित्रजी ने उसधनको थोडा देख कर कोप में भरकर राजा से कहाकि–अरे क्षत्रियों में अधम! क्या तू इस को ही हमारे योग्य यज्ञ की दक्षिणा मन में विचारता है?। यदि ऐसा है तो अब ही हमारे सुतप्त तपस्या, अमलब्राह्मणत्व, विशुद्ध अध्ययन और उग्रप्रभाव के परमबल को देख। राजा ने कहा कि–हे भगवन्! और कुछकाल धीरज धरो, बाकी का धन भी दूँगा, इससमय और कुछ नहीं है, स्त्री और पुत्र पर्यन्त भी बेच लिया है। ऋषि ने कहा कि–अरे राजन्! एक पहरदिन और शेष है, बस इतने समय तकही मैं बाट देखसक्ता हूँ, इस विषय में अब और कुछ उत्तर देनेकी आवश्यकतानहींहै.

पक्षी कहते हैं कि–राजाको ऐसे निर्घृण और कठोर वचन कहकर विश्वामित्रजी कोप में भरेहुए उस धन को लेकर चलेगये। विश्वामित्रजी के चलेजानेपर, राजा भय और शोकसागर के मध्य में पड़कर सब प्रकार से निश्चय करके नीचे को मुख करके ऊँचे स्वरसे कहनेलगे, जिस को मुझे धन देकर मोललियाहुआ दास बनाने की आवश्यकता हो, वह सूर्यास्त होने से पहिले ही शीघ्रता से बोलो। उस समय धर्म चाण्डाल का वेष धारण करके शीघ्रता से आया, उस का शरीर दुर्गन्ध से भराहुआ था, रूखा और ऐंडा बैंडा प्रतीत होता था। दाढ़ी मूछें और दाँत लम्बेर और बहुत स्थान में फैलेहुए थे, उस के मन में दयाका लेश नहीं था, रङ्ग में काला, लम्बे पेटवाला, उस के नेत्र पीलेर और रूखे थे। उस का बोलना अतिकठोर था, गले में खोपड़ियों की माला से शोभायमान, हाथ में कपाल, फैलाहुआ मुख, हाथ में लकड़ी और पक्षियों का समूह था। दुबले शरीरवाला, चारों ओर कुत्तों से घिराहुआ था और उस का प्रकार सबही अत्यन्तभयङ्कर और प्रचण्ड था। इस दशा में वारम्वार बहुत कुछ बकवाद करतेहुए उस ने राजा से आकर कहा कि–तुम्हें मुझ से प्रयोजन है, थोड़ा वा बहुत जो कुछ देने से तुम मिलसको वह अपना मूल्य मुझ से शीघ्रही कहो। पक्षी कहते हैं कि–तैसे अतिकठोर, अतिदुष्टस्वभाव और अट्टसट्ट बकतेहुए उस क्रूरदृष्टि पुरुष को देखकर राजा ने कहा कि–तुम कौन हो? चाण्डाल ने कहा कि–मैं इस उत्तम नगर में प्रवीर नामसे प्रसिद्ध चाण्डाल हूँ, सबही जानते हैं कि-प्राणान्तदण्ड के अपराधी का वध और मुर्दे का कम्बल (कफन) का दुशाला लेकर जीविका करता हूँ। राजाने कहा कि–चाण्डाल का दास बनना अत्यन्त निन्दित है, इस कारण मेरी इच्छा नहीं है; चाहे विश्वामित्रजी की शापाग्नि से भस्म होजाऊँ तथापि चाण्डाल की अधीनता स्वीकार नहीं करूँगा।

पक्षीकहते हैं कि-राजा इसप्रकार कहरहा था कि–इतने ही में विश्वामित्रजी तहाँ आकर क्रोध और असहनता के कारण दोनों नेत्रों को चढाकर कहनेलगे। कि-यह चाण्डाल तुझे बहुतसा धन देनेको आया है, फिर तू किस कारण से मेरी यज्ञ की दक्षिणा को नहीं भुग-

ताता है ? । राजा ने कहाकि—हे भगवन् ! मैं अपने को सूर्यवंश में उत्पन्न जानता हूँ, साधारण धन के लोभ से चण्डाल का दास कैसे होसक्ता हूँ ? । ऋषि ने कहाकि—यदि तू इस चण्डाल के हाथ अपने को बेचकर वह धन ठीक २ समयपर मुझ को नहीं देगा तो निःसन्देह मैं तुझे शापदूँगा । ऐसा कहने से हरिश्चन्द्र के प्राण अतिचिन्ता से व्याकुलहुए,उस समय राजा ने 'भगवन् ! प्रसन्न हूजिये' ऐसा कहकर हृदय में विह्वलहो ऋषि के दोनों चरण पकडलिये । और कहाकि—मैं आप का दास हूँ, तिस के ऊपर अत्यन्त व्याकुल होकर भय को प्राप्त होरहा हूँ; विशेष करके मैं आप का भक्त हूँ,इसकारण प्रसन्न हूजिये, चण्डाल के स्पर्श से बढकर क्लेशदायक और कोई नहीं है । ऋषि ने कहाकि--यदि तू मेरा दास है तो मैंने अपने दासभाव को प्राप्तहुए तुझ को एक अर्बुद धन में चण्डाल के हाथ बेचा ॥

पक्षी कहते हैं कि—उन के इसप्रकार कहनेपर, चण्डाल प्रसन्नचित्त हो, तत्काल उन को अर्बुदधन दे और राजा को बांधकर अपने नगर को लेगया । एक तो स्त्री पुत्रके वियोग के कारण राजा के क्लेश की सीमा थी ही नहीं तिस के ऊपर चण्डाल के दण्डे का प्रहार करने से, अत्यन्त मूर्छित से होगये और उन का मन भी व्याकुल होउठा । वह चण्डाल के नगर में रहतेहुए प्रात,मध्यान्ह और सायङ्काल तीनों समय यह गातेथे । कि—वह मेरी स्त्री दीनमुख बालक को अपने सन्मुख देखकर, दीनमुखी और दुःख के साथ बैठी हुई मेरी ओर को ध्यानजानेपर स्मरण करती होगी । कि—राजा धनइकट्ठा करके, ऋषि को उन के माँगने से भी अधिक धनदेकर हम दोनों का उद्धार करेंगे । परन्तु वह मृगशावाक्षी यह नहीं जानती है कि-मैं और भी अधिक पापात्मा होगया हूँ, राज्यनाश, सुहृदत्याग, कन्यापुत्र विक्रय, अन्त में यह चाण्डालपने की प्राप्ति, देखो मुझे दुःख के ऊपर दुःख प्राप्त होरहा है । इसप्रकार वह सर्वस्व को खोयेहुए और आतुरभाव को प्राप्त होकर चाण्डाल के नगर में रहतेहुए नित्य परमप्रिय पुत्र और पुत्र में ही जिस के प्राण रहते थे ऐसी स्त्री को स्मरण करलेते थे । कुछ समय बीतने पर उन को चण्डाल के अधीन होने के कारण, श्मशान में मुरदों के वस्त्र (कफन) लेलेने के कार्य में नियत होनापडा,मुरदों के वस्त्र लेलेने का व्यापार करनेवाल राजा के स्वामी उस चण्डाल ने राजा को आज्ञा दी कि—तुम मुरदे के आने का ध्यान रखतेहुए रातदिन इस श्मशान में रहो । प्रत्येक मुरदे में से छठाभाग राजा को देना होगा, शेष में से तीनभाग मेरे तथा दोभाग तुम्हारे वेतन (नौकरी) रूप होंगे ॥

चाण्डाल के इसप्रकार आज्ञा करने पर, उस की आज्ञानुसार दक्षिणदिशा में वाराणसी की ओर बनेहुए शवमन्दिर (श्मशान) में तत्काल चलेगये । जिस श्मशान में निरन्तर भयङ्कर ऊँची ध्वनि उठरही है, सैंकड़ों गीदड़ी उस को घेरेहुए हैं, अनेकों मुरदों की खोपड़ियों से वह असीम भराहुआ है, उस में से बहुत ही धुआँ और दुर्गन्धि उठरहे हैं । पिशाच, भूत, वेताल, डाकिनी और यक्ष उस में भरेहुए हैं, गिद्ध और गीदड़ों की उस में गिनती नहीं है,

कूकरों से घिराहुआ है, उस में हड्डियों के ढेर लगे हैं और बडी दुर्गन्धि फैलरही है । उस श्मशान में मरण को प्राप्त होनेवालों के बान्धव नानाप्रकार के विलाप कररहे हैं, इस के सिवाय सहस्रों भयङ्कर कोलाहल होरहे हैं । हा पुत्र ! हा मित्र ! हा बन्धो ! हा-भ्रात ? ! हा बेटा ! हा प्रिये ! हा पितः ! हा मातः ! हा पते ! हा भगिनि ! हा मामा ! हा पितामह ! हा नाना ! हा पोते ! हा बान्धव ! आज तुम कहाँ गये ! आओ ! ऐसे वाक्य कहतेहुए सकल लोकों की भयङ्कर ध्वनि तहाँ सुनने में आती है । जलतेहुए मांस, और मेद चर्वीके सुन-सुनाहट के शब्द से उस श्मशानकी चारों दिशा प्रतिध्वनित होरही हैं । अधजले काले२ अनेकों मुरदे चिता की अग्निके बीच में पड़ेहुए, दाँतों को फैलाये मानो यह कहकर हास्य कररहे हैं कि–इस परमप्रिय शरीरकी यह दशा होती है । अग्नि का चट्चटाशब्द, हड्डियों के ढेरोंपर गिरते हुए पक्षियों का सन् सन् शब्द, बान्धवों के चिल्लाने का शब्द और चाण्डालों के हँसने का शब्द, छुपेहुए भूत, बैताल, पिशाच और राक्षसों के शब्द में मिलकर, प्रलयके समय उत्पन्नहुए सकल लोकों को भयदेनेवाले बडे भारी शब्द की समान तहाँ सुनने में आरहा है । भैंस और गौओं के ढेर के ढेर उपलों से उस के सबस्थल भरेहुए हैं, अनेकों उपलों के ढेर भस्महोकर राख के ढेर और ऊँचे २ हड्डियों के ठीहे उसको रोकेहुए हैं । ढेर की ढेर बलिदान की फूलमालाएं और दीपक उस श्मशान के इधर उधर बिखरेपडे हैं । कौए निरन्तर तहाँ के जलेहुए काले चन्दनों को वृक्षोंपर से डालरहे हैं, प्रायः इस श्मशान में नानाप्रकार के शब्द होरहे हैं । इन सब सामग्रियों से यह श्मशान साक्षात् नरकसा हो रहा है, राजा ऐसे भयानक श्मशान में चरण रखतेही दुःखित होकर ऐसे कहता हुआ शोक करनेलगा कि--हा ! विधे ! हमारे सेवक मन्त्री, ब्राह्मणों के समूह और वह सुविशाल राज्य कहाँगया ? हा ! शैव्य ! हा पुत्र ! तुम दोनों भी विश्वामित्रजी के दोष से मुझ हत भाग्य को छोडकर कहाँ चलेगये । इसप्रकार विलाप करतेहुए वह चण्डालकी आज्ञाके वचन को बार २ विचारकर इधर उधर को दौडने लगे । उनका शरीर मैल से छुपाहुआ, सकल अङ्गों में रूखापन, शरीर में अत्यन्त दुर्गन्धि हाथ में ध्वजा, लङ्गोटी पहिने, और उन के मस्तक तथा ठोंडीपर केश बहुत बढगये थे । इन सब दशाओं से वह साक्षात् कालकी समान और जीवित रहतेहुए भी दूसरी योनि को प्राप्तहुए से प्रतीत होते थे । उस दशा में इस मुरदे का यह मूल्य मिला है, मैं यह मूल्य पाऊँगा, वह मेरा होगा, यह राजा का है, यह स्वामी चाण्डाल को देना होगा, इसप्रकार कहते२ चारोंओर को दौड़२ कर जानेलगे । पुराने चीथड़ों में गाँठें बाँधकर उन की ही गूदड़ी बनाकर शरीरपर धारण करेहुए हैं, उन का मुख, भुजा, पेट, और चरण यह सबही अङ्ग चिता की भस्म और श्मशान की धूलि से अटेहुए हैं । उनके हाथ की सब अंगुलियें भी मेदा, चरबी और आँतों से लिहसीहुई है, नानाप्रकार का मुरदों का अन्न

खाकर उस से पेट भरते हैं । मुरदों की फूलमाला पहिनकर उससे ही मस्तकको शोभायमान करते हैं, उनका लम्बाश्वास कुछ देरको भी नहीं थमता है, क्या दिन, क्या रात्रि निद्राका स्पर्श भी नहीं है, वारंवार ऊँचेस्वरसे केवल हाहाकार करते हैं ।

ऐसी दशा में बारहमास सौ वर्ष की समान बीतने पर, वह बन्धुवियोग से व्याकुल दुर्बलशरीर राजा, एक समय थकावट के कारण निद्राके वशीभूत और चेष्टारहित होकर सोगये। सोते ही अति आश्चर्यकारी स्वप्न देखा, वह मानो दैव की प्रबलता के कारण और श्मशान के अभ्यास की सहायता से दूसरा शरीर धारण करके गुरु को गुरुदक्षिणा देचुके हैं। तब बारहवर्ष के दुःख से उन का छुटकारा हुआ है ; उन्होंने और भी देखा कि—मानों चण्डाली के गर्भ से जन्म लिया है । उन्होंने मानो उस गर्भ में स्थित होकर चिन्ता करी कि—इस गर्भ से निकलने पर दानधर्म का अनुष्ठान करूँगा ; फिर वह मानो तत्काल चण्डाल के बालकरूप से जन्म धारण करके श्मशान में मुरदों के जलाने के कार्य में सदालगेरहे । उसी दशा में सातवां वर्ष आया तब किसी गुणवान् ब्राह्मण के मुर्दे को उस के बान्धव श्मशान में लाये, उन के पास धन नहीं था । इसकारण, चण्डाली के बालकरूप राजा ने मानो मूल्य लेने की इच्छा से ब्राह्मणों का तिरस्कार करा । उस समय वह ब्राह्मण विश्वामित्र की करनी को जताकर उस से कहनेलगे कि—तू पाप करनेवाला है, तुझे परमपापरूप अशुभ कर्म ही करना होगा । पहिले राजा हरिश्चन्द्र ब्राह्मण के धन को हरण करके, पुण्य का नाश होने के कारण विश्वामित्र के करने से चण्डालयोनि में पड़े हैं । इस पर भी जब उस चण्डाली के गर्भ से उत्पन्नहुए बालक ने उन के साथ शान्ति का बर्त्ताव नहींकरा तब ब्राह्मणों ने उस को क्रोध में भरकर यह शाप दिया कि—अरे नराधम ! तू अभी घोरनरक में चलाजा ॥

इस प्रकार का वाक्य कहते ही उन्हों ने उस स्वप्न देखने की दशा में तत्काल अतिभयानक यमदूतों को हाथों में पाश लेकर आतेहुए देखा । कुछही देर में देखा कि- वह हठकरके दृढ़ता से उन का हाथ पकड़कर लेजानेलगे, तब वह खिन्न होकर हा मातः ! हा पितः ! तुम इस समय कहां हो । इसप्रकार कहनेपर यमदूतों ने उन को तेल के कढ़ावमें डालदिया । फिर कैंची और छुरे की धारोंसे उन के नीचे के भागको काटकर अन्धतमस नरकमें डालदिया । तब वह दुःखित होकर राद और रुधिर भोजन करनेलगे । फिर सात वर्ष मृत आत्माको चण्डालयोनि में देखा; प्रतिदिन एक नरक से दूसरे नरक में दग्ध और पाचित, खेदित और क्षोभित, मारित और पाटित, क्षारित और दीपित तथा शीत और पवन से क्लेशित होनेलगे । उन को नरक में एक २ दिन एक २ वर्ष की समान हुआ, यमदूतों ने उन को इसप्रकार सौ वर्षपर्यन्त नरक में पडारक्खा ॥

फिर नरक से पृथ्वी में गिरकर उन्होंने विष्टाभोजी कूकर होकर जन्म धारण करा, उस दशा में वमि (उलटी) भक्षण करतेहुए प्राणधारण करके, अन्त में शीत से ठिठराकर एक

मास में ही प्राण त्याग दिया । फिर अपने को, गौ, गदहा, हाथी, वानर, बकरा, बिलाव, कङ्क,, भेड, पक्षी, कीडा, मत्स्य, कूर्म, वराह, कुत्ता, भेडिया, मुरगा, तोता, मैना और दूसरे प्रकार के शरीर तथा सकल स्थावर योनियों को भोगते देखा; फिर दिन २ नानाप्रकार के प्राणियों की योनियो में जन्म पानेलगे । इसप्रकार सौ वर्ष उनखोटी योनियों में गमन करके पूरे हो गये,राजाने एक समय अपने को अपने वंश में उत्पन्न हुआ देखा । उस वंश में रहकर उन का राज्यजुएमें हारागया और भार्या तथा पुत्रके भी राज्य के साथ हरेजाने से वह इकले ही बन को चलेगये । उस बन में जाकर देखा कि-भयानक सिंह मुख फैलाकर, शरभ के साथ होकर उन को भक्षण करने को आगया है । तदनन्तर सिंहके भक्षण करलेनेपर वह फिर स्त्री के निमित्त शोक करते २ कहनेलगे कि-हा शैव्ये! मैं दुःख से दबगया हूँ, तू मुझे यहां छोडकर कहां चलीगई? तदनन्तर फिर पुत्रसहित अपनी स्त्री को देखा। वह मानो कहनेलगे कि-महाराज! जुए में क्या रक्खा है? हमारी रक्षा करो, तुम्हारा पुत्र तुम्हारी स्त्री शैव्यासहित शोचनीय दशा में पडा है । उससमय मानो उन्होंने बारंबार दौड़कर भी फिर उन को कहाँ नहीं देखपाया, तदनन्तर उन्होंने मानो स्वर्ग में स्थित होकर देखा कि उन की स्त्री को कोई हठ करके लियेजाता है। वह उस दशा में खुले केश, दीनवेश वस्त्रहीन हो हाहाकार करतीहुई बार२ कहरही है कि-मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो । फिर उन्होंने देखा कि-उन की रानी मानो अन्तरिक्ष मे स्थित होकर धर्मराजकी आज्ञा में बँधीहुई विलाप करते करते कहरही है कि-महाराज! विश्वमित्रजी ने तुम्हारे विषय में यमराज से कहा है । आप यहाँ रहें, यह कहते ही मानो उस को सर्पपाश में बाँधकर बलात्कार से लिये जाते हैं, स्वयं यमराज ने उन से विश्वामित्र का कराहुआ कार्य कहा तथापि उन में अधर्म से होनेवाला कोई भी विकार नहीं बढा ॥

इसप्रकार स्वप्न में जो जो दशा देखी,बारह वर्ष पर्यन्त वही २ दशा उन को विशेषरूप से भोगनीपडी, बारहवर्ष के अन्त में यमदूत बलात्कार से लेगये; तब उन्होंने साक्षात् यमराज को देखा । उससमय यमराज ने उन से कहा कि-महाराज ! विश्वामित्र का कोप दूर करना सहज नहीं है, अधिक क्या कोई ऋषि तुम्हारे पुत्र की भी मृत्यु करेंगे । अतएव तुम मनुष्यलोक में जाकर शेष दुःखको भी भोगो; तहाँ जानेपर बारहवर्ष के अनन्तर तुम्हारा दुःख दूर होकर कल्याण की प्राप्ति होगी ।

फिर वह यमदूतों के ढकेलदेनेपर अन्तरीक्ष में से गिरपडे; यमलोक से गिरनेपर भय और सम्भ्रमके कारण उनकी निद्रा उछटगई।तब वह बहुतसी चिन्ताकरके कहनेलगेकि-हाय!कैसा कष्ट है ! घावपर लवण पड़गया ! मैंने स्वप्न में भी ऐसा परमदुःख देखा कि-जिस का अन्त नहीं है ।फिर उन्हों ने आश्चर्य में होकर श्मशानमें के और चण्डालों से बूझा कि-मैंने जो स्वप्न में बारहवर्ष देखे हैं क्या वह वास्तव में ही बीतगये हैं ? उनमें से कोई नहीं बोला, औरों ने कहा कि-ठीक है ।

राजा सुनते ही दुःखित होकर देवताओं

की शरणगया और कहनेलगा कि--देवगण, मेरी शैव्या और बालकका कल्याण करें । जो सब में श्रेष्ठ है उस धर्म को नमस्कार है, जो सब के विधाता हैं उन कृष्ण को नमस्कार है, हे वृहस्पतिजी ! तुम्हें नमस्कार है हे इन्द्र ! तुम्हें भी नमस्कार है । ऐसा कहकर वह मुर्दों से मूल्य लेना इस चण्डाल के कार्य में तत्पर होगये, उस के साथमें उन की स्मृति (यादगारी) भी नष्ट होगई उन का शरीर मैल से छुपाहुआ था, शिरपर जटा बढ़ीहुई थीं, शरीर काला पड़गया था, लँगोटी पहिरे हुए थे और ज्ञान लेशमात्र भी नहीं था । उस दशा में स्त्री पुत्र सबको ही भूलगये, राज्य का नाश होने से उन में उत्साह का लेशमात्र भी नहीं रहा, हरसमय श्मशानमें ही रहते थे ।

उसीसमय में उन के बालकपुत्र को सर्प ने काटखाया और उस का मरण होगया, उन की स्त्री उस मृतपुत्र को लेकर विलाप करती २ तहां आई । वह बार २ हा पुत्र ! हा बेटा ! हा शिशो ! इसप्रकार कहती थी, उस का चित्त ठिकाने नहीं था, उस का केशपाश धूलि से उठाहुआ था, शरीर दुबला और विवर्ण होरहा था । उस दशा में वह कहनेलगी कि—हा राजन् ! तुम ने पहिले जिस को खेलतेहुए देखा था, आज उस को दुष्ट सर्प के काटने से प्राणहीन होकर भूमि पर सोयाहुआ देखते हो क्या ! ।

रानी के ऐसे बिलाप के बचनों को सुनकर मुरदे का कफन मिलेगा, ऐसा विचारकर राजा शीघ्रता से तहाँ आपहुँचे । स्मरणशक्ति का लोप होने से वह अपनी स्त्री को नहीं पहिचानसके, बहुतदिनों से बियोग होने के कारण वह निरन्तर सन्ताप भोगते हैं और मानो उन का दूसराजन्म होगया है । इसकारण से भी स्त्री और पुत्र को राजाने नहीं पहिचाना, रानीने भी पहिले राजा को सुन्दर केशों से शोभित देखा था, इससमय बडी २ जटाओंवाले और दुर्बल होकर सूखेहुए वृक्ष की समान होगये हैं, ऐसा देखकर किसीप्रकार नहीं पहिचानसकी । तदनन्तर राजा, सर्प के काटेहुए और काले वृक्ष में लिपटेहुए उस बालक को राजाधिराज के लक्षणों से युक्त, देखकर चिन्ता करने लगे कि—हाय ! कैसा कष्ट है ! जाने किस राजा के घर इस बालकका जन्म हुआ था, दुष्टात्मा काल इसको कौनसी दिशा में लेगया है ! । इस प्रकार माताकी गोद में पड़ेहुए इस बालकको देखकर, मेरा वह कमलदलनयन बालक रोहिताश्व आज मेरे मन में आबसा । यदि क्रूर काल ने अपने वश में नहीं किया होगा तो वह मेरा बालकभी इतना ही बडा होगया होगा, इतने ही में रानी विलाप करनेलगी । कि—हे बेटा ! किस पापके कारण हमपर यह अतिभयानक परमदुःख आकर पडा कि-जिस का अन्त नहीं दीखता ! हा नाथ ! हा राजन् ! मैं दारुण दुःख में पडी हूँ, तुमभी मुझे धीरज न देकर कौन स्थान में रहते हो ! तुम्हारे चित्त को तहाँ धीरज कैसे होता है ! अरे दैव ! तू ने हरिश्चन्द्र का क्या नहीं करा ! उन का राज्य नष्ट हुआ, बन्धु बान्धवों से बियोग हुआ और अन्त में स्त्री पुत्रभी बिके ।

रानी के इस कथन को सुनकर राजा तत्काल खडेसे गिरपडे, उस समय स्त्री और

मरेहुए पुत्र दोनों पहिचानकर, दुःख से अत्यन्त सन्तप्त होकर यह कहकर रोदन करनेलगे। कि-हाय! कैसा कष्ट है, मेरी वह शैव्या और मेरा वह यह बालक है? ऐसा कहते २ उन को मूर्छा आगई, उससमय शैव्या भी ऐसी दशा को प्राप्त हुए राजा को पहिचानकर अत्यन्त ही मौनकी और मूर्छित होकर भूतल पर गिरपडी। उस में हिलने की भी शक्ति नहीं रही, तदनन्तर राजा और रानी दोनों ही एक साथ चेतन होकर अत्यन्त सन्ताप से ग्रस्त और शोक के भार से पीडित होकर विलाप करनेलगे ॥

राजाने कहा, हा वत्स! तुम्हारी वह सुंदर आखें सुन्दर भौं! सुन्दर नासिका! सुन्दर अलकों से शोभायमान सुन्दरमुख! एक साथ मलीन होगया है! इस घटनाको देखकर भी मेरा हृदय क्यों विदीर्ण नहीं होता! हाय! अब कौन मधुरस्वर से पिता! पिता! कहताहुआ आवेगा! मैं भी प्रेम के साथ गाढालिङ्गन करके किस को पुत्र! पुत्र! कहकर पुकारूँगा! हाय अब किस की जानुओं से उडीहुई पीली पृथिवी की धूल से मेरा शरीर और दुपट्टा मलीन होगा! हा वत्स! तुम मेरे अङ्ग प्रत्यङ्ग से उत्पन्न हुएहो, और मन तथा हृदय दोनों को ही आनन्ददायक हो किन्तु मैं तुम्हारा ऐसा निर्दयी पिता हूँ कि–तुम को सामान्य वस्तु की समान बेचडाला! दैवरूपी सर्प ने निर्दयता के साथ धन और साधनों के साथ मेरा विशालराज्य हरकर अंत में मेरे पुत्र रत्न को भी डसलिया! अब मैं दैवरूपी सर्प से काटेहुए पुत्र का मुखकमल देखकर, भयङ्कर विष से अंधा होगया! यह कहकर राजा ने गद्गद् होकर जैसे ही पुत्र को आलिङ्गन किया, उसी समय स्तंभित और मूर्छित होकर गिरपड़ा।

यह देखकर राजरानी ने कहा, स्वर से यही उन विद्वानों के मन के चन्द्र हरिश्चन्द्र प्रतीत होते हैं। इनकी भी यह नासिका वैसी ही ऊंची और आगे से झुकीहुई है, तथा दाँत कुन्द कली की समान हैं। यह राजा आज वन में क्यों आये हैं? यह कहकर उस ने पुत्रशोक को छोडा और पृथिवीपर पडेहुए पति के ऊपर दृष्टिडाली। वह जिसप्रकार पति और पुत्रके शोक से अत्यन्त पीडित, दीनभावापन्न और अत्यन्त पीडित हुई थी, उसीप्रकार यह सब देख सुनकर विस्मय में होगई। अन्त में उस ने अचानक स्वामी का निन्दितदण्ड देखा उस को उसी समय मूर्छा आगई। धीरे२ सावधानहो गद्गद् वचनों से कहनेलगी, रे दैव! तुझ को धिक्कार है! तू बडा निर्दय, मर्य्यादा हीन और निन्दनीय है। इससे ही इसदेव सदृशराजा को चण्डाल योनि में गिराया है! राज्यका नाश करा, मित्रों से छुटाया और स्त्री पुत्र विकवाकर भी तैने इन को नहीं छोडा, अन्त में चण्डाल बनाया! हा राजन्! मैं दुःखित होकर पृथिवीपर पडी हूँ किसलिये मुझ को उठाकर पलङ्गपर चढनेको नहीं कहतेहो? हाय! विधाताका यह कैसा कोप है! आज आपका वह छत्र चामर आदि कुछभी नहीं दीखता! पहिले जिन के चलनेपर सैंकडों राजा दास बनकर अपने दुपट्टे से आगे की पृथिवीकी धूल को साफ करते जाते थे, वही आज दुःख से पीडित होकर, मुर्दों के कपालों

में मिले घट-आदि से भरे और शून्यप्राय इस अत्यन्त अपवित्र और भयानक श्मशान में फिरते हैं । गीध और गीदड़ों की चिल्लाहट से समस्तपक्षी यहां से भागरहे हैं । भस्मके ढेर, अंगारे, आधी जलीहुई हड्डी और मज्जा के एकत्र होनेसे यह सबही भयानक मालूम पड़ते हैं । ढेरका ढेर चिताओंका धूप उठकर आकाश को नीला बना रहा है । राजकुमारी शैव्याने ऐसा कहकर स्वामी को कंठ से लगाया और शोक में मग्न होकर दीन वचनों से विलापक-रने लगी, कि-हेराजन्! यह स्वप्नहै अथवा सच्ची घटना है ? जो आप को मालूमहो कहिये । हे महाभाग ! मेरा मन मोहसे अत्यन्त आच्छा-दित होगया है । हे धर्म्मयज्ञ! यदि यह यथार्थ बातहोतो धर्म्ममें सहायता नहीं, और ब्राह्मण तथा देवादि की पूजासे भी कुछ फल नहीं है, और पृथिवी पालन करके भी किसी प्रकार के इच्छित फल प्राप्त होने की संभावना नहीं । मालूमहोता है संसार में अवधर्म नहीं रहा है ।

जब धर्म नहीं तो सत्य, सरलता और दया भी कहाँ से होगी ? यदि यह सब होते तो धर्म्म के अत्यन्त आश्रित होकर भी तुम को अपने राज्य से भ्रष्ट होना नहीं पड़ता ।

रानी की यह बात सुनकर राजाने गरम श्वास छोड़ा, और गद्गद् वचनों से जिस प्रकार चण्डालपन प्राप्तहुआ था, उस को कह सुनाया। उस ने भी दुःखित होकर गरमश्वास छोड़ा, और अपने पुत्र के मरण का वृत्तान्त आद्योपा-न्त कहा राजाने सुनकर कहा, अब बहुत स-मय तक क्लेशकी ही उपासना करना ठीक नहीं है, इधर मैं भी स्वाधीन नहीं हूँ । मेरी हतभा-ग्यता को देखो । यदि चण्डाल की विना आज्ञा के अग्नि में प्रवेश करूँ तो फिर दूसरे जन्म में चण्डालका ही दास होना पड़ेगा । फिर मृत्यु के अन्त में क्षुद्रकीट और कृमिभोगी होकर, मल, चरबी, रुधिर और स्नायु से भरीहुई वैतरणी में गिरना होगा । फिर असिपत्रवन में दारुणभावसे टुकड़ेर होकर, वहांसे रौरव और महा रौरव इन नरकों में क्रमसे गमन करके सन्ताप भोगना पड़ेगा । दुःखरूपी सा-गर में डूबाहुआ हूँ; प्राण छोड़ने से ही इसके पार होसक्ता हूँ । जो वंश का एकमात्र आ-धार बालक था, मेरे दैवरूप जल ने बलवान् होकर उस को भी डुबालिया ! मैं दूसरे के अ-धीन होकर, अत्यन्तक्लेश भोगरहा हूँ, किस प्रकार प्राणों को छोड़ूँ । अथवा दुःख से पीड़ित पुरुष पापसे नहीं डरते हैं । पुत्र के वियोगमें जैसा दुःख है, तिर्य्यग्योनिमें भी वैसा दुःख नहीं है रौरव नरकमें भी वैसा क्लेश नहीं है; वैतरणी में भी वैसे दुःख की संभावना कहां ? इसकारण अग्निके प्रज्वलित होते ही मैं इस पुत्र के देहके साथ उस में कूदपड़ूंगा ! हे तन्वाङ्गि! मैंने यदि कोई अपराध किया हो तो क्षमा करना । हे शुचिस्मिते ! मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम विप्र के घर चलीजाओ । मैं जो कहता हूँ उस को आदरके साथ सुनो । यदि मैंने दान, होम अथवा गुरु लोगों को प्रसन्न किया है तो परलोक में फिर पुत्रके और तुम्हारे साथ मिलूँगा । तुम्हारे साथ पुत्र की खोज में जाना यद्यपि मेरे लिये श्रेष्ठ है; किन्तु इसलो-कमें मेरे इस मनोरथ की सिद्धि की सम्भावना कहां ? अयि शुचिस्मिते ! मैंने हास्य अथवा

रहस्यमें भी कोई अनुचित बातकही हो तो क्षमा करना यही मेरी एक प्रार्थना है । तुम अपने को राज्यपत्नी समझकर गर्व से उस ब्राह्मण का तिरस्कार न करना । हे शुभे ! तुम उन को सदा स्वामी और देवता की समान प्रसन्न रखना ।

रानी ने कहा कि—मैं भी अपने दुःख का भार नहीं उठासकती । इसकारण आपके साथ आजही जलतीहुई अग्नि में प्रवेश करूँगी । पक्षी बोले, कि—तदुपरान्त राजाने चिता बनाकर उस में पुत्र को रक्खा, और भार्याके साथ में हाथ जोड़कर जो परमात्मा सब के ईश्वर, नारायण और हरि हैं, जो सबके हृदय रूपी गुफा में शयन कररहे हैं, जो देवगणों के भी स्वामी और अनादि निधन ब्रह्मस्वरूप हैं, जो कृष्णवर्ण और पीताम्बरधारी हैं उन स्वस्वरूप वासुदेवका ध्यान करनेलगे। यह देखकर इन्द्रादि देवता धर्म्म को आगे करके शीघ्र उस स्थानपर आये। और आकर सबही कहनेलगे कि हे राजन् ! सुनो, यह साक्षात् ब्रह्मा और स्वयं भगवान् धर्म्म हैं यह साध्य और विश्वेदेवता, मरुत् और लोकपाल, नाग और सिद्ध, गन्धर्व और रुद्र दोनों अश्विनीकुमार और दूसरे भी अनेकों देवता, उपस्थित हैं। अधिक क्या यह विश्वामित्र, तीनों विश्व जिनको पहिले मित्र नहीं करसके; वह भी तुम्हारे साथ मित्रता करने को और मनोरथ पूराकरने को उत्सुक हैं । फिर धर्म, इन्द्र और विश्वामित्र तत्काल वहां आये । उन में से धर्म ने कहा दुःसाहस में क्यों प्रवृत्त होते हो; मैं धर्म तुम्हारे पासआया हूँ । तम ने तितिक्षा, दम और अपने गुणों से मुझे विशेष प्रसन्नकिया है ।

इन्द्र बोले, हे महाराज हरिश्चन्द्र ! मैं इंद्र तुम्हारे निकट आया हूँ । तुमने अपनी भार्या और पुत्र के साथ सब सनातनलोक जीतलिये इससमय स्त्री और पुत्र सहित स्वर्ग में प्रवेश करो । वह स्वर्ग दूसरे लोगों को अति दुष्प्राप्य होनेपर भी तुमने अपने कर्मपरम्परा से जीत लिया है ।

पक्षी बोले कि—इस के अनन्तर प्रभुइन्द्रने चितास्थान में जाकर आकाश से अकाल मृत्यु नाशक अमृतमय वर्षा और उस के साथ फूलों की वर्षा और देवदुन्दभी का शब्द किया उससमय जहां तहां देवताओं से भरी हुई सभा विराजमान हुई । उससमय महात्माहरिश्चन्द्र का मृतक पुत्र पहिले की समान कोमलाङ्ग स्वस्थशरीर, प्रसन्नचित्त और प्रसन्नेन्द्रिय होकर उठबैठा । राजाहरिश्चन्द्र ने भी भार्या सहित दिव्यवस्त्र और दिव्यमाला धारण करीं और पुत्र का आलिङ्गन कर परम प्रसन्न हुए, राजाइन्द्र ने उन से फिर कहा, कि—तुम स्त्री पुत्र सहित परमसद्गति पाओगे, इस अपने कर्म फल की सहायता से स्वर्ग में विराजिये । हरिश्चन्द्र ने कहा, अपने स्वामी चण्डाल की विनाआज्ञा मैं स्वर्ग में नहीं जासकता । धर्म ने कहा कि, तुमको इसप्रकार का क्लेश अवश्य हुआ है, मैंने ही अपने माया बल से जानकर स्वयं चण्डाल बनकर ऐसी चपलता दिखाई थी । इन्द्रबोले कि, पृथिवीके सम्पूर्ण लोग जिस स्थानकी प्रार्थना करते हैं, तुम उन पुण्यशील साधुओं के स्थान में विराजो । राजाने कहा, हे देवराज ! आपको

नमस्कार है। आप प्रसन्न हुए हैं। इसलिये ही मैं आश्रय पाकर कहताहूं कृपाकरके सुनिये! कोशल नगर वासी लोग मेरे शोक में डूबेहुए हैं। उन को छोड़कर आज मैं किसप्रकार से जाऊं? ब्रह्महत्या, गुरुत्याग गोवध और स्त्री वध करनेसे जो महापाप होता है, भक्तको त्यागने में भी वही पाप कहा है। भजनशील साधु भक्तको नहीं छोड़ते हैं। त्यागकरने से इसलोक वा परलोक में कहीं भी सुख नहीं मिलता है; इसकारण मैं स्वर्ग में नहीं जाऊंगा। हे सुरेश्वर! यदि उन के साथ स्वर्ग में जासकूं तो जाऊंगा। अधिक क्या, उन के साथ मैं नरक में भी जासकता हूँ।

इन्द्रबोले कि उनके अलग२ बहुतसे पाप पुण्य हैं; इसकारण उन के साथ एक जगह तुम किसप्रकार स्वर्गको भोगोगे? राजा ने कहा कि हेदेवराज! राजाकुटुम्बियों के प्रभाव से ही राज्यभोग करके अनेक महायज्ञों से यजन और पूर्त्त कार्य का अनुष्ठान करताहै। मैंने भी उन के प्रभाव से वह सब काम किये हैं; इसकारण वह मेरे उपकारीहैं। उन को स्वर्गकी इच्छासे मैं नहीं छोड़सकता। अतः हे देवराज! मेरा जो कुछ सुकृत वा पुण्यहै अथवा मैंने जो दान, यज्ञ और जप किये हैं मेरे उस सब को वह लोग समान भाग करके भोगें। मेरे जिस कर्म का फल बहुत कालमें भोगाजाता, वह सब आप के प्रसाद से एक दिन में ही उन के साथ भोगा जाय। मैं अकेला बहुत काल तक भोगना नहीं चाहता।

पक्षी बोले कि 'अच्छा ऐसा ही होगा,' यह कहकर त्रिभुवनेश्वर इंद्र, धर्म और स्वयं विश्वामित्र प्रसन्नतापूर्वक स्वर्ग से पृथिवी में उतरआये। तत्काल करोड़ों दिव्य विमानों से वह स्थान भरगया। अनन्तर वह सब लोग अयोध्या में जाकर तहां के निवासियों से कहनेलगे कि-तुम सब लोग स्वर्ग में गमन करो। अनंतर महातपा विश्वामित्र इंद्र की वह बात सुनकर राजा से परमप्रसन्न हुए, और राजकुमार रोहिताश्व को लाकर अयोध्या के सिंहासन पर बैठादिया। उससमय अयोध्या के सम्पूर्ण लोगों ने देवता, मुनि और सिद्धों के साथ रोहिताश्व को राजा माना, और हरिश्चंद्र के साथ मिलेहुए तथा स्त्री पुत्रों से घिरेहुए होकर स्त्री, पुत्र और सेवकों सहित स्वर्ग में गये। उन्होंने प्रतिपद में ही एक विमान से दूसरे विमानों में जाना आरम्भ किया, हरिश्चंद्र के हर्ष की सीमा न रही। तदनन्तर राजा, विमानों की सहायता से स्वर्ग में जाकर चाहारदीवारी से घिरेहुए महल में रहनेलगे। सर्वशास्त्रों के तत्त्व को जीतनेवाले दैत्यगुरु महाभाग बृहस्पतिजी ने उन को ऐसी समृद्धि देखकर उस के विषय में निम्नलिखित गाथा गाई कि—हरिश्चंद्र की समान राजा नहीं हुआ, होगा भी नहीं। जो पुरुष इन के चरित्र की कथा सुनेगा, वह अतिदुःखी होने पर भी परमसुख को प्राप्त होगा। अधिक क्या, स्वर्गार्थी को स्वर्गलाभ, पुत्रार्थी को पुत्रलाभ और भार्य्यार्थी को स्त्री प्राप्त होगी। राज्य का चाहनेवाला राज्य पावेगा। अहो! दान का कैसा माहात्म्य है! तितिक्षा की कैसी महिमा है! इन दोनों की सहायता से ही हरिश्चंद्र को स्वर्ग और इंद्रपद प्राप्त हुआ! पक्षी बोले कि-हरिश्चंद्र के चरित्र की कथा आद्योपान्त कही।

इस के अनन्तर राजसूययज्ञ विपाकवश पृथिवी का क्षय और उस विपाक के निमित्त जो भयङ्कर आडीवकयुद्ध हुआ था, उस की कथा को सुनो। आठवां अध्याय समाप्त हुआ।

नवम अध्याय।

पक्षीबोले कि राजा हरिश्चन्द्र के राज्य से अलग और स्वर्ग में प्राप्तहोनेपर उन के पुरोहित महातेजस्वी वशिष्ठजी जलमें से बाहरनिकले। जल से बाहर आकर विश्वामित्रकी करी हुई राजा हरिश्चन्द्र के विनाश की घटना और साथही उन का चाण्डाल के वशमें होना तथा स्त्री पुत्र के विक्रय सब वृत्तान्त सुना। वह सुनकर राजा से जैसे प्रसन्नहुए वैसे ही विश्वामित्र के ऊपर क्रोध करके बोले कि उस विश्वामित्र ने मेरे सौ पुत्रों का प्राण संहार किया। उस से भी उस के ऊपर मुझ को इतना क्रोध नहीं आया कि-जितना आज राजा को राज्यच्युत करना सुनकर मुझे क्रोध आया है। देखो यह राजा महात्मा, महाभाग, देवद्विजपूजक, सत्यवादी, शान्तस्वभाव, शत्रुके प्रति भी गर्वरहित, सर्वथा निष्पाप, धर्म्मपरायण, सावधान और मेरे आश्रित है। विश्वामित्रने ऐसे गुणवान् राजा को भी, सेवक, पुत्र और स्त्री सहित शोचनीय दशा में डाला और राज्यच्युतकर अनेकप्रकार से सताया है, इसकारण वह ब्रह्मद्वेषी दुराचारी पंडितो का त्याज्यमूढ विश्वामित्र मेरे शाप से कलङ्कित होगा और बगले की योनि पावेगा।

पक्षी बोले कि यह शाप सुनकर महातेजस्वी विश्वामित्र ने भी शाप दिया कि-तुम भी आडि (पक्षी) होकर उत्पन्न होओगे। वे दोनों ब्रह्मतेजःसम्पन्न होने पर भी एकदूसरे के शाप से तिर्यग्योनि में गिरे। दोनों परमतेजस्वी, दूसरी योनि प्राप्त होने पर भी उन के उस तेज की वृद्धि के सिवाय क्षय नहीं हुआ। दोनों ही महाबली होकर बडे क्रोध के साथ तुमुलयुद्ध करनेलगे। आडि दो सहस्र और बगला तीनसौ छियानवे योजन का था। दोनों ही महाबल को प्रकाश करतेहुए पंखों की सहायता से एक दूसरे को घायल करके प्रजा को भयभीत करनेलगे। बगले ने पंखों को नोचकर लालनेत्र करके घायल किया। आडिने भी दोनों पैर उठाकर पैरों की सहायता से बगले को घायल करना आरम्भ किया। उन के पङ्ख पवन से उडकर पर्वत की समान वेग से पृथिवी पर गिरे। उन के गिरने से ताडित होकर पृथिवी कांपउठी। उस के कांपने से सागर का जल उछलनेलगा। तदनन्तर पृथिवी पाताल में को धसककर एक ओर से झुकगई। उससमय किन्हीं ने पहाडों के गिरने से, किन्हींने सागर के जल से और किन्हीने पृथिवी के हिलने से प्राणत्याग किये। इसप्रकार सारासंसार अत्यंत भयभीत, हाहाकारयुक्त, मूर्छित और विस्मित होगया, सब लोग व्याकुल होकर हा वत्स! हा कान्त! हा शिशो! चलो, आओ, मैं यहां हूँ; हा प्रिये! हा प्राणनाथ! यह पर्वत गिरता है, शीघ्र भागो,ऐसे बचनों का कोलाहल होने पर, पितामह ब्रह्माजी सम्पूर्ण देवताओं साथ उस स्थान में उपस्थित हुए,और अत्यंत क्रोधपरायण उन दोनों से बोले, तुम दोनों युद्ध से शान्त होओ, जिस से सब प्राणी शान्त हों।

वे दोनों अव्यक्तयोनि पितामह ब्रह्माजी के वाक्य को सुनकर भी क्रोधान्ध हुए युद्ध करतेरहे; हटे नहीं, उससमय पितामह ब्रह्माजी ने सब प्राणियों का क्षय होता देखकर उन दोनों के हितू हो उन के तिर्यक्भावको दूर किया । जब दोनों का पहिलासारूप हो गया तो उनसे कहा, वत्सवशिष्ठ ! युद्धछोडो वत्स विश्वामित्र ! तुम भी युद्धमत करो । तामसभाव के होने से ही तुम ऐसा युद्ध करने में लगे थे । राजाहरिश्चंद्र के इस राजसूययज्ञ के विपाक और तुम दोनों के युद्ध ने मानों पृथिवी का नाशही करदिया । देखो, इन कौशिक श्रेष्ठ विश्वामित्र ने राजाहरिश्चंद्र का केवल अपकारही नहीं किया । किंतु उपकार में ही तत्पर होकर उनको स्वर्ग प्राप्तकराया है । तुमलोग तपस्याके मूर्त्तिमान् विघ्न काम क्रोध के वशीभूत हुएहो । इससमय उनको त्यागो ब्रह्मही परमबल है । पितामह केऐसा कहनेपर दोनों ही लज्जित हुए और आलिङ्गन करके शांतहुए । तदनन्तर पितामह देवताओं के प्रणाम करने पर अपने लोक में चलेगये, वशिष्ठ और विश्वामित्रजी ने भी अपने २ स्थान को प्रस्थान किया । जो मनुष्य यह आडिबक का युद्ध और हरिश्चंद्र का उपाख्यान विधि विधान से कथन और श्रवण करेंगे, सुनने मात्र से ही उन के पाप दूर होजायगे और कभी किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित नहीं होगा । नवम अध्याय समाप्त ।

दशम-अध्याय ।

जैमिनि बोले कि हे श्रेष्ठ द्विजो ! मैं प्रश्न करता हूँ, मेरा सन्देह दूर कीजिये, किकिस प्रकार से प्राणी का आविर्भाव और तिरोभाव होता है ? किस प्रकार से वह जन्म ग्रहण करता और वृद्धिको प्राप्त होता है ? तथा किस प्रकार से उदरके मध्य में स्थित और अङ्ग निपीड़ित होकर स्थिति करता है ? फिर पेट में से निकलकर किसप्रकार बढ़ता है ? अन्त समय में किसप्रकार से उस की चेतना नष्ट होती है ? सबही प्राणी मृत्यु के पीछे पाप पुण्य का फल भोगते हैं । फिर किसप्रकार से उनका वह वह फल भोग में आता है? जिस स्त्री के पेट में भारी से भारी पदार्थ भी जीर्ण होजाता है, उस गर्भाशय में पिण्डी की समान स्थिति करके किसकारण वह जीर्ण नहीं होता ? ढेर का ढेर भोजनभी जिस स्त्री के कोष्ट में जीर्ण होजाता है । तहाँ अत्यन्त क्षुद्र होनेपरभी वह किसकारण से जीर्ण नहीं होता है ? आप मुझ से यह सब कहिये । और इसप्रकार से कहैं कि—जिस में फिर किसीप्रकार का सन्देह नहीं रहै ? प्राणीमात्रही इस परम गुप्त विषय में मोहित होजाते हैं । पक्षी बोले कि आपने जन्म मृत्यु, के विषय के इस प्रश्न का भार सौंपा, जैसे इस की तुलना नहीं होसकती, वैसे ही इस का सहज में निर्णय करना भी असम्भव है । पूर्वकाल में सुमतिनामक परमधर्मात्मा पुत्र ने पिता से जो कुछ कहा था वह सुनो । भृगुवंशीय किसी महामति ब्राह्मण ने अपने, यज्ञोपवीत कियेहुए, शांतस्वभाव परम बुद्धिमान् जड़रूपी पुत्र से कहा कि हेसुमते !तुम क्रमशः आरम्भ से लेकर समस्तवेद पढ़ो,और गुरु की शुश्रूषामें तत्परहोकर भिक्षाके

अन्नसे उदरपूर्ति करो । फिर गृहस्थ आश्रम में जाकर श्रेष्ठ यज्ञ करना तदनंतर पुत्र उत्पन्न होनेपर वनवासी होजाना। तदुपरान्त हे वत्स! सन्यस्त वृत्तिधारणकरना,फिर परिग्रहका त्याग करने पर परब्रह्म को प्राप्तहोजाओगे; जिस को प्राप्तहोकर फिर तुम को शोक नहीं करना होगा। पक्षीबोले कि पिता के वारम्वार ऐसा कहनेपर पुत्रने जडता के वश में होकर हाँ या ना कुछ भी न कहा! पिताभी वारम्वार इसीप्रकार कहने लगे,पुत्र ने हँसकर उत्तर दिया कि हे तात! आप आज जो उपदेश कररहे हैं उस का अनेकवार अभ्यास किया है। इस के अतिरिक्त अनेक प्रकार के शास्त्र और अनेकप्रकार के शिल्प भी अनेकवार सीखे हैं। मैं इस से पहिले लाखोंवार उत्पन्नहुआ हूँ। उस उस जन्म में क्षय वृद्धि के कारण कितना ही कष्ट और कितना ही सन्तोष पाया है, शत्रु, मित्र और स्त्री का संयोग और वियोग कितनेहीवार अनुभव किया है। कितने ही माता और पिता को देखा है, कितने ही सुख और दुःख का अनुभव किया है। कितने ही वन्धु और पिता प्राप्तहुए थे। कितनी ही वार कितनी ही स्त्रियों के विष्ठामूत्र से भरे गर्भाशयों में वास किया है, अनेकवार अनेकरोग और पीडाओंका दुःख सहनकियाहै कितनीही वारगर्भ में यंत्रणाओंका भोगकराहै और बाल्य, यौवन तथा बुढापे में कितने ही क्लेश सहे हैं! एक एक करके वह सबही स्मरण आते हैं। मेरा एक यही जन्म नहीं है, सैकडोंवार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रयोनि में जन्म धारण किया है; पशु पक्षी और कीट योनिमें उत्पन्न हुआ हूँ; सैकडों वार युद्ध करनेवाला राजा और फिर उन का सेवक होकर भी उत्पन्न हुआ हूँ। फिर कितनीही वार आपके इस घर में मेरा इसीप्रकार से जन्म हुआ है। कितनी हीवार कितने ही लोगों का सेवक बना हूँ, स्वामी होकर दण्ड मुण्ड का कर्त्ता हुआ हूं। कितनी ही वार दरिद्र हुआ हूं। कितनी ही वार हत्याकी हैं, कितनीहीवार स्वयं माराहूं और दूसरों के द्वारा दूसरे को मरवाया है। कितनी ही वार लोगों को दानदिया और उन से लिया है। कितनी ही वार पिता, माता, सुहृत् भ्राता और स्त्री आदि का आनन्द भोगा है, और उन का दुःख भी भोगकर आँसुओं के जल से अपने मुख को धोया है। हे तात! इसीप्रकार इस साक्षात् संकट स्वरूप संसारचक्र में घूमते २ मुझको ऐसा मुक्तिदायक ज्ञान प्राप्त हुआ है कि जिसके प्राप्त होने से ऋक्, यजु, और सामके वर्णन करेहुए क्रियाकलाप परमार्थ में सर्वथा विफल और असम्पूर्ण मालूम पडे हैं। मुझ को जब ज्ञान उत्पन्न हुआ है उस की सहायता से मैंने विश्वगुरु परमात्मा को जानकर जब कामनाओं की शान्तिरूप तृप्ति का सञ्चार और मायामोह के नष्ट होने से जब सब प्रकार से शुद्धि पाई, तथा उस के प्रभाव से जब किसी विषय में कुछ कामना नहीं तो वेद(विधि)से क्या प्रयोजनहै? छःभावविकाररूप क्रिया,दुःख, सुख,हर्ष,रस और गुणपरम्परा इन सब का जिस में सम्पर्क नहीं,मैं उस ब्रह्मरूप परमपद को पाऊँगा। मैंने भलीभांति जानलिया है कि यह संसार दुःखकी लडीमात्र और हर्ष, शोक, उद्वेग, क्रोध और जरा आदि

दोषों से आतुर होरहा है। जिस में आत्मारूपी मृग बँधजाता है ऐसे आसक्तिरूप सैंकड़ों पाशों से यह भराहुआ है । इसकारण मैं इस को छोड़कर परब्रह्म का आश्रय लूँगा। वैदिक धर्म्म अधर्म्म से परिपूर्ण और अतिनिन्दित पापफल की समान है,साथ२में उसको भी छोडूँगा

पक्षी बोले कि–पिता, पुत्र की यह बात सुनकर हर्ष और विस्मय से गद्गद् होगये, और प्रसन्नचित्त से बोले कि हे वत्स ! तुम यह क्या कहते हो ? तुम को यह ज्ञान कहां से उत्पन्न हुआ ? इस समय चैतन्य कैसे हुआ ? किसी मुनि अथवा देवता के शापसे तुम्हारी यह विकृतदशा होगई थी क्या? क्योंकि इतने दिन तक तुम्हारा ज्ञान छिपाहुआ था ; इस समय प्रगट हुआ है पुत्रने कहा, हे तात ! मैं पहिले जन्म में जो कुछ था, और इसके पीछे जो कुछ होऊँगा उस दुःखसूचक वृत्तान्त को क्रम से सुनो ।मैं पहिले जन्म में ब्राह्मण था ।परमात्मा में ही मेरा आत्मा तत्पर था ।मुझ को अध्यात्म विद्या के विचार से परमनिष्ठा उत्पन्नहुई थी। सदा अभ्यास,सत्संग,विचार का शोधन और अपना स्वभाव इन सब उपायों में युक्त रहकर परमात्मा में मन लगाने से मैं परमप्रसन्न हुआ । अब मैंने आचार्य्यता पाई है।शिष्यों के संदेह निवारण करने में मुझे सबसे अधिकप्रधानता प्राप्त हुई थी। बहुतकालके पीछे एकान्तवासी होगया, मेरे गुण में दोष उत्पन्न हुए। उस से मुझ में अज्ञानका आविर्भाव हुआ और सत् वृत्तियें गलगईं, प्रमादसे अकालमृत्युहुई।प्रथम अवस्थामें ब्रह्मज्ञानकी आलोचना करने से मृत्यु होनेपर भी मुझे जाति यादरही। इसकारण अब तक बारम्बार जन्मग्रहण करके जितने बरस बीते हैं, वह सब याद हैं । अधिक क्या पहिले अभ्यास से ही मैं ऐसा जितेन्द्रिय हुआ हूँ।फिर जिस से जन्म न हो ऐसा यत्न करूँगा । मुझे जो जाति का स्मरण है, वह केवल ज्ञानदान का प्रत्यक्ष फल है ! हे तात! वैदिकधर्म का आश्रय न करने से कभी इसप्रकार जाति का स्मरण नहीं रहसकता।मैंने उस पूर्वाश्रम की कृपा से ही ऐसा निष्ठाधर्म प्राप्त किया है । अब इस अवस्था में एकान्त में रहकर आत्मा के उद्धार का उपाय करूँगा। इसकारण हे महाभाग! आप कहिये, कि-आप के हृदय में कौन सन्देह उपस्थित हुआ है । मैं आप का सन्देह निवारण करके प्रसन्नतापूर्वक आप के ऋण से छूटूँगा ॥

पक्षी बोले कि पिता ने उससमय उस के बचन पर विश्वास किया, और संसार के विषय का जो वृत्तान्त पूछा उस का उत्तर दिया पुत्र ने कहा कि–हे पिता ! मैंने बार २ जिस का अनुभव कियाहै सो निवेदन करता हूँ सुनो। यह संसार चक्रजीर्ण नहीं होता है । इस की स्थिति भी नहीं है। पिताजी!मैं आपकी आज्ञा से सब कहताहूँ।क्योंकि मृत्युकालके अनन्तर कोई नहीं कहसकता।बलवान् वायु से ऊष्मा संचारित और बिनाईंधन के प्रदीप्त होकर मर्म्म स्थानका भेदकरती है । तब उदान नाम वायु ऊपर उठता है।उससे भोजन कियेहुए पदार्थ का नीचे जाना रुकजाता है । जिन्होंने जलदान, अन्नदान, और रसदान किया है वह लोग उसमृत्युकालमें प्रसन्नता प्राप्त करते हैं।जो प्राणी

श्रद्धा के साथ पवित्रहुए चित्त से अन्नदान करता है, वह उससमय विना अन्नके भी तृप्ति का अनुभव करता है । जो व्यक्ति मिथ्या वचन नहीं बोलता है वा जो किसी प्राणी से भेद नहीं करता है तथा, जो व्यक्ति आस्तिक और श्रद्धावान् है, वह सुख से मरता है । जो लोग देव ब्राह्मणों की पूजामें तत्पर, निन्दारहित, शुद्ध चित्त, दाता और श्रीमान् हैं, वह भी सुख मृत्यु, पाते हैं । जो लोग काम क्रोध अथवा लोभ के वशीभूत होकर धर्म्म नहीं छोडते, जो शास्त्र के अनुसार चलनेवाले और सौम्य प्रकृति हैं, वह सुख से मृत्यु पाते हैं। जलदान न करने से उससमय प्यासा रहना पडता है और अन्नदान न करने से क्षुधा आक्रमण करती है । ईंधनके दानकरनेवाले शीत को जीतनेवाले होते हैं, चन्दन के दान करने वाले ताप का जय करनेवाले होते हैं, और किसी के साथ द्वेष न करने से प्राणान्तक कष्ट नहीं सहना पडता है । जो लोग संसार को मोह और अज्ञान में डालते हैं, वह वडे भय को प्राप्त होते हैं, और वह नराधम वडा कष्ट भोगते हैं । झूठी गवाही देना, झूठीवातों का कहना असत् अनुशासन और वेदकी निन्दा करने से, मोह मय मृत्यु पाते हैं । उससमय वह अत्यन्त भयंकर दुर्गंध युक्त यमदूतों के हाथ में पडते हैं । उन के दृष्टिमार्ग में गिरते ही कपकपी आजाती है । उससमय वह भाई, मा और पुत्र आदि को याद करके रोते हैं। हे तात ! उससमय उन का वचन एक वर्ण युक्त और अस्फुट होजाता है । उन की दृष्टि भय से घूमने लगती है और मुख सूख जाता है । फिर उन को ऊर्ध्वश्वास होता है; दृष्टि नष्ट होजाती है और वडा कष्ट मिलता है । इस दशा में उन का शरीर छुटता है । तदुपरान्त वायु से आगे जाकर दूसरा शरीर धारण करते हैं । यह कर्म्म जनित शरीर केवल कष्ट भोगने के लिये ही मिलता है, पिता माता से उत्पन्न नहीं होता है ।

इस के अनन्तर यम के दूत शीघ्र उन को दारुण फाँशी में बांधकर दण्डों की मार से उद्भ्रान्त करतेहुए दक्षिण की ओर खेंचते हैं। जिस मार्ग से लेजाते हैं, वह कुश, कण्टक, बँबई, कील और पत्थरों से भराहुआ होता है । उस में सदा आग जलतीरहती है । कहीं सैंकडों गहरे गढहे होते हैं । सूर्य्य उदय होकर सदा उसस्थान को तपाता है । उस की तीखी किरणों से वह जलते हैं । यमदूत भयङ्कर मूर्त्ति धारण करके उन को खेंचते हैं । उस दशा में सैंकडों गीदडी उन को छीना झपटी से खाती हैं । पाप कर्म्म करने से ऐसे दारुणमार्गवाले यमलोक में जानाहोता है । जो लोग छत्री, जूतें, वस्त्र और अन्नदान करते हैं, वह सुख मार्ग में जाते हैं । इसप्रकार दारुण क्लेश अनुभव करते हुए वारह दिन में यमलोक को पहुंचते हैं । शरीर जलने से जिसप्रकार महादाह भोगना होता है, यमदूतों के ताडन और छेदन करनें से उसीप्रकार की दारुण पीडा भोगनी पडती है । उस कष्ट से बहुत कालतक दुःख मिलता है । अपने कर्म्म विपाक के वश से दूसरे शरीर में जाकर भी वैसा ही कष्ट भोगते हैं ।

इस अवसर में जिन के बन्धु-बान्धव तिल सहित जलदान करतें हैं, अथवा पिण्डदान

करते हैं, वही उस दशा में भोगने को मिलसकता है । फिर बान्धवलोग अशौच के अन्तमें जो तैलाभ्यङ्ग स्नान, एकजगह भोजन करते हैं, उसी से उन की तृप्ति होजाती है । अशौच समय में बान्धवों के भूमि में शयन करने पर भी उन को कुछ क्लेश प्राप्त नहीं होते । बान्धवलोगों के दान करनेसे ही मृतप्राणी की तृप्ति होती है मृतप्राणी यमदूतों के द्वारा आकर अपना यातना गृह देखकर बान्धवों के दियेहुए जलपिण्डादि भक्षण करता है । बारहदिन के अन्त में दुबला होकर यम की भयङ्कर सूरत और लोहे का नगर देखता है । उस का मुख और दाढ़ें भयङ्कर, आकृति भ्रुकुटि संसर्ग से दारुणभाव को प्राप्त और विरूप टेढा स्वभाव, सैकड़ों रोग उस को चारों ओर से घेरेहुए हैं। उन के हाथ में पाश और दण्ड, दोनों भुजा विशाल हैं यह दृश्य अत्यन्त भयङ्कर होता है।

तदुपरान्त मृतव्यक्ति उनकी ही दिखाई शुभाशुभगति पाता है । झूंठीसाक्षी और झूठे वचन कहने से रौरव में जाना होता है । रौरव का स्वरूप कहता हूँ सुनो । रौरव का प्रमाण दो योजन है उस में जानुमात्र प्रमाण का दुस्तर गढ़ा है । उस गढ़े को अंगारों से भरकर पृथिवी की बराबर किया है । उस जलतेहुए स्थान में रहना होता है । यमदूत पापी को उस में डालदेते हैं । वह उस अग्नि में जलकर वहां से भागता है । पद-पद में ही उस के चरण शीर्ण और फिर जीर्ण होजाते हैं । एक पैर बढ़ाकर उस के उठाने में एक रातदिन लगताहै इसप्रकार हजार योजन चलकर, वहां से पापशुद्धिके निमित्त उसीप्रकार के दूसरे नरकमें जाता है । सम्पूर्ण नरकों में रहने के पीछे पापी तिर्यग्योनि में जाता है । उस अवस्था में कृमि, कीट, पतङ्ग, श्वापद, मच्छरादि, हाथी और वृक्षादि, गौ, घोड़ा, और अनेक प्रकार की दुःखजनक पापयोनियों में उत्पन्न होते हैं । मनुष्ययोनि को प्राप्त करके, कुबड़े, कुत्सित, बौने, चण्डाल और पुक्कसादि योनि में जन्म ग्रहण करते हैं । पाप वा पुण्य का अन्त होनेपर क्रमसे शूद्र, वैश्य, और क्षत्री आदि ऊँचीजाति को प्राप्त करते हैं, तथा ब्राह्मण और देवता होकर भी जन्म ग्रहण करते हैं, कभी नीच जाति में उत्पन्न होते हैं । इस प्रकार पापी लोग नरक गमन और नीच अवस्था का अनुभव करते हैं ।

अब पुण्य करने से जिसप्रकार से यम लोक में जाते हैं, सो सुनो । पुण्यात्मालोग धर्मराज की दिखाई हुई शुभगति को पाते हैं उन के सामने गन्धर्वलोग गान और अप्सरा नृत्यकरती हैं । वह दिव्यमाला से विभूषित होकर हार और नूपुर की मधुरता से सजे हुए उत्तमविमान में चढकर जाते हैं । उस विमान से गिरकर राजा अथवा अन्यान्य महापुरुषों के वंश में जन्मग्रहण करके सदासद्वृत्ति सेवन में दिन काटते हैं । फिर अनेक प्रकार के ऐश्वर्य भोगकर पुण्य के योग से उस से भी ऊपर, नहीं तो पूर्वोक्त विधान से नीच दशा में जाते हैं ।

यह मैंने आपके निकट प्राणियों के मृत्यु विषयका सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा । अब उन की गर्भलास्थिति कथा सुनो । दशमअध्याय समाप्त.

ग्यारहवां अध्याय ।

पुत्र बोला कि–मनुष्य स्त्री के रज में जिस बीज को डालता है, स्वर्ग वा नरक से छुटते ही जीव का उस में प्रवेश होता है । हे पिताजी ! जीव के अनुप्रवेश से यह दोनों रज वीज स्थिर होकर क्रम से बिन्दु, बुद्बुद् और पेपिका के आकार को धारण करते हैं । पेरी में जो अणुबीज का आविर्भाव होता है, उस को ही अंकुर कहते हैं । क्योंकि–इस अणुबीज से ही पञ्च-अङ्ग का भाग क्रम उत्पन्न होता है । फिर उस से अंगुलि, आंखें, नाक, कान और मुख यह सब उपाङ्ग उत्पन्न होते हैं । उस से फिर नखादि की उत्पत्ति होती है । तदुपरान्त त्वचा में से रोम और केश उत्पन्न होते हैं । गर्भाशय अङ्गप्रत्यङ्ग के साथ ही बढनेलगता है । जैसे नारियल कोषसहित बढता है, उसीप्रकार यह कोष अधोमुख से स्थित होकर बढता है । उस-समय उस के दोनों हाथ जानु पास के तल देश में, दोनों अंगूठे उस के ऊपर, उंगलियां सामने, दोनों नेत्र जानु के पीछे, नासिका जानु के मध्य में, दोनों स्फिच् पश्चाद् भाग में, और बाहरी भाग में भुजा और जंघा उत्पन्न होती हैं । उस दशा में वह क्रम से बढता जाता है । इसीप्रकार दूसरे जीवों के पेट में भी जैसी उन की आकृति होती है, उसीप्रकार स्थिति करता है । जठराग्नि से उस में कड़ापन आता है और माता के खाये-पिये अन्न के रस से जीवन का निर्वाह होता है । जो जैसे पाप-पुण्य करता है, उस के अनुसार ही उस का गर्भ संगठित होता है । उस की नाभि से आप्यायनी नामक नाड़ी बंधीरहती है, स्त्रियों के आंतों के सम्बद्ध होकर इस नाड़ी की उत्पत्ति होती है । उस के द्वारा प्रसूति का खाया-पिया अन्नरसादि गर्भस्थ जीव के पेट में जाता है । उस से उस का देह तृप्त और पुष्ट होता है । उस समय उस को पहिले जन्मों की यादआती है । तब इधर उधर की पीडा होने से उस २ जन्म का कष्ट यादआता है, दुःखित होकर मन २ में यह कहता है कि–अब कभी ऐसा नहीं करूँगा, किन्तु गर्भ से निकलते ही ऐसा यत्न करूँगा कि–जिस से फिर गर्भ का दुःख न भोगना पडे ।

इस के पीछे जीव कालक्रम से नौ या दस महीने में भूमिष्ठ होता है । उससमय प्रसववायु के धक्के से पीडित होकर बाहर निकलता है । आन्तरिक दुःख से दुःखित होकर गर्भ से बाहर आता है । पेट से बाहर निकलकर असह्य मूर्छा होती है । फिर बाहर की हवा लगने से चेतनता होती है । उस समय सब संसार को मोहनेवाली वैष्णवी माया बलात्कार से उस को पकड़लेती है । उस से ही वह सब कर्तव्य भूलकर आत्मज्ञान से भ्रष्ट होजाता है । इस प्रकार ज्ञान भ्रष्ट होनेपर बाल्यभाव प्राप्त होता है । फिर क्रम से कौमार, युवा और वृद्धावस्था प्राप्त होती हैं फिर मृत्यु के मुख में गिरकर जन्मान्तर प्राप्त होता है । इस संसारचक्र में घटी यन्त्र की समान घूमकर कभी स्वर्ग और कभी नरक प्राप्त करता है, कभी फिर जन्म लेकर अपने कर्म्मों का फल भोगता है, कभी कर्म्मभोग के अन्त में मरता और कभी थोडे शुभाशुभ से फिर जन्म ग्रहण करता है । हे द्विजोत्तम ! स्वर्ग और नर्क में प्रायः उन के कर्म्मों के फलका भोग होता है । नरक

में यही महा दुःख है कि, स्वर्गवासी लोग उस स्थान में जिस आनन्द का अनुभव करते हैं नरक में गिरने के समय पापीलोग उस को देखते हैं। स्वर्ग में भी फिर बड़ाभारी दुःख भोगना पडता है, क्योंकि-स्वर्ग में चढ़कर सदा यह बात मन में खटकती है कि-अन्त में हम को भी अवश्यही एक दिन स्वर्ग से गिरना पडेगा। उस समय नरकवासियों को देखकर भी बडाभारी दुःख भोगना पडता है, क्योंकि-यह बात मन में आती है कि-एक दिन हम को भी ऐसी दशा भोगनी पडेगी,यही विचारकर मन में अशान्तिका उदय होता है।

गर्भवास में जैसा दारुणदुःख है, गर्भ से बाहर होते समय भी तैसा ही बडाभारी क्लेश प्राप्त होता है, फिर जन्म के अनन्तर बालक और वृद्ध अवस्था में भी कुछ न कुछ दुःख लगाही रहता है। इस के सिवाय जवानी में भी अति दुःसह काम, क्रोध और ईर्षा आदि के कारण दारुण कष्टभोगना पडता है। बुढापा भी दुःख से भरा है और मरण में भी क्लेश का अन्त नहीं है, फिर यमदूत जिस समय खेंचकर नरक में डालदेते हैं उससमय का कष्ट अनिवार्य है नरक अंत में फिर क्रम से, गर्भ की पीडा, जन्मकी पीडा और मरण की पीडा भोगनीपडती हैं; इसप्रकार प्राणी मात्र इस संसारचक्र में कर्मबन्धन में बँधकर बारम्बार घड़ी की समान घूमता है और एक बंधन के अनन्तर दूसरे बंधन में पडता है। हे तात ! इस दुःखों से भरेहुए संसारसङ्कट में कुछ भी सुख नहीं है, इसलिये ही मैं मोक्ष प्राप्ति का यत्न कररहा हूँ अब मैं किसप्रकार वैदिक धर्म का अनुष्ठान करसकूँगा ॥ * ॥

ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥

बारहवाँ अध्याय ।

पिताने कहा कि-हे साधुपुत्र ! तुमने ज्ञान का दान करके, उस के प्रभाव से जो दिव्य ज्ञान पाया है उस ज्ञान के बल से गहन संसार का सुन्दरता से वर्णन करा। अब, उस के प्रसङ्ग में जो सब नरकों की कथा कही है, उन का वृत्तान्त भी रौरवकी समान विस्तार के साथ कहो। पुत्र ने कहाकि-मैंने पहिले आप से रौरव नरक का वर्णन करा है, अब महारौरवनरक की कथा सुनो यह नरक चारों ओर से ७-९ सहस्रयोजन हैं, इस की भूमि ताँबे की है, उस के नीचे अग्नि है, उस के ताप से चारों ओर भभकरहा है। इस से भूमि की प्रभा उदय होतेहुए चन्द्रमाकी समान है और इससे ही इसका दर्शन और स्पर्श आदि करने से बडाडर लगता है। यमदूत, पापी के हाथ पैर बाँधकर उसमें छोड-देते हैं, वह उस में लुड़कता हुआ इधर उधर जाता है। मार्ग में उस को काक, बगले, भेडिये, उल्लू, बीछू और मच्छर सब काटते हैं और अनेकों गिद्ध वेग के साथ चारों ओर से नोचते हैं। वह जलताहुआ और व्याकुल होकर हा मैया ! हा पितः ! हा भाई ! कहकर बार २ विलापकरता है, घबडाहट से उस की शांति नष्ट होजाती है। जो दुष्टबुद्धि उच्छृङ्खल होकर पापकरते हैं वह सहस्रों बर्षों के अन्त में इस नरक से छूटते हैं।

उस के अनन्तर तमोनामक नरक स्वभाव

से ही अतिशीत से भराहुआ है और महारौरव की समान बडा तथा अन्धकार से गुप्त है। पापी उस अतिशीत से घबडाकर अन्धकार में दौडते हैं, उससमय आपस में मिलकर लिपटते हैं और आश्रय लेते हैं। उन के दाँत शीत की पीडा से अत्यन्त कडकडाते हैं और टूटजाते हैं; तहाँ भूख, प्यास और अन्य सकल उपद्रव प्रबल होकर पापी को घेरते हैं। और वायु बरफ के टुकडों को उडाकर अतिभयानक होताहुआ सकल हाड्डियों को मानो तोड्डालता है। पापी भूँखे होकर उस में की गिरीहुई मज्जा और रुधिर का भोजन करते हैं, आपुस में मिलनेपर परस्पर को चाटकर इधर उधर को घूमते हैं। हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! तहाँ जबतक दुष्कर्मों का क्षय नहीं होता है तबतक अन्धकार में रहकर बडे २ क्लेश भोगनेपडते हैं। उसके अनन्तर निकृन्तन नामवाला और एक अतिविशाल परम भयानक नरक है, हे पितः। उस में सैंकडों कुम्हार के से चाक निरन्तर घूमते रहते हैं। पापियों को उन के ऊपर चढाकर यमदूतों में की अङ्गुलियों में के कालसूत्रोंसे चरणसे लेकर मस्तक पर्यन्त काटाजाता है। तब भी उन पापियोंके प्राण नहीं निकलते हैं, उन के काटेहुए सब टुकडे उसी समय इकट्ठे होजाते हैं, इसप्रकार सहस्रवर्ष पर्यन्त उन पापियों को काटाजाता है। जबतक सब पाप नष्ट नहीं होते हैं तबतक ऐसा ही होता है; पापी जिनपर चढकर असह्य क्लेश भोगते हैं ऐसे अनेकों चक्र और घटीयन्त्र तहाँ हैं। वह सब पापियों को दुःखदेने के हेतु हैं, किसी २ पापी को उन सब चक्रों पर चढाकर घुमायाजाता है, सहस्रों वर्ष में भी उन के ऐसे घूमने का अन्त नहीं होताहै किसी को जल में घडे की समान घटीयन्त्र (ढेंकली) में बाँधकर घुमायाजाता है,वह घूमते में बार २ रुधिर डालते हैं और नेत्रों में आँसू भरेहुए असह्य दुःखों को झेलते हैं।

अब असिपत्र नामक और नरक की कथा सुनो, वह सहस्रयोजन लम्बा है, उस के सब भाग जलतीहुई अग्नि से घिरेहुए हैं। और उस के ऊपर अति प्रचण्ड सूर्य की किरणों से और भी सन्तप्त रहता है; नरकवासी प्राणी उस में सदाही दारुणदाह की ज्वालाओं को भोगते हैं। उस में चिकने २ पत्तोंवाला वन देखने में आता है उस वनके पत्ते तलवारों की फलकों की समान होते हैं, तहाँ सहस्रों सुन्दरकुत्ते निरन्तर भौंकते रहते हैं। वह बलवान्, व्याघ्र की समान भयानक और बडे२ मुख तथा लम्बे२ दाँतोंवाले होते हैं। आगे दीखतेहुए ऐसे शीतल छायावाले वनको देखकर बडीभारी प्यास से घबडाये हुए नरकवासी उस की ओर को दौडते हैं। उस समय हा मातः! हा पितः! कहकर अतिदुःख से चिल्लाते हैं, भूमि में की अग्निसे उन के चरणों के तलुए जलते हैं। तहाँ जानेपर वायु तलवार की समान धारवाले पत्तों को गिराताहुआ चलता है' उस समय वह भूमि के ऊपर उस जलतेहुए अग्निकुण्ड में गिरते हैं। वह अग्निभूतल में फैलकर लक्लक् करती है, उस समय पूर्वोक्त सब कुत्ते शीघ्रता से आकर उन के शरीर को काटते हैं। इससे वह रोते हैं। हे तात! आपसे मैंने यह असिपत्र वन की कथा

कही, अब अतिभयानक तप्तकुम्भ नामक नरक की कथा मुझ से सुनो ।

चारोंओर अग्नि की लपटों से घिरेहुए तपेहुए अनेकों बडे २ घडे तहां रक्खे हैं, वह सब जलतीहुई अग्नि के कारण तेल और लोहे के चूने से भरेहुए हैं। यमदूत पापियों को नीचे को मुख करके उन में डालते हैं, वह उन में पडेहुए पकते हैं । उस समय उन का शरीर फटजाने से ढेर की ढेर चरबी निकलकर उन को ल्हेस देती है, उन का कपाल, नेत्र और सब हड्डियें फूटजाती हैं । उस समय अतिभयानक यमदूत उन को काटने का आरम्भ करने पर भयानक आकार के अनेकों गिद्ध उन को उठाकर फिर वेग से उनही तेल के कुंडों में डालदेते हैं, फिर उन को तेल में पकायाजाता है। तिस से उन का शिर, शरीर, मांस, खाल और हड्डी सब ही पिघलजाते हैं उस समय यमदूत शीघ्रता से दर्वी (चमसे) से घोटकर उन को कुचलते हैं और अग्नि के वेग से खौलतेहुए तत्ते तेल में मथते हैं, हे पिताजी! मैंने आप से तप्तकुम्भ नरक की कथा विस्तार के साथ कही ॥ इति बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥

तेरहवाँ अध्याय ।

पुत्र ने कहा कि—हे पिताजी! मैंने इस जन्म से पहिले सातवें जन्म में, वैश्य के वंश में उत्पन्न होकर, जल पीने के स्थान में गौओं को रोका था । उन को जल नहीं पीनेदिया, उस कर्म के परिपाक से मुझे अतिदारुण नरकगति प्राप्तहुई, उस नरक में अग्नि की लपटें उठरही थीं इस से अतिभयानक और लोहमुख पक्षियों से भराहुआ था । निरन्तर यन्त्र में कुचलने के कारण पापियों के शरीर में से निकलतेहुए रुधिर की तहां कीच होरही थी, कटेहुए शरीरवाले पापियों के डालने से तहां निरन्तर शब्द होरहा था । इस नरक में पडकर मैंने अतिताप के दुःख और प्यास के दाह को अनुभव करतेहुए कुछ अधिक एक सौ वर्ष विताये । एक समय शीतल वालुका के घड़ों में का सुशीतल पवन अकस्मात् मुझे प्रसन्न करताहुआ चलनेलगा । उस के स्पर्शमात्र से तहां के सकल नरकवासियों की पीडा दूर होगई । मैंने भी स्वर्गवासी की समान परमशान्ति पाई, फिर 'यह क्या है' ऐसा विचारकर हम सबों ने आनन्दसे नेत्रोंको फाड टकटकी लगाकर तहां समीप में ही एक सर्वश्रेष्ठ पुरुषको देखा। अतीव भयानक एकयमदूत वज्रकी समान दण्डा हाथ में लिये आगे २ उनको मार्ग दिखलाकर कहरहा है कि—इधरको आइये । हम ने उस का ऐसाकहना भी सुना, उससमय वह पुरुष सैंकडों कष्टोंसे भरेहुए नरक को देखकर दयाआने के कारण उस यमदूत से कहनेलगे कि—हे यमदूत! मैंने ऐसा कौन खोटा कर्म करा है सो कहो, जिस के प्रभाव से ऐसे कष्टों से भयानक नरक प्राप्त हुआ । मैं तो जनक के वंश में विपश्चित् नाम से प्रसिद्ध राजा उत्पन्न हुआ था, अनेकों यज्ञ करे और धर्मानुसार पृथ्वी का पालन करा था । कभी सङ्ग्राम में पीठ नहीं दी, अतिथि को विमुख नहीं फेरा, पितर, देवता, ऋषि, और भृत्यों के विषय में भी अत्याचार नहीं करा । पर स्त्री और पराये धन की ओर को भी कभी चित्त नहीं डुलाया

पर्व के समय पितर और तिथि काल में देवता अपने आप, जलपीने के स्थान में गौकी समान लोकों के समीप आते हैं । उस समय यदि वह लम्बा श्वास छोडकर विमुख चलेजायँ तो उस गृहस्थ का इष्टापूर्त्त एकसाथ भ्रष्ट होजाता है । पितरों के निःश्वास से सात जन्म का पुण्य नष्ट होता है औरदेवताओं के निःश्वास से तीन जन्मोंका पुण्य नष्ट होजाता है इसमें सन्देह नहीं है इस कारण देवता और पितर दोनों के विषय में मैंने नित्य विधिपूर्वक व्यवहार करा है फिर मुझे किसकारण से अतिदारुण नरक प्राप्त हुआ ? ॥ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥

चौदहवाँ अध्याय.

पुत्र ने कहा कि–हम सबों के सामने, उन के ऐसा बूझने पर यमदूत भयानक आकारका होने पर भी विनीत वचन बोला कि–महाराज ! आप जो कुछ कहते हैं सो ठीक है, इस में सन्देह नहीं है; परन्तु आपने थोडासा पाप करा है उस का स्मरण करायेदेता हूँ । आप की स्त्री विदर्भराजा की पुत्री पीवरी नामसे प्रसिद्ध थी, उस के ऋतुमती होनेपर आप ने उस के ऋतुकी रक्षा नहीं करी थी । उस समय आप अपनी दूसरी स्त्री परमसुन्दरी कैकेयी में अत्यन्त आसक्त थे, ऋतु को लाँघने से ही आप ऐसे घोर नरक में पडे हैं । जैसे होम के समय अग्नि घृत डालने की अपेक्षा करता है तैसे ही ऋतु के समय प्रजापति वीर्यपातकी अपेक्षा करते हैं । जो धर्मात्मा उस को लाँघकर काम में आसक्त होते हैं वह पितृऋण में बँधते हैं और उस के निमित्त प्राप्त होकर नरक में पडतेहैं आपका इतनाही पाप है और कुछ पाप नहीं है इस कारण आइये पुण्य का फल भोगने को चलिये । राजा ने कहा कि–हे देवदूत ! तुम जहां लेजाओगे तहाँ ही मैं जाऊँगा, परन्तु कुछ बूझना है कृपाकर ठीक२ कहिये । यह वज्रसमान मुख वाले अनेकों काक पापियों के नेत्रों को उपाडते हैं और तैसे ही वह सब नेत्र फिर उत्पन्न होजाते हैं, इन्हों ने कैसे निन्दितकर्म करे हैं कहो, इन की इसीप्रकार उत्पन्नहुई जिह्वा को भी हरण करते हैं ।

और किस कारण से इन को सँडासी से क्यों नोचाजाता है, और तपीहुई वालुका में तथा तेल में डालकर अति क्लेश देकर पकाये जाते हैं ? यह सब लोहमुख पक्षी इनको खेंचते हैं सो इन्होंने क्या करा है ? बताओ, इन के शरीर की नसैं ढीली पडगई हैं, इसकारण अत्यन्तपीडा के कारण बहुत चिल्लारहे हैं । लोहे की समान चोंच की चोट से घायल होने के कारण इन के दुःख की सीमा नही है । इन्होंने ऐसा क्या अनिष्ट करा है कि जिस के कारण रातदिन ऐसी ही और प्रकार की भी नानाप्रकार की पीडा भोगते हैं; इन के उस कर्मविपाक का ठीक २ वर्णन करो ।

यमदूत ने कहाकि–महाराज ! आप मुझ से जिस पापकर्म के फलके विषय में प्रश्न करते हैं उस को मैं संक्षेप से भलीप्रकार यथार्थरूप से कहता हूँ। पुरुषमात्र को क्रमसे पापपुण्य भोगने पडते हैं, इसप्रकार भोगने से ही पाप वा पुण्य का क्षय होता है । भोग के विना पाप वा पुण्य

कोई कर्म भी पुरुष की शुद्धि नहीं करसक्ता, भोग से ही कर्म का क्षय होता है और उस का परिहार भी है ऐसा जानो। पापात्मा क्लेश के अनन्तर क्लेश, दुर्भिक्ष के अनन्तर दुर्भिक्ष, मृत्यु के अनन्तर मृत्यु और भय के अनन्तर भय पाते हैं और दरिद्र होते हैं इसप्रकार कर्मबन्धन के कारण प्राणियों को नानाप्रकारकी गति मिलती है, पुण्यात्मा उत्सवके अनन्तर उत्सव, स्वर्ग के अनन्तर स्वर्ग और सुख के अनन्तर सुख पाते हैं। धन का दान करनेपर और शान्तस्वभाव तथा श्रद्धावान् होनेपर भी ऐसी सद्गति पाते हैं, पापकर्मी पापसे नष्ट होकर खूनी हाथी के कारण दुर्गम और सर्प चोर आदि के भय से युक्तस्थान में जाते हैं, इस के सिवाय उन के लिये और क्या होसक्ता है? पुण्यकर्म करनेपर उस के प्रभाव से सुगन्धित माला, सुन्दर वस्त्र, सुन्दर सवारी और सुन्दर भोजन भोगने के अनन्तर सर्वदा प्रशंसित होकर पुण्याटवी में गमन होता है।

मनुष्य, सैकड़ों और सहस्रों जन्मों को धारण करके जो पाप-पुण्य का सञ्चय करता है वही उस के सुख दुःख के अंकुर को उत्पन्न करता है। हे राजन्! जैसे बीजजलकी अपेक्षा करता है, तैसे ही पाप पुण्यभी देश, काल और पात्र की अपेक्षा करते हैं। लोक में इसप्रकार देशकालके सङ्ग से थोडासा पाप करने पर, नरक में जाकर उस को प्रत्येक पग रखनेपर काँटे से बिंधेहुए की समान थोडी सी पीड़ा भोगनी पडती है। और वही पाप बहुतसा होय तो स्थूलशरीर और कील छिदने की समान अति दारुणदुःख असह्य शिर में पीड़ा आदि रोग भोगने पडते हैं। सकलपाप फल के समय परस्पर की बाट देखते हैं, उन में अपथ्यभोजन, सरदी, गरमी, परिश्रम और ताप आदि देनेवाले दुःख भोगनेपड़ते हैं। इस प्रकार बड़े२ सकल पातक बडे २ रोगादिविकारों को उत्पन्न करतेहुए शस्त्र, अग्नि, अतिकष्ट, अतिव्यामोह (बेखबरी) और बन्धन आदि फलों को प्रकट करते हैं।

थोड़ासा पुण्य करनेपर सुगन्ध, सुखदायक स्पर्श, सुनने में मधुरशब्द, स्वादुरस और अतिशोभायमान रूपको अनायासमें ही पाते हैं। तैसे ही बडाभारी पुण्य करनेपर समयानुसार उस सब का अधिक फल मिलता है, इस प्रकार लोकों के सुख दुःख केवल पुण्य पापसे ही प्राप्त होते हैं। लोक अनेकबार संसार में जन्म धारकर ज्ञान और अज्ञान के फलरूप, जाति देश के अनुसार अनेकों सुखदुःखों को भोगते हैं, इतना ही नहीं किंतु वह सब सुखदुःख आत्मा में सूक्ष्मरूप से संयुक्त होजाते हैं, बिना भोगे किसीप्रकार उन से छुटकारा नहीं होसक्ता।

जो कोई पुरुष, वाणी, मन वा कर्म के द्वारा कभी किसी प्रकार का पाप वा पुण्यकर्म करके जिस २ दुःख वा सुख को प्राप्त होता है वह बहुतसा हो वा थोडाही हो मन में विकार अवश्य उत्पन्न करता है। जिस प्रकार अन्न भक्षण करने से समाप्त होता है तैसे ही भोगने परही सुख दुःखोंका क्षय होता है। इस प्रकार यह सकल महापापी नरक में रातदिन बँधकर अनेकों पीड़ाओं को भोगकर अपने उस घोर महापाप का क्षय करते हैं। हे राजन! तैसे

पुण्यात्मा स्वर्ग में स्थित हो, देवताओं के साथ मिलकर गन्धर्व, सिद्ध और अप्सराओं के गीत आदि के साथ अपने२ पुण्य का भोग करते हैं। देवयोनि, मनुष्ययोनि वा पक्षियोनि इन सबों में जो सुखदुःखरूप शुभ अशुभ प्राप्त होता है, एक पुण्य पापही उस के उत्पन्न होने का क्रम है। हे राजन्! आपने जो मुझ से बूझा पापीलोग किस२ पापके कारण इन सब पीडाओं को भोगरहे हैं सो अच्छे प्रकार से कहता हूँ, सुनो। जिन नराधमों ने खोटी दृष्टि से परस्त्री को देखा है और खोटे मन से पराये धन में इच्छा करी है उन के नेत्रों को यह वज्रतुण्डपक्षी निकालरहे हैं। और वह सा फिर बार२ उत्पन्न होजाते हैं, उन सबों ने नेत्रों के जितने पलक लगने तक पाप करा है उतने ही सहस्रवर्ष यह नेत्रों की पीडाको भोगेंगे। जिन्हों ने शत्रुओं की श्रेष्ठ दृष्टि का विनाश करने को खोटे शास्त्र का उपदेश करा है वा खोटी सम्मति दी है अथवा जिन्होने शास्त्र के विपरीत व्याख्या करी है वा दुर्वाक्य कहे हैं अथवा जिन्होंने देवता, ब्राह्मण, गुरु और वेद की निन्दा करी है, यह देखो उनही की बार बार जीभ निकालीजाती है, इन्होने जितनी बार ऐसा पापकरा है उतनेही सहस्र वर्षोंतक यह दशाहोगी। हे राजन्! यह देखो जिन सब नराधमो ने, मित्र मित्रों में, पितापुत्रों में, कुटुम्बियों में, यजमान पुरोहितों में, मातापुत्रों में, एकसाथ रहनेवालों में और स्त्री पुरुषों में परस्पर वैमनस्य कराया है अथवा और किसीप्रकार का भेद करा है उनको यह आरों से चीर रहे हैं।

जिन्होंने दूसरोंको सन्तापदिया है, जिन्हों ने आनन्द में विघ्नडाला है, जिन्होंने पंखे, वायुके स्थान, चन्दन और खस चुराया है, जिन्होने साधुओं को प्राणान्तक दुःख दिया है उन को यह तपीहुई बालुका के भीतर दबाकर रक्खा है। जो पुरुष एकसे निमंत्रित होकर दूसरे के श्राद्ध में भोजन करता है। उन सबों के यह वज्रतुण्डपक्षी दो २ टुकडे कररहे हैं। कुवचन कहकर साधुओं को मर्मपीडा देनेके कारण यह सब पक्षी निरन्तर पीडादेरहे हैं, वह किसीप्रकार दूर नहीं होसक्ती, जो पुरुष, मुख में और तथा मन में और बात रखकर शठताकरता है उसकी जीभ के इसप्रकार तीखे शस्त्रों से दो टुकडे करे जाते हैं। जिन्होने जूठे मुह इच्छा से सूर्य चन्द्रमा और ताराओं का दर्शन करा है, यमदूत उनके नेत्रों में अग्नि रखकर जलाते हैं। जिन्होने गौ, अग्नि, जननी, ब्राह्मण, बडाभाई पिता, माता, बहिन, गुरु और वृद्धों को चरण से स्पर्श करा है उन के दोनों चरणों को इन अग्नि से तपाई हुई दोनों बेडियों से बाँधकर अङ्गारोंके ढेर में डालते हैं उन की जंघापर्यन्त जलगई हैं। जिन्होंने असंस्कृत पायस, खिचडी और देवान्नखाया है उन को इस भूमि में गिराकर सँडासी से मुखपर के दोनों नेत्र निकालेजाते हैं, वह आँखें फाडे पडे हैं, जिन्हों ने पापात्माओं की बातों में आकर गुरु, देवता द्विज और वेद की निन्दा करी है, यहदेखो यह यमकेदूत उन के कानों में अग्नि की समान लालल़ोहेकी कीलों को बार २ ठोक रहे हैं और वह विलापकरते हैं। जिन्होंने

क्रोध और लोभ के वश में होकर जलपीनेके स्थान, देवस्थान, ब्रह्मक्षेत्र, देवालय और सभा के स्थानों को तोड़ाफोडा है, यह देखो अति कठोर यमदूत, तेजकरेहुए शस्त्र उन के शरीर की त्वचा को खण्ड २ कररहे हैं और वह विलाप करते हैं। जो गौ, ब्राह्मण और सूर्य-मार्ग में मल मूत्र करते हैं उनकी गुदा में से कौए इसप्रकार आँतें निकालते हैं। एकवार दीहुई कन्याको फिर दूसरे को देनेपर, इसप्रकार उन के खण्ड २ करके इस खारीनदी में ढकेलदेते हैं। जो अपने सिवाय दूसरे के आश्रय से हीन पुत्र, स्त्री, सेवक और बन्धु आदि को दुर्भिक्ष के समय और किसी विपत्ति में छोडकर अपना उदरभरते हैं, यमदूत इसप्रकार उन के मांस को काटकर उनको ही खवाते हैं और वह भी भूँख से घवडाकर उसको ही खाते हैं। लोभ के वश में होकर शरणागत को वा सेवा करके निर्वाह करनेवाले को त्यागने से उस को यमदूत इसप्रकार यन्त्र में देकर पीडित करते हैं। जन्मभर में इकट्ठे करे पुण्यों के अर्पण करने से, इन सब पापियों की समान शिलाओं के बीच में पिसना-पडता है। गाढेहुए धनको चुरानेपर, यमदूत सब अङ्गों को फाँसियों से बाँधकर उसी दशा में कीडे, बीछू आदि से कटवाते हैं। दिन में मैथुन और पर स्त्री का हरण करने से, भूँख के मारे दुर्बल और प्यास से तालु एवंजीभ सूखजाती है और पीडा से व्याकुल होना पडता है। देखो उनको यह रोमवाले और बड़े २ काँटों से युक्त सैमल के पेडोंपर चढाया है, उन का सब शरीर घायल होकर रुधिर में भीजरहा है। यह देखो फिर भी यमदूत परस्त्रियों के भ्रष्ट करनेवालों को घडियामें बन्दकर नष्टकररहे हैं। मोह में हो, उपाध्याय का अपमान करके पढ़ने पर वा कारीगरी सीखने पर इसप्रकार शिर के ऊपर शिला उठाकर पुरुषों के मार्ग परमपीड़ा भोगतेहुए रातदिन क्लेश उठाने पडते हैं। उस समय भूख के मारे शरीर बहुत दुर्बल और मस्तकभी बोझे की पीड़ा से खिन्न होजाताहै। जल में मूत्र, विष्ठा और खखारको डालकर, यह देखो यह सब पापी उस दुष्कर्म के कारण दुर्गन्धि से भरे नरक में पड़ेहुए हैं। यह देखो इन्हों ने पहिले कभी अतिथियों का सत्कार करके भोजन नहीं करा इस कारण भूखे होकर आपस में एक दूसरे का मांस खारहे हैं। जिन्हों ने अग्निहोत्री होकर भी वेद और अग्निका अपमान करा है, यह देखो उन को पर्वतके शिखरपर से बार२ धक्का देते हैं। यह देखो इन्हों ने पुनर्भू स्त्रियों के पति और उस दशा में ही जरासे जीर्ण होकर जीवनको बितायाहै इस कारण कृमि वा कीट की योनि को पाकर यह सब चीटियों से भक्षण करेजाते हैं। पतित का दान ले उस को नित्य याग पूजन और नित्य उस की सेवा करने पर, पत्थर में के कीडे होकर सदा क्लेश भोगरहे हैं। सेवक, मित्र और अतिथियों के सामने इकले ही मिष्टान्न खाने पर, इसप्रकार जलतेहुए अङ्गारों के ढेर को भोजन करना पड़ता है। हे राजन्! इन्हों ने नित्य प्राणियों की पीठके मांस को खाया है, इसकारण अनेकों भयानक भेडिये इन की भी पीठके मांस को खसोट रहे हैं। यह देखो भलाई करनेवाले के उप-

कार को न मानकर यह नराधम अन्धे, बहिरे, गूँगे और भूँख से व्याकुल होकर घूमरहे हैं। जो अत्यन्त दुष्टबुद्धि हैं और कृतघ्नी हैं तथा जिन्हों ने मित्रों का अपकार करा है वह उस पापके कारण खौलतेहुए बड़ों में डालेगये हैं, इसके अनन्तर फिर पिसकर तत्तीवालूमें भुनेंगे, तहाँ से निकलकर फिर क्रम से यन्त्रावपीड़न असिपत्रवन, करपत्रविपाटन, कालसूत्र से छेदन इत्यादि अनेकों प्रकार की पीडा भोगकर न जाने यहाँ से किसप्रकार छूटेंगे ? इन सब ब्राह्मणों ने परस्पर इकट्ठे होकर श्राद्ध में भोजन करा था इस कारण सब अङ्गोंमें से निकलेहुए झागों को पीते हैं। यह देखो इन्हों ने सुवर्ण की चोरी, मद्यपान और गुरुपत्नी से गमन करा था इस कारण नीचे और ऊपर सबओर जलतीहुई अग्निसे भुलसरहे हैं।

यह बहुत सहस्र वर्षों तक इसीप्रकार नरकमें रहकर आगे को फिर कोढ़ और क्षयीरोगयुक्त होकर जन्म धारण करेंगे। तदनन्तर फिर मरकर नरक में जायँगे और फिर जन्म लेकर इसीप्रकार आधिव्याधियों को भोगेंगे, एक कल्प भर ऐसा ही होतारहेगा। गोहत्या करने पर तीन जन्म तक सब से नीच नरक में पड़नापड़ता है और सब पातकों से भी इसीप्रकार नरक भोगना होता है, नरक से छूटकर जो जो पाप करने के कारण जो जो योनि मिलती है सो कहता हूँ सुनो। चौदहवां अध्याय समाप्त॥

पन्द्रहवाँ अध्याय।

यमदूत ने कहा कि-पतित का प्रतिग्रह लेने से द्विज को गर्दभ की योनि मिलती है, पतित को यज्ञ कराने पर नरक से छूटने पर कृमि की योनि मिलती है। उपाध्याय के साथ कपट का व्यवहार करने से द्विज कुत्ता होता है, मन २ में उपाध्याय की स्त्री की चाहना करने से अथवा उन के धन की मन २ में कामना करने से और माता-पिता का अपमान करने से गर्दभ की योनि मिलती है। माता को दुर्वचन कहने से मैना की योनि मिलती है, भाई की स्त्री का अपमान करनेसे कबूतर होनापडताहै। उस को पीडा देने से कछुआ होना पडता है। प्रभु के अन्न से पुष्ट होकर जो पुरुष प्रभु का इच्छित कार्य करने से हटता है वह मरण के अनन्तर मोह से आच्छन्न और वानर होता है। गाडाहुआ धन चुरालेने पर नरक से छूटने पर कीडे का जन्म होता है, किसी के गुणों में दोष लगाने से नरक के अनन्तर राक्षस होता है। विश्वासघातीपना करने से मच्छी की योनि मिलती है। धान्य, जौ, तिल, उड़द, कुलथी, सरसौं, चने, मटर, कलम, मूँग, गेहूँ, अलसी तथा और अन्नों को भी चुराने पर मोह की प्राप्ति होने के कारण, चेतनारहित बडेमुखवाला चूहा होकर जन्म लेनापडता है। परस्त्री को हरने पर भयानक भेडिया होता है। फिर क्रम से कुत्ता, गीदड़, बगला, गिद्ध, बिलाव और कङ्कपक्षी का जन्म धरनापडता है। जो पापात्मा दुर्बुद्धि से भ्राता की स्त्री का अपमान करता है वह नरक से छूटने पर नरकोकिल होता है। बन्धु की स्त्री, गुरु की स्त्री और राजा की स्त्री का कामवश होकर तिरस्कार करता है वह दूसरे जन्म में सूकर होता है। यज्ञ, दान और विवाह में विघ्न करने पर कीडा होता है। दान

करीहुई कन्या का फिर दान करने पर भी कीडे की योनि मिलती है । देवता, द्विज और पितरों को निवेदन विना करे भोजन करने से नरकभोग के अनन्तर काक का जन्म होता है। बडा भ्राता पिता की समान है, उस का अपमान करने से नरकभोग के अनन्तर क्रौञ्चपक्षी की योनि में पडता है । शूद्र ब्राह्मणी के साथ गमन करै तो कीडा होता है । उस के गर्भ से सन्तान उत्पन्न करै तो काठ में का कीडा होता है, फिर सूक, कीडा, मद्गु और चण्डाल होता है। अकृतज्ञ और कृतघ्न होने पर उस नराधम को नरक से छूटने के अनन्तर ही कृमि, कीट, पतङ्ग, बीछू, मच्छ, काक, कछुआ और कञ्जर का जन्म धारण करनापडता है। शस्त्रहीन पुरुषको मारडालनेपर गर्दभ, स्त्री की हत्या और बालक की हत्या करने पर कृमि, और भोजन चुराने पर मक्खी होता है। तिस में भोजन के विषय में कुछ विशेषता है सुनो। अन्न चुराने पर बिलाव होना पडता है । तिल पिण्याकमिला अन्न चुराने पर चूहे की योनि मिलती है । घी चुराने से न्योला और छागमांस चुराने से मद्गुकी योनि मिलतीहै । मच्छी चुराने पर काक और मृग का मांस चुराने पर बाज की योनि मिलती है । लवण चुराने पर जलकाक और दही चुराने पर कीडा होता है । दूध चुराने से बगले की योनि मिलती है, तेल चुराने पर तेलपायी कीडा, सहद चुराने पर डाँस, पुए चुराने पर चींटी, निष्पायव चुराने पर चींटा और आसन चुराने पर तीतर की योनि में आता है । लोहा चुरानेवाला काक होता है, काँसी चुरानेवाला हारीतपक्षी होताहै, चाँदी चुरानेवाला कबूतर होताहै। सुवर्ण के पात्र चुरानेवाला कीडा होताहै, धुलाहुआ रेशमीवस्त्र चुरानेवाला ककरपक्षी और रेशमचुरानेपर रेशम का कीडा होताहै । महीन वस्त्र, मृगके रोमों का वस्त्र वा ककरी के रोमों का वस्त्र अथवा सनका वस्त्र चुराने पर तोता होताहै, सूती वस्त्र चुराने पर क्रौञ्चपक्षी होता है, वल्कल चुराने पर बगला होता है, वर्णक और शोभाञ्जन चुराने पर मोर होता है, सुगन्ध के पदार्थ चुराने पर छछूँदर होता है, ऊपर का ओढ़ना चुराने से खरगोश होता है, फल चुराने से नपुंसक होता है, काठ चुरानेवाला घुन होता है, फूलचुराने पर दरिद्र होता है, सवारी चुरानेवाला लूला होता है, शाक चुराने से हारीत पक्षी और जल चुराने से चातक होता है । भूमि को छीनलेने से रौरव आदि सकल नरकों को भोगने के अनन्तर क्रम से तृण, गुल्म, लता, बेल और कडीछालवाला वृक्ष होता है । इसप्रकार अनेकों कष्टों को झेलकर पाप दूर होनेपर मनुष्य योनि पाता है तदनन्तर फिर क्रम से कृमि, कीट, पतङ्ग, जलपक्षी, मृग, गौ, चण्डाल, पुक्कस आदि अनेकों योनि पाता है तिन योनियों में भी बहरा और लूला होकर उत्पन्न होता है । अथवा कोढ़, क्षयी, मुखपाक, नेत्ररोग, वायुरोग तथा अपस्मार आदि नाना प्रकार के रोगयुक्त होकर शूद्रयोनि में जन्म पाता है । हे राजन् ! गौ और सुवर्ण की चोरी करने पर भी ऊपर कहे अनुसार ही जन्म और क्लेश आदि होते हैं । किसी की स्त्री को भोगने के निमित्त दूसरे को अर्पण करने से नरक से छुटकारा होने पर वह पुरुष नपुंसक होता है ।

विना जलतीहुई अग्नि में हवन करने से अजीर्ण रोगीहोकर मन्दाग्नि की असह्य पीडा भोगनी पडती हैं ।

दूसरे की निन्दा करने से और मर्मान्तक पीडा देने से, कृतघ्नी होने से और पराया धन हरलेने से, कठोर और निर्लज्ज होनेसे, आचार को त्यागने और देवताओं की निन्दा करनेसे, ठग और कृपण होने से, मनुष्यहत्या तथा दूसरे निषिद्धकार्य करने से, उन कार्यों के करनेवालों को नरक भोगकर पृथ्वीपर आयाहुआ समझे । और जहाँ सब प्राणियों के ऊपर दया अच्छाबोलना, परलोक में मङ्गल होने के निमित्त सत्कार्यों का अनुष्ठान, सत्य, प्राणियोंके हित के लिये वाणी का उच्चारण होना, वेदके प्रमाणको मानना, गुरु देवता–ऋषि और सिद्धों की पूजा, साधुओं का सङ्ग, सत्कार्योंका सेवन मित्रभाव, अन्य श्रेष्ठ धर्म और श्रेष्ठ अनुष्ठान होय तहाँ जानै कि–इन का जन्म स्वर्ग भोगने के अनन्तर हुआ है ।

हे राजन् ! मैंने तुम्हें संक्षेप से पापात्मा और पुण्यत्माओं के अपने २ फलभोग का वृत्तान्त वर्णन करा। आपने भी सब देखा, अब आइये और स्थानपर चलैं, आप को नरक का दर्शन होगया अतएव आइये अन्यत्र को चलिये। पुत्रने कहाकि–हे पितः ! तदनन्तर उस महापुरुष यमदूत को आगे करके चलने को उद्यत होनेपर तत्काल तिन सब नरकोंके निवासी प्राणी एकसाथ हाहाकार करके कहनेलगे कि–हे महाराज! हमारे ऊपर प्रसन्न होकर और मुहूर्त्त भरठहरो ! आप के शरीरको लगी हुई वायु के स्पर्श से हमारा मन प्रफुल्लित होता है और सर्वाङ्ग में की पीडा, बाधा और ताप बाधा भी दूर होगई अतएव हे राजन् ! हमारे ऊपर अनुग्रह करो । राजा ने उन की यहबात सुनकर यमदूत से कहाकि–मेरे रहने से इनको क्यों आनन्द होता है ? मैंने मृत्युलोक में ऐसा कौनसा बडाभारी पुण्य कराथा कि जिस के प्रभाव से मुझे देखकर इन को ऐसे आनन्दका अनुभव होता है ? । यमदूत ने कहाकि–आपने पहिले पितर, देवता, अतिथि और आश्रितों को देकर उन से बचेहुए अन्न करके अपने शरीर का पोषण करा है और सदा उन पितर देवादि की ओर को चित्त लगाये रहते थे। इसकारण आप के शरीर से छुआहुआ पवन आनन्ददायकहुआ है और इसीकारण पापियों की यातना भी दूर होगई है । आपने शास्त्रोक्त रीति से अश्वमेधादि सकल यज्ञ करे थे । इसकारण ही आप को देखकर यमके अधीन यह सब यन्त्र, शस्त्र और काक स्वभाव से पीडन, छेदन, और दहन आदि महादुःख के हेतु होनेपर भी आपके तेजसे तिरस्कार को प्राप्तहोकर कोमलसे होगयेहैं राजाने कहाकि–मुझे ऐसी धारणाहै कि–आर्त्तों की पीडा को दूर करनेपर जो सुख मिलता है वह सुख स्वर्ग वा ब्रह्मलोक में भी नहीं मिलता है । हे भद्रमुख! यदि मेरे समीप रहने से इन की पीडा दूर होती है तौ मैं इस स्थान में ही खूँटे की समान अविचल खडारहूँगा । यमदूत ने कहा कि–हे राजन् ! आइये, चलिये, अपने पुण्यबल से पायेहुए सकल भोगों को भोगिये । इस नरक में रहने की अब कोई आवश्यकता नहीं है ।

राजा ने कहा कि–यह नरकवासी अ-

त्यन्त दुःखित हुए हैं, यह मेरे समीप रहकर जितने समय ऐसा सुख भोगते हैं तवतक मैं नहीं जाऊँगा । उस पुरुष के जीवन को धिक्कार है कि–जो, शरण में आये, आतुर और आर्त्तभाव को प्राप्तहुए शत्रु के ऊपर भी अनुग्रह करने से हटता है, आर्त्त की रक्षा करने में जो प्रवृत्त नहीं होता है,यज्ञ, दान और तपस्या भी उस को किसी लोक में सुख नहीं देती है। बालक, वृद्ध और आतुरके ऊपर कठोरचित्त पुरुष मेरी समझ में मनुष्य नहीं है किन्तु राक्षस है । इन पापियों के समीप में रहकर यदि अग्निका ताप, परमदुर्गन्ध, वा अन्य कोई नरक का दुःख भोगना पडे अथवा भूँख प्यास के कारण अत्यन्त क्लेश से मूर्छा भी आजाय तो मुझे स्वीकार है । क्योंकि–इन की रक्षा करने से जो सुख होगा वह स्वर्ग के सुख से भी श्रेष्ठ है, ऐसा समझता हूँ । अधिक क्या कहूँ एक मेरे दुःख भोग ने से यदि सैकडों आर्त्तों को सुख मिलसकै तो मुझे क्या नहीं मिलजायगा ? अतएव शीघ्रही यहाँ से चलेजाओ ।

यमदूत ने कहा कि–यह धर्म और इन्द्र तुम्हें लेने को आये हैं, आप को यहाँ से अवश्य जाना होगा, इस कारणही मैं कहता हूँ कि–चलिये । तव धर्म ने कहा कि–तुमने भलेप्रकार से मेरी उपासना करी है, इसकारण मैं आपको स्वर्ग में लेजाऊँगा; इस विमान में चढकर चलो और अब विलम्ब मतकरो । राजाने कहा कि हे धर्म ! यह सब प्राणी नरक में सैकडों पीड़ा सहरहे हैं इन के कारण अत्यन्त कातर होकर मुझ से रक्षा करने को कहते हैं इस कारण मैं नहीं जाऊँगा । इन्द्र ने कहा कि इन्हों ने पाप करके उस के प्रभावसे नरक पाया है तैसे ही तुम पुण्यकर्म के बल से स्वर्ग में जाओगे । राजाने कहा कि–हे धर्म ! आप यदि जानते हों और हे इन्द्र आप भी यदि जानते हों तो कहो कि–मैंने कितना पुण्य सञ्चय करा है ? । धर्म ने कहा कि–हे राजन ! समुद्रमें के जल की विन्दु, आकाशके तारे, वर्षा की धारा, गंगाके रेते के कण, जैसे अनगिनत हैं तैसे ही तुम्हारे पुण्यकी भी गिनती नहीं होसक्ती । फिर आज इन नरकवासियों के ऊपर कृपा करने से वह पुण्य शत सहस्रगुणा होगया, अतएव अब आप स्वर्गभोगने को चलिये; यह नरक में रहकर अपने करेहुए पापों का क्षय करें राजाने कहा कि–मेरे संसर्गसे इन की उन्नति न हुई तो लोक में और किस प्रकार से मेरे सहवास को उत्कण्ठित होंगे? इस कारण हे स्वर्गाधिप ! मेरा जो कुछ पुण्य है उस के प्रभाव से इन पीड़ा में पड़ेहुए नरकवासियों का छुटकारा करो । इन्द्र ने कहा कि हे राजन् ! देखो, इस कार्य के करने से तुम्हें स्वर्ग से भी ऊँचा लोक प्राप्त हुआ, यह सब पापी भी नरकसे छूटगये ।

पुत्र ने कहा कि–हे पितः ! उससमय राजा के ऊपर पुष्पों की वर्षा हुई और इन्द्र उन को विमान में वैठालकर स्वर्ग को लेगये उससमय मैं भी और नरकवासियों के साथ छूटकर अपने कर्म के फल के अनुसार भिन्न२ योनि में उत्पन्न हुआ । हे द्विजश्रेष्ठ ! इस प्रकार मैंने आप से यह सब नरकों का वर्णन करा । जिस २ पाप से जो २ योनि मिलती है, जोकि पहिले मैंने अपने आप देखा है वह

भी आपसे कहा मुझे यह ज्ञान दिव्यदृष्टि के प्रभाव से हुआ है इसकारण किसी प्रकार मिथ्या नहीं है, अब मैं आप से और क्या वर्णन करूँ सो आज्ञा करिये ॥ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥

सोलहवाँ अध्याय ।

पिताने कहा कि–हे पुत्र ! तुमने मुझे संसार की वास्तविकदशा सुनाई यह संसार ढकली की समान और अत्यन्त त्यागने योग्य है यह ऐसा है यह बात मुझे विलक्षण मालूम हुई । अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि–जब संसार की यह दशा है तो मुझे क्या करना चाहिये ? पुत्रने कहा कि–यदि किसीप्रकार का संदेह न करके मेरे कथनपर श्रद्धा हो तो गृहस्थ को छोडकर वानप्रस्थ आश्रम को स्वीकार करो । वानप्रस्थ का अवलम्बन करके अग्निहोत्र का त्याग और आत्मा में आत्मा को सम्मिलित करतेहुए, राग-द्वेष आदि द्वन्द्वरहित, परिग्रहहीन, जितेन्द्रिय भिक्षु और स्वतन्त्र होकर बीच २ में एक २ दिन को छोडकर भोजन करो । इस दशा में योगपरायण होकर, बाहरी ज्ञानसे रहित होनेपर, जो दुःखरूप महारोग की परमऔषधिहै, जो मुक्ति का हेतु है, जिस की उपमा और हद् नहीं है और जो सकल संगों से रहित है उस ब्रह्मयोग को प्राप्त करो, जिसका संयोग होनेपर फिर प्राणियों के साथ संयोग नहीं होगा । पिताने कहाकि–हे पुत्र ! अब, जो मुक्ति का हेतु है, उस योग का वर्णन करो; उस के प्राप्त होनेपर फिर मुझे प्राणियों के संयोग के कारण ऐसे क्लेश नहीं भोगने पड़ेंगे; देखो मेरे चित्त के इस योग से युक्त होनेपर मेरा आत्मा फिर संसार बन्धन में नहीं बँधेगा, अब तुम उस योग का वर्णन करो । हे पुत्र ! क्या कहूँ संसाररूप सूर्य की तीखी किरणों के ताप से मेरे देह और मन दोनो भस्म होगये, ब्रह्मज्ञानरूप जल के संयोग से सुशीतल वाक्यरूप जल के द्वारा हम को अभिषिक्त करें । अविद्यारूप काले सर्पने काट कर विष के वेग के कारण मेरा तिरस्कार करा था और मेरी मृत्यु हुई थी । तुम इस समय अपना वाक्यरूप अमृत पिलाकर मुझे फिर जीवित करो । मैं पुत्र, स्त्री, घर, क्षेत्र और ममतारूप बेडियों से अत्यन्त क्लेश पा-रहा हूँ, शीघ्रता से सकल लोकों के प्रार्थना क-रनेयोग्य सद्भावरूप विज्ञान को प्रकट करके मुझे मुक्त करो । पुत्र ने कहा कि–पाहिले अलर्क के बूझने पर बुद्धिमान् दत्तात्रेयजी ने उन को यथो-चित-रीति से जो योग का उपदेश करा था उस को विस्तार के साथ कहता हूँ सुनो । पिता ने कहा कि–दत्तात्रेयजी किस के पुत्र थे ? और किसप्रकार योग का उपदेश करा ? और कौन थे ? जिन्होंने कि–उन से योग बूझा था ? । पुत्र ने कहा कि–प्रतिष्ठान नामक नगर में एक कु-शिकवंश का ब्राह्मण रहता था, वह अन्य जन्म में करेहुए पाप के कारण कुष्ठरोग से व्याकुल और तिरस्कृत हुआ । उस की स्त्री, जैसे स्पर्श करने के अयोग्य रोगातुर स्वामी की, पैरों को तेल मलना, स्नान, वस्त्र उढाना, भोजन, खखार मूत्र आदि को स्वच्छ करना, मल को धोना और बहतेहुए रुधिर को पोंछना; एकान्त में औषधादि लगाना, प्रियवचन बोलना इत्यादि नानाप्रकार के उपायों से सर्वथा देवता की स-

मान पूजा करती थी। उस के सब समय इस-प्रकार नम्रता के साथ सेवा करने पर भी ब्राह्मण अतितीव्रकोपी होने से निष्ठुरता से साथ उस को ललकारता था। तथापि उस अति भयानक पति को वह स्त्री नम्रता के साथ सर्वोंसे श्रेष्ठ देवसमान मानती थी यद्यपि उस ब्राह्मण में चलने की शक्ति नहीं थी तथापि एकसमय उस ने स्त्री से कहाकि-तू मुझे उस के घर लेचल। कि-जिस वेश्याको मैंने राजमार्ग में घर में बैठहुए देखा, हे धर्मज्ञे! तू मुझे उसी के यहाँ पहुँचा; क्योंकि मेरे चित्त में वही बसीहुई है। उस बाला को मैंने सूर्योदय के समय देखा था और अब यह रात्रि होगई, परन्तु जब से मैंने उस को देखा है तब से वह मेरे हृदय से नहीं हटती है। यदि वह सकल श्रेष्ठ अङ्ग और पुष्ट पयोधर तथा नितम्बवाली कृशोदरी आलिङ्गन नहीं करेगी तो निःसन्देह मुझे मराहुआ देखैगी। मनुष्यमात्र को यह काम सताता है और उस से अनेकों प्रार्थना करते हैं तथा मुझ में चलने की शक्ति नहीं है इसकारण मुझे बडी कठिनता प्रतीत होती है। श्रेष्ठ कुल में उत्पन्नहुई वह महाभागा उस की पतिवृता स्त्री उससमय कामातुर पति के उस वचन को सुनकर। और दृढता से फेंट बाँधकर तथा उस वेश्या के देने को बहुतसा धन लेकर पति को कन्धेपर चढाय धीरे२ चलदी। उससमय रात्रि होगई थी, आकाश में मेघ छारहा था, क्षण में बिजली का कौंदा होता था तिससमय पति का प्रिय करनेकी इच्छा करती हुई वह राजमार्ग से चली। उसी मार्ग में निरपराधी माण्डव्य ऋषि, चोर की शङ्का से अन्धकार में शूली पर लटकायेगये और उन को बडा दुःख होरहा था। सो स्त्री के कन्धे पर चढेहुए उस कौशिक ब्राह्मण के चरण लगजाने से वह शूली हिलगई तब तो माण्डव्यऋषि ने क्रोध में होकर उस से कहा इसप्रकार परम कष्ट की दशा को प्राप्त इसकारण ही अत्यन्त दुःखित हुए मुझे जिस ने पैर से हिलाया है वह नराधम परमात्मा। निःसन्देह सूर्य का उदय होने पर अवश प्राणों से नियुक्त होजायगा, सूर्य का दर्शन करते ही वह नाश को प्राप्त होगा। तब उस की स्त्री तिस अतिदारुण शाप को सुनकर घबडाई और कहनेलगी कि-सूर्य का उदय ही नहीं होगा। तब तो सूर्य के उदय न होने से बहुत दिन तक निरन्तर रात्रि ही रही तब तो देवता भयभीत होगये। क्योंकि-न कहीं स्वाध्याय हुआ, न वषट्कार न स्वधा न स्वाहा हुआ, फिर यह सकलजगत् नाश को कैसे न प्राप्त हो ?। दिनरात की व्यवस्थाके बिना मास ऋतुका नाशहुआ, उस के न होने से दक्षिण उत्तर अयन भी न जानेगये। जब अयन का ही ज्ञान नहीं तो संवत्सर कहाँ से होगा, सम्वत्सर के समझे बिना समय का कुछ भी विभाग नहीं मालूम होसक्ता। इसप्रकार पतिव्रता के वचन से जब सूर्य नहीं उदयहुआ तब उस के बिना स्नान आदि जगत् की कोई क्रिया नहीं हुई। न कहीं होम हुआ और न कहीं यज्ञ होता ही दीखा तब देवताओं ने विचारा कि-होम के बिना हमारी तृप्ति नहीं हो सक्ती। जब मनुष्य हमें यज्ञ करकेउन यथोचित भागोंसे हमें तृप्त करते हैं तो हमभी धान्य आदि की उत्पत्ति के निमित्त वर्षा करके उन देवताओं के ऊपर अनुग्रह करते हैं। ओष-

थियों के उत्पन्न होनेपर मनुष्य यज्ञ में हमारा यजन करते हैं और यज्ञ आदि में पूजन करे हुए हम उन को उन की कामना देते हैं। हमनीचे वर्षा करते हैं और मनुष्य यज्ञादि के द्वारा ऊपर को वर्षा करनेवाले हैं, हम जलकी वर्षा से तृप्त करते हैं और मनुष्य हविष्यपदार्थों की वर्षा से तृप्त करते हैं। जो दुष्टात्मा हमें नित्य नैमित्तिक क्रिया और यज्ञभाग नहीं देते हैं तथा अपने आप खाते हैं। उन अपकारी पापात्माओं का नाश करने को हम जल, सूर्य, अग्नि, पवन तथा पृथ्वी को दूषित करते हैं। तब उन के मरण के निमित्त अतिदारुण उपद्रव होने लगते हैं और जो हम को तृप्त करके शेष बचाहुआ अपने आप खाते हैं। उन महात्माओं के लिये हम पुण्यलोकों का विधान करते हैं। सो यह कुछ भी इससमय नहीं है और इस के बिना सृष्टि की स्थिति कैसे हो सक्ती है? अब दिन कैसे होयगा? इसप्रकार देवता आपस में कहने लगे।

यज्ञलोक की सम्भावना करके वह सब एकत्र होकर इसप्रकार कहरहे थे, सो यह सुनकर प्रजापति ने कहा, हे देवताओं! तेज के द्वारा तेज की और तपस्या के द्वारा ही तपस्या की शान्ति होती है। इस लिये तुम मेरी बात सुनो। पतिव्रता के माहात्म्य के प्रभाव से सूर्य का उदय नहीं होता है। उस का उदय न होने से तुम्हारी और मनुष्यों की हानि होगी। इसकारण तुम अत्रिऋषि की स्त्री पतिव्रता अनुसूया को सूर्य का उदय कराने के लिये प्रसन्न करो। पुत्र ने कहा कि–तब देवताओं ने जाकर अनुसूया को प्रसन्न किया, तब अनुसूया ने कहा वरमांगो। देवताओं ने यह वर मांगा कि फिर पहिले की समान दिन हो। अनुसूया ने कहा, पतिव्रता के माहात्म्य में जिस से किसी प्रकार की हानि न हो ऐसा उपाय करके मैं दिन करूँगी। जिस से फिर दिन रात की व्यवस्था होजाय और उस पतिव्रता का स्वामी भी न मरे मैं वही व्यवस्था करूँगी।

अनुसूया देवताओं से ऐसा कहकर उस ब्राह्मणी के पास गई। और उस का तथा उस के स्वामी का मंगल और धर्म बूझकर कहा, कि–हे कल्याणि! स्वामी का मुखारविन्द देखकर तुम को आनन्द मिले! तुम अपने स्वामी को सब देवताओं से अधिक समझो? मैंने स्वामिसेवा की सहायता से ही महाफल प्राप्त किया है, और उस के प्रभाव से ही मेरे सब मनोरथ पूरे और दुःखदूर हुए हैं।

हे साध्वि! मनुष्यों को पांच ऋण अवश्य ही चुकाने चाहियें और अपने वर्णधर्म के अनुसार धन का सञ्चय करना उचित है। इसप्रकार से पैदा कियेहुए धन को सत्पात्र में दान करे; सदा सत्य बोले, सरलस्वभाव रहे, सदा तपस्या, दान और दया से युक्त होय, रागद्वेष छोडकर शास्त्र के अनुसार सकल क्रिया अपनी शक्ति के अनुसार श्रद्धासहित प्रतिदिन करे। महाक्लेश को सहकर लोग, क्रम से प्राजापत्य आदि, अपनी जाति के लिये विहित लोकों को प्राप्त करते हैं। किन्तु स्त्रियों को ऐसा क्लेश नहीं सहना होता है। वह स्वामी की सेवा से ही उन अभीष्ट लोकों में चलीजाती हैं। इसकारण हे साध्वि! जब स्वामी ही इसप्रकार से एक मात्रिगति है, तो उस की उपासना सबप्रकार से मन

लगाकर करै । स्वामी जो कुछ सतक्रिया से देवता पितर और अतिथियों की जो पूजा करता है, स्त्री अनन्यचित होकर पति की सेवा करने से ही उस का आधा भाग पाती है । पुत्र ने कहा कि—अनुसूया के यह वचन सुनकर ब्राह्मणी ने आदरसहित उन की पूजाकरी और कहा कि—मैं देवसमाज में सम्मानित और अनुगृहीत हुई । क्योंकि—स्वभाव से कल्याण करनेवाली आप ने मेरी श्रद्धा को फिर बढादिया है । मैं भी यह जानती हूँ कि पतिसेवा के सिवाय समान स्त्रियों को दूसरी गति नहीं है और उन को प्रसन्न करदेने से दोनों लोक का उपकार करती हैं । हे यशस्विनी ! स्त्री का स्वामी ही देवता है ; इस लिये स्वामी के प्रसन्न होने पर उस को दोनों लोक में सुख मिलता है । हे महाभागे ! अब आप अपने यहां आनेका कारण कहिये ? मुझे अथवा मेरे स्वामी को क्या करना होगा ? अनुसूया ने कहा कि—तुम्हारे वचन से दिनरात और समस्त क्रियाओं का लोप होगया है तिस से देवताओं ने मेरे पास आकर प्रार्थना करी है कि—फिर पहिले की समान अखण्डभाव से दिनरात की व्यवस्था होय । सो मैं इस लिये ही यहां आई हूँ । मेरी बात सुनो । दिन के न होने से याग यज्ञादि सब बन्द होगये हैं । यज्ञों के न होने से देवताओं की पुष्टि नहीं होती है । दिन का नाश होजाने से सब कर्म का भी उच्छेद होगया है इस लिये यदि संसार को इस आपत्ति से उद्धार करने की तुम्हारी इच्छा है तो सब के ऊपर प्रसन्न होओ ; जिस से पहिले की समान सूर्य का उदय होय ।

ब्राह्मणी बोली कि हे महाभागे ! महर्षि माण्डव्य ने क्रोध के वशीभूत होकर मेरे ईश्वर स्वरूप स्वामी को शाप दिया है कि—सूर्य के उदय होते ही तुम प्राण त्याग करोगे । यह सुन अनुसूया बोली, हे महाभागे ! यदि तुम्हारी सम्मति हो तो मैं तुम्हारे स्वामी का पहिले की समान नया शरीर करदूँ ।

हे वर वर्णिनी ! मैंने सदा पतिव्रता स्त्रियों के माहात्म्य की पूजा करी है । इस कारण ही तुम्हारा आदर करने में प्रवृत्त हुई हूँ । पुत्रबोला कि उस ब्राह्मणी के स्वीकार करनेपर तपस्विनी अनुसूयाने अर्घ्य देकर सूर्य्य का आवाहन किया । दशदिन से केवल रातही थी । अनुसूया के आवाहन करते ही सूर्य्यदेव पूर्व की ओर आकाश में उदित हुए । क्षणमात्र में ही उसका स्वामी प्राण शून्य होकर पृथिवी में गिर गया । जब अनुसूया ने कहा, भद्रे ! शोक न करना । तुम अभी मेरी स्वामीसेवा और तपस्या का बल देखोगी । रूप, चरित्र, बुद्धि और मधुर वचन आदि किसी विषय में भी कभी मैंने यदि स्वामी की अपेक्षा दूसरे पुरुष को श्रेष्ठ न समझाहोय तो उस सत्य के बल से यह ब्राह्मण रोग मुक्त और फिर युवा होकर स्त्री सहित सौ वरसतक जीवित रहे । यदि मैं स्वामी को ही परम देवता समझती हूँ तो उस सत्य के बल से यह ब्राह्मण व्याधिमुक्त और फिर जीवित हो । मैंने यदि मन, वचन, कर्म्म से स्वामी की ही सेवा की है तो उस सत्य के बल से यह ब्राह्मण फिर जीवित हो । पुत्रबोला कि ऐसा कहते ही ब्राह्मण रोग मुक्त होकर फिर युवा होगया और अजर अमरकी समान सब घर की सुन्दरता देखता हुआ उठ बैठा ।

आकाश से फूलों की वर्षा और अनेक प्रकार के दिव्य बाजों का शब्द होनेलगा। देवताओं ने प्रसन्न होकर अनुसूया से कहा, हे कल्याणि! वरमांगो। तुम ने देवताओं का परम उपकार किया है, इस लिये देवता वर देते हैं।

अनुसूया बोली कि यदि देवता प्रसन्न हो कर मुझे वर देना चाहते हैं, और मुझको यदि वरदान के योग्य पात्र समझते हैं तो इस वर से ब्रह्मा, विष्णु, और शिव मेरे पुत्र होवें। और मैं स्वामी सहित सब क्लेशों से छुटकारा-पाऊं। तब ब्रह्मा, विष्णु, और शिवादि देवता ऐसा ही होगा, यह कहकर अपने २ स्थान को चलेगये। सोलहवां अध्याय समाप्त ॥

सत्रहवां अध्याय।

पुत्रबोला कि फिर बहुत काल के पीछे ब्रह्मा जी के दूसरे पुत्र अत्रि अपनी रूपवती स्त्री को ऋतु स्नाता देखकर काम से पीडित होगए, और उस को मन २ में चाहने लगे। इसप्रकार ध्यान करतेहुए उन को विकार उत्पन्न हुआ तब वेगवान् वायु उस को ऊपर और नीचे को लेगया, वह ब्रह्मरूप, सोमस्वरूप, शुक्लकान्ति रजो युक्त तेज जैसे चारोंओर गिरनेलगा, वैसे ही दशों दिशाओं ने उस को ग्रहण किया। उस से सब प्राणियों की आयु का आधारस्वरूप चन्द्रमा अत्रि ऋषि के मानसपुत्रस्वरूप से उत्पन्नहुआ। तबही महात्मा विष्णु भगवान् ने प्रसन्नता से सत स्वरूप द्विजोत्तम दत्तात्रेय को उत्पन्न किया। यथार्थ में विष्णु भगवान् ने ही इन दत्तात्रेयके नामसे विख्यात होकर, अत्रि के द्वितीय पुत्ररूप से अनुसूया के स्तनका पान करा। दत्तात्रेय जी कुपित होकर सातदिन में ही माता के गर्भ से निकल आये। क्योंकि हैहयपति कुमार्ग में जाकर अत्रि का तिरस्कार करने को उद्यत हुआ था। यह देखकर उन को क्रोध आगया, और उन्होंने तत्काल हैहय पति के भस्म करने का संकल्प किया। तदनन्तर तमो गुण युक्त दुर्वासा ऋषि रुद्र के अंश से अत्रि ऋषि के उत्पन्न हुए। उन में ब्रह्मा चन्द्ररूप से, विष्णु, दत्तात्रेय रूप से और महादेव दुर्वासारूप से देवताओं के वरदान से अनुसूया के गर्भ में उत्पन्नहुए। प्रजा पति सोम अपनी शीतल किरणो से औषधि और मनुष्यों को तृप्त करके स्वर्ग में विराजमान हुए। दत्तात्रेय दुष्टों का नाश और शिष्टोंका पालन करतेहुए मनुष्य लोक में रहनेलगे। इन को विष्णु का अंश जानना। और उद्धत चित्त, उद्धत्त दर्शन, और उद्धत वाक्य भगवान् अज दुर्वासा ऋषि रौद्र मूर्त्ति धारण करके लोगों का अपमान करनेवाले दुष्टों का नाश करने में प्रवृत्त हुए। इसप्रकार से प्रजा पति अत्रि ने सोमत्व, श्रीहरि दत्तात्रेयजी ने योगस्थ होकर विषयों को भोगा और दुर्वासाने माता-पिताको त्यागकर उन्मत्त नामक उत्तम व्रत धारण करके पृथिवी पर भ्रमण करनेलगे।

हे तात! दत्तात्रेयजी सदा ही ऋषिकुमारों से घिरकर योगसाधन करते थे। संसार को त्यागने की इच्छा से बहुत कालतक सरोवर के जल में मग्न रहे। फिर सरोवर के तट पर रहे। देवपरिमाण के सौवर्ष बीतने पर भी जब ऋषिकुमारों ने प्रीति के कारण उन को नहीं

छोडा और सरोवर के तट पर ही रहनेलगे; तब दत्तात्रेयजी, दिव्य वस्त्रधारिणी, सुन्दर स्त्री को लियेहुए जल से निकले। उन का आशय यह था कि-यह स्त्रीको साथ देखकर मुझको छोड देंगे। फिर मैं सदा के लिये संगहीन होजाऊँगा। वह स्त्री सहित सुरापान में रत, गीत वाद्यादि स्त्रीसंभोग से दूषित और उस स्त्री के साथ वीभत्स व्यापार में तत्पहुए, परन्तु ऋषिकुमारों ने उन को नहीं छोड़ा। वह विचारनेलगे; कि यह दत्तात्रेयजी, महापुरुष, योगियों के भी नियन्ता हैं और किसी क्रिया के भी अधीन नहीं हैं। चण्डाल के घर में जाने से जैसे वायु दूषित नहीं होता, वैसे ही वह भी सुरापान और स्त्री के साथ रहने से किसीप्रकार दूषित नहीं होसकते। वह योग जाननेवाले और योगीश्वर हैं, योगी लोग भी मुक्ति की इच्छा से उन की चिन्ता करते हैं। सत्रहवाँ अध्याय समाप्त।

अठारहवाँ अध्याय।

पुत्र बोला कि—फिर कुछ दिनों के पीछे राजा कृतवीर्य का परलोकवास हुआ, मंत्री, पुरोहित और पुरवासियों ने एकत्र होकर उन के पुत्र अर्जुन को अभिषेक के लिये बुलाया! अर्जुन ने कहा कि—हे मंत्रियों! राज करने का परिणाम नरक है। मैं उस को ग्रहण नहीं करूँगा! देखो राजा जिस लिये करलेता है, वह न करके सब ही भोगविलास में खर्च करदेता है। वनिये लोग राजाको अपने२व्यापारका बारहवां भाग देकर राजा के सेवकों से रक्षित हो विदेश घूमते हैं। ग्वालिये और किसान घी, मट्ठा और अन्नादि का छठाभाग देते हैं। वह यदि इस से भी अधिक दें, और राजा भी उस को लेले तो उन को चोरी करना पडता है और उन का इष्टापूर्त्त भी नष्ट होजाता है। फिर प्रजा यदि राजा को अधिक कर देकर दूसरे के द्वारा पालित हो, तो ऐसे छठे अंश के लेने से राजा को अवश्य नरक मिलता है। प्राचीन पंडितों ने ऐसे छठे अंश को राजा की रक्षा का वेतनस्वरूप कहा है। इसकारण प्रजा को चोर के हाथसे रक्षा न करसकने पर, राजाको उस चोरी के पाप में लिप्त होनापडता है। अतः मैं यदि तपस्या करके सब प्राणियों का अभिलषितयोग पद प्राप्त करसकूं तो पृथिवी में मैं ही अद्वितीय शस्त्रधारी राजा बनूँगा। मुझ को पृथिवी के पालन की विशेष:शक्ति होजायगी इस लिये राजा होकर पापभागी नहीं बनूँगा। गर्गनामक महाबुद्धि मान् वृद्धमुनि ने उस का ऐसा दृढ सङ्कल्प जानकर मंत्रियों से कहा, 'यदि तुम ने भलीभांति राज्यशासन करने के लिये यह सङ्कल्प किया है, तो मेरी बात सुनकर उस के अनुसार कामकरो। महाभाग दत्तात्रेयजी पर्वत की गुफा में विराजमान हैं। वह पृथिवी का पालन करनेवाले हैं। तुम किसी प्रकार का संदेह न करके उनही की आराधना करो। वह योगी महाभाग दत्तात्रेयजी सर्वत्र समदर्शी और साक्षात विष्णु के अंश हैं। संसार का पालन करने के लिये अवतीर्ण हुए हैं। इन्द्र ने इन की ही आराधना करके अपना पद फिर प्राप्त किया है। दुष्ट दैत्यों ने उस को छीन लियाथा। उनदैत्यों का भी इन्द्र ने इन हीके अनुग्रह से बध किया है।

अर्जुन बोले कि—देवताओं ने प्रतापवान्

दत्तात्रेयजी की किस लिये आराधना की? और दैत्यों ने किसकारण इन्द्रपद को हरण करलिया? तथा इन्द्र ने फिर उस को कैसे पाया? गर्गजी बोले कि-देव और दानवों का तुमुलयुद्ध होने के समय,जम्भ दैत्योंका सेनापति था और इन्द्र सम्पूर्ण देवताओं के सेनापति बने थे। उन को युद्ध करते २ देवताओं का एक वर्ष बीतगया तदनन्तर देवताओं की पराजय और दैत्यों की विजयहुई। दानवों से पराजित होकर देवता भागे और शत्रुओं की विजय से निरुत्साह होकर दैत्यों के नष्ट करने की इच्छा से बाल-खिल्य ऋषियों के साथ बृहस्पतिजी की शरण में गए, और सम्मति करनेलगे। बृहस्पति बोले कि-तुम भक्ति के साथ अत्रि के पुत्र, विकृताचार,तपस्वी,महात्मा दत्तात्रेयजी को प्रसन्न करो। वह वरदाता तुम को दैत्यों का नाश करने के लिये वरदेंगे। तब तुम मिलकर उन का वध करोगे।

गर्गजी बोले कि-उन्होंने इसप्रकार सम्मति करके दत्तात्रेयजी के आश्रम में गमन किया। देखा कि-वह महात्मा साक्षात् लक्ष्मी के साथ विराजमान होकर सुरापान कररहे हैं। गन्धर्व उन को गाना सुनारहे हैं। देवताओं ने उन के निकट जाकर पहिले प्रणाम किया। फिर भोक्ष्य भोज्य और माल्यादि उपहार देकर कार्य्य सिद्धि के निमित्त स्तुति करनेलगे, उन के बैठने पर बैठना, चलने पर जाना और उन के आसन पर विराजने पर वह पृथिवी पर बैठकर आराधना करतेरहे। तदुपरान्त दत्तात्रेयजी ने प्रसन्न होकर देवताओं से कहा कि तुम्हारी इच्छा क्या है? जिस के निमित्त मेरी इसप्रकार से सेवा कररहे हो? देवता बोले कि-हे मुनिशार्दूल! जम्भादि दैत्यों ने भूर्भुवादि त्रिलोकी जीतली और यज्ञ का भाग स्वयं भोग करते हैं। हेअनघ! हमारी रक्षाके लिये उनके मारने में आप को ध्यान देना होगा। आप की दया के सहारे से हम फिर स्वर्ग प्राप्त करने की इच्छा करते हैं। दत्तात्रेयजी बोले कि-हे देवताओं! मैं सदा ही उच्छिष्ट और मद्यपान में तत्पर रहता हूँ, तथा मेरी इन्द्रियें भी वश में नहीं हैं। इसकारण मेरी सहायता से तुम किसप्रकार शत्रुओं के जीतने की आशा करते हो? देवता बोले कि-आप जगत् के स्वामी और सर्वथा निष्पाप हैं। किसी में भी आप लिप्त नहींहैं। विद्याके उदय और योगवश आपकी अन्तरात्मा प्रक्षालित और शोधित होगई हैं, और इस के साथहीसाथ उस में ज्ञानाग्नि का प्रवेश हुआ है।

दत्तात्रेयजी बोले कि-हे देवताओं! तुम ठीक कहते हो, मैं ज्ञानयोग के प्राप्त होने से समदर्शी होगया हूँ। किन्तु इस स्त्री के संसर्ग से मेरी पवित्रता भ्रष्ट होगई है। सदा स्त्रीका संग करने से दोष उत्पन्न होजाते हैं। यह सुनकर देवताओं ने कहा कि-हे द्विजश्रेष्ठ! आपकी यह स्त्री जगत् की माता और पापहीन है। सूर्य की किरण जैसे चाण्डाल के स्पर्श से दूषित नहीं होती, इन को भी वैसे ही कोई दोष नहीं लगसकता। गर्गजी बोले कि-दत्तात्रेयजी ने देवताओं की इस बात से हँसकर कहा कि यदि तुम्हारा ऐसा निश्चय है तो तुम असुरों को युद्ध के लिये बुलाकर मेरे सामने लाओ। देर मतकरो। मेरी दृष्टिपातरूपी अग्निमें उन

का बल और तेज सब भस्म होजायगा । तब वह सब ही नष्टप्राय होजायँगे ।

देवताओं ने यह बात सुनकर महाबली दैत्यों को युद्ध के लिये बुलाया । उन्होंने क्रोध के साथ देवताओं के सामने आकर उन को घेरलिया । तब देवता भयभीत होकर शरण की प्रार्थना करतेहुए दत्तात्रेयजी के आश्रम में पहुँचे । दैत्य भी उन को मारतेहुए तहां पहुँचगए । उन्होंने देखा कि—महाबल दत्तात्रेयजी के बाईं ओर सब संसार की मोहनेवाली उन की स्त्री लक्ष्मी विराजमान है । वह स्त्रियों के सब गुणों से भूषित है । वह उस चन्द्रमुखी, कमललोचन, सर्वाङ्गशोभना, मधुर वचन बोलनेवाली लक्ष्मी को देखकर काम के वशीभूत होगए । वह काम के वेग को न रोककर एक साथ ही अधीर होगए । तब उस पाप से तेजहीन होकर उन्होंने देवताओं को छोडदिया । और उस के हरण करने की इच्छा से आपस में कहनेलगे कि—यह त्रिलोकी का सार स्त्रीरत्न यदि हम को मिलजाय तो हम सब कृतकृत्य होजायँ, यही हमारा निश्चय है । इस को पालकी में चढाकर अपने स्थान को लेचलैं, यही हम ने निश्चय किया है । वह काम के अत्यन्त वशीभूत होगए थे, इसलिये सब ने मिलकर उन की भार्य्या को उठाकर पालकी में चढ़ा दिया और सब शिरपै रखकर अपने स्थान को चले । उससमय दत्तात्रेयजी ने हँसकर देवताओं से कहा कि—सौभाग्य से तुम लोग जीतगए । क्योंकि इस लक्ष्मी ने जब दैत्योंके अन्यान्य स्थानों को आक्रमण करके शिरपर सवारी ली है तो निश्चय ही इन को छोडकर दूसरों के पास जायगी ।

देवता बोले कि—आप जगत् के स्वामी हैं । इसलिये कहिये कि लक्ष्मी पुरुष के किस स्थान में रहने से क्या फल देती है, वा नाशकरती है?

दत्तात्रेयजी बोले, मनुष्यों के पैर में स्थित होने से लक्ष्मी निश्चय ही स्थान देती है ; सक्थि में रहने से अनेकप्रकार के धन और वस्त्र देती है गुदा में रहने से वस्त्र, गोद में रहने से पुत्र, हृदय में रहने से सबप्रकार के अभीष्ट विषय, कण्ठ में रहने से कण्ठभूषण, विदेश के इष्टमित्रों के साथ मिलन, शिष्टोचितवाक्य, लावण्य और अखण्डित आज्ञा तथा मुख में रहने से कवित्व देती है, और शिर में रहने से तत्काल छोडकर दूसरे पुरुष के पास चली जाती है । अतएव लक्ष्मी जब दानवों के शिर पर स्थित हुई है, तो उन को छोडदेगी । तुम इस अवसर में अस्त्र लेकर उन को मारो, डरो मत ; मैंने उन को निस्तेज करदिया है । वह स्वयं भी पराई स्त्री के हरण करने के पाप में क्षीणपुण्य और तेजहीन होगये हैं । गर्गजी बोले, सुना है कि—तब इसप्रकार लक्ष्मी को शिर पर रखने से देवताओं के अस्त्रों के प्रहारों से दैत्यों के प्राण नष्ट होगए । लक्ष्मी भी उन के शिर से उतरकर दत्तात्रेयजी के पास आगई । देवता दैत्यों के नाश से प्रसन्न होकर लक्ष्मी की स्तुति करनेलगे । फिर वह सब महर्षि दत्तात्रेयजी को दण्डवत करके स्वर्ग को चलेगये । हे राजेन्द्र! आप भी यदि यथेष्ट ऐश्वर्य के प्राप्त करने की इच्छा करते हैं तो शीघ्र दत्तात्रेयजी की आराधना कीजिये ।

अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥

उन्नीसवां अध्याय।

पुत्र बोला कि-गर्गजीकी बात सुनकर राजा अर्जुन दत्तात्रेयजी के आश्रम में चलागया, और भक्तिसहित उन की पूजाकरी; तथा चरण पखारना, मधुआदि लाना, मालाचन्दनादि बनाना, जल और फलादि का लाना, अन्नकापाक और उच्छिष्ट भोजन आदि सेवा करने लगा! ऋषि ने प्रसन्न होकर पहिले जैसे मद्य-भोगादिके संसर्गसे अपनी निन्दाकरके देवताओं से कहा था, अर्जुन से भी उसीप्रकार कहा, यह स्त्री सदा ही मेरे पास रहती है। इसके संसर्ग से मैं अपवित्र और तेजहीन होगया हूँ। अतः मेरी इसप्रकार से प्रशंसा करना तुम को उचित नहीं। मैं वास्तव में ही उपकार करने में असमर्थ हूँ। इसकारण किसी शक्तिमान् पुरुष की शरण में जाओ। पुत्र ने कहा कि-ऋषि के ऐसा कहने पर राजा कार्त्तवीर्य ने गर्गजी की बात यादकरी और प्रणाम करके उत्तरदिया कि,आप किसकारण मायाका आश्रय करके मुझ को भुलावा देते हैं? आप जैसे सबप्रकार से निष्पाप हैं, वैसे ही यह देवी भी सब संसार की माता हैं। राजा की यह बात सुनकर दत्तात्रेयजी ने प्रसन्न होकर कहा कि तुम मेरा यथार्थ स्वरूप पहचानने में समर्थ हुए हो, इसकारण तुम्हारे ऊपर आज मैं परमप्रसन्न हुआ हूँ। अतः वरमांगो। जो लोग गन्ध-माल्यादि द्रव्य मधु आदि उपहार, और घृत युक्त मिष्टान्न चढाकर विधिविधान से ब्राह्मणों की पूजा, अनेकप्रकार के वीणावेणु और शंखादि मधुर बाजों के साथ लक्ष्मीसहित मेरा पूजन करते हैं, मैं उन को इच्छित स्त्री, पुत्र और धनादि देकर प्रसन्न करता हूँ, और जो लोग मुझ से अश्रद्धा करते हैं, उन को नष्ट करदेता हूँ। तुमने मेरा गुप्त नाम कीर्त्तन किया, इस लिये वरमांगो।

अर्जुन ने कहा कि-आप यदि प्रसन्नहुए हैं तो जिस से मैं भलीभांति प्रजा का पालन करसकूँ और कभी भी अधर्म में लिप्त न होसकूँ ऐसी श्रेष्ठ ऋद्धि मुझे दीजिये। इस के अतिरिक्त, दूसरे का आशय समझने के लिये विशेष ज्ञान उत्पन्न हो; युद्ध में मेरा कोई सामना न करसके, मैं सहस्रबाहु होजाऊँ; पर्वत, जल, पृथिवी, आकाश, पाताल, कहीं भी मेरी गति नहीं रुके; मुझ से श्रेष्ठ पुरुष के हाथ से मेरी मृत्यु हो; मैं कुमार्ग में गयेहुए लोगों को श्रेष्ठ मार्ग दिखासकूँ; अतिथियों को अक्षय धन देकर सदा प्रसन्न करसकूँ; मेरा स्मरण करने से ही मेरे राज्य में किसी की कोई वस्तु नष्ट न हो और आप में ही सदा मेरी निश्चलभक्ति रहे। दत्तात्रेयजी बोले कि-तुम्हारे कहेहुए सब वर ही तुमको भलीभांतिसे प्राप्त होंगे। अधिक क्या कहूँ मेरे प्रसादसे तुम चक्रवर्त्ती राजाहोजाओगे पुत्र बोला कि तब राजाने ऋषि को प्रणाम करके प्रजा को इकट्ठा किया, और विधिविधानसे राज्यको ग्रहण किया। और राज्य सिंहासनपर बैठा तथा दत्तात्रेयजी के वर के प्रभावसे परमऋद्धि प्राप्त करके अत्यन्त बलिष्ठ होगया, सारे में ढँढोरा पिटवादिया कि आज से मेरे सिवाय जो पुरुष शस्त्र ग्रहण करेगा, उस को और जो चोरी या किसी की हत्या करेगा उस को भी मारडालूँगा। ऐसी आज्ञा का प्रचारित होनेपर केवल उस पराक्रमशाली पु-

रुपसिंह अर्जुन के सिवाय राज्य में और कोई शस्त्रधारी नहीं रहा। वही ग्राम्यपाल और पशुपाल हुआ। वही अर्थपाल और क्षेत्रपाल हुआ, वही ब्राह्मण, वैश्य और तपस्वियों का पालक हुआ। लोग चोर, सर्प, अग्नि और शस्त्र के भय से भीत अथवा किसी विपत्ति में पड़कर उस का स्मरण करते, तो वह तत्काल उन को उस विपतसे उद्धार करताथा उस के राज्य में किसी की कोई वस्तु नष्ट नहीं होती। वह दक्षिणा देने के साथ अनेक प्रकार के यज्ञ करनेलगा। युद्ध के पीछे युद्ध का करना आरम्भ किया; तपस्याका सञ्चय किया।

महर्षि अङ्गिरा ने उसका यह अतुल ऐश्वर्य्य और अभिमान देखकर कहा था कि, क्या युद्ध,क्यादान, क्या तप किसीसे भी कोई राजा कार्त्तवीर्य की बराबरी नहीं पासकेगा। कार्त्तवीर्य ने जिसदिन दत्तात्रेयजी के प्रसाद से अलौकिक प्रभुशक्ति प्राप्त की थी उसीदिन से उन के उपदेश से यज्ञ करता, उस की सब प्रजा भी उस की ऐसी ऋद्धि देखकर दत्तात्रेय जी के उद्देश्य से यज्ञ करनेलगी।

बुद्धिमान् दत्तात्रेयजी का माहात्म्य कीर्त्तन किया उन शार्ङ्गधन्वा, चराचरगुरु, अनन्त, अप्रमेय शङ्ख चक्रधर महात्मा विष्णुभगवान् का अवतार परम्परा इसीप्रकार सब पुराणों में वर्णित हुई है। उन का परमरूप चिन्तवन करने से सुख मिलने के साथ संसार से सदा के लिये मुक्ति प्राप्त होजाती है। जिन्होंने कहा है कि मैं सदाही वैष्णवों को प्राप्त होता हूँ। उनका लोग किसप्रकार आश्रय न करेंगे? उन का आदि अन्त कुछ भी नहीं है वह अधर्म का नाश और धर्म की रक्षा के निमित्त स्थिति पालन और अवतार लेने में प्रवृत्त होते हैं। अब मैं अलर्क का वृत्तान्त कहता हूँ सुनो। दत्तात्रेयजीने उन पितृभक्त महात्मा राजर्षिको योग का उपदेश किया था। उन्नीसवां अध्याय समाप्त॥

बीसवाँ अध्याय।

पुत्र बोला कि-पहिले शत्रुजित् नामक बड़ा पराक्रमी राजा था। जिस के यज्ञों का सोमरस पान करके इन्द्र प्रसन्न हुआ था। उस का पुत्र भी महावीर्यवान् शत्रुओं का नाशक, बुद्धि-विक्रम और रूप में बृहस्पति-इन्द्र और अश्विनीकुमारकी समान था। वह सदा समान अवस्थावाले, समान बुद्धि, समानविक्रमी और समानचेष्टावाले राजपुत्रों के साथ कभी शास्त्रों की मीमांसा करकै निश्चयकरता, कभी काव्य नाटक और गीत का विचार, कभी पाश क्रीडा, कभी अस्त्रशस्त्र और युद्ध शिक्षा और कभी घोडा और रथचलानेके अभ्यास में तत्परहता था। इसप्रकार राजपुत्रों से घिरकर दिनरात आनन्द में समय को विताता था। उन के इसप्रकार के खेल में अनेक अनेक ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के लडके खेलने को तहां आयाकरते थे। हे तात! कुछकाल के अनन्तर अश्वतर नामक नागराजके दो सुन्दर पुत्र ब्राह्मण का वेशधारण करके पाताल से वहां आये और उन ब्राह्मण, क्षत्रिय, तथा वैश्य कुमारों के साथ परमानन्द से आमोद प्रमोद करनेलगे। वह सबही एक जगह स्नान भोजन, बैठना वस्त्रधारण, और गन्धानुलेपन

करते थे । नागराजके दोनों कुमार राजकुमारों के प्रेम से प्रसन्नहोकर प्रतिदिन ही पातालसे आनेलगे । राजकुमार भी उन के साथ अनेक प्रकार के विनोद, हास्य और वार्त्तालाप करके सुख लूटनेलगे । उन दोनों के विना आये कोई भी स्नान, भोजन, मधुसेवन और शास्त्रादि की चर्चा नहीं करता था । वह दोनों भी रात को पाताल में जाकर राजकुमारों के विरह में गहरे २ सांस लेते थे और प्रातःकाल होते ही उन के पास चले आते थे ।

एक दिन उन दोनों नागपुत्रों से पिता ने पूछा कि–तुम किसकारण मर्त्यलोक के ऊपर मोहित हुए हो? मैंने बहुत काल से तुम को दिन के समय पाताल में नहीं देखा ; केवल रात में ही तुम को देखता हूँ । पिता के ऐसा पूँछने पर दोनोंने हाथ जोडकर उत्तर दिया कि–हे तात! राजा शत्रुजित् का ऋतध्वज नामक विख्यात पुत्र अत्यन्त सुन्दर, सरलभाव संपन्न शूर, मानी, प्यारा बोलनेवाला, वाग्मी, विद्वान मित्रोंका प्यारा और सत्गुणों की खान है । किसी के विनापूछे बात का उत्तर नहीं देता । मानी लोगों का मान रखता है । वह जैसा बुद्धिमान् है, वैसा ही लजीला और विनययुक्त है । उस का श्रेष्ठ व्यवहार और प्रीति देखकर हमारा मन मोह गया है । इस लिये गोलोक, वा भूलोक कहीं भी जाने की हमारी इच्छा नहीं होती । उस के विरह में पाताल भी हमें शीतल मालूम नहीं होता, सन्ताप उत्पन्न करता है । किन्तु उस के साथ रहने से सूर्य की किरण भी शीतल मालूम होती है ।

पिता बोले, उस पुण्यवान् का पुत्र ही धन्य है, क्योंकि–तुम्हारी समान गुणी लोग परोक्ष में भी जिस के गुण कीर्त्तन करते हैं । शास्त्र के जाननेवाले भी दुःशील होजाते हैं,और मूर्ख भी शीलवान् होजाते हैं।जिस में शास्त्र और शील दोनों ही हैं,ऐसा पुरुष ही मेरी समझ में अत्यन्त धन्य है । मित्र लोग जिस के मित्रोचित श्रेष्ठ गुण और शत्रु लोग जिस का पराक्रम कथन करें, उस का पिता ही वास्तव में पुत्रवान् है । अब मैं पूंछता हूँ कि–तुम ने उस उपकारी राजपुत्र की प्रसन्नता के लिये किसप्रकार का अभीष्ट साधन किया है? जो याचक को विमुख नहीं करता और जो मित्रों का उपकार करने में समर्थ है, वह धन्य, वही जन्मा, और उसी का जीवन सफल है । मेरे घर में सुवर्ण, रत्न, सवारी, आसन आदि जो कुछ वस्तु हैं, जिससे वह प्रसन्न हो,तुम निःशङ्क होकर देसकते हो । जो पुरुष मित्रों का उपकार करने में असमर्थ होकर मैं जीवित हूँ ऐसा समझता है उस के जीने को धिक्कार है । जो पुरुष मेघों की समान मित्रों का उपकार और शत्रुओं का अपकार करता है, लोग सदा उस ही की उन्नति चाहते हैं ।

पुत्र बोला,कि-हे पिता! वह कृतार्थहै । उस के घर जाकर जो जोकुछ मांगता है, वही पाता है ; इसकारण उस को किसीप्रकार से कुछ देने का किस को साहस होसकता है? उस के घर जो, रत्न, आसन, विमान, गहने, सवारी और वस्त्र हैं, हमारे पाताल में वह कहां? और वह जैसा ज्ञानी और चतुर है, वैसा दूसरा नहीं देखने में आता । वह ब्रह्मज्ञानियों के भी सब प्रकार के संदेह दूर करसकता है । उस

को केवल धन की आवश्यकता है । किन्तु उस का पूरा करना हमारी शक्ति से बाहर है। ब्रह्मा, विष्णु शिव आदि ही पूरा करसकते हैं। पिता बोले, चाहे साध्य हो या असाध्य, तथापि मैं उस की वह आवश्यकता सुनना चाहता हूँ। जिन का उत्साह दृढ है, वह देवत्व, अथवा देवगणों का आधिपत्य, पूजनीयत्व और दूसरे इच्छित विषय प्राप्त करलेते हैं। जिन का आत्मा, इन्द्रियें और चित्त संयमहै और जो पराक्रमी हैं, स्वर्ग वा मर्त्य में उन को कुछ भी अगम्य और अप्राप्य नहीं है। चीटियां भी चलने से हजार योजन तक जासकती हैं। और विनाचले स्वयं गरुड़ भी एक पैर नहीं जासकते। देखो पृथिवी और ध्रुवलोक में कितना अन्तर है, किन्तु उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव ने पृथिवीचर होकर भी उस को प्राप्त किया है। इसकारण जिस से उस महात्मा ऋतध्वज का उपकार और तुम्हारा ऋणशोध होसके सो कहो। दोनों पुत्रों ने कहा, उस सच्चरित्र राजकुमार की बाल्यावस्था में जो कुछ हुआ था, वह उस ने मुझ से इसप्रकार कहा है सुनो। पहिले द्विजोत्तम गालवऋषि श्रेष्ठ घोडे पर सवार होकर शत्रुजित् के पास गए, वहां जाकर कहा कि—एक नराधम अचानक मेरे आश्रम में आकर उस आश्रम को नष्ट किया चाहता है।

वह सिंह, हाथी और दूसरे छोटे २ बनैले पशुओं का रूप धारण करके रातदिन समाधि ध्यान में तत्पर मौनधारी मुझ को अकारण ऐसा विघ्न पहुँचाता है कि—मेरा मन चञ्चल होजाता है। मैं स्वयं क्रोधाग्नि से उस को तत्काल भस्म करसकता हूँ। किन्तु बडे कष्ट से संचय कियेहुए तप के क्षय करने की मेरी इच्छा नहीं। हे राजन्! एकसमय उस से क्लेशित होकर मैंने व्याकुलता से उस को देखा, और एक गहरीसांस ली, तत्काल आकाशसे यह घोडा पृथिवी पर गिरा, और उस के साथ २ ही आकाशवाणी हुई कि-यह घोडा विना थकावट के सारी पृथिवी पर सूर्य के साथ २ घूमसकता है। तुम को यह दियागया। पाताल, आकाश और जल में भी इस की गति नहीं रुकेगी। सब दिशाओं में अथवा सब पर्वतों में यह विनारुकावट के चलसकता है। क्योंकि—यह घोडा विनाथकावट के सब पृथिवी में घूमेगा, इसकारण कुवलय नाम से विख्यात होगा, और जो दुष्ट दानवाधम तुम को रातदिन कष्ट देता है, शत्रुजित् राजा के पुत्र ऋतध्वज इस घोडे पर सवार होकर उस का नाश करेंगे, और यह अश्वरत्न पाकर उन का नाम कुवलयाश्व विख्यात होगा।

हे महाराज! इस ही कारण मैं आप के पास आया हूँ। आप उस तप में विघ्न करनेवाले दानव का दमन कीजिये। क्योंकि-राजा भी तप का यथोचित अंश पाता है। मैंने यह अश्वरत्न आप को निवेदन किया। पुत्र को इस विषय में ऐसी आज्ञा कीजिये, जिस से धर्म में हानि न हो। ऋषि की यह बात सुनकर शत्रुजित् ने अपने पुत्र ऋतध्वज को मङ्गलाचार पूर्वक घोडे पर चढाया और विधिविधान से गालव के साथ भेजदिया। महर्षि गालव भी उस को लेकर तत्काल अपने आश्रम में चलेगये। इति वीसवा अध्याय समाप्त।

———

इक्कीसवां अध्याय ।

पिताबोले, हे पुत्रो ! तुम्हारी बात बडी अद्भुत है । ऋतध्वज ने गालव के साथ जो किया था, सो कहो । पुत्रबोले, ऋतध्वज गालव के रमणीक आश्रम में स्थितहोकर ब्रह्मवादी ऋषियों के समस्त विघ्न दूरकरने में प्रवृत्त हुआ । दानवाधम गर्व के कारण मोह के वशीभूत होगया था, इस वीरकुवलयाश्व का आश्रम में रहना उस ने नहीं जाना । एकदिन गालवऋषि संध्यावन्दन कररहे थे, उसी समय वह दानवशूकर का रूपधारण करके उन को डराने के लिये आया । यह देखकर मुनि के शिष्य ऊँचेस्वर से चिल्ला उठे, राजकुमार ऋतध्वज तत्काल धनुषवाण लेकर घोडेपर चढ गया, और उसके पीछे जानेलगा । फिर उस ने सुन्दर चित्रशोभित दृढ धनुषतानकर अर्द्ध चन्द्रवाण मारा । शूकर वाणलगने से अपनी रक्षाकरने के लिये पर्वत वृक्षआदि से युक्त घने वन में घुसगया । तब वह मनकी समान वेगवाला घोडा पिताकी आज्ञा पालनकरनेवाले ऋतध्वज से प्रेरित होकर महावेग से उस के पीछे पीछे चला । बडे वेग से सहस्रयोजन तै करके वह शूकर अन्त में अचानक एक गढे में घुसगया । राजकुमार भी घोडेपर चढाहुआ उस के साथ ही उस अंधेरे गढे में गिरगया । किन्तु उसको न देखसका । फिर उस ने उजाला और पाताल देखा । किन्तु वहां भी शूकरको न पाया तदुपरान्त उस ने पातालतल में इन्द्र पुरी की समान सैकडों सुवर्णमयमहलों से शोभित नगर देखा । वहां भी घुसकर उस को न पाया । अनन्तर उस ने इधर उधर घूमते२ एक कोमलाङ्गी स्त्री को देखा । वह शीघ्रता से जारही थी । उसको देखकर राजकुमारने पूछा कि, तुम किस कार्यको किस के पास जातीहो किन्तु वह विना उत्तरदिये ही महलपर चढ गई । कुमार भी एकस्थान में घोडे को बाँधकर उस के पीछे २ चला । उसके मन में किसी प्रकार का भय नहीं हुआ । दोनों आँखें आश्चर्य से फूलगईं । तदुपरान्त कुमारने महलमें जाकर देखा कि,अत्यन्त सुकुमारी एककुमारी कामदेवकी स्त्री रति की समानरूपवती सुवर्ण के पलंगपर बैठी है उस का मुख पूर्णचन्द्रमा की समान, दोनों भौं अति सुन्दर, नितम्ब और स्तन स्थूल और गोल, अधर और ओष्ठ बिम्बाफल की समान, शरीर पतला, दोनों आखें नीलकमल की समान, नखूनलाल,शरीर कोमल और श्यामल, हाथ और पैर लाल, जंघा केले के खम्भकी समान,दांत कुन्दकी कली से, अलकैं नीली, सूक्ष्म और स्थिर भावयुक्त । कामदेवकी अङ्गलताकी समान सर्वाङ्गसुन्दरी उसबाला को देखकर राजकुमार ने उस को पाताल की देवी समझा । उस बाला ने भी काले घुंघराले बाल, पुष्टभुजा और कंधे, सुन्दरजंघा आदि देखकर मन में समझा कि, यह स्वयं कामदेव है । ऐसा समझकर वह तत्काल उठखडी हुई । और लाज से विस्मय तथा व्याकुलता के वशीभूत होकर विचारने लगी यह कौन है ? देवता वा यक्ष ? गंधर्व या सर्प ? विद्याधर या कोई पुण्यात्मामनुष्य पधारे हैं ? रसीले नेत्रवाली वह बाला यह विचारकर गहरी सांस छोडतीहुई जसे ही पृथिवी पर बैठी वैसे ही मूर्छित होकर गिरगई ।

राजकुमारभी कामवाण से पीडित हो, डरोमत कहकर उस को धीरज देनेलगा। उस ने इससे पहिले जिस स्त्री को देखाथा वह भी पङ्खालेकर व्याकुलचित्त से उस सुन्दरी की हवा करनेलगी। फिर राजकुमार ने उस को चैतन्य करके मूर्च्छा का कारण पूंछा, उस ने कुछेक लज्जित होकर अपनी सखी द्वारा सब वृत्तान्त निवेदन किया। सखी ने राजकुमारसे कहा, आप को देखकर ही यह मूर्च्छित हो गई थीं। फिर कुमार को सखी का परिचय देकर कहा कि, देवलोक में विश्वावसु नामक जो विख्यात गन्धर्वराज हैं, यह उन की ही औरस कन्या है। इस सुन्दरी का नाम मदालसा है। वज्रकेतु का पुत्र उग्रप्रकृति शत्रुनाशक पातालकेतु नामक दैत्य दूसरे पाताल में रहता है। हमारी यह सखी बाग में थी। उस समय मैं इसके पास नहीं थी। उस समय दुरात्मा पातालकेतु तामसी माया का आश्रय करके इसको हरलाया, और आगामी त्रयोदशी में विवाह करना भी स्थिर करलिया है किन्तु शूद्र का जैसे वेद श्रुति में अधिकार नहीं है, यह दुष्ट भी वैसे ही हमारी सखी के योग्य नहीं है। दिन बीतने पर इस बाला ने आत्महत्या करने का निश्चय किया है। कामधेनु ने निषेध करके कहाहै कि, दुरात्मा कभी तुम को प्राप्त न करसकेगा। हे महाभागे। दानव के मर्त्यलोक में जानेपर जो वाण मारकर इस को विद्ध करेगा वही तुम्हारा स्वामी होगा। मैं ही सखी हूँ, मेरा नाम कुण्डला है, मैं बिन्ध्यवान की कन्या और पुष्करमाली की स्त्री हूँ। शुम्भ ने मेरे स्वामी को मारडाला। तब से मैं व्रतधारणपूर्वक परलोक साधन में तत्पर हो दिव्यगति की सहायतासे प्रत्येक तीर्थ में विचरण करती हूँ। दुष्ट पातालकेतु शूकरमूर्त्ति धारण करके गयाथा, ऋषियोंकी रक्षा करनेके लिये किसी ने उसे वाणसे विद्ध किया है। इसबात का तथ्य ढूँढतीहुई मैं यहां शीघ्रता से आई हूँ। अब यह जिस कारण से मूर्च्छित हुई थी सो सुनो। हे मानद! यह आप को देखते ही प्रसन्न होगई थी। देखो आप साक्षात् देवकुमार समान और मधुरभाषी हैं। उस दानव को जिसने विद्धकियाहै विधाताने मेरी सखीको उस ही की पत्नी बनारक्खा है। इसलिये ही यह मोहके वशीभूत होगई थी। यह कोमलाङ्गी क्या जीवनपर्य्यंतही दुःख भोगेगी? क्योंकि आपमें ही इस का मन फँसगया है। किन्तु दूसरा पुरुष इस का स्वामी होगा तो कामधेनु का वचन मिथ्या होजायगा। मैं इसके दुःखसे दुःखी होकर यहां आई हूँ। क्योंकि अपनी सखी और अपना शरीर इन दोनों में कोई विशेष नहीं है। यदि यह सुन्दरी अपने उचित वर को पालेगी तो, मैं निश्चिन्त होकर तपस्या करसकूंगी। इस समय मैं पूँछती हूँ कि आप कौन हैं? और किसकारण यहां आये हैं? आप देव हैं या दैत्य? गन्धर्व हैं वा सर्प अथवा किन्नर? क्योंकि मनुष्य का शरीर कभी ऐसा नहीं होसकता, वैसे ही पातालमें आना भी मनुष्यको असाध्य है। इसलिये जैसे मैंने सत्य२कहदिया आप भी वैसे ही ठीक२ कहदीजिये कुवलयाश्वबोला, किहेधर्मज्ञ! तुम कौन हो? और क्यों आये हो? यह जो तुम ने पूँछा, सो मैं आदि से सब कहता हूँ, सुनो। मैं राजा

शत्रुजित् का पुत्र हूँ । उन की प्रेरणा से मुनि की रक्षा के लिये गालव के आश्रम में आया था । वहां आकर मैं ऋषियोंकी रक्षा में तत्पर हुआ,कोई दानव शूकरकारूप धारणकरके विघ्न करने के लिये वहां गया । तब मैंने उस को अर्द्धचन्द्राकृति बाण के प्रहार से विद्ध किया । और वह जैसे ही बडे वेग से वहां से दौड़ा, वैसे ही उस के पीछे २ मैंने घोडा दौडाया । तब वह मेरा घोडा और शूकर एक साथ ही गढे में गिरे । इस पीछे मैं अकेला ही घोडे पर चढाहुआ अंधेरे में घूमनेलगा । फिर उजाले में जाकर आप को देखा । किन्तु पूँछने पर आप ने मेरी बात का कुछ उत्तर नहीं दिया । तब मैंने आप के पीछे २ इस सुवर्णमय दिव्य महल में प्रवेश किया । यह मैंने आप के निकट सब सत्य कहा मैं देव,दानव,सर्प,गंधर्व या किन्नर नहीं हूँ । हे शोभने ! वह देवादि सब ही मेरे पूज्य हैं । मैं मनुष्य हूँ। इस विषय में तुम को किसीप्रकार का संदेह नहीं करना चाहिये । पुत्र बोला, तब वह बाला बडी प्रसन्न होकर कुछ न कहसकी ! स्तंभित होकर केवल अपनी सखी का मुख देखनेलगी । यह देखकर उस की सखी कुण्डला ने प्रसन्न होकर कहा, हे वीर! आप ने सत्य कहा,इस में कुछ सन्देह नहींहै। आपको जब देखा है तो इस मदालसा का मन दूसरे पुरुष में नहीं जायगा । देखो कान्ति चन्द्रमा की, प्रभा सूर्य की लक्ष्मी भाग्यवान् की धृति वीर की और क्षमा श्रेष्ठ की आश्रित होती है । आप ने ही निश्चय उस दानवाधम को विद्ध किया है। गोमाता कामधेनु कैसे झूठ बोलसकती है?. अब हमारी सखी आप के आगमन से धन्य और सौभाग्यवती हुई । अतएव, हे वीर! अब जो-कुछ कर्त्तव्य है, विधिपूर्वक उस को समाप्त करो ।

राजकुमार बोला मैं पराधीन हूँ । पिता की विनाआज्ञा कैसे इन के साथ विवाह करसकता हूँ ' कुण्डला ने कहा, आप ऐसा न कहें । क्योंकि–यह देवकन्या है, इस के साथ विवाह करो । राजकुमार ने इस बात से विवाह करना स्वीकार किया । तब कुण्डला ने उस के गुरु तुम्बरु को स्मरण किया ! वह भी तत्काल समिधा, कुश लेकर मदालसा के प्रेम और कुण्डलाके आदरसे बाध्य होकर उपस्थित हुए। अनन्तर मंत्रवित तुम्बुरु ने अग्नि जलाकर मदालसा के उद्देश से मंगलकृत्य समाप्त किये, फिर वैवाहिक विधि समाप्त करके तुम्बुरु तप करने के लिये अपने आश्रम में चलेगये । तब कुण्डला ने मदालसा से कहा, हे चन्द्रानने! मैं कृतार्थ होगई।क्योंकि–तुम जैसी अपूर्व सुन्दरी हो,वैसे सत्पात्रके हाथ में तुम्हें पडतेहुए देखा । अब मैं निश्चलचित्त से अतुल तप करूँगी । और तीर्थों के जल से सब पाप धोऊँगी । फिर मुझ को ऐसा नहीं होना पडेगा। तदुपरान्त कुण्डला ने चलने की इच्छा की और सखी की तरफ प्रेम की दृष्टि से देखकर राजकुमार से कहनेलगी,आप की बुद्धि का पार नहीं । पुरुष भी जब अपनी समान महात्माओं को उपदेश नहीं देसकते,तो स्त्रियोंकी बात क्या कहूँ ? इस लिये मैं आप को उपदेश नहीं देती तथापि इस मदालसा के स्नेह से मेरा मन खिच गया है और आप भी मेरा विश्वास करते हैं। इसकारण ही स्मरण दिलायदेतीहूँ कि–स्वामी

सदा स्त्री का पालन और रक्षण करे यही उस का कर्त्तव्य है । देखो स्त्री ही, धर्म, अर्थ,काम इस त्रिवर्ग के साधन में सहायता देती है । स्वामी और स्त्री के परस्पर वशवर्त्ती होने से ही धर्म,अर्थ और काम इन तीनों की सिद्धि होती है । धर्म, अर्थ, काम यह तीनों स्त्री में ही प्रतिष्ठित हैं । इस लिये स्वामी विना स्त्री के इन तीनों का किसी प्रकार साधन नहीं करसकता । और स्त्री भी विना स्वामी के धर्मादि साधन में समर्थ नहीं होती । क्योंकि—यह त्रिवर्ग पतिपत्नी दोनों का ही आश्रय कियेहुए हैं पुरुष स्त्री के विना देव पितर , और अतिथियों की पूजा नहीं करसकता । देखो स्त्री यदि श्रेष्ठ न हो और कुभार्या मिलजाय,तो पुरुष जो धन पैदा करके घर में लाता है वह नष्ट होजाता है । फिर प्रत्यक्ष देखाजाता है कि स्त्री के विना पुरुष को कामफल की प्राप्ति नहीं होती । स्त्री पुरुष की सहायतासे ही धर्म्मादि तीनों सिद्ध होते हैं । लोग जैसे पुत्र द्वारा पितरों की, अन्न साधन द्वारा अतिथियों की, और पूजा द्वारा देवगणों की तृप्ति करते हैं, वैसे ही उन को पुत्रोत्पादन,अन्न संयोजन और पूजन के साथ ही साध्वी स्त्री की रक्षा करनी चाहिये । स्त्री विना स्वामी के त्रिवर्गसाधन में समर्थ नहीं होसकती । क्योंकि दाम्पत्य ही त्रिवर्ग के साधन का स्थल है । मैंने दोनों के निकट यह दाम्पत्यधर्म्म कहा । अब इच्छित स्थानको जाऊँगी । आप इस मदालसा के साथ धन, पुत्र, सुख और परमायु में बढ़ें ।

यह कहकर कुण्डलाने मदालसा को आलिङ्गन किया, और राजकुमार को नमस्कार करके दिव्यगति से स्वच्छन्दचारिणी हुई । तव ऋतध्वज ने भी मदालसा को घोड़ेपै चढ़ाकर पाताल से बाहर आने की इच्छा करी । दैत्य यह जानकर एकसाथ चिल्ला उठे कि, पातालकेतु जिस कन्यारत्न को स्वर्ग से लाया था, यह उस को हरण करके लियेजाता है । वारम्वार ऐसा कह वह दैत्यसेना परिघ, तरवार गदा, शूल, वाण और अस्त्र शस्त्र लेकर पातालकेतु के साथ वहां आई; और खडारह खडारह कहकर राजकुमारके ऊपर वाण और शूल बरसानेलगी । वह भी बड़ा पराक्रमी था । बराबर वाणों को छोड़ताहुआ हँसी से ही उन के सब अस्त्र शस्त्रों को काटनेलगा । उस के वाणों से कटेहुए दैत्यों के अस्त्र शस्त्रों से पातालपुरी ढकगई । फिर उस ने त्वाष्ट्र अस्त्र लेकर दैत्यों के ऊपर छोड़ा शिखापरम्पराके संसर्ग से अत्यन्त उग्रप्रभाववाले उस अस्त्र ने पातालकेतु सहित सब दैत्योंको ही,कपिलके तेजसे सगरपुत्रों की समान एकसाथ जलाडाला, और उन सब की हड्डियें अलग२ करके फेंकदीं ।

फिर ऋतध्वज प्रधान२ असुरों को मार घोड़ेपर चढ़ स्त्री सहित अपने नगर में आया। पिता को प्रणाम करके आदि से अन्ततक सब कथा सुना दी । अर्थात् जिसप्रकार पाताल में जाना, कुण्डलाका दर्शन, मदालसा की प्राप्ति दानवों का संहार आदि सबही कहसुनाया। उस का ऐसा चरित्र सुनकर पिता ने आलिङ्गन किया, और प्रीतियुक्त वचनों से कहा कि तुम सुपुत्र और महात्मा हो । धर्म्माचारी ऋषियों का भय छुड़ाकर आज मेरा उद्धार

किया । हमारे पूर्व पुरुषों ने पहिले यशलाभ किया । फिर मैंने उस को बढ़ाया । हे वीर ! आज तुमने पराक्रम दिखाकर उस की बहुलता सम्पादन की है । पिता के उपार्जन किये हुए यश, धन, अथवा वीर्य्य को जो पुरुष अपव्यय नहीं करता, उस को मध्यमपुरुष कहते हैं । और जो व्यक्ति पिता के सञ्चित किये यश वीर्य्य और धन को घटाता है, बुद्धिमानों के मत से वह पुरुष अधम है । तुम्हारी समान मैं भी पहिले ब्राह्मणों की रक्षा करता था। किन्तु पाताल में गमन और असुरों का निवारण नहीं किया । इन दो बातों में तुम मुझ से बढगये । इसलिये तुम पुरुषोत्तम हो तुमही धन्यहो । और मैं भी तुम्हारी समान पुत्र पाकर पुण्यात्माओं का भी श्लाघनीय हुआ हूँ। मेरी समझ में, पुत्र जिस को बुद्धि, दान और विक्रम द्वारा अतिक्रम नहीं करसकता, वह पुरुष पुत्रोत्पत्ति के सुख को नहीं पाता, पिता के यशमें ही जो ढकाहुआहै, उस पुत्रका जन्म वृथा है । जिस की ख्याति से पिता का नाम फैलता है वह पुत्रही सुजन्मा है और उसहीका जन्म सार्थकहै। जो व्यक्ति अपने ही यशसे लोगों में परिचित होता है वही धन्य है । पितृ पितामहके नाम से जो पहिचानाजाताहै, सो मध्यम है । और मातृपक्ष वा माता की सहायता से लोग जिसको जाने वह नराधम है । इसलिये हे वत्स ! तुम धनवीर्य्य, सुख, सब विषय में ही विशेषरूप से बढो । इस गन्धर्वकन्या का कभी तुम्हारे साथ वियोग न हो ।

पिता ने वारम्वार अनेक प्रकार की प्यारी बातें कहकर बार२ आलिङ्गन किया, और स्त्री सहित अपने घर से विदा दी । वह स्त्री सहित कभी पिता की नगरी में और कभी बाग, वन, और पर्वतों में विहार करनेलगा । मदालसा प्रतिदिन प्रातःकाल में स्वामी, सास और श्वसुरके चरणों में प्रणाम करके चित्तविनोद में प्रवृत्त हुई । इति इक्कीसवां अध्याय समाप्त

बाईसवां अध्याय ।

पुत्र ने कहा कि फिर बहुतकाल पीछे राजाने पुत्र से कहा कि–ब्राह्मणों की रक्षा के लिये शीघ्र जाओ और पृथिवी पर घूमो । इस घोडेपै चढकर तुम प्रतिदिन प्रातःकाल के समय ब्राह्मणों के कार्य्य में जिस से विघ्न न हो, उस प्रकार विशेष यत्न करना । दुष्टयोनियों में सैंकडों पापी असुर हैं । वह जैसे मुनियों को कष्ट न पहुँचासकें तुम वही उपाय करो । पिताकी आज्ञानुसार राजकुमार उस ही कार्य्य में प्रवृत्त हुआ । वह प्रतिदिन प्रातःकाल के समय पृथिवी की परिक्रमा करके पिता के चरणोंकी वन्दना करनेलगा एक समय घूमते२ उस ने यमुना तटपर देखा कि पातालकेतु के पुत्र तालकेतु ने उस स्थानमें आश्रम बनाया है । उस ने माया से मुनि का रूप धारण किया है वह पहिली शत्रुताको याद करके राजपुत्र से कहनेलगा कि–हे राजपुत्र ! मैं जो कुछ कहताहूँ यदि इच्छाहो तो वैसा करो । तुम सत्यप्रतिज्ञ हो । प्रार्थना विफल करना तुम को उचित नहीं है मैं धर्म्म के निमित्त यज्ञों का अनुष्ठान करूँगा । इन यज्ञोंमें चिति बनाई जायँगी । परन्तु मुझमें दक्षिणादेनेकी शक्ति नहींहै । इसलिये तुम अपने सुवर्णकेकण्ठके भूषणदेकर मेरे इसआश्रम

की रक्षाकरो । मैंजलमें प्रवेशकर,प्रजाकी पुष्टि के निमित्त वेदविहित वारुण मंत्रों से वरुण की स्तुति कर शीघ्रही तुम्हारे पास आताहूं । जब उस ने यह बातकही तो राजकुमार ने उसको प्रणाम कर कण्ठभूषणदेकर कहा कि—आप निश्चिन्त होकर जाइये । मैं आपके लौटनेतक आपकी आज्ञानुसार इसआश्रम के निकट स्थित रहूँगा । मेरे रहतेहुए यहां कोई किसीप्रकार का विघ्न नहीं करसकेगा । आप निर्भय होकर धीरे २ अपना इष्ट कार्य साधनकीजिये ।

राजकुमार की यह बातसुनकर वह नदीके जल में डूबगया । तब राजकुमार भी उस मायामय आश्रम की रक्षा करने में प्रवृत्त हुआ । तालकेतु उस जलाशय से मदालसा और दूसरे लोगों के पास जाकर कहने लगा। कि वीरकुवलयाश्व मेरे आश्रम के पास तपस्वियों की रक्षा करने में तत्पर था । उस ने यथाशक्ति युद्धकरके संग्राम में ब्राह्मणों के द्वेषियों का संहार किया । उसी अवसर में किसी दुष्ट दैत्य ने माया का आश्रय कर उस की छातीमें शूलमारकर प्राणांत करदिया मरतेहुए उसने यह कंठभूषण मुझे दिया था। शूद्र तपस्वियो ने उसे जलादिया । उस की मृत्यु से डरकर थोडा आँसू गिराताहुआ हींस नेलगा । वह दानव उस को भी लेगया । मैं बडा कठोर और दुष्कर्मी हूँ । इसलिये ही यह सब घटना आँखों से देखी ! अब जो कुछ तुम को करना हो सो करो । देर करने का समय नहीं है। यह कंठहार लेकर मनको धीरज दो। हमतो तपस्वी हैं, यह सोना लेकर क्या करेंगे। इतना कहकर उस कंठ भूषण को पृथिवी में रखदिया और तत्काल वहां से चलदिया । तब परिवार के सब लोग शोकार्त्त और मूर्च्छित होकर पृथिवी में गिरगये । चैतन्य होने पर राजरानियें विलाप करने लगीं । मदालसाने उस कंठभूषण को देखकर और स्वामी का मरणहुआ सुनकर शीघ्रही अपने प्यारे प्राणो को छोड दिया । राजमहल में जैसे ही आर्त्तध्वनि हुई वैसेही पुरवासियों के घरों में रोना पीटना पडगया । राजाने पति वियोग से मदालसा को प्राण त्यागते देखकर विचार पूर्वक सावधानीसे सब को समझाकर कहा कि तुम को रोना उचित नहीं । मैंने तुम्हारे अपने और सबके विषय की अनित्यता विचारली है । मैं पहिले पुत्रके लिये शोक करूँ ? या उस की स्त्री के लिये ? विशेष विचारने से मुझे निश्चय होताहै कि इन दोनोंने ही अपना कर्त्तव्य साधन कर लिया । अतः इन मेंसे किसी के लिये शोक करना उचित नहीं है। देखो मेरे जिस पुत्रने मेरी आज्ञा नुसार ब्राह्मणों की रक्षा में तत्पर होकर मृत्यु पाई है, वह किसप्रकार बुद्धिमानो को शोचनीय होसकता है ? जो शरीर अवश्य ही नष्ट होगा मेरे पुत्रने यदि ब्राह्मणों के निमित्त उस को छोडदिया तो क्या वह यश का देनेवाला न होगा ? और यह मदालसा जैसे श्रेष्ठ कुल में उत्पन्नहुई थी ! उसीप्रकार पतिके साथ मरणको प्राप्त होगई। देखो पति के सिवाय स्त्रियों का दूसरा देवता नहीं है । इसकारण इस के लिये भी किसप्रकार शोक किया जासकता है ? यदि यह पति के वियोग को सहती, तो हम, बन्धु बान्धव और अन्यान्य लोगोंको दयावश शोच करना उचित था । किन्तु यह जब पति

की मृत्यु सुनकर ही तत्काल अनुगामिनीवनीहै, तो किसप्रकारसेविद्वानोंको शोचनीया होसकती है।जोस्त्रियें स्वामीका विरहदुःख सहतीहैं,उनका ही शोक करना उचितहै,जो साथही प्राण छोड़ देती हैं, उन का शोक करना उचित नहीं है। इस सौभाग्यवती को पति का विरहदुःख भोगना नहीं पड़ा स्त्री को पति दोनों लोकमें ही सब प्रकार का सुख देताहै। इसकारण कौन स्त्री पति को मनुष्य समझ सकती है? वास्तव में ऋतध्वज का शोक मदालसा को अथवा ऋतध्वज की माता को वा मुझ को नहीं करना चाहिये। क्योंकि—ऋतध्वज ने ब्राह्मणों के लिये प्राण छोडकर हम सब लोगों का शोक दूर किया है। वह बुद्धिमान् ऋतध्वज अपने आधे भोगेहुए शरीर को ब्राह्मणों के लिये छोडकर ब्राह्मणों का, धर्म का और हमारा अनृणी हुआ है। उस ने जो ब्राह्मणों की रक्षा करके संग्राम में प्राणों का त्याग किया है, इस से उस की माता का सतीत्व, मेरे वंश की पवित्रता और उस की शूरता का परिचय मिलता है।

तब कुवलयाश्व की माता ने स्वामी के मुख से अपने पुत्र की ऐसी मृत्युघटना सुनकर कहा कि—हे राजन्! मेरे पुत्र ने मुनियों की रक्षा करतेहुए अपने प्राण छोडे हैं, यह बात सुनकर मुझ को जैसी प्रसन्नता हुई है, मेरी माता और बहन को भी कभी वैसी प्रसन्नता नहींहुई जो लोग रोगग्रस्त शोक संतप्त बांधवों के सामने बडे कष्ट से प्राण छोडते हैं, उन की माता ने वृथा उत्पन्न किया है। जो लोग गौब्राह्मण की रक्षा में प्रवृत्त हो निर्भय युद्ध करके शस्त्र के प्रहार से प्राण छोडते हैं, वही पृथिवी में मनुष्य हैं। जो पुरुष याचक मित्र और शत्रु किसी से भी विमुख नहीं होता, उस का पिता ही यथार्थ में पुत्रवान् है और माता वीरसू है। पुत्र के संग्राम में प्राण त्यागने वा शत्रु को जीतने पर ही, स्त्रियों का गर्भ धारण का क्लेश तत्काल सफल होजाता है। तदुपरान्त राजा ने पुत्रवधू का अग्नि संस्कार समाप्त करने के अनन्तर स्नान करके पुत्र के उद्देश से जलदान किया। इधर तालकेतु भी यमुनाजल से बाहर निकलकर मीठे वचनों से बोला कि—हे राजनन्दन! तुम ने मुझ को कृतार्थ किया। तुम्हारे यहां रहनेसे मैं बहुतकालके वांछित कार्यके साधन करने में समर्थ हुआ हूँ। मेरी बहुत दिनों से इच्छा थी कि—महात्मा वरुण का यज्ञ करूँगा। अब उस को भलीभांति सम्पादन कर लिया। इस लिये अब तुम जासकते हो। तब राजकुमार ने उस को प्रणाम किया,और गरुड़ तथा वायुकी समान घोडेपै सवार होकर अपने नगर को चलागया। बाईसवां अध्याय समाप्त।

तेईसवां अध्याय।

पुत्र बोला कि—ऋतध्वज, पिता माता के चरण वन्दना और मदालसा के दर्शन की इच्छा से शीघ्रता से अन्तःपुर में गया। जाकर देखा कि- सारी नगरी शोकसागर में मग्न है। कुछ देर पीछे देखा कि—पुरवासीमात्र के ही मुखों पर हर्ष और विस्मय के चिन्ह दिखाई देनेलगे। वह सब ही प्रसन्नता से कैसा सौभाग्य है! कहनेलगे; और बडे कौतूहल से परस्पर आलिङ्गन करके राजकुमार से कहा, हे विपुल कल्याणशालिन्! आप चिरजीवी हों। आप के

शत्रुओं का नाश हो । अब निर्विघ्नता से माता पिता और हम सब लोगों के मन प्रसन्न कीजिये । ऐसा कहते २ उन्हों ने आगे पीछे से राजकुमार को घेरलिया । उस ने उस आनन्द से प्रसन्न होकर पिता के घर में प्रवेश किया । पिता माता और अन्यान्य बंधु बान्धवों ने उस को आलिङ्गन किया, और चिरजीवी हो कहकर शुभ आशीर्वाद देनेलगे । तदुपरान्त उस ने पिता को प्रणाम किया और विस्मितहोकर पूंछा कि यह क्या है ? । पिताने समस्त कथा कही वह मदालसा को प्राणों की समान चाहताथा इस लिये उस का मरणसुनकर मातापिता के सन्मुख लाज और शोकसागर में डूबगया । उस दशा में सोचा कि उससाध्वी बालाने मेरा मरण सुनतेही प्राण छोडदिये । यह सुनकर भी मैं जीवित हूं । मुझको धिक्कार है । उस मृगनयनी ने मेरे वियोग में प्राणछोडदिये । किन्तु मैं उस के विरह में अबभी जीवित हूं । अतः मैं बडाकठोर, अनाडी और दयाहीन हूं

तदुपरान्त उस ने मन को स्थिर किया, और मोहको दूर करके विचार ने लगाकि उस ने मेरे लिये प्राण छोडे हैं । इस लिये मैं भी यदि प्राण छोडदूं तो उस से उसका क्या उपकार होसकता है ? इसप्रकार प्राण छोडनाही स्त्रियों को श्लाघनीय है । यदि मैं वारम्बार हा प्रिये ! कहकहकर रोऊं तो उस से भी मेरी कुछ श्लाघा नहीं होसकती । क्योंकि मैं पुरुष हूं । और यदि शोकसे जड और व्याकुल होकर आभूषणों का त्याग और स्नानध्यानादि छोडदूं, तो शत्रुओं के पराजय का स्थान बनूंगा । इधर शत्रुओं का संहार और पिता की सेवा करनाही मेरा एकमात्र कार्य्य है । फिर इस दशा में मेरा शरीर भी पिताके अधीन है। ऐसी दशा में किसप्रकार प्राण त्याग करसकता हूं ? इस विषय में क्या कर्त्तव्य है ? स्त्री संभोग को एकसाथ छोडदेने से भी उस कोमलाङ्गी का कुछ उपकार न होगा । अथवा उपकार हो चाहे अपकार उस के लिये कोई सत्य बंधन करना उचित है । जब उस ने मेरे लिये प्राण छोडदिये । तो ऐसा करना मेरे लिये एक सामान्य बात है । ऐसा निश्चय करके उस ने स्त्री के उद्देश से जलदान किया, और अन्यान्य कृत्यों को समाप्त करके कहने लगाकि वह कृशाङ्गी मदालसा जब मेरी भार्य्या न हुई तो इस जन्म में और कौन स्त्री मेरी अर्द्धाङ्गिनी हो सकेगी ? मैं उस मृगनयनी गन्धर्व कन्याके सिवाय और किसीके साथ विवाह नहीं करूंगा; मैंने यह सत्य प्रतिज्ञा की है । मैं फिर सत्य२ कहताहूं कि, उस गजगामिनी सद्धर्मचारिणी भार्य्या के सिवाय और किसी स्त्री के साथ भोगविलास नहीं करूंगा ।

पुत्रबोले कि हे तात ! वह मदालसा के वियोग से स्त्रियों का भोग विलास छोड सदा निर्मलचरित्र मित्रों के साथ समयकाटने लगा । मदालसा को यदि दियाजाय तो उसका यथार्थ उपकार होसकता है । किन्तु ऐसी किस की शक्ति है ? स्वयं ईश्वर के करसकने में भी संदेह है, दूसरे की बाततो फिर क्या कहीजाय।

पुत्रबोला कि दोनों पुत्रों की यह बात सुनकर पिताध्यानस्थ होगये । बहुत देर विचारने के पीछे हँसकर बोले कि मनुष्य यदि असाध्य समझकर किसी कार्य्य का उद्योग न करे,

तो बहुतसा अनिष्ट होसकता है । इस लिये कदापि पुरुषार्थ न छोडकर कार्य करनेमें प्रवृत्त होय । दैव और पुरुषार्थ इन दोनोंपर ही कर्म्म निर्भर है । इस लिये मैं तपकरने के साथ साथ ऐसा यत्न करूँगा कि जिससे इसअसाध्य कार्य का शीघ्रही साधन हो । यह कहकर नागराज हिमाद्रय के भीतर प्लक्षावतरणतीर्थ में जाकर कठिन तप करने लगा । और तद्गत चित्त से तीनों संध्या में स्नान करके देवी सरस्वती की यह कहकर स्तुति करताथा कि, जो ब्रह्मयोनि और जगत की माता है उन सरस्वती को मस्तक नमाके प्रणाम करके आराधना करता हूँ । हे देवि ! कार्य्य, कारण, धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष, जितनेपद हैं, वह सब आप में संसर्ग न होने-पर भी मिलेहुए की समान हैं । हे देवि ! तुम ही परम अक्षर हो, जिस में सब ही स्थित है । वह परम अक्षर परमाणु की समान सब संसार का आश्रय किये हुए है । काष्ठ में अग्नि और पृथिवी में परमाणु की समान, वह परम अक्षर स्वरूपब्रह्म और यह क्षरात्मक विश्व तुम में ही प्रतिष्ठित है । हे देवि ! ओंकाराक्षरका संस्थान स्थित, अस्थिर, तीनो मात्रा, सत्, असत्, सब ही तुम को आश्रय किये हुए हैं । तीनोंलोक, तीनोंवेद, तीनों विद्या, तीनों अग्नि, तीनोज्योति तीनोंवर्ण, तीनोंधर्म, तीनोंआगम, तीनोंगुण, तीनोंशब्द तीनोंदेव, तीनोंआश्रम, तीनोंकाल, तीनोंअवस्था, और पितर, दिन, रात आदि सम्पूर्ण पदार्थ उपरोक्त तीनों मात्रास्वरूप हैं। हे देवि ! यह तीनों मात्राही तुम्हारारूप हैं । भिन्न २ साम्प्रदायिक लोगों की उपासना के लिये वेद में जो सोम, हविः और पाक विषयक सनातन आद्य इक्कीस व्याहृतियें हैं, ब्रह्मवादी लोग तुम्हारे उच्चारण से ही उन सबके फलको पाते हैं । उपरोक्त तीनों मात्राके अतिरिक्त तुम्हारा एक और अर्द्धमात्रा युक्तरूप है, वह जिसप्रकार अनिर्वचनीय है, उसी प्रकार उस का विकार, परिणाम और क्षरभाव नहीं है । तुम्हारे उस परमरूप को वर्णन करने में किसी की शक्ति नहीं है । मुख, जिव्हा, तालु, वा ओष्ठादि द्वारा उसका उच्चारण नहीं होसकता इन्द्र और वसु, ब्रह्मा, और तारागण तथा चन्द्र सूर्य्य सबही तुम्हारास्वरूपहैं । जो विश्वके स्थान, विश्वकेस्वरूप विश्वके ईश्वर और ईश्वरकेभी ईश्वर हैं, जो सांख्य और वेदान्त में वर्णित तथा बहुत सी शाखाओं की सहायता से निश्चित कियेगये हैं, जिन का आदि और अन्त नहीं है जो सत् और असत् हैं, जो केवल सतस्वरूप, एक और अनेक हैं, और जो एक नहीं, जो सृष्टि भेदके आश्रय हैं; जो अनेक शक्तिमान् पदार्थों में शक्ति की कक्षास्वरूप हैं; जो सुख और दुःख और महा सुख स्वरूप हैं, वह सब तुम से ही प्रकाशित हैं । इसप्रकार हे देवि ! तुम ही सब में व्यापरही हो ।

अद्वैत और द्वैत दोनों प्रकार से व्यवच्छिन्न ब्रह्म तुम में ही प्रतिष्ठित है । जो पदार्थ नित्य हैं, जिन का नाश होता है, जो स्थूल, सूक्ष्म और अतिसूक्ष्म हैं ; जो भूमि, अन्तरिक्ष और दूसरे स्थानों में स्थित हैं, उन सब की केवल तुम से ही प्राप्ति होती है । जो मूर्त्त और अ-मूर्त्त है, जो समस्त और एक है, जो स्वर्ग और पृथिवी में है, जो आकाश और दूसरे स्थान में है, उन सबका तुमसे सम्बन्धहै और तुम्हारे-

स्वर व्यंजन की सहायता से जानेजाते हैं । विष्णु की जिह्वारूपिणी सरस्वती इसप्रकार स्तूयमान होकर महात्मा अश्वतर से बोली, हे कम्बलभ्राता उरगराज अश्वतर! मैं तुम को वर देती हूँ । तुम्हारे मन में जो कुछ हो कहो, तुम को वही दूँगी । अश्वतर बोला कि–हे देवि! पहिले कम्बल को मेरी सहायता में तत्पर करो । फिर हम दोनों भ्राताओं को समस्त स्वरों का ज्ञान दीजिये । सरस्वती ने कहा कि–हे सर्प श्रेष्ठ! तुम दोनों भ्राता ही सात स्वर, सात ग्राम, सात वर्ग, सात गीति, सात मूर्च्छना, उड़ग्रास ताल, तीन ग्राम इन सब का गान करसकोगे । इस के अतिरिक्त मेरे प्रसाद से दूसरे विषय भी तुम को विदित होंगे । चारप्रकार के पद, चारप्रकार की ताल, तीन प्रकार की लय, तीन प्रकार के यति और चार प्रकार के तोद्य भी तुम को दिये । मेरे प्रसाद से इन सब के अन्तर्गत वा अधीन स्वर व्यञ्जन सम्बन्ध आदि जो कुछ विषय है सब ही जानसकोगे । मैंने समस्त ही तुम को दिया । मैं ने पाहिले किसी को यह वर नहीं दिया था । तुम पाताल पृथिवी आदि सब स्थानों में ही इस के प्रणेता बनोगे । सब की जिह्वास्वरूप सरस्वती यह कहकर तत्काल अंतर्धान होगई । नागराज फिर उन को न देखसके । वर के प्रभाव से दोनों भ्राता ने उपरोक्त सम्पूर्ण विषय जान लिया । पद, ताल और स्वरादि विषय में उन को अद्वितीय ज्ञान उत्पन्न हुआ । तब दोनों बाजेसहित सप्तस्वर गान और इन्द्रियों को रोक पर्वतराज कैलास के शिखर पर बैठकर प्रातः, मध्यान्ह, संध्या और रात्रि में शङ्कर की आराधना का यत्न करनेलगे । भूतभावन भगवान् शङ्कर बहुत काल के पीछे गान से प्रसन्न होकर बोले कि–वर मांगो । तब अश्वतर ने कम्बलसहित प्रणाम करके उमापति महादेव से कहा कि–आप देवदेव, त्रिलोचन और सर्वशक्तिमान हैं । यदि हमारे ऊपर प्रसन्न हैं तो हमारी इच्छा पूरी कीजिये । कुवलयाश्व की स्त्री मदालसा ने प्राण छोडदिये । वह जिस अवस्था में मरी है, उतनी ही आयु में मेरी कन्या होकर जन्म ले । पहिले उस का जैसा रूप और कान्ति थी । ठीक वैसा ही रूप और कान्ति हो वह पहिले की समान पतिव्रता, योगिनी और योगमाता होकर मेरे घर में जन्म ग्रहण करे ।

महादेवजी बोले कि जो कुछ तुम ने कहा वह वैसा ही होगा इस में संदेह नहीं है सुनो! श्राद्ध का समय आने पर, पवित्र और संयम चित्त होकर मध्यम पिंड को भक्षण करना । मध्यम पिण्ड के खाने से तुम्हारे मध्यमकर्ण से मदालसा जिस अवस्था में मरी थी उस अवस्था में ही उत्पन्न होगी । तुम ऐसी कामना करके पितरों का तर्पण करना । तत्काल तुम्हारे श्वास छोडते समय बीच कान से वह जैसी मरी थी वैसी ही उत्पन्न होगी । उन दोनों भाइयों ने यह बात सुनकर महादेवजी को प्रणाम किया और प्रसन्न होकर फिर रसातल में चलेगये ।

तदुपरान्त अश्वतरने यथोचित विधिके अनुसार श्राद्ध करके मध्यमपिण्ड भक्षण किया । और अपने मनोरथ का ध्यान करतेहुए श्वास को छोड़ा । तत्काल मध्यमकान से कोमलाङ्गी मदालसा उसी प्रकार उत्पन्नहुई । अश्वतर ने

यह बात किसी से भी नहीं कही । अपने घर में उस सुन्दरी को स्त्रियों की सहायता से एकान्त में रखदिया । इधर उस के दोनों पुत्र साक्षात् देवकुमार की समान प्रतिदिन आकर ऋतध्वज के साथ विहार करनेलगे । एक समय नागराजने प्रसन्न होकर उन दोनों से कहा मैंने पहिले तुम से जो बात कही थी, उस को क्यों नहीं करते ? वह राजकुमार तुम्हारा उपकारी है । तुम प्रत्युपकार करने के लिये उस को मेरे पास क्यों नहीं लाते ?

स्नेही पिता के ऐसे वचन सुनकर दोनों पुत्र ऋतध्वज के नगर में गये, और विहार करते समय बातों २ में राजकुमारको अपने घर लेजाने का अनुरोध किया । उस ने कहा, यह मेरा घर तुम्हाराही है । मेरे पास धन, सवारी वस्त्र जो कुछ है वह भी तुम्हाराही है । तिस पर भी तुम धनरत्न जो कुछ मुझ को देना चाहते हो दो । हा ? मैं दुरात्मा दैव से इतना वंचित हुआ हूँ कि तुम मेरे घर को अपना नहीं समझते । तुम यदि मुझ को प्रसन्न करना चाहते हो, और यदि मैं तुम्हारा प्रेमपात्र हूँ, तो मेरे धन और घर को अपना ही समझो । देखो जो कुछ मेरा है वह तुम्हारा है, और जो कुछ तुम्हारा है वह सब ही मेरा है । मैंने जो कुछ कहा है उस को यथार्थ समझो । अधिक क्या कहूँ तुम दोनों मेरे बाहरी प्राणस्वरूप हो । फिर कभी ऐसी भेदभरी बात न कहना । मैं आन्तरिक हृदय से यह बात कहता हूँ तुम मेरे ऊपर प्रसन्न होओ । तब नागपुत्रों ने कुछेक प्रेम का कोप दिखाकर राजपुत्र से कहा कि-- तुम कुछ कहते हो, हम सदा ऐसा ही समझतेहैं; इस में सन्देह न करना । किन्तु हमारे पितृदेव बारम्बार यहीबात कहतेहैं कि कुवलयाश्व को देखनेकी मेरी बडीइच्छाहै। यहसुनकर कुवलयाश्व आसनसेउतरा और पृथिवीपै खडाहोकर बोला, मैं ही धन्य और पुण्यवान हूं । क्योंकि मेरे देखने के लिये स्वयं पिताजी उत्सुकहुए हैं । इसलिये उठो अभीचलो; क्षणमात्र भी उनकी आज्ञा को लंघनकरना उचित नहीं । पुत्र बोले कि हे पिता ! ऋतध्वज यह कहकर उन के साथ चलदिया । बाहर आकर तीनों गोमती के समीप पहुंचे और उसके भीतर२ चलनेलगे । राजपुत्र ने समझा कि गोमती के पारही नागपुत्रों का घर है । वह दोनों राजकुमार को पाताल में लेगये । राजकुमार ने पाताल में जाकर देखा कि उन दोनों नाग पुत्रों ने बनावटी वेष त्यागकर अपनावेश धारण किया । फण में स्थित मणि से उन का शरीर छिपगया । उन का सुन्दररूप देखकर राजकुमार को आश्चर्य हुआ, और उस ने मुस्कुराकर प्रेम से धन्य २ कहा । तदुपरान्त उन दोनों ने देवपूज्य, शान्तस्वभाव पितृदेव अश्वतर से राजकुमार के आने की बात निवेदन करी । तब ऋतध्वज ने देखा कि पाताल बाल, वृद्ध और तरुण सर्पों से शोभायमान हो रहा है; नागकन्या चारों ओर क्रीडाकररही हैं । उनके हार और कुण्डल बडे सुन्दर हैं, जिनकी चमक दमक से तारागणोंसे शोभित आकाशकी समान पाताल नगरी की शोभा होरही है कहीं गान होरहा है उस के साथ साथ बेणु और बीणा का शब्द सुनाई आता है । कहीं मृदङ्ग और पणव बजरहे हैं वह पाताल

नगरी की शोभा देखता हुआ उन दोनोंके साथ जानेलगा । फिर सबने नागराज के भवन में जाकर देखाकि वह महात्मा दिव्य वस्त्र पहिरेहुए विराजरहे हैं, कानों में मणियों के कुण्डल, गले में मोतियों की माला और हाथोंमें बाजूबन्दहैं, सुवर्ण के आसनपर बैठेहैं, वैदूर्य्य आदि मणियोंसे जडे होने से उस की अपूर्व शोभा होरही है । उन दोनों ने राजकुमारसे कहा कि, यह हमारे पिता हैं । फिर पिताके निकट राजकुमार का परिचय देकर कहा कि, यह वह वीर कुवलयाश्व हैं । तब ऋतध्वज ने नागराज के चरणों में प्रणाम किया । नागराज ने उस को उठाकर छाती से लगालिया और मस्तक सूँघ कर कहा कि हे वत्स ! तुम चिरञ्जीव रहो और शत्रुओंको निर्मूल करके पिता माता की सेवा करो । तुमही धन्यहो! क्योंकि मेरेपुत्र तुम्हारे पीछे भी तुम्हारे गुण की बात कहा करते हैं । इससे मन, वचन, शरीर और चेष्टा में तुम बढोगे । जिसमें गुण है उस का ही जन्म धन्य है । जिस में गुण नहीं वह जीवता भी मराहुआ है । गुणवान् पुरुष माता पिता को परम शान्ति दान; शत्रुओं के हृदय में संताप और सज्जनों में विश्वास उत्पन्न करके अपना कल्याण सम्पादन करता है । देव, पितर, बान्धव, ब्राह्मण, मित्र, और याचक सब ही गुणवान् के चिरञ्जीव रहने की कामना करते हैं । गुणी लोग किसी की निन्दा नहीं करते; दुःखी के ऊपर दयाकरते और शरणागत को आश्रय देते हैं । इन सब कारणों से उन का ही जन्म सार्थक है । राजकुमार को ऐसे वचन कहकर उन्होंने उस की पूजा की इच्छा करके दोनों पुत्रों से कहाकि हम सब मिलकर स्नानादि सबकार्य्य समाप्त करके इच्छानुसार मधुपान और भोजन करें, और कुवलयाश्व के साथ आनन्द की वार्तों में कुछ काल बितावें । ऋतध्वज ने कुछ न कहकर उस को स्वीकार किया । तब उदार बुद्धि नागराज ने वैसाही कार्यकिया । उस भोगशील, आत्मवान् सत्यवादी सर्पराज अश्वतर ने अपने पुत्र और अन्यान्यराजाओं के साथ प्रसन्नतासे खान पान आदि समाप्त किया । तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥

चौबीसवां अध्याय ।

पुत्र बोला कि–भोजन समाप्तकर दोनों नागपुत्र और राजकुमार महात्मा अश्वतर की उपासना करनेलगे । तब महात्मा अश्वतर ने राजकुमार को मीठे वचनों से समझाकर कहा कि हे सौम्य ! तुम हमारे घर में अतिथि हो इसकारण तुम्हारी क्या सेवा करूं, पुत्र जैसे पिता से निर्भय होकर कहदेता है, तुम भी वैसे ही स्वछन्द होकर मुझ से कहो । सुवर्ण चाँदी, सवारी और जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो अतिदुर्लभ हो तो भी मुझ से माँगो । ऋतध्वज ने कहा, हे भगवन् ! आप के प्रसाद से मेरे पिता के घर सुवर्णादि सबही पदार्थ हैं । मेरे पिता जब सहस्र वर्ष से पृथिवी का शासन करतेहैं और आप जब पाताल में विराजमान हैं तो मेरे चित्त में किसी वस्तु की प्रार्थना नहीं होसकती । क्योंकि मेरे चाहने से पहिले ही सब प्राप्त होसकता है । जिनके पिता वर्त्तमान हैं इस लिये यौवन में भी जो करोडों रुपये को तिनके की समान समझते हैं वही परमपुण्यात्मा और स्वर्गीय महापुरुषहैं,

देखो मेरे मित्र शिष्टाचारपरायण और शरीर में रोगहीन हैं, और पिता के भी विशेष सम्पत्ति है फिर मैं भी तरुण हूँ। इसलिये मेरे क्या नहींहै? जिस के धन का अभाव है, उसी के मन में मांगने की इच्छा होती है। किन्तु मेरे किसी वस्तु का अभाव नहीं है। इस लिये मैं क्या मांगूं? जिन को धन की चिन्ता नहीं, और जो पिता के भुजारूपी वृक्ष का आश्रय कियेहुए हैं, वही सुखी हैं। किन्तु जो बालकपन में ही पिता से हीन होकर कुटुम्ब के पालन पोषण में लगजाते हैं, मेरी समझ में विधाता ने उन को सुख के स्वाद से भ्रष्ट करके वञ्चित किया है। मैं आप के प्रसाद से पिता के दियेहुए धन रत्नादि को नित्यप्रति याचकों में बाँटता हूँ। फिर चूडामणि की सहायतासे जब आपके चरणों का स्पर्श और संग पाया है, तो सबही कुछ पालिया। अब मुझे किसी वस्तुका अभाव नहीं है। उस के ऐसे विनययुक्त वचन सुनकर सर्पराज ने प्रसन्न होकर कहा, यदि मेरे निकट से सुवर्ण रत्नादि के लेने की तुम्हारी इच्छा नहीं है तो और जिस से तुम्हारा मन प्रसन्न होसके उस को कहो, मैं तुम को दूँगा।

कुवलयाश्व बोला, आपके प्रसाद से मेरे घर में किसी वस्तु का भी अभाव नहीं है, फिर आज आप का दर्शन करके उन सबको विशेषरूप से प्राप्त करलिया। मैंने मनुष्य होकर भी देवतास्वरूप आप का दर्शन किया, उस ही से मैं कृतार्थ होगया, और मेरा जीवन भी सार्थक होगया है। हे सर्पराज! मेरे शिर में आप की चरणरज ने जो स्थान प्राप्त किया है, उस से मुझ को क्या नहीं प्राप्त हुआ है? और मुझ को इच्छित वर देना ही आप अपना कर्त्तव्य समझते हैं तो यह वर दीजिये, मेरे हृदय से पुण्यकर्म के संस्कार का कभी लोप न हो। मेरी समझ में सवारी, घर, सुवर्ण, मणि, रत्न, स्त्री, अन्न, पान, पुत्र, सुन्दरमाला, और बाजे आदि जितने इच्छित पदार्थ हैं, सबही पुण्यरूप वनस्पतिका फलहैं। इस कारण प्राणिमात्र को ही उसके प्राप्त करने का यत्न करना उचित है। देखो, पुण्यवान् लोगों को पृथिवी में किसी विषय में भी किसी प्रकार का अभाव नहीं होता। अश्वतर बोले, हे प्राज्ञ! ऐसा ही होगा। तुम्हारी बुद्धि सदा धर्म्म के, आश्रय में रहेगी तुमने जो कुछ कहा वह सबही धर्म्म का फल है। तथापि जब तुम मेरे घर में आये हो, तो मनुष्यलोक में तुम को जो वस्तु दुर्लभ है, उस को अवश्य ग्रहण करो। उन की यह बात सुनकर राजकुमार ने उन के दोनों पुत्रों की तरफ देखा, तब वे दोनों हाथ जोडकर खडे होगये, और राजकुमार की जो कुछ इच्छा थी वह निवेदन करके बोले। इनकी प्राणप्यारी स्त्री ने किसी दैत्यद्वारा पति की मृत्यु सुन अपने प्राणों को छोडदिया। दुष्ट दानव ने शत्रुता से ऐसा किया था। इन की स्त्री का नाम मदालसा था वह गन्धर्वराज की कन्या थी। हे पिता! इन्होंने मदालसा की कृतज्ञता के वशीभूत होकर उसके मरण समय से यह प्रतिज्ञा की है कि–मदालसा के अतिरिक्त और किसी को भार्यारूप से ग्रहण नहीं करूँगा। यह वीर अब उस सुन्दरी के देखने को बडे उत्सुकहैं। हे पिता! यदि आप ऐसा करसकें तो इन का वास्तव में उपकार हो।

अश्वतर बोले, पञ्चभूत के साथ वियोग होने पर फिर उस के साथ संयोग होना स्वप्न वा आसुरी माया के अतिरिक्त और किसी उपाय से नहीं होसकता। तब ऋतध्वज ने प्रणाम करके प्रेम और लज्जा के साथ उन से कहा कि-हे तात! आप उस मदालसा को यदि माया करके भी दिखासकें, तो मैं परमअनुग्रह समझूँगा। अश्वतर बोले, हेपुत्र! यदि मायासे देखने की इच्छाहुई है तो देखो। तुम बालक होने के कारण जिसप्रकार मेरे अनुग्रह के पात्र हो, उसीप्रकार मेरे घर में अतिथि होने के कारण, गुरुस्वरूप और माननीय हो। यह कह उन्होंने घर में छिपीहुई मदालसा को बुलवाया और उन सब को भुलावा देने के निमित्त शीघ्रता से कुछ मंत्र पढकर राजकुमार से कहा, हे वत्स! देखो! देखो!! यह वही तुम्हारी स्त्री मदालसा है या नहीं?

उसने मदालसा को देखकर तत्काल लज्जा छोडदी और प्रिये! ऐसा कहता हुआ उसके सामने चलागया। यह देख अश्वतर ने निषेध करके कहाकि, हे वत्स! यह माया है। इस को स्पर्श न करना। मैं पहिले ही कहचुका हूँ कि छूने आदिसे मायाशीघ्र अदृश्य होजाती है।

यहबात सुन ऋतध्वज हा प्रिये! कहकर पृथिवी पे गिरगया और मूर्च्छित होगया। यह देखकर मदालसा विचारनेलगी कि अहो! मेरे ऊपर इसराजपुत्र का कैसा स्नेह है। और मेरी ओर इन का मन भी कैसा अचल है! देखो यह शत्रुओं को गिराते हैं। इससमय विना अस्त्र के ही गिरगये। मुझ को माया कहकर दिखायागया है। वास्तव में मैं मिथ्या होनेके कारण साक्षात् मायास्वरूप हूँ। वायु, आकाश, तेज, जल और मृत्तिका के सम्वाय से जिसका जन्म है वह मायाभिन्न और क्या होसकता है।

अनन्तर अश्वतर ने राजपुत्र को सावधान कर मरीहुई मदालसा को जिसप्रकार फिर जिवायाथा वह सब वर्णन किया। तब ऋतध्वज स्त्री को प्राप्तकरके बडा प्रसन्नहुआ, और अपने उस घोडे को याद किया। स्मरण करते ही घोडा वहां आकर उपस्थित हुआ। राजपुत्र ने नागराज को प्रणाम किया, और स्त्री सहित घोडेपै चढकर अपने नगर को प्रस्थान किया। चौवीसवां अध्याय समाप्त।

पच्चीसवां अध्याय।

पुत्रबोला, उस ने अपने नगर में आकर परलोक सिधारीहुई मदालसा को फिर जिसप्रकार प्राप्त किया था, वह सब ही पिता के निकट आद्योपान्त कह सुनाया। पवित्र मदालसा ने सास और श्वसुर के चरणों में प्रणाम किया, और सब छोटे बडों का यथोचित वन्दन और आलिङ्गन करके पूजन किया। नगर निवासी उत्सवकरनेलगे। इधर ऋतध्वज ने मदालसाके साथ पहाडों के झरने, नदीतट, रमणीक वन और उपवनों में बहुतकाल विहार किया। मदालसा भी विषयभोग करके पुण्यक्षयकी इच्छा से अतिप्रिय दर्शन ऋतध्वज के साथ अनेक रमणीक स्थानों में विहार करनेलगी इस प्रकार बहुतकाल वीतने पर शत्रुजित् भलीभांति से पृथिवी का शासन करके परलोक सिधारे। तब पुरवासियों ने उन के पुत्र महात्मा ऋतध्वजको राजपद पर अभिषिक्त किया। वह औरस पुत्र

की समान प्रजा का पालन करनेलगा । इस अवसरमें मदालसा के प्रथम सन्तान उत्पन्नहुई पिता ने उस बुद्धिमान् पुत्र का नाम विक्रान्त रक्खा । सेवकलोग उस पुत्र के उत्पन्न होने से बड़े प्रसन्न हुए। मदालसा हँसनेलगी ।

इस बालक ने उत्तान शायी होकर अस्फुट स्वर से रोना आरम्भकिया । मदालसा ने उस को शान्त करने के मिस से कहा कि हे पुत्र ! तुम सब उपाधियों से छूटेहुए हो, तुम्हारा कोई नाम नहीं । इससमय केवल कल्पनाकी सहायता से तुम्हारानामकरण हुआ है । तुम्हारा यह शरीर पञ्चभूत का बना हुआ है। इसकारण यह जैसे तुम्हारा नहीं है, वैसे ही तुमभी इस के नहीं हो । फिर तुम किस कारण रोते हो ? अथवा तुम नहीं रोते हो किन्तु इसराज पुत्र का ही आश्रय करके ऐसा शब्दस्वयं प्रगट हुआ है । तुम्हारी इन्द्रियों में भी भौतिक गुण और अब गुण कल्पित हुए हैं। अत्यन्त दुर्बल प्राणी जिस प्रकार प्राणियों की सहायता से अन्न और जलदानादि से बढते हैं, तुम्हारी वैसी वृद्धि भी नहीं, क्षय भी नहीं है। तुम्हारा यह शरीर आवरणमात्र है । यह नष्ट होगा। इस में तुम मोह मत करो । शुभाशुभ कर्म्मों के बल से ही तुम्हारे शरीर में यह आवरण बाँधा गया है । पिता, माता, स्त्री, और आत्मीय कोई भी कुछ नहीं है। तुम उनका बहुत आदर न करो । जो मोह युक्त हैं वही दुःख को दुःख के दूर होने का कारण और भोगों को सुखका कारण जानते हैं, जो लोग अविद्या से ढकेहुए होंने के कारण मूढमति हैं वह उन दुःखों को सुख समझते हैं । देखो स्त्रीके हँसनेपर हड्डी दीखती है; उस के दोनों नेत्र भी डरावने से हैं उस के स्थूल कुचआदि मांस का पिंड हैं । उस का मदन मंदिर भी ऐसा ही है । इसकारण क्या स्त्री साक्षात् नरक नहीं है? पृथिवी में यान, यान में शरीर और शरीर में अन्यपुरुष है । आप के शरीर में जिस प्रकार अपनी हट का ज्ञान है, उस पुरुष में वैसा नहीं है । अहो कैसी मूर्खता है । पच्चीसवां अध्याय समाप्त ॥

छब्बीसवां अध्याय।

पुत्र बोला कि, बालक दिन २ ज्यों ज्यों बढने लगा, त्यौं२ राजपत्नी मदालसा भी बातों के मिससे आत्मज्ञान कराने लगी । कुमार ने जिसप्रकार क्रम से पिता से बल और बुद्धि प्राप्तकी, माता के उपदेश वाक्यों से भी उसी प्रकार आत्मज्ञान पाया । माता से जन्म समय से ही आत्म ज्ञान की शिक्षापाने के कारण ब्रह्मज्ञान हुआ, और ममता रहित होंनेसे कुमार गार्हस्थ्य धर्म्म में एकवारही प्रवृत्ति शून्य हो गया । अनन्तर मदालसा के दूसरा पुत्र उत्पन्नहुआ, राजाने उस का नाम सुबाहु रक्खा । इसकारण मदालसा हँसी । जो कुछ भी हो वह उस कुमार को भी बालकपन से ही पूर्वोक्त प्रकार से आत्म ज्ञान सिखाने लगी । उस की बुद्धि भी ज्ञान प्राप्त करके अत्यन्त शुद्ध और दीप्तिमान होगई । अनन्तर तीसरा पुत्र उत्पन्न होंनेपर राजाने उस का नाम शत्रुजित रक्खा । सुभ्रू मदालसा यह नाम सुनकर बहुत देर-तक हँसी । वह कुमार भी आत्मज्ञान सीखकर कामनाहीन और निष्क्रिय होगया । फिर चौथा पुत्र उत्पन्न होंनेपर राजाने उसके नाम

करण की इच्छा से मदालसा की ओर देखा वह कुछेक हँसी । तब राजाने कुछेक विस्मित होकर पूंछाकि, मेरे नामकरण में प्रवृत्त होतेही तुम हँसदेती हो । वारम्बार तुमने ऐसा किया है । इसका क्या कारण है । मैंने जो विक्रान्त सुवाहु, और शत्रुमर्दन यह कई एक नामरक्खे हैं मेरी समझ में वह सर्वथा संगत हैं । क्योंकि क्षत्रियों के शूरता और दर्पसंयुक्त नामही ठीक होते हैं । तथापि हे भद्रे ? तुम को यदि यह तीनों नाम अच्छे नहीं लगते । तो अब की बार तुम स्वयं ही चौथे पुत्रका नामकरण करो।

मदालसा ने कहा कि—हे महाराज! आप की आज्ञा पालन करना मेरा अवश्य कर्त्तव्य है । इसकारण आप की आज्ञानुसार मैं ही इस चौथे पुत्र का नाम रखती हूँ । यह धर्मात्मा अलर्कनाम से संसार में विख्यात होगा । हे राजन् ! तुम्हारा यह छोटा पुत्र बुद्धिमान् होगा । माता ने पुत्र का नाम अलर्क रक्खा । इस का कुछ भी अर्थ नहीं हुआ । इसकारण राजा इस नाम को सुनकर हँसनेलगा, और बोला कि—हे शोभने ! तुम ने मेरे पुत्र का जो नाम रक्खा है वह बडा कुत्सित और अनर्थक है । इस का क्या अर्थ है? मदालसा बोली कि—हे महाराज ! लोकाचार में नाम रखना पडता है, यह समझकर ही नाम रखदिया । आप के रखेहुए नामों का भी कुछ अर्थ नहीं है, सुनो । बुद्धिमान् लोग आत्मा को सर्वव्यापी कहते हैं । क्रान्ति शब्द में, एक देश से अन्यदेश में गति समझनी चाहिये । आत्मा सर्वज्ञ, सर्वव्यापी और देह का ईश्वर है । फिर उस की गति कैसे होसक्ती है ? इसकारण मेरी समझ में विक्रान्त नाम का कुछ भी अर्थ नहीं हुआ । हे महाराज ! आत्मा की किसी प्रकार की मूर्त्ति नहीं ; इसकारण दूसरे पुत्र का नाम जो सुवाहु रक्खा है, वह भी सर्वथा अर्थशून्य है । तीसरे पुत्र का नाम जो अरिमर्द्दन रक्खा है, वह भी मेरी समझ में व्यर्थ है । इसकाकारण सुनो । एकाकी आत्मा सब शरीरों में ही विराजता है । फिर उस का शत्रु वा मित्र कौन होसकता है ? क्रोधादि के पृथक्भाव होने से ऐसी कल्पना भी अर्थशून्य है । अर्थात् आत्मा क्रोधादि सब प्रकार के दोषों से हीन है । फिर वह शत्रु का मर्द्दन किस प्रकार से करेगा ? यदि केवल व्यवहार के निमित्त ही ऐसे निरर्थक नामों की कल्पना की जाती है, तो मैंने जो अलर्क नाम रक्खा है ; आप उस को भी निरर्थक कैसे कहसकते हैं ?

रानी के ऐसे सुन्दर वाक्य कहने पर महामति राजा ने उस सत्यवादिनी मदालसा से कहा कि—तुम जो कुछ कहती हो वही ठीक है, वास्तव में किसी नाम का भी अर्थ नहीं । जो कुछ भी हो, मदालसा उस राजपुत्र को भी पहिले पुत्रों की समान आत्मज्ञान सिखाने में प्रवृत्त हुई, राजा ने कहा, हे मूढे ! तुम यह क्या करती हो ? ऐसा दूषित आत्मज्ञान सिखाकर मेरे पहिले पुत्रों का जैसा अकल्याण किया है, इस का भी उसीप्रकार करोगी । यदि मुझ को प्रसन्न रखना अपना कर्त्तव्य समझती हो तो इस पुत्र को प्रवृत्तिमार्ग में लगाओ । हे देवि ! कर्ममार्ग का नष्ट करना उचित नहीं है । पितृ पिण्ड का लोप होना नहीं चाहिये । पितरों के शुभाशुभ कर्म के अनुसार स्वर्ग में स्थिति, ति-

पशुयोनि भोग, मनुष्यत्वलाभ भ्रमण पूर्वक भूखप्यास से अत्यन्त कातर और क्षीण मातापन्न होने पर, मनुष्य कर्म मार्ग में स्थित होकर पिण्ड और जल प्रदान करे; और सदा देवता और पितरों की पूर्ण तृप्ति करे। क्योंकि देव, मनुष्य, पितर, प्रेत, भूत, गुह्य, पक्षि, कीट सब ही मनुष्य का आश्रय करके जीविका का निर्वाह करते हैं। अतएव हे कृशाङ्गि! क्षत्रियों को दोनों लोक में फल पाने के लिये जो कुछ करना उचित है, मेरे इस पुत्र को वैसा ही उपदेश दो। मदालसा स्वामी की यह बात सुनकर अलर्क नामक पुत्र से बोली कि-हे वत्स! बढो, कर्मानुष्ठान के साथ मेरे स्वामी का मन प्रसन्न और उस के साथ मित्रों का उपकार तथा अमित्रों का संहार करो। पुत्र! तुम धन्य हो! क्योंकि-तुम इकले ही बहुत काल तक पृथिवी का पालन करोगे। तुम्हारे पालन के गुण से सब को ही सुख प्राप्त होना उचित हैं। ऐसा होने पर तुम परमधर्म संचय करके अमर होसकोगे। तुम सावधान होकर प्रत्येक पर्व में ब्राह्मणों की तृप्ति, बान्धवों का मनोरथ पूर्ण, दूसरे का हितसाधन, और परस्त्रीगमन का त्याग करोगे।'

अनेक यज्ञ करने के साथ २ देवताओं को और अक्षय धनदान की सहायता से ब्राह्मणों को और आश्रितों को प्रसन्न करोगे। अनेक प्रकार के भोग्यपदार्थ देकर स्त्रियों को और युद्धद्वारा शत्रुओं को प्रसन्न करोगे। तुम बालकपन में बान्धवों को, कुमारावस्था में आज्ञापालन करके पिता-माता को, यौवन में श्रेष्ठ स्त्रियों को और वृद्धावस्था में बन में रहकर वनचरों को आनन्द प्रदान करोगे। और राज्य पर स्थित होकर मित्रों को प्रसन्न और साधुओं की रक्षा करके यज्ञों का अनुष्ठान और गौंब्राह्मणों की रक्षा के निमित्त युद्ध में दुष्ट और शत्रुओं को मारकर परलोक में जाओगे। इति छब्बीसवां अध्याय समाप्त।

सत्ताईसवां अध्याय।

पुत्र बोला कि-माता के इसप्रकार प्रतिदिन उपदेश देने में प्रवृत्त होने पर बालक, बुद्धि और वयस के साथ बढनेलगा। उसने कुमार अवस्था को प्राप्त और उपनीति होकर विशेष रूप से ज्ञान प्राप्त किया, और माता को प्रणाम करके कहा कि-मैं विनयपूर्वक पूछता हूँ कि-दोनों लोक में सुखपाने के लिये मुझे क्या क्या करना उचित है। मदालसा बोली कि-हे वत्स! राज्य में भिषिक्त होकर निजधर्मानुसार प्रजारञ्जन करना राजा का पहिला कर्तव्य है। स्वामी, मंत्री, कोष, दण्ड, राज, और नगर यह वस्तु राजा की मूल वा प्रकृति हैं। फिर मृगया, द्यूत, दिन में सोना, पराई निन्दा, वेश्यासङ्ग, नृत्य, गीत, क्रीडा वृथा भ्रमण और पान दुष्टता, क्षति, द्वेष, ईर्षा, प्रतारणा, कटुभाषण और कठोराचरण यह सब व्यसन हैं। यह सम्पूर्ण व्यसन उपरोक्त मूल का नाश करते हैं। इस लिये राजा व्यसन को छोडे और जिस से की हुई सम्मति के बाहर जाने से शत्रु लोग अपकार न करसकें ऐसे अनुष्ठान में प्रवृत्त होवे।

सुन्दर पहियेवाले रथके गिरने से जैसे बटोही नष्ट होजाता है, तैसे ही मन्त्रभेद होनेपर रा-

ज्य निःसन्देह नष्ट होजाता है । शत्रुओं ने धन के लोभ आदि से, मंत्रि आदि को दूषित किया है या नहीं, यह बात यत्न से जानते रहना राजाका अवश्यकर्त्तव्य है । वह गुप्त-दूत के द्वारा शत्रुओं का कर्त्तव्य भी यत्न के साथ जाने । मित्र, सज्जन और बन्धु किसी का भी विश्वास नहीं करे । और कार्य्यवश शत्रु का भी विश्वास करे । काम के वशीभूत न होकर, स्थानवृद्धि को जाने और संधि, विग्रह यानादि छः गुणों से युक्तरहे । पहिले आत्मा को, फिर मंत्रियों को, तदनन्तर सेवकों को, फिर पुरवासियों को अपने अधीन करके शत्रु से विरोध करे । जो आत्मा आदि को विना जीते शत्रुओं के जीतने की इच्छा करता है, वह अजितात्मा राजा मन्त्रियों के द्वारा विजित होकर शत्रुओं के वश में होता है । इस कारण हे वत्स ! पाहिले कामादि शत्रुओं को जीते । उन के जीतने पर अवश्य जय मिलती है । किन्तु उन के न जीतने से राजा नष्ट होता है काम, क्रोध, मद, मान और हर्ष यही शत्रु, राजा का नाश करते हैं । राजा पाण्डु कामासक्ति के कारण नष्ट हुए थे; अनुहाद क्रोध के कारण पुत्रहीन हुए थे; यह लोभसे नष्ट हुए थे; वेणमद के कारण ब्राह्मणों द्वारा नष्ट हुए थे, वलि अभिमान और पुरञ्जय हर्ष के कारण मरण को प्राप्त हुए थे मन को कामादि दोषों से बचावे राजामरुत ने इन सब शत्रुओं को जीतकर संसार को जीता था । उस को स्मरण करके राजा अपने इन सब दोषों को त्यागे । काक की समान आलस्यरहित और सावधान होकर राजा कोयल की समान उचित समय पर अपने गुण को प्रकाशित करै । भौंरे की समान संग्रह करै मृग की समान सरलता से शत्रु के वशीभूत न होय । जैसे सर्प थोड़े विष से भी बड़े जीवको नष्ट करदेता है, वैसे ही थोडीसी सेना की सहायता से महाबली शत्रुओंके दमन की चेष्टा करे । मोर की समान अपनी सम्पत्ति का प्रकाश करे । हँस की समान गुणग्राही बने । कुक्कुट की समान उचित समयपर उठे और स्त्रियों की सङ्कट से रक्षा करे । लोहे की समान कठिन और बहुत कार्य्योंका साधक होय जैसे कीट विना साधन के सब वस्तुओं को काटडालता है, राजा भी शत्रुओं के साथ वैसा ही व्यवहार करे । पिपीलिका की समान सञ्चय करै और ध्यान रक्खै अग्निके कण और सेमल के बीजकी समान व्यापक होय ।

चन्द्र, सूर्य जिसप्रकार किरणों को फैलाते हैं, राजाभी उसीप्रकार सदाराजनीति का प्रयोग करताहुआ उदयहोय व्यभिचारिणी जैसे परपुरुष का चित्त प्रसन्नकरती है, राजा भी उसीप्रकार प्रजा का चित्त प्रसन्न करे । कमल की समान सबके मनों को हरनेवाला होय सरभ की समान पराक्रम प्रकाश करे । शूली की समान एकवेर में ही शत्रुको नष्टकरदेय । गर्भवती के स्तन जैसे होनहार पुत्रके लिये दुग्धसंचय करते हैं, राजा भी उसीप्रकार भविष्यत् के लिये सञ्चय करै । ग्वालन जैसे एक दूध के अनेक पदार्थ बनालेती है, राजा भी वैसे ही अनेकों कल्पना करै । पृथिवीपालन में इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, यम और वायु इनपांच देवता की समान व्यवहार करे । अर्थात् इन्द्र

जैसे चारमहीने वर्षा करके मनुष्योंको तृप्तकरता है, वैसे ही राजाधनादि देकर सब का संतोष करे। जैसे सूर्य आठमहीने किरणों से जल खैंचता है, राजाभी उसीप्रकार सूक्ष्मउपाय से करलेय। यम जैसे शत्रुमित्र सबको ही समय आनेपर ग्रासकरता है, राजाभी उसी प्रकार प्रिय, अप्रिय, दुष्ट, साधु, सबको समान देखे लोग पूर्णचन्द्रमा को देखकर जैसे प्रसन्न होते हैं, प्रजा भी उसीप्रकार जिसके राज में सुख अनुभव करती है उस राजाको चन्द्रमाकी समान कहते हैं। वायु जैसे गुप्तभाव से सब प्राणियों में विचरता है, राजाभी उसीप्रकार गुप्तदूत के द्वारा प्रजा मंत्री और बान्धवों के चरित्रादि का पतालगावे। जिस राजा का मन काम, लोभ, धन अथवा और किसी कारण में आकृष्ट नहीं होता वही स्वर्ग में जाता है जो राजा कुमार्गरत, धर्महीन, और मूर्खलोगों को स्वधर्म में लगाता है, वही स्वर्ग में जाता है। जिस के राज्य में वर्ण धर्म और आश्रमधर्म का किसीप्रकार लोप नहो, हे वत्स! वह दोनों लोक में ही अविनाशी सुख भोगता है। राजा सदा सुबुद्धिलोगों की सम्मतिलेय और लोगों को स्वधर्म में स्थापित करे। यही उस का एक काम है और यही उसकी सिद्धि होने का हेतु है। राजा जैसे प्रजा का भलीभांति पालन करने से कृतकृत्य होता है, उसी प्रकार उन के धर्म में से भाग पाता है। सत्ताईसवां अध्याय समाप्त।

अट्ठाईसवां अध्याय।

पुत्रबोला कि, माता की यह बात सुनकर अलर्कने फिर वर्णाश्रम धर्म सुनने की इच्छासे कहा कि आपने राजधर्म्म कहा, अब मैं वर्णाश्रम धर्म्म सुनना चाहता हूं। मदालसा ने कहाकि, दान, वेदपाठ और यज्ञ, यह तीन ब्राह्मणों के कर्म्म हैं। जीविकार्य उद्योग के सिवाय उनका और चौथा कर्म्म नहीं है। पवित्रभाव से यज्ञ कराना वेद पढाना और दानलेना यह तीन ब्राह्मणोके जीविकार्य उद्योग हैं। दान, वेदपाठ और यज्ञ यहतीन क्षत्रियों के धर्म्म हैं। पृथिवीकी रक्षा और शस्त्र चलाना यह दो उन की आजीविका हैं। वैश्य के भी तीन प्रकार के धर्म्म हैं, दान, वेदपाठ और यज्ञ। पशु पालन, वाणिज्य और खेती उन की जीविकार्थ धर्म्म हैं। शूद्रका धर्म्म दान, यज्ञ और उक्त तीनोंवर्णों की सेवा। द्विजातियों की सेवा, पशुपालन, क्रय, विक्रय यह उस के जीविकार्थ धर्म्म हैं। सब वर्णोंके धर्म्म कहे, अब आश्रम धर्म्म सुनो। अपने वर्णधर्म का पालन करने से ही मनुष्य सर्व सिद्धि पाते हैं। वर्णधर्म्म के विरुद्ध चलने से परलोक में उस को नरक भोग होता है। हे वत्स! ब्राह्मणादि तीन वर्णों का जबतक यज्ञोपवीत संस्कार नहो, तबतक वह इच्छानुसार व्यवहार, आलाप और भोजनादिक करसकते हैं। यज्ञोपवीत होंनेपर ब्रह्मचारी बनकर गुरु गृह में वासकरे उससमय के उस के धर्म्म कहती हूं सुनो। वेदपाठ, अग्नि सेवा, स्नान, भिक्षार्थगमन, गुरु को निवेदन करके उन की आज्ञानुसार सदा अन्नभक्षण, गुरु के कार्य्य में उद्योग, उन की प्रीति सम्पादन, गुरु के बुलानेपर पाठ और गुरु के प्रतितत्परता तथा अनन्य चित्त के साथ स्थिति करे। गुरु के मुखसे एक, दो वा सम्पूर्ण

वेद अध्ययन करके उन की चरणवन्दना पूर्वक आज्ञानुसार दक्षिणादे। अनन्तर गार्हस्थ्य धर्म्म में इच्छा होनेपर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे। अथवा अपनी इच्छानुसार चौथाआश्रम वा वानप्रस्थ आश्रम अवलम्बन करसकताहै। अथवा गुरु के घर में ही नैष्ठिक ब्रह्मचारी होकर वास करना चाहिये। गुरु के न होनेपर उनके पुत्रके निकट, पुत्र न होनेपर उन के शिष्य के निकट सेवा में तत्पर और अभिमान शून्य होकर ब्रह्मचर्य्याश्रम में ही वासकरे। फिर गृहस्थाश्रम की इच्छा होतो गुरु के घर से लौटकर अपने योग्य कन्या के साथ विवाह करे। यह कन्यारोगशून्य और दूसरे गोत्रकी हो, तथा उस का कोई अङ्ग विकृत न हो। अपने कर्म्मद्वारा न्यायानुसार धन उपार्जन करके देव, पितर अतिथियों की तृप्ति और आश्रितों का पालन करे। सेवक, पुत्र, दीन, अन्धे, पतित और पशु पक्षियों का यथाशक्ति अन्नदान द्वारा पालन करे। ऋतुकाल में स्त्रीगमन और यथाशक्ति पञ्चयज्ञ करे। अपनी शक्ति के अनुसार आदरसहित पितर, देव, अतिथि इन को देकर जो कुछ शेषरहे, उस को सेवकों सहित स्वयं भोजन करे। यह मैंने संक्षेप से गृहस्थाश्रम का वर्णन किया। अब वानप्रस्थ आश्रम कहती हूँ सुनो। बुद्धिमान् पुरुष अपनी सन्तति और शरीर की अवनति देखकर आत्मा की शुद्धि के निमित्त वानप्रस्थ आश्रम में गमन करे। वहां वनैले फल भोजन, अतिथियों की सेवा, होम, त्रिसन्ध्या स्नान, जटावल्कलधारण और सदा योगधारण करे। इस प्रकार पाप प्रक्षालन और आत्मा के उपकार के निमित्त वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करे। वानप्रस्थ के पीछे भिक्षुनामक अन्तिम आश्रम है, इस चौथे आश्रम का स्वरूप महात्माओं ने जैसा कहा है, उस को कहती हूँ सुनो। सर्व सङ्गत्याग, ब्रह्मचर्य्य, क्रोधत्याग, इन्द्रियसंयम, एक स्थान में बहुतदिन न रहना, कर्म्मत्याग, भिक्षासे प्राप्तहुए अन्न का एकबेर भोजन, आत्मज्ञान की इच्छा और आत्मदर्शन यह सब भिक्षुकाश्रम के कार्य्य हैं। यह मैंने तुम से चौथे आश्रम का वर्णन किया। अब दूसरे वर्ण और आश्रमों के साधारण कर्त्तव्य सुनो। सत्य, शौच, अहिंसा, अनसूया, क्षमा, हत्या, और कृपणताका न होना, सन्तोष यह आठ वर्णाश्रम के साधारण धर्म्म हैं। यह मैंने तुम से सब वर्णाश्रमों के धर्म संक्षेपसे कहे। अपने२ वर्णाश्रमधर्म्म का पालन करना मनुष्य मात्रको उचित है। जो मनुष्य अपने वर्णाश्रम धर्म्म को छोडकर दूसरे धर्म्म में प्रवृत्त हों, राजा उस को उचित दण्ड दे। जो अपना धर्म्म त्यागकर पाप करते हैं राजा उन को दण्ड न देतो उस का इष्टापूर्त्त नष्ट होजाता है। इस कारण राजा यत्नके साथ सब वर्णों को स्वधर्म्म में स्थापन करे और उस के विपरीत करनेपर दण्ड देय। अट्ठाईसवां अध्याय समाप्त ॥

उनतीसवांअध्याय।

अलर्कबोला—गृहस्थाश्रमी लोगों का जो कर्त्तव्य है, जिस के न करने से बन्धन और करने से मुक्तिलाभ होता है जो उपकारके निमित्त कल्पित हुआ है और जिस का वर्नन करना उचित है, तथा जिस का करना उचित

है आप विशेषता से उसका कीर्त्तन कीजिये, मदालसा ने कहा कि हे वत्स ! गृहस्थीमात्र ही इन सब जीवों का पालन करते हैं, और इसी पुण्यबलसे अभिलषित लोकों को प्राप्त होते हैं । देव, पितर, मुनि, भूत, मनुष्य, कीट, पतङ्ग, पशु, पक्षि और असुर आदि सबही गृहस्थ का आश्रय करके जीविका निर्वाह करते हैं और उस के साथ ही तृप्तहोते हैं । गृहस्थ हमको अन्नदेगा या नहीं, यह विचारकर सबही उस का मुंहदेखते हैं । हे वत्स ! अधिक क्या कहूँ, यह गृहस्थ वेदमयी धेनुरूप से सबका आधाररूप है । इसधेनु में ही सब संसार प्रतिष्ठित हुआ है, और यह धेनु ही संसार का कारण है । ऋग्वेद उसकी पीठ, यजुर्वेद उस का मध्य और सामवेदमुख और गर्दन है, इष्टापूर्त्त उस के सींग, साधु सूक्त उस के लोम, शांति और पुष्टि कार्य उस का मल और मूत्र, तथा वर्णाश्रम उस की प्रतिष्ठा हैं । उस का क्षय नहीं । इसकारण सब संसार उसका आश्रय करके जीवन धारण करनेपर भी उस का अपचय नहीं होता हे वत्स ! स्वाहाकार, स्वधाकार, वषट्कार हन्तकार उस के चार स्तन हैं । उन में देवगण स्वाहाकार स्तनपान करते हैं पितर स्वधाकार, मुनिगण वषट्कार और मनुष्यगण हन्त काररूप स्तन सदा पानकरते हैं । जो पुरुष उन तीनों का नाश करता है, वह अत्यन्त पापीहै और अन्धतामिस्र तथा तामिस्र दोनों नरकोंमें गिरते हैं । हमलोग उस धेनु के बछडे हैं । जो पुरुष उचित समयपर उन बछडों को उल्लिखित स्तनपान कराता है वह स्वर्ग में जाता है अतएव हे वत्स ! प्रतिदिन अपने देह की समान, देव ऋषि, पितर मनुष्य और सेवकों का पोषण करना मनुष्यमात्र का ही कर्त्तव्य है । इस कारण स्नानादि द्वारा शुद्ध होकर सावधान चित्त से देव, पितर और ऋषि इन को जलदान द्वारा तृप्त करे । चन्दन और गंधपुष्पादि द्वारा देवगणों की पूजा करके फिर अग्नि के तर्पणांत में बलिप्रदान करे । पूर्व और उत्तर की ओर ब्रह्मा के उद्देश्य करके बलि फेंके । इन्द्र को पूर्व दिशा में, यम को दक्षिण दिशा में, बलिदान करे । फिर वरुण को पश्चिम दिशा में और चन्द्र के निमित्त उत्तर दिशा में बलि दे । घर द्वार में धाता और विधाता के उद्देश से बलिदान करे । अर्यमा को घर के बाहर चारोंतरफ बलिदान करे । अनन्तर निशाचर और भूतगणों के उद्देश्य से आकाश में बलिदान करे । दक्षिण की तरफ मुख करके पितरों को बलि अर्पण करे । फिर गृहस्थ सावधान चित्त से आचमन के निमित्त जल लेकर सब स्थान भिन्न२ देवताओं के उद्देशसे छिडके । इसप्रकार गृहस्थी पवित्र होकर भूतगणों की तृप्ति के निमित्त उत्सर्गविधि सम्पादन करे । कुत्ते, चाण्डाल और पक्षियों के निमित्त पृथिवी में बलिदान करे । इस का नाम वैश्वदेवबलि है । सायं प्रातः यह देनी उचित है । बलि देने के अनन्तर बुद्धिमान् आचमन करके द्वार देखे । मुहूर्त्त के अष्टम भाग तक देखना चाहिये कदाचित कोई अतिथि आजाय । तो यथाशक्ति जल अन्न और गन्धपुष्पादि द्वारा विधिविधान से पूजा करे । मित्र अथवा एक ग्रामवासी को अतिथि न समझे । जिस

पुरुषका कुल और नाम मालूम न हो,जो तत्काल आया हो। जिसको भोजन करने की इच्छा हो जो थकाहुआ दीनब्राह्मण हो उसको ही अतिथि कहते हैं। शक्ति के अनुसार उस का अतिथि सत्कार करे। चतुर गृहस्थी, अतिथि का गोत्र पद और स्वाध्याय न पूछे। अतिथि कुरूप हो, चाहे सुन्दर हो, उस को साक्षात् प्रजापति समझे। नित्यस्थिति नहीं करता इसीकारण उस का नाम अतिथि है।

अतिथि तृप्त होने से गृहस्थी नृयज्ञ के ऋण से छूटजाता है। उस को विनादिये भोजन करने से पाप का भागी होकर दूसरे जन्म में विष्ठाभोजी होता है। अतिथि जिस के घर से निराश होकर लौटजाता है, वह अपना पाप देकर पुण्य लेजाता है। अतिथि को जल और शाकदान अथवा जो कुछ भोजन हो देकर यथाशक्ति विधि के अनुसार पूजे।

अन्न जल द्वारा प्रतिदिन श्राद्ध और पितरों के उद्देश से एक या अनेक ब्राह्मणों को भोजन करावे। अन्न का अग्रभाग उठाकर ब्राह्मण को दे। सन्यासी और ब्रह्मचारी को याचना करने पर भिक्षा दे। एक ग्रास का नाम भिक्षा है। चार ग्रास का नाम अग्रभाग है। और चार अग्र का नाम हन्तकार। अपनी शक्ति के अनुसार हन्तकार अथवा भिक्षा दान विना किये स्वयं भोजन न करे।

अतिथिसत्कार के पीछे बन्धु, अर्थी, असमर्थ, बालक, वृद्ध, और जिस के पास कुछ न हो इन लोगों के मांगने पर भोजन करावे। शक्ति हो तो समर्थों को भी भोजन करावे। जो श्रीमान् जाति के रहते भी बुभुक्षित रहता है, और उस दशा में वह जो पाप करता है, उस का फल उस जाति को मिलता है। सन्ध्यासमय भी यही विधि जाननी चाहिये। सूर्य्यास्तसमय में आयेहुए अतिथियों को यथाशक्ति शयन, आसन और भोजनद्वारा सत्कार करे अपने कंधेपर रक्खेहुए गार्हस्थ्यभारको इस प्रकार वह न करने से स्वयं विधाता, देव, पितर, ऋषि, अतिथि, बान्धव, पशु, पक्षी और क्षुद्र कीट आदि सबही प्रसन्न होकर कल्याण देते हैं। स्वयं महात्मा अत्रि ने इस उपलक्ष में जो कथा कही है, हे महाभाग तुम उस गृहस्थाश्रम सम्बंधी कथा को सुनो! शक्तिरहते, गृहस्थी पुरुष, देव, पितर, अतिथि इसीप्रकार बन्धु, बहन, और गुरु इनकी विशेष पूजाकरके,पक्षि,चण्डाल, कुत्ते इनको भी अन्नदे। वैश्य देव नामक उपरोक्त बलिकार्य्य प्रातःऔर सायंकाल में सम्पादन करे। मांस,अन्न और शाक तथा और जो कुछ घर में उपस्थित हो उस को यथा विधि विनादान किये,स्वयं भोजन करना उचित नहींहै। उनतीसवांअध्यायसमाप्त.

तीसवाँ अध्याय।

मदालसा बोली कि हे वत्स! अब नित्य नैमित्तिक भेद से गृहस्थी को जो कुछ करना उचित है, उस को कहती हूँ सुनो। मैंने जो पञ्चयज्ञाश्रित अनुष्ठानविधि कही है, उस का नाम नित्य है। और पुत्रजन्म क्रियादि का नाम नैमित्तिक तथा पर्व श्राद्धादि को नित्यनैमित्तिक कहते हैं। पुत्र जन्मसमय में जैसे जात कर्म्म करना होता है, विवाहादि में भी यथा क्रम से समानरूप से उसी प्रकार करना

उचित है। विवाहादि में नान्दी मुख नामक विख्यात पितरों की विशेष रूप से पूजा करे। उससमय यजमान उत्तर मुख वा पूर्वमुख बैठकर सावधानी से जौ और दहीमिलाहुआ पिण्ड पितरों के उद्देशसे दे।

कोई२ कहते हैं कि-इसमें वैश्वदेव नामक बलि नहीं दीजाती। दो ब्राह्मणों की कल्पना करके दक्षिणा दे और पूजा करे। इसका नाम वृद्धि श्राद्ध में नैमित्तिक कहते हैं। इस के अतिरिक्त मृतदिन में जो एकोद्दिष्ट नामक और्द्धदैहिक नैमित्तिक सम्पादन करना होता है, उस को सुनो। इस में किसी प्रकार का दैवकार्य, आवाहन, वा अग्नि में आहुति देना आदि नहीं करना पडता। केवल कुशप्रयोग की ही विधि है। उच्छिष्ट सान्निध्य में प्रेत के उद्देश से केवल पिण्डदान और उस का नाम स्मरण करके अपसव्यता से तिलोदक प्रोक्षण करे। जिस स्थान में कुश का बनाहुआ ब्राह्मण विराजित हुआ है, उस स्थान में ही यह तिलोदक फेंके। उस समय ऐसा कहना चाहिये कि-अमुक के उद्देश से यह जो तिलोदक देता हूँ यह अक्षय होवे और वह इस के द्वारा परमतृप्ति प्राप्त करे। वे कहेंगे प्रीति अनुभव की। एक वर्ष तक प्रत्येक मास में ऐसा कार्य करना उचित है। संवत्सर पूर्ण होने पर अथवा मनुष्य जब करसके, तब ही सपिण्डीकरण में प्रवृत्त होवे। उसकी भी विधि सुनो। इस सपिंडीकरण में भी किसीप्रकार का दैवकार्य, अग्निकार्य वा आवाहन नहीं किया जाता। केवल अर्घ और कुश देने की ही विधि है। दक्षिण दिशा में वा प्रतिकूल दिशा में पिण्डजलादि उपरोक्त प्रकार से देकर दस सहस्र ब्राह्मणों को भोजन करावे।

पण्डित लोग नित्य नैमित्तिक श्राद्धादि को ही नित्य नैमित्तिक समझें। उस में विशेषता यह है कि, प्रतिमास में अतिरिक्त क्रिया करनी होती है। मैं उस को कहता हूं एकाग्रचित्तसे सुनो-पितरोंके उद्देशसे तीन और प्रेतके उद्देशसे एक, इसप्रकार चारपात्र तिल और गन्धोदक मिलाकर स्थापन करे। उन में से तीन पितृपात्रों में से प्रेतपात्र और अर्घ्य प्रसेक करे। अनन्तर 'ये समाना' इत्यादि मंत्र का जप करके शेष कार्य्य का साधनकरे। स्त्रियों के निमित्त भी इसीप्रकार एकोद्दिष्ट का विधान है किन्तु पुत्र न होनेपर उन का सपिण्डीकरण नहीं होगा। प्रतिवर्ष स्त्रियों का इसी विधान से एकोद्दिष्ट करे। पुरुषों की वेला जिसप्रकार कहीगई है, स्त्रियों का भी उसीप्रकार मृतदिन में यथा साध्य एकोद्दिष्ट करे। पुत्र न होने पर सपिण्डगण, उन के अभाव में सहोदक, और जो लोग माता के सपिण्ड वा सहोदक तथा उन के दौहित्र हैं, वह इसप्रकार कार्य करें। कन्या और पुत्र मातामह के भी उद्देश से ऐसा करें। इस विधि का नाम द्व्यामुष्यायण है। श्राद्ध और नैमित्तिक द्वारा मातामह और पितामह की विधिपूर्वक पूजा करे। सब के अभाव में स्त्रियें स्वयं अपने २ स्वामी का यह कार्य करें। किन्तु उस में किसी मंत्र का प्रयोग न करें। स्त्री के अभाव में राजा उन के कुटुम्बी और जातिवालों से यह कार्य सम्पादन करावे। क्योंकि-राजा सब वर्णों का ही बन्धु है। हे वत्स! यह मैंने तुम्हारे नि-

कट नित्य और नैमित्तिक कहा। अन्नश्राद्धाश्रित दूसरे प्रकार की नित्य नैमित्तिक क्रिया सुनो। चन्द्र के क्षयात्मक काल को दर्श अर्थात् अमावस्या कहते हैं। यह अमावस्या इस विषय की निमित्तस्वरूप है और उस की नित्यता सूचित करती है। इसकारण इस का नाम नित्य नैमित्तिकी है। तीसवां अध्याय समाप्त।

इकतीसवां अध्याय ।

मदालसा बोली, पिता के जो प्रपितामह हैं उन का सपिण्डीकरण और पितृपिण्ड में अधिकार नहीं है। वह लेपभोजियों की श्रेणि में नष्ट होजाते हैं। जो उन में चतुर्थ स्थानीय और पुत्र का लेप तथा अन्न भोजन करता है, वह सम्बन्धहीन हैं, उपभोगमात्र प्राप्त होता है। पिता, पितामह, और प्रपितामह इन तीन पुरुषों को पिण्डसम्बन्धी जाने। पितामह के पितामह से तीन पुरुष शेष सम्बन्धी हैं, उन में यजमान सातवां है। ऋषियों ने इसप्रकार सात पुरुष तक सम्बन्ध निर्देश किया है। यजमानादि से ऊपर के पुरुष अनुलेप सम्बंधी हैं। उन के पूर्व पुरुष और नरकवासी अन्यान्य पुरुष तथा जो लोग तिर्यग्योनि में प्राप्त और भूतादि में स्थित हैं, यजमान जिस २ विधि से श्राद्ध करके उन को तृप्त करे सो कहता हूँ सुनो। मनुष्य पृथिवी पर जो अन्न बखेरते हैं, जो पिशाचयोनि में प्राप्त हैं, वह उस के द्वारा तृप्ति प्राप्त करते हैं। जो वृक्ष योनि में प्राप्तहैं, वह स्नान करके पृथिवी में गिरेहुए वस्त्र के जल द्वारा तृप्त होते हैं। शरीर से जो जल की बूँदै पृथिवी पर गिरती हैं, जो देवयोनि में प्राप्त हैं वह उस के द्वारा तृप्त होते हैं। जो तिर्यग्योनि में हैं वह पृथिवी पर गिरेहुए अन्न द्वारा तृप्त होते हैं। जो क्रियायोग्य होने पर भी संस्कारहीन होकर मरे हैं, वह बिखरेहुए अन्न और मार्जन द्वारा तृप्त होते हैं। ब्राह्मण लोग भोजन करके आचमन के समय जो जल फेंकते हैं, और उन के चरण धोते समय जो जल गिरता है उस को पीकर शेष पितर तृप्त होते हैं। जो विधिविधान से श्राद्ध क्रियाकरता है, उस के दूसरी योनि में प्राप्त पुरुष यजमान वा ब्राह्मणों के फेंकेहुए शुद्धाशुद्ध जल से तृप्त होते हैं।

संसार में अन्याय से इकट्ठे करेहुए धन से जो श्राद्धकरता है, उस से चण्डाल और पुक्कसआदि योनियों में गिरेहुए पितर तृप्त होते हैं। हे वत्स! इसप्रकार बन्धु, श्राद्ध करके जो अन्न और जल के कणदेते हैं उन से उन के बहुत से पितर तृप्तहोते हैं। इस कारण पुरुष शाक से भी भक्ति पूर्वक श्राद्ध करे। श्राद्ध करने पर, कुल में उत्पन्नहुए किसी बन्धु, को भी दुःख नहीं मिलता है। अब मैं श्राद्ध का नित्यनैमित्तिक काल कहती हूँ और जिस विधि के अनुसार श्राद्ध करना चाहिये वहभी कहूंगी। प्रत्येकमास में जब चन्द्रमा का क्षय हो उस अमावस्या तिथि में विधि के अनुसार श्राद्ध करे। पौष मास की अष्टमी में अवश्य श्राद्ध करना चाहिये। अब श्राद्ध का इच्छा काल कहती हूं सुनो। श्रेष्ठ ब्राह्मण के प्राप्तहोने पर, सूर्य और चन्द्र के ग्रहण के समयमें अयन, विषुव, सूर्यसंक्रांति व्यतिपात, और श्राद्ध के योग्य द्रव्य मिलने

पर, दुःस्वप्न देखने पर, जन्मनक्षत्र में और ग्रह पीडा के समय, इच्छा पूर्वक श्राद्ध करे। श्रेष्ठ, श्रोत्रिय और योगी, वेदज्ञ और सामगान करनेवाला नाचिकेता विषयक तीन उपनिषत् का उपासक, त्रिमधु, त्रिसुपर्ण, और षडङ्ग का जाननेवाला, देवता, ऋत्विक्,जामाता भाञ्जा वा श्वसुर, पञ्चाग्नि कर्मनिष्ठ और तपोनिष्ठ, मामा, पितामाता की सेवा करनेवाला, शिष्य, सम्बन्धी और बान्धव, यह सब ब्राह्मणही श्राद्धके योग्यपात्रहैं। अवकीर्णी अर्थात् ब्रह्मचर्य्यादि हीन, रोगी, अधिकाङ्ग, हीनाङ्ग दूसरी विवाहिता के गर्भ से उत्पन्न, एक नेत्र हीन, जीवितपतिवाली स्त्री का जारजपुत्र,मृत पतिवाली स्त्री का जारजपुत्र, मित्रद्रोही, जिस के नख बुरे हों, नपुंसक, कालेपीले दांतवाला हीनाकृति, पिताने जिस को शाप दिया हो, क्रूर वा खल, सोमवेचनेवाला, कन्या को दूषित करनेवाला, चिकित्साव्यवसायी,गुरु पिता का त्यागनेवाला, वेतनलेकर पढानेवाला, मित्र जो स्त्री पहिले दूसरे की थी उस का पति, वेदत्यागी, अग्नित्यागी, बारहवर्षतक अविवाहिता ऋतुमती स्त्री का पति, दोषग्रस्त और अन्यान्य निन्दित कर्म करनेवाला, ऐसे ब्राह्मणों का श्राद्धमें निषेध है। श्राद्धके पहिले उपरोक्त श्रेष्ठ ब्राह्मण को निमंत्रणदे । दैव कार्य और पितृकार्य दोनों में ही उनको ब्राह्मण समझे। श्राद्ध करनेवाले को नियम से रहना चाहिये। श्राद्ध,दान और भोजन करके स्त्री गमनकरनेपर पितर एकमास उस के वीर्य में शयन करते हैं। स्त्री गमन करके श्राद्ध में भोजन वा गमन करनेपर पितर एकमास वीर्य और मूत्र भोजन करते हैं। इस कारण एकदिन पहिले निमंत्रण देदेय चाहे उसदिन ब्राह्मण न मिले, किन्तु स्त्री सङ्गी ब्राह्मणको कभी न बुलावे। उचित समयपर भिक्षा के निमित्त आये हुए संयमशील संन्यासियोंको प्रणामादि द्वारा प्रसन्न करके, नियमित मन से भोजन करावे। शुक्लपक्षकी अपेक्षा कृष्णपक्ष जैसेपितरों को प्यारा है वैसेही पूर्वाह्न की अपेक्षा अपराह्न पितरोंको परम प्रीतिका देनेवालाहै। घरमें आये हुए ब्राह्मणोंकी पूजाकरके उन को आसन पर बैठावे। पितृ कार्य में अयुग्म और दैव कार्य में युग्म ब्राह्मण वरणकरे। अथवा अपनीशक्ति के अनुसार प्रत्येक कार्यमें एक२ब्राह्मण बुलावे मातामह के पक्षमें भी यही विधि है। कोई२ स्वतंत्ररूपसे व्यवस्था चाहते हैं। पूर्व मुख होकर दैव कार्य, उत्तरमुख होकर पितृ कार्य और मातामह के कार्य सम्पादन करे। बुद्धिमानों ने ऐसा वर्णन किया है। उससमय आसनके निमित्त कुशदेना और अर्घ्यादि से पूजा करनी उचित है। फिर पवित्री आदि देकर, आये हुए ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर मंत्र का उच्चारण करके देवताओं का आवाहन करे। जौ मिलेहुए जल से विश्वदेवों के उद्देश से अर्घ देकर गन्ध, माला, धूप, दीप और जलदेकर दक्षिण दिशा में पितरों के सब कार्य करे। फिर दूने कुश देकर आज्ञाले, और मंत्र पढ कर पितरों का आवाहन करे। हे महाभाग! उससमय पितरों की प्रीति करने में तत्पर होकर दक्षिणदिशा में तिल सहित अर्घ्य देय, तदुपरान्त ब्राह्मणों के द्वारा अग्निकार्य करे। ऐसी आज्ञा होनेपर अग्नि में विधि विधान से

व्यञ्जन और क्षार वर्जित अन्नकी आहुतिदेय जो कव्य लेजाता है, उस अग्निकी तृप्ति के निमित्त मैं यह अन्नदेताहूँ, ऐसा कहकर प्रथम आहुति देनी चाहिये । होम करके जो शेष रहे वह ब्राह्मणों के पात्र में रखदेय । उस समय आपलोग सुखपूर्वक अन्न पावैं ऐसा मधुर वचनों से कहे । तब ब्राह्मण मौनहोकर एकाग्रचित्त से भोजन करे । जो अन्न उन को प्यारा है, क्रोध त्यागकर धीरे २ उन को यथाशक्ति वार २ कहकरके देय रक्षोघ्न मंत्र का जप करके तिलों को पृथिवीमें वखेरे । क्योंकि श्राद्धस्वभावसे ही बहुतसे छिद्र युक्तहैं. अनन्तर, पुष्टिकारी और तृप्तिकारी अन्नभोजन करके तुम तृप्तहुए, ऐसाकहनेपर ब्राह्मण कहेकि, हम तृप्तहोगये फिर उन से आज्ञा लेकर पृथिवी में अन्न वखेरे और आचमन के निमित्त एक २ वार जलदान करे । फिर शरीर मन और वाणी को संयत कर के तिलसहित अन्न वनावे, और पितरों के उद्देश से कुशाओं के ऊपर छोड़े । उससमय सावधान होकर पितृतीर्थ द्वारा उन को जलदेय । मातामह के निमित्त इसविधि के अनुसार पिण्डदेकर गंधमाल्यादि पूर्वक आचमन करे फिर अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणा देकर उन से सुस्वधास्तु मंत्र पाठकरावे । वह प्रसन्न होकर उस को पढ़े । उन के द्वारा हे विश्वेदेवताओं ! आपप्रसन्न होवें, आपका कल्याण हो, इत्यादि वैश्वदैविक मंत्र उच्चारण करावे । उस के पढ़नेपर उन से आशीर्वाद की प्रार्थनाकरे । फिर प्यारे वचनकहकर भक्तिसहित सब को प्रणाम करे, और विदा कर के घर के द्वारतक उन के संगजाए । फिर उनकी आज्ञा लेकर लौट आवे । फिर नित्य क्रिया समाप्त करके अतिथियों को भोजनकरावे । कोई २ पितरों की नित्यक्रिया करने की इच्छा करते हैं । किसी२ का मत इसकेविरुद्ध है । जोकुछभी हो शेषकार्य्य पूर्ववत करना चाहिये । कोई २ कहतेहैं कि पृथक् पाक करके पितरों का कार्य्य न करे । कोई २ कहतेहैं करनाचाहिये । तदुपरान्त उस अन्न को भोजन करे । हे धर्म्मज्ञ ! जिस से ब्राह्मण प्रसन्न होसके उसी के अनुसार कार्य्य करके पितरों का श्राद्धकरे । श्राद्ध में धेवता, कुतपकाल और तिल यह तीनपवित्र हैं । क्रोध, मार्ग में घूमना और शीघ्रता यह छोड़देनी चाहिये । ब्राह्मणों ने ऐसा कहा है । हे वत्स ! चाँदी का पात्रही श्राद्ध में श्रेष्ठहै । रजतदेना वा रजत का दर्शन करना उचित है । ऐसा सुनाजाता है कि पितरों ने चाँदी के पात्र में पृथिवी से स्वधादोहन कियाथा । इसकारण चाँदीही पितरों को अभीष्ट और प्रीतिदायक है । इकतीसवाँ अध्याय समाप्त

बत्तिसवां अध्याय ।

मदालसा बोली कि हे पुत्र अब भक्तिसहित पितरों की प्रीति के निमित्त जो कहा है और जो त्यागना चाहिये, उसको कहतीहूँ सुनो । हविष्यान्न से एकमासतक उनकी तृप्ति होती है । पितामह मत्स्य मांस से दो मासतक तृप्तरहते है । मृग के मांस से तीनमासतक तृप्ति रहती है खरगोश का मांस चारमास उनका पोषण करता

(१) यह मांस के पिण्ड का विधान इस कलियुग में उचित नहीं है, क्योंकि-कलियुग में पराशर स्मृति के अनुसार कर्मविधान करना लिखा है और पराशरस्मृति में लिखा है कि--कलियुग में मांस के पिण्ड न देय ॥

है । पक्षिमांस पाँचमास, शूकरका मांस छै मास बकरेका मांस सातमास, एणमृगका मांस आठमास और रुरुमृग का मांस नौमहीने निःसंदेह तृप्ति करता है । गवयमांस दस महीने की तृप्ति देता है । और भ्रकामांस ग्यारहमास पितरोंकी तृप्तिकरताहै । गायका दूध वा पायस बारहमास गेंडेकामांस, कालशाक, मधु, कन्या के पुत्र का दियाहुआ मांस वा अपने कुल में हुए किसी दूसरे पुरुष का दियाहुआ मांस और गौरीसुत का पूजन तथा गयाश्राद्ध अनन्त तृप्ति करते हैं । श्यामाक, राजश्यामाक, और धान्य में प्रासातिक, नीवार और पौष्कल पितरों की तृप्ति करते हैं । इस के अतिरिक्त जौं, व्रीहि, गेहूँ, तिल, मूंग, सरसों, प्रियङ्गु, कोविदार, निष्पाव यह सबही तृप्त करनेवाले हैं । वानर, राजमास अणु, विप्रासिक, मसूर, यह श्राद्ध में निषिद्ध हैं ल्हसन, गाजर, पलाण्डु, शलगम, दहीमिलेहुए सत्तू, वर्ण और रसहीन द्रव्य, गन्धारिका घी या खारी लवण यहसब द्रव्यभी छोड़देय। रिसवत आदिसे प्राप्त पतित से मिलाहुआ, और कन्या के बेचनेसे इकट्ठाकराहुआ धन यह सब श्राद्ध में निन्दितहैं । मृगीका दूध, बकरीकादूध ऊँटनी का दूध, विनाखुर चिरेहुए सब पशुओं का दूध भैस का दूध चमरु का दुग्ध, विनावस्त्र से छनाहुआ ·ीकादूध, मेरे पितृकार्य्य के निमित्त दो, ऐसाकहकर लायाहुआ सबप्रकारका दूध श्राद्ध कार्य्य में वर्जित है । जो पृथिवी की ढेवाली, रूखी, अग्नि से जलीहुई और दुर्गंध युक्तहो, उसकी मट्टी श्राद्ध ार्य्य में न लगावे जोलोग कुलका अपमान करते हैं, जो उद्योग करके कुलका नाश करते हैं, जो नंगे और पापी हैं, ऐसे दुष्ट लोग पितृ कार्य्य की हानि करते हैं । जो नपुंसक है, पितामाताने जिसको त्याग दिया है, और मुर्गा, ग्राम्य शूकर, कुत्ता, तथा निशाचर इन के दर्शनमात्रसे ही श्राद्ध भ्रष्ट हो जाता है । इसकारण भलीभांतिसे रक्षित होकर तिल बखेरे । हे तात ! ऐसा करने से दोनों की ही रक्षा होगी । सूत की, पुराना रोगी, पतित और पापी पुरुष से पितामह की तृप्ति नहीं होती है । उन को वर्जित करे और रजस्वला स्त्री का भी दर्शन श्राद्ध में नहीं करे । यजमान शिर मुँडेहुए और मदिरासे मत्तहुए पुरुष का स्पर्श न करे । केश और कीडे के छूने से दूषित, कुत्ते से देखाहुआ, दुर्गंधयुक्त, बासी और वस्त्र की हवासे नष्ट अन्न श्राद्धमें वर्जित है । परमश्रद्धायुक्त होकर पितरों के नाम और गोत्र के अनुसार जो कुछ दान कियाजाय, वही उन का भोजन होता है इस कारण श्राद्ध में पितरों की तृप्ति के निमित्त श्रद्धासहित श्रेष्ठ पदार्थ दान करे । विद्वान् पुरुष योगियों को भोजन करावे ! क्योंकि पितर केवल योगमें ही स्थित हैं इसकारण योगियों को सदा ही भोजन कराना उचित है । सहस्र ब्राह्मणों के स्थान में यदि एक योगी को भोजन करायाजाय, तो वह जलमें नौकाकी समान सब का उद्धार करता है ।

ब्रह्मवादी लोग इस विषय में एक गाथा कहते हैं पितरों ने पहिले इस फल के उद्देश से यह गाथा कही कि, कब हमारे वंश में ऐसा सर्वश्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न होगा, जो योगियों के भोजन से बचेहुए अन्न से हम को पृथिवीपर पिण्डदान करे । अथवा गया में हविःस्वरूप

दय और अस्त समय में सूर्य का दर्शन न करे। बालधोना, दर्पण देखना, दतोनकरना और देवताओं का तर्पण, यह सब कार्य पूर्व दिन में करनें चाहिये। ग्राम तीर्थ और क्षेत्र इन में जिस मार्ग को चलते हैं उस में, और जोतीहुई पृथिवी, तथा गोठ में मलमूत्र न करे नग्न स्त्री और अपनामल न देखे। रजस्वला स्त्री का दर्शन स्पर्शन और सम्भाषणत्यागदेय जल में मलमूत्र त्याग वा स्त्री प्रसङ्ग न करे। बुद्धिमान् मनुष्य मल, मूत्र केश; भस्म घटादि के कंकर, भूसी, अङ्गार, अस्थि, रस्सी, वस्त्र, मार्ग और पृथिवी इन सब के ऊपर कभी न बैठे। गृहस्थ प्रथम ऐश्वर्य के अनुसार देव, पितर, मनुष्य और प्राणियों की अर्चना करके फिर भोजन करे। आचमन करके पवित्र हो मौन धारण करे, और पूर्वाभिमुख बैठकर एकाग्रचित्त से अन्न भक्षण करे। उत्तेजना के अतिरिक्त किसी का और अपकार न करे। केवल लवण, और गरम अन्न, त्यागदेय। चलते और बैठते में मलमूत्र का त्याग न करे। आचमन करके फिर कुछ न खाय। जूठे मुख बातें वा वेदपाठ न करे, और गौ, ब्राह्मण, अग्नि तथा अपना शिर भी न छुए। चन्द्र, नक्षत्र इन सब को भी इच्छानुसार न देखे फटा आसन,टूटी शय्या और टूटेपात्रको त्यागदे अभ्युत्थानादि सत्कार करके बडे लोगों को आसन देय और प्रणाम करके उन के पीछे २ चले। कभी विपरीत वचन न बोले। एक वस्त्र से भोजन अथवा देवताओं की अर्चना न करे ब्राह्मणादि का वाहन न करे; अग्नि में मूत्र न करे; नंगा होकर कभी स्नान वा शयन न करे। दोनों हाथोंसे कभी शिर न खुजलावे,अकारण स्नान वा सदा शिर से स्नान न करे, शिर स्नान करके किसी अङ्ग में तेल न मले। अनध्याय में वेद पाठ न करे; ब्राह्मण, अग्नि, गौ, और सूर्य के सन्मुख कभी मलमूत्रादि त्याग न करे, दिन में उत्तर मुख और रात में दक्षिण मुख होकर, जिस स्थान में किसीप्रकार का भय न हो, तहां यथेच्छ मलमूत्र करै। मातापिता कोई पाप करें तो उस को किसी से न कहे; क्रुद्ध होने पर उन को प्रसन्न करै। और कोई पुरुष उन की निन्दा करे तो न सुने। ब्राह्मण, राजा, दुःखी, अपने से अधिक विद्वान् गर्भवती, गूँगा, अन्धा, बहिरा, उन्मत्त, व्यभिचारिणी शत्रु, बालक और पतित इन सब को मार्ग न देय। देवालय, चैत्यवृक्ष, चौराहा विद्याधिक गुरु, और देवता इन की प्रदक्षिण करे। दूसरे के पहिरेहुए, जूते, वस्त्र और माला आदि, तथा जनेऊ, गहने और कमंडल धारण और परिधान न करे। चौदस, आठें, पूर्णिमा और पर्व में तैल मर्द्दन और स्त्री प्रसंग न करे। बुद्धिमान् पुरुष चरण और जांघ फैलाकर न बैठे। चरणप्रचरण न रक्खे। किसी का मर्मभेद न करे। किसी की निन्दा वा चुगली न करे। पाखण्ड, अभिमान और तीक्ष्ण व्यवहार छोडदेय। मूर्ख, उन्मत्त, विपत्ति का माराहुआ, कुरूप, मायावी, न्यूनाङ्ग, अधिकाङ्ग नर का उपहास न करे। पुत्र और शिष्य की शिक्षा के निमित्त पराया दण्ड न लेय। चरणसे आसन खेंचकर न बैठे। भोजन केवल अपने ही निमित्त न बनावे। सायं और प्रातःकाल अतिथि सेवा करके दूसरों को

भोजन करावे । सावधानी से पूर्वाभिमुख बैठकर दतौन करे । वर्जित काष्ठादि की दतोन व्यवहार में न लावे । उत्तर या पश्चिम की ओर को शिर करके कभी शयन न करे । दुर्गंधयुक्त जल में तथा रात में कभी स्नान न करे । ग्रहणादि के समय में ही केवल रात में स्नान करे । स्नान करके वस्त्र वा हाथसे शरीरको न मले। भीगेकेश अथवा भीगेवस्त्र जोरसे न झाडे। ज्ञानी पुरुष विना स्नान किये कभी चन्दनादि क न लगावे । लाल,काला अथवा चित्रित वस्त्र न पहिरे । डुपट्टा और आभूषण उल्टे करके न पहिरे । केश और कीटयुक्त, कुत्ते आदि से देखाहुआ, चाटाहुआ और बिल्ली के उठाने से दूषित अन्न पीठ का मांस, वृथामांस, और वर्जनीय मांस भक्षण न करे ।

हे वत्स ! बासी और बहुतदिनों का रक्खाहुआ भात न खाय । केवल लवण सदा वर्जित है पिट्ठी, शाक, गन्ना, दूध, इन सब का अथवा मांस का विकार पुराना होनेपर भक्षण न करे । सूर्य्य के उदय और अस्त समय में शयन न करे । स्नान करके शयन न करे; बैठा बैठा भी न ऊँघे ; क्रुद्ध होकर भी शयन न करे । शय्या वा पृथिवीपर शब्द करके बैठना उचित नहीं । उत्तरीय विना पहिरे अथवा बात कहते२ वा, जो देखरहे हों उन को विना दिये भोजन न करे । सायं और प्रातःकाल में यथाविधि स्नान करके भोजन करे । विद्वान् परस्त्री गमन न करे । क्योंकि परस्त्री गमन करने से मनुष्यका इष्टापूर्त्त और आयुक्षय होता है । पुरुष के लिये परस्त्री गमन जैसा आयु का क्षय करनेवाला है, ऐसा और कोई कार्य्य नहीं । देवताओं की अर्चना और गुरुलोगों को सदा प्रणाम करे । आचमन करके भोजन करे । हे वत्स ! फेनहीन, गन्धहीन, मलहीन, पवित्र जल लेकर पूर्व, वा उत्तराभिमुख आचमन करे । जल के बीच से, वल्मीकसे, चूहे के बिल से, और शौच-क्रिया करके फेंकीगयी हो ऐसी मृत्तिकामें से मृत्तिका लेनी निषिद्ध है । सावधानचित्तसे हाथ पैर धोकर जानु झुकाकर बैठे, और जल लेकर तीन चार वेर आचमन करे । मुख को मार्जन करके क्रिया करे । देव, ऋषि और पितर इन का कार्य्य सदा यत्नसहित साधन करे । हिचकी आने पर, थूक फेंकने पर, और वस्त्र पहिरने पर आचमन करना उचित है । छींकना, चाटना, थूकना और वमन आदि होनेपर आचमन करे गो पृष्ठस्पर्श, सूर्य्यदर्शन और दक्षिणकर्ण का स्पर्श, करे । पूर्व पूर्व का अभाव होनेपर यथाक्रम से करे । पूर्वोक्त के अभाव में आगेर की क्रिया श्रेष्ठ है ।

दाँत द्वारा दाँत घिसना अथवा अपना देह ताडन न करे । दोनों संध्या में शयन, अध्ययन, भोजन, और संध्यासमय में मैथुन तथा प्रस्थान का त्याग करे । हे तात ! पूर्वाह्न में देवगणों का, मध्याह्न में मनुष्यों का और पराह्न में पितरों का भक्तिसहित पूजन करे । शिरःस्नान पूर्वक पितरों के और देवगणों के कार्य्य में प्रवृत्त होवे । पूर्व की ओर वा उत्तर की ओर मुख करके श्मश्रु कार्य्य करे । श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होनेपर भी रोगिणी, अङ्गहीन, विकृत, पीली, वाचाल वा सर्वदूषिता कन्या के साथ विवाह न करे । सर्वाङ्गसम्पन्न, सुन्दर

नासिकायुक्त, सर्वलक्षणशालिनी कन्या का पाणिग्रहण करे । पिता माता की सातवीं वा पांचवीं कन्या के साथ ही विवाह करना उचित है । स्त्री की रक्षा करे, ईर्षा त्याग करै, दिन में शयन और मैथुन न करे, जिससे दूसरे को सन्ताप उत्पन्न हो ऐसा कर्म भी त्याग दे। चाररात रजस्वलास्त्री का त्यागकरना सब वर्णों को ही उचित है । कन्या के जन्म की इच्छा न होतो पाँचवींरात में भी उस के साथ प्रसंग न करे । हे वत्स ! छटीरात में गमन करे । क्योंकि युग्मरात्रि ही श्रेष्ठ है । युग्मरात्रि में गमन करने से पुत्र और अयुग्म रात्रि में कन्या उत्पन्न होती है। इसकारण पुत्र की इच्छा होतो युग्मरात्रि में ही सदा स्त्री प्रसंग करना चाहिये। पूर्वाह्न में स्त्री प्रसंग करने से विधर्म्मी पुत्र का जन्म होता है, और सन्ध्याकाल में स्त्री प्रसंग करने से नपुंसक उत्पन्न होता है ।

हे वत्स ! क्षुरकर्म्म, वमन, स्त्री संभोग, और श्मशान भूमि में जानेपर वस्त्रसहित स्नान करे । देव, वेद, द्विजाति, साधु, सत्यशील, महात्मा, पिता, माता, पतिव्रता स्त्री, यज्ञशील, तपस्वी इन की निन्दा वा उपहास न करे । कोई अज्ञानी पुरुष उन की निन्दा करै तो उस को न सुने । श्रेष्ठ और नीच इन दोनों की शय्या और आसनपर न बैठे । अमङ्गल वेश धारण और कुवाक्य कथन सर्वथा वर्जित करे । सफेद वस्त्र धारण और सफेद पुष्प व्यवहारकरै ॥ उद्धत, उन्मत्त, मूढ, अविनीत, अशील, चौरी आदि से दूषित, बहुत खर्च करनेवाला, लोभी वैरी, व्यभिचारिणी, व्यभिचारिणीका पति, बलवान, नीच, निन्दित, हीन भावायुक्त, अविश्वासी, और प्रारब्धी इन सब के संग मित्रता वा सहवास करना पंडितों को उचित नहीं । सदाचारी साधुओं के संगही मित्रताकरे। बुद्धिमान, शक्तिमान् और कार्य्य में उद्योग करने वाले के साथही मित्रता करे । मित्र, दीक्षित, राजा, स्नातक, श्वसुर, इन छै पुरुषों की घर में आने पर पूजा करे । सम्वत्सरोषित द्विजातियों को अतंत्रितहोकर शक्ति के अनुसार मधुपर्क द्वारा उचित समय पर अर्चना करे, और कल्याण प्राप्त की इच्छाहोंने पर उन की आज्ञा में चले । उन के तिरस्कार करने पर भी बुद्धिमान् पुरुष उनके साथ विवाद न करे।

भलीभाँति गृहार्च्चना करके, उचितस्थान में यथा क्रम से अग्नि की विशेष रूप से पूजा और क्रमानुसारिणी आहुतिदे। ब्रह्म के उद्देश से प्रथम आहुति, प्रजापति के उद्देश से दूसरी, गुह्यगण के उद्देश से चौथी, और अनुमति के उद्देश से पाँचवी आहुति देकर गृह बलिदान करे । मैंने तुम से नित्य क्रिया कर्म विधि के उद्देश से जो कुछ कहाथा, उस ही के अनुसार वैश्वदेव बलिदान करनी चाहिये । उस बलि प्रकरण को सुनो । स्थान विभाग के अनुसार देवगणों के उद्देश से पृथक् पृथक् क्रम से बलिदेना उचित है । उस के निमित्त पृथिवी के धारक अनन्त और वायु इन के उद्देश से तीन बलि देकर पूर्वादि क्रम से सब दिशाओं को, उत्तर ब्रह्मा, अन्तरीक्ष, सूर्य्य, विश्वदेवगण, विश्वभूत, ऊषाभूतपति, इन को यथा क्रम से बलिदे । फिर स्वधा, नम, इस प्रकार कहकर पितरों के उद्देश से दक्षिण दिशा में बलिदान करे । फिर अपसव्य होकर अन्नावशेष कामना

से वायुकोण में चक्षैतत्ता, इत्यादि मंत्र से विधिपूर्वक जलदान करे। अन्नाग्र उत्थित और दन्तकार कल्पना करके, विधि और न्याय के अनुसार ब्राह्मणोंको दे। फिर अपने २ तीर्थ सहायता से यथा विधि कर्म्म निष्पादन में प्रवृत्त होवे। ब्राह्मतीर्थ द्वारा देवादि के उद्देश से आचमन करे। दहने हाथ के अंगूठे के उत्तर तरफ जो रेखा है, वही ब्राह्म तीर्थ है तर्जनी और अंगुष्ठ इन दोनों का अन्तर्भाग पितृ तीर्थ है। नान्दी मुख के अतिरिक्त और सब समय मेंही उस के द्वारा पितरों के उद्देश से जलादि दान करे। अंगुलि के अग्रभाग में दैव तीर्थ विराजमान है। उस के द्वाराही देव गणोंकी क्रिया विधि सम्पादन करे। कनिष्ठांगुलि के मूल में काय नामक तीर्थ है। उस के द्वारा प्रजापतिका कार्य्य सम्पादन करे। इस प्रकार उपरोक्त तीर्थों द्वारा देव और पितरोंका कार्य्य करना उचित है। अन्य तीर्थ से कभी न करे। ब्राह्मतीर्थ से आचमन करना श्रेष्ठ है। पैत्र तीर्थ से पितरोंका, दैव तीर्थ से देवगणोंका, और कार्य्य तीर्थ से प्रजापति का कार्य्य तथा नान्दी मुखकी पिण्डोदक क्रिया सम्पादन करे। चतुर मनुष्य जल और अग्नि एक साथ धारण न करे। गुरु और देवता के सामने कभी पैर न फैलावे। अञ्जलि द्वारा जलपान और बछड़े को स्तनपान कराती हुई गौ को न पुकारे। छोटाहो चाहेबड़ा पवित्र होकर कार्य्य सम्पादन करे। मुख अग्नि में फूंक न मारे। हे वत्स! जहां ऋणदाता, वैद्य, वेदपाठी और जलवाली नदी यह चारवस्तु नहीं हैं, वहां नहीं रहना चाहिये। जहां बलवान, शत्रुजित, धर्म्म परायण राजा का वासहो उसस्थान में सदारहे। दुष्ट राजा के राज्य में सुख कहां? जहां दुर्जय राजा रहता है, जहां की पृथिवी अन्नवाली है, जहां के पुरवासी, जितेन्द्रिय, न्याय मार्ग में प्रवृत्त और अभिमान शून्य हैं, उस स्थान में रहने से सुख मिलता है। जिस राज्य में किसान लोग अतिभोगी नहीं हैं, और जहां अनेक प्रकार की औषधि उत्पन्नहोती है, बुद्धिमान पुरुष उसी स्थान मे रहे। हे वत्स! जहां जीतने की इच्छावाला, पहिला वैरी और उत्सव मत्त यह तीन प्रकार के लोगरहते हैं वहां निवास न करे। बुद्धिमान मनुष्य सदा सज्जनों में निवास करे। हे पुत्र! तुम्हारे हित की इच्छा से मैंने सब कथा तुमसे कही। चौतीसवां अध्याय समाप्त।

पैंतीसवां अध्याय।

मदालसा बोली कि, अब त्याज्य और ग्राह्य द्रव्यों की अति क्रिया वर्णन करती हूं, सुनो। बासांअन्न, बहुत काल की रक्खी हुई चिकनी वस्तु, और स्नेह हीन जौ, गेहूं और गोरसका पदार्थ भक्षण न करे। खरगोश, कछुआ, गोधा, सजारू, गेंडार, इन का मांस भक्ष्य हैं, और ग्राम्य शूकर तथा मुर्गे का मांस अभक्ष्य है। ब्राह्मणों के निमित्त श्राद्ध में पितरों का जो शेष रहे और देव यज्ञादि में दियाहुआ, तथा औषधि के निमित्त संग्रहीत मांसखाने में दोषनहीं।

शंख, पत्थर, सुवर्ण, चाँदी, रस्सी, वस्त्र, शाक, मूल, फल, द्विदल, चमड़ा, मणि, वज्र, प्रवाल, मुक्ताफल और मनुष्य शरीर यह सब जल से धोने सेही शुद्ध होजाते हैं। जल द्वारा,

लोहे के बने द्रव्य के संघर्षण द्वारा, और पत्थर के गरम जल द्वारा चिकने पात्रों की शुद्धि होती है। सूर्प, धान्य, अजिन, मुपल, ओखली, और वस्त्र यह सब जल में डुबाकर धोने से शुद्ध होते हैं। सब प्रकार के वक्कल, मट्टी और जल के संयोग से शुद्ध होजाते हैं। तृण, काष्ठ और औषधि सब की प्रोक्षण से शुद्धि करे। मेंढे के रुएंका वस्त्र, और केश जल मिलेहुए सरसों या तिलके कल्क द्वारा पवित्र होते हैं। जल और भस्म द्वारा कपास के वस्त्र शुद्ध करे। काठ, दाँत, अस्थि, सींग इन सब के भक्षण द्वारा शुद्धि प्राप्त होती है। मृत्तिका के बनेहुए पात्रादिक पुनः पकाने से शुद्ध होते हैं। भिक्षाद्रव्य, शिल्पकार का हाथ, वेश्या और स्त्री का मुख स्वभाव सेही शुद्ध है। रथ्यागत, अविज्ञात, सेवकों द्वारा लायाहुआ द्रव्य वाक्य मात्र सेही शुद्ध होजाता है। वहुतभारी, वालक, वृद्ध और रोगीका कार्य्य स्वभाव सेही शुद्ध है। कर्म्म के अन्त में अङ्गारशाला, जिस के वालकने अभीतक स्तनपीना न छोड़ाहो ऐसी स्त्री, गंध, और ववूले रहित वस्त्र, और सोते का जल अशुद्ध नहीं है। लेपन, उल्लेखन, जलसेक, सम्मार्जन और अर्चन द्वारा निजघर शुद्ध होता है। मृत्तिका, जल, और भस्म द्वारा धोने से, कीड़े के छुए केश, गौ द्वारा सूंघा हुआ और मक्खी युक्त स्थान वा द्रव्य शुद्ध होता है। अम्ल द्वारा उदुम्बर के बनेहुए द्रव्यों की क्षार द्वारा राँग और सीसक की, भस्म और जामन द्वारा काँसे की मृतिका और जल द्वारा अमध्याक्त द्रव्यों की गन्धहरण करने से तथा अन्यान्य द्रव्यों का वर्ण और गंध दूर करने से शुद्धिहोती है। पृथिवी में स्थित, विकार हीन, और गौओं की तृप्ति करने वाला जल शुद्ध है। चण्डाल और क्रव्यादादि द्वारा गिराया हुआ भक्ष्यजीवका मांस भी स्वभाव शुद्ध है। हे तात! मार्ग में गिराहुआ चेलादि वायु द्वाराही शुद्ध होते हैं। धूलि, अग्नि, घोड़ा, छाया, सूर्य्य चन्द्रादि की किरणें, वायु पृथिवी, विन्दु और मछली आदि दुष्ट संसर्ग से भी दूषित नहीं होते। वकरी और घोड़ा इनका मुख शुद्ध है। वछड़े का मुख शुद्ध नहीं है। गोमाताका मूत्र और गोवर शुद्ध है। पक्षियों से गिराहुआ फलभी शुद्ध है। आसन, शयन, यान नौका, मार्ग के तृण, यह सब पदार्थ चन्द्रसूर्य्य की किरण और वायुकी सहायता से पण्य द्रव्य की समान शुद्धहोते हैं। मार्गचलना, स्नान क्षोतन, पान मूत्र और पुरीषादि विसर्जन, इत्यादि घटना में वस्त्र वदलकर आचमन करे। मार्ग, कीचड़, जल, ईंट और गारे के वनेहुए पदार्थ किसी दूषित पदार्थ के संसर्ग से दूषित होनेपर, वायुलगने से ही शुद्ध होजाते हैं। अन्न के ढेर का कुछ अंश दूषित होने पर अगलाभाग उठाकर त्याग दे। शेष अंश को अंचम करके जल और मृत्तिका द्वारा प्रोक्षण करने से शुद्धिहोती है।

दूषित वस्तु अज्ञान पूर्वक भक्षण करने पर तीन रात्रि व्रत करे, जानकर उसका भक्षणकरे तो उस दोषका यथोचित प्रायश्चित्त करनाचाहिये रजस्वला स्त्री, घोड़ा और शृगालादि, सूतिक, चाण्डाल, शव लेजानेवाला इन का स्पर्श करने पर शौचार्थ स्नान करै। स्नेहयुक्त मनुष्य अस्थि स्पर्श करके, स्नान करनेपर शुद्ध होता है। स्नेहहीन अस्थि छूनेपर आचमन पूर्वक

गोस्पर्श और सूर्यदर्शन करे । तब ही शुद्ध होगा । बुद्धिमान् पुरुष, रक्त, थूक और उगलन छेदन और अकाल में वगीचे में न रहे । लोक निन्दित और अवीरा स्त्री के साथ वातचीत न करे। उच्छिष्ट, विष्ठा, मूत्र और चरण धोएका जल बाहर फेंके । पाँच पिण्डका विना उद्धार किये पर जल में स्नान न करे । गंगा, सरोवर और नदी, और देवखात सब मेंही स्नान करे । देवता, पितर, सत्शास्त्र, यज्ञ, मंत्र इत्यादि की जो लोग निन्दा करते हैं उनको छूने बोलने पर सूर्य्य के दर्शन से शुद्धिहोती है। रजस्वला, चण्डाल, पतित, शव, विधर्म्मी, नवप्रसूता, नपुंसक, वस्त्रहीन और अन्त्यवसायी प्रसन्न द्रव्यों के बाहर निकालने वाले, परदारपरायण इन को देखने पर बुद्धिमान् पुरुष उसी प्रकार सूर्य्य का दर्शन करके शुद्ध होवे। अभोज्य-पदार्थ, नवप्रसूता स्त्री, नपुंसक, बिलाव, चूहा, कुत्ता, मुर्गा, पतित, त्यागाहुआ, दूषित द्रव्यादि, चण्डाल, मृतहारक, ऋतुमती और ग्रामीण शूकर, सूतिकाशौच दूषित पुरुष, इन सब को छूनेपर स्नान करने से शुद्ध होता है । जिसका निसदिन नित्यकर्म्म की हानिहो, जिसको ब्राह्मणोने त्यागदिया है, वह नराधम और पापी है। इस कारण नित्यकर्म्म की कभी हानि न करे । केवल मरण और जन्म समय में इसके न करने में दोष नहीं है । मरण और जननशौच में ब्राह्मण दश दिनतक दान होमादि नित्यकर्म्म न करे । क्षत्रिय वारहदिन, वैश्य पन्द्रहदिन, और शूद्र एक मासतक नित्य कर्म्म को छोड़दे । इसके अनन्तर सब वर्णोंही शास्त्र के अनुसार अपना कार्य्य करें । स्वगोत्रिय मृतदेह को बाहर दग्ध करें । पहिले, चौथे, सातवें और नवेंदिन प्रेत के उद्देश से जलदान तथा भस्म और अस्थिचय न करे । इकत्र करने के उपरान्त उन का अंगछुए । समानोदक पुरुष अस्थि संचयन के पीछे सम्पूर्ण क्रियासम्पादन करे । मृत्यु के दिन सपिण्ड, समानोदक और गोत्रियों को स्पर्श करना उचित है । शस्त्र, जल, उद्बंधन, अग्नि, विष, प्रपात इत्यादि से मरने पर गोत्रज और समानोदक वालोंको एक नक्षत्रतक आशौच है । बालक, देशान्तर स्थित और प्रव्याश्राम में प्रविष्ट पुरुष के मरण में सद्यशौच है। कोई २ तीनदिन आशौच कहते हैं । एक की मृत्यु के पीछे यदि उस आशौचमेंही एक और सपिण्ड की मृत्युहो, तोपहिले व्यक्तिका मृत्युदिन लेकर ही दूसरे के आशौचान्त आदि कार्य्य सम्पाद न करने चाहिये । जन्म वा सूताकाशौच मेंभी सपिण्ड और समानोदक वालोंको इसी विधि का अनुसरण करना चाहिये । पुत्र उत्पन्न होनेपर पिता वस्त्र सहित स्नान करे । एक के उत्पन्न होनेपर दूसरा और उत्पन्न होतो प्रथमवाले के दिनमेंही शुद्धि करनी चाहिये। सब वर्णही विधिपूर्वक दश, वारह, पन्द्रहदिन, और एक मासका आश्रय करके अपने २ वर्ण के अनुसार क्रिया सम्पादन करें । अनन्तर प्रेत के उद्देश से एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे । उस समय बुद्धिमान, ब्राह्मणोंको प्रेत के उद्देश से दानदे । दान करने से उसका अनन्त फल मिलता है । दिनपूरे होनेपर सब वर्णही जल, वाहन, शस्त्र, प्रतोद और दण्डछूकर विधिपूर्वक क्रिया करें । अपने वर्ण धर्म्म के अनुसार

क्रिया करने से दोनोंलोक में कल्याण प्राप्त करसकता है । नित्य वेदपाठ करे, भलीभांति हिताहित विचारे, धर्म्म के अनुसार धन उपार्जन करे, और यत्न पूर्वक यज्ञ क्रिया में तत्पर होवे । हे वत्स ! जिसके करने से आत्मा प्रकाशित होती है, ऐसे कार्य्यका अनुष्ठान करे । उस में शङ्का न करे । जो महात्माओं का गोपनीय नहीं है उसके सम्पादन मेंभी निःशंक प्रवृत्त होवे । गृहस्थ पुरुष ऐसा आचरण करने से, धर्म्म, अर्थ और कामसिद्धि के साथ दोनोंलोक की मंगल सम्पत्ति प्राप्त होती है । पैंतीसवां अध्याय समाप्त ।

छत्तीसवां अध्याय ।

पुत्र बोला कि—माता के ऐसा उपदेश करने पर ऋतध्वजनन्दन ने यौवन में प्रवेश करके विधिविधान विवाह किया । पुत्रादि उत्पन्न और यज्ञों का अनुष्ठान करके सदा पिता की आज्ञापालन में तत्पर रहा । फिर बहुतकाल के पश्चात् वृद्धावस्था प्राप्त होने पर ऋतध्वज ने स्त्री सहित बनजाने की इच्छा से उस को राज्य में अभिषिक्त किया । तब मदालसा ने पुत्रकी कामोपभोग निवृत्ति इच्छा से उस को यह शेष वचन कहा कि—हे वत्स! गृहस्थ स्वभाव से ही ममता परायण हैं । इसकारण दुःख का आधार है । इसकारण गृहधर्म के अनुसार राज्य करते २ जब तुम को प्यारे बंधुओं के विरह का, अथवा शत्रुओं के आघात का, अथवा धन नाश का असह्य दुःख उपस्थित होगा, उस समय मेरी दीहुई इस अंगूठी के भीतर से सूक्ष्म अक्षरों का पत्र निकालकर शासन पाठ करोगे । यह कहकर उसने मणिमय अंगूठी देकर गृहस्थोचित आशीर्वाद दिया । इस के अनन्तर कुवलयाश्व और देवी मदालसा पुत्र को राज्य देकर, बन में तप करने के निमित्त चलेगये । छत्तीसवां अध्याय समाप्त ।

सैंतीसवां अध्याय ।

धर्मात्मा अलर्क न्यायमार्ग में तत्पर होकर पुत्र की समान प्रजा का पालन करनेलगा । प्रजा के लोग अपने २ कार्य में प्रवृत्त हुए । उस ने दुष्टों को दण्ड और शिष्टों का पालन करतेहुए प्रीतिलाभ और यज्ञसम्पादन किये । उस के और उससे उत्पन्न हुए सब ही पुत्र पराक्रमी, धर्मात्मा, महात्मा और कुमार्ग के द्वेषी थे । वह आत्मजय के साथ धर्म के साथ अर्थ का और अर्थ के साथ धर्म का पालन, और इन दोनों के अविरोध में विषयभोग करनेलगा । इसप्रकार धर्म, अर्थ, और काम को ऐकान्तिक चित्तसे अनुसरणपूर्वक पृथिवी का पालन करते हुए उस को बहुत से वर्ष एकदिनकी समान वीते । परमप्रीति के स्थान अनेक विषय भोगकर भी उसको वैराग्य उपस्थित और धर्म अर्थ उपार्जन करके भी अहङ्कार बुद्धि नहीं थी ।

उस का सुबाहु नामक जो भ्राता बनवासी हुआ था, उसने सुना कि अलर्क विषय सुखभोग में मतवाला और इन्द्रियों के अधीन होगया है । इसकारण उसने उस को तत्वज्ञान उत्पन्न कराने की इच्छा से बहुत देर तक विचार किया, अन्त में उस के शत्रुओं का आ-

श्रय लेनाही उचित समझा। तब उसने स्वयं राज्यप्राप्ति के निमित्त कासिराज की शरण ली। उस के अनुसार काशीनरेश ने अलर्क के प्रतिकूल सेना सजाकर दूत द्वारा यह कहला- भेजा कि-तुम सुबाहु को राज्य देदो।

धर्मात्मा अलर्क ने उस में सम्मत न होकर काशिराज को उत्तर दिया है कि-मेरे बडे भ्राता मेरे पास आकर मित्रता सहित राज्य मांगें। नहीं तो आक्रमण के भय से मैं स्वल्प पृथिवी भी नहीं दूंगा। श्रीमान् सुबाहु ने याचना नहीं की। क्योंकि मांगना क्षत्रियों का धर्म नहीं है। केवल वीर्य ही उस का धर्म वा अवलम्बन है। अनन्तर काशिराज सब सेना से घिरकर अलर्क का राज्याक्रमण करने को उद्यत हुआ, और उसके अन्तरङ्ग लोगों के साथ मिलकर उस को आक्रमण द्वारा वशीभूत किया। राज्य में प्रवेश करके मंत्रियों को पीडित, दुर्गपाल और आटविक लोगों को वश में किया। किसी को धन से, किसी को भेद से और किसी को साम से अधीन किया। इस प्रकार शत्रु द्वारा पीडित होने से अलर्क दुर्बल और निर्धन होगया। नगर भी शत्रुओं से घिरगया। दिन कोषक्षय, और शत्रु पीड़न, इन दो कारणों से वह अत्यन्त व्याकुल और दीन होगया। उस समय माता मदालसा ने जिस की बात कही थी वह अंगूठी उसे यादआई। तब उसने स्नान द्वारा पवित्रहो स्वस्तिवाचन किया। फिर उस कपड़े में बंधेहुए शासनको निकालकरदेखा और माताने जोकुछ स्पष्टाक्षरों में लिखा था उसकोपढा। उससे उसका शरीर पुलकित और नेत्र प्रफुल्लित होगए। उस में लिखाथा कि, आन्तरिक हृदय से संगका त्यागकरो। यदि न त्यागसको तो सज्जनों के संग रहना। क्योंकि साधुसंगही परम औषधि है। और आन्तरिक हृदय से कामभी त्याग करना। यदि त्याग न करसको तो मोक्ष कामना के ऊपर उसको करना। यही उस की औषधि है। इस प्रकार उस शासनको वारम्वार पढ़कर क्या करने से लोगों का कल्याण होसकता है, यह स्थिर करके साधुसंगकी चिंता करनेलगा, केवल मोक्षही कल्याण प्राप्तिका उपाय है, और साधुसंग करने सेही वह मोक्ष प्राप्त होसकती है, ऐसा वारम्वार विचारकर दत्तात्रेय के निकटगया। उसने पापहीन, सङ्गहीन, महानुभाव दत्तात्रेय को प्रणाम करके उनकी पूजाकी, और बोला कि, हे ब्रह्मन्! आपशरणार्थियों के आश्रय और रक्षाकरता हैं मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये। मैं विषय वासना के वशीभूत होंने से बहुत व्याकुल होगयाहूं। मेरे दुःखको दूर कीजिये। दत्तात्रेय बोलेकि, हे राजन्! मैं आजही तुम्हारा दुःख दूर करूंगा। इस समय सत्यकहो कि, तुमको किस कारण दुःख उपस्थित हुआ है? महात्मा दत्तात्रेय के ऐसा कहने पर राजा दुःखका स्थान और आत्मा इनदोनों विषय की चिन्ता करनेलगा। बहुत समयतक आत्मा द्वारा आत्म विचार करके उस उदार बुद्धि, धीरस्वभाव राजाने हँसकर कहाकि, मैं पृथिवी, जल, आकाश, अग्नि और तेज कुछभी नहीं हूं। किन्तु मैं शरीर का आश्रय करके सुख की इच्छा करताहूं। इस पंचभूतात्मक शरीर में सुख और दुःख दोनों कीहीं न्यूनाधिकता

उपस्थित होती है । यदि ऐसा है तो इस में मेरीहानिही क्या है ? क्योंकि मैं शरीर नहीं हूं उससे स्वतंत्र हूं । मेरा न्यूनाधिक नहीं । मुझको सदाहीं सद्भाव है । सुख और दुःख केवल मनकाही धर्म्म है । मैं जब वह मन नहीं हूं तो मुझको सुख और दुःख कुछभी नहीं । मैं अहङ्कार, मन और बुद्धिभी नहीं हूं, इस कारण मुझको अन्तःकरण से उत्पन्न हुए दुःखकी भी संभावना कहां ? क्योंकि मैं मन शरीर नहीं हूं, शरीर और मन दोनों से ही मैं भिन्न पदार्थ हूं । क्योंकि–सुख, दुःख चाहे मन में हों वा शरीर में हों उस से मेरी हानि लाभ क्या है ? इस देह का अग्रज ही राज्यकामना करता है । यह शरीर जब पंचभूत की समष्टि है, तो पुण्य प्रवृत्ति में मेरा क्या प्रयोजन है ? मैं और मेरा वह भ्राता दोनों ही शरीर से भिन्न हैं । जिस का हस्तादिक कोई अङ्ग नहीं; मांस अस्थि और शिर भी नहीं, उस को हाथी, घोडा और रथादि से क्या प्रयोजन है ? पुरुष का इस शरीर से किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नहीं । इसकारण मेरे शत्रु भी नहीं, तथा दुःख, सुख, पुर, कोष, हाथी, घोडा और सेना भी नहीं है । जैसे मेरा यह सब नहीं है, वैसे ही मेरे भ्रात वा और किसी का भी यह नहीं है । आकाश जैसे एक होने पर भी, घड़ा और कमण्डल आदि पात्र: भेद से बहुत प्रकार का दीखता है, उसीप्रकार आत्मा एक होने पर भी सुबाहु, काशिराज, और मैं इत्यादि शरीरभेद से अनेक देहों में स्थिति करके अनेक बोध होता है । सैंतीसवां अध्याय समाप्त ।

अड़तीसवां अध्याय ।

पुत्र बोला, अनन्तर राजा ने महर्षि दत्तात्रेय को प्रणाम करके विनययुक्त वचनों से निवेदन किया कि–हे ब्रह्मन् ! दिव्य दृष्टि का उदय होने से मुझ को अब कुछ दुःख नहीं है । असमदर्शी लोग ही सदा दुःखसागर में मग्न रहते हैं । पुरुष की बुद्धि जिस २ विषय में आसक्त हो । उस उस विषय से दुःखसंग्रह करके उस को दे । घर का मुर्गा बिलाव द्वारा भक्षण करने पर लोगों को जैसा दुःख होता है, ममताहीन मूषिक को खाने पर वैसा दुःख नहीं होता । मैं प्रकृति से परे हूँ इसकारण मुझ को सुख दुःख कुछ भी नहीं । प्राणियों में जो अहम्भाव है, वही सुख दुःख का स्थान है ।

दत्तात्रेय बोले, हे पुरुष सिंह ! तुमने जो कुछ कहा वही ठीक है । ममताही दुःख का मूल, और ममता शून्य होना ही सुखका कारण है । मेरे प्रश्नमात्र सेही तुमको ऐसा श्रेष्ठज्ञान उत्पन्न हुआ है, जिसके प्रभाव से तुम्हारी ममता बुद्धि से मलकी रुईकी समान उड़गई । हृदय में स्थित अहङ्कार वृक्षस्वरूप है । अहङ्कार अंकुर से उसकी उत्पत्ति है ममता उस के गुद्दे, घर और क्षेत्रऊंचीशाखा, पुत्र, स्त्री आदि पत्ते, धन और धान्य महापत्र, पाप और पुण्य प्रधान पुष्प, सुख और दुःख महाफल, और लोग मोहयुक्त होकर जो अनेक संबंध बांधते हैं, वही उसका जलसेचन है । यह वृक्ष बहुत काल से बढरहा है, और मुक्तिका मार्ग रोकेहुए है । इच्छारूपी बहुत से भौंरे उसके ऊपर गूंजरहे हैं । जो मिथ्या सुख के अधीन और

संसाररूपी मार्गसे थककर उस वृक्षकी छायाका आश्रय करते हैं, उनके मुक्तहोंने की संभावना नहीं ! जो लोग विद्यारूप कुठारको साधुसंग रूप पाषाण द्वारा तीक्ष्ण करके ममता वृक्षको काटते हैं, वेही उसमार्ग में चलकर ब्रह्मरूप कानन में प्राप्तहोते हैं । यह वन अत्यन्त शीतल, रज और काँटे शून्य है । उसमें प्राप्त होंनेपर वृत्तिहीन होकर, परमबुद्धि और निर्वृति दोनोंही प्राप्त होजाती हैं । हे राजन् ! तुम या में कोईभी भूतेन्द्रियमय अथवा स्थूल भावयुक्त नहीं हैं । फिर हमलोग तन्मात्र और तमोमयभी नहीं हैं, हे राजेन्द्र ! हमदोनों में से किसी कोभी प्रकृतिमय देखतेहो ? क्योंकि क्षेत्रज्ञ प्रकृति के परे और पञ्चभूत के समवाय से निर्मित पदार्थ मात्रही गुणमय अर्थात् प्रकृति के विषयी भूत हैं । मच्छर और उदुम्बर, इषिका और मुञ्ज, तथा मछली और जल यह एक होंने परभी जैसे पृथक् हैं, क्षेत्र और आत्माभी उसी प्रकार दीखता है ।

अलर्क बोला, हे भगवान् ! आपके प्रसाद से मुझको ऐसा श्रेष्ठज्ञान उत्पन्न हुआ । इससे मेराप्रधान और चित्शक्ति ज्ञान प्रकाशित हुआ है । किन्तु मन विषयों में फँसारहने के कारण स्थिरता प्राप्त करने में समर्थ नहीं होता, और प्रकृति के वन्धन से कैसे छुटूंगा यह भी नहीं जानसकता । क्या करने से पुनर्जन्म नहीं होसकता ? किस उपायसे निर्गुणता प्राप्त होतीहै ? क्या उपाय करने से शाश्वत स्वरूप ब्रह्म में एक साथ मिलसकता है ? ऐसेयोग का मुझको भलीभाँति से उपदेश कीजिये । आप परमज्ञानी हैं । मैं प्रणाम करके आपके निकट विनय पूर्वक इस विषय की प्रार्थना करताहूं । देखो आपकी समान सज्जनों का संसर्ग स्वाभाव सेही मनुष्य मात्रका उपकारीहै। अड़तीसवां अध्याय समाप्त.

उनतालीसवां अध्याय ।

दत्तात्रेय बोले, योगमार्ग में प्रवृत्त होकर, ज्ञानप्राप्ति के साथ जो अज्ञान का वियोग होता है उसकाही नाम मुक्ति है । और प्राकृतिक सब गुणों के साथ किसी प्रकारकी ऐक्यता स्थापन न करना ही साक्षात् ब्रह्म के साथ एकता कहतेहैं । हे राजन् ! योगसे मुक्ति प्राप्तहोती है, श्रेष्ठज्ञान से योगउत्पन्न होता है, दुःख से श्रेष्ठ ज्ञानका आविर्भाव होता है, और चित्त ममता में आसक्त होनेपरही दुःख की उत्पत्ति होतीहै । इसकारण मुक्ति की इच्छा करनेवाला पुरुष सबप्रकार से विषयासक्ति का त्यागकरे । विषयासक्ति के नष्ट होते ही ' मेरा ' यहज्ञान भी दूर होजाता है । ममतानष्ट होनेपरही सुख मिलता है, और वैराग्य का उदय होनेपरही संसार की क्षण भंगुरता और असारता आदि दोष प्रत्यक्ष मालूम होजाते हैं । ज्ञान से जैसे वैराग्य होता है, ज्ञानभी वैसेही वैराग्यमूलक है उसकाही नामघरहै । जहां निवास कियाजाय; उसकाही नाम भोजन है, जिस के द्वारा प्राण धारण होता है; उसी का नाम ज्ञान है जिस से मुक्ति प्राप्त होती है, इसके अन्यथा होनेपरही अज्ञान कहते हैं । हेराजन् ! पाप और पुण्यका भोगहोने निष्काम कर्म्मका अनुष्ठान करने, पूर्व संचित कर्म्म का क्षय और अपूर्व कर्म्म का सञ्चय करनेपर बारम्बार शरीर का वन्धन नही होता । हे राजन् ! यह जो तुमसे कहा, इस का

ही नाम योग है। यह योग प्राप्त होनेपर योगी पुरुष ब्रह्म भिन्न और किसी का आश्रय न करे पहिले आत्माद्वारा आत्मा को जीते । क्योंकि यह आत्मा योगियों को दुर्जय है । इस के जीतने का यत्न करे । उसका उपाय कहता हूँ, सुनो ।

प्राणायाम से दोष, धारणा से पाप, प्रत्याहार से विषय और ध्यान से अनीश्वर गुणों को दग्धकरे । जैसे जलाने से पर्वत से उत्पन्नहुई धातुओं के दोष दूर होजाते हैं, वैसेही प्राणवायु जीतनेपर इन्द्रियों के सम्पूर्णदोष जलजाते हैं। योगी पुरुष पहिले प्राणायाम साधन में प्रवृत्त होवे । प्राण और अपान इनदोनों वायु के निरोधकोही प्राणायाम कहते हैं । प्राणायाम तीनप्रकारका है लघु, मध्य और उत्तरीय हे अलर्क ! इस का प्रमाण कहता हूँ सुनो लघु प्राणायाम बारह मात्रायुक्त मध्यम प्राणायाम उसका दूना और उत्तरीय प्राणायाम उसका तिगुना कहागया है ।

निमेष और उन्मेष इनदोनों का जो समय है वही मात्रा का काल है । पहिले प्राणायाम द्वारा स्वेदजीते, दूसरे से वेपथु, तीसरे प्राणायाम द्वारा विषाद इत्यादि दोष यथा क्रम से जीतने चाहियें । सिंह, हाथी जैसे सेवा द्वारा मृदुभाव अवलम्बन करते हैं, प्राण भी उसीप्रकार सेवा के साथ योगी के वशीभूत होजाते हैं । हाथीवान् जैसे वशीभूत मतवाले हाथी को भी इच्छानुसार चलाता है; वैसेही प्राणसिद्ध होने पर योगी स्वच्छन्दता से अपनी इच्छानुसार कार्य्य करासकता है । सिंह साधित होनेपर जैसे मृगादिक को नाश करता है; मनुष्य को नहीं, वैसे ही वायु सिद्ध होनेपर पापकाक्षय होता है, शरीर का नहीं । इसकारण योगी पुरुष विशेष उद्यमके साथ प्राणायाममें तत्पर होवे । अब प्राणायाम की चार अवस्था कहता हूं, सुनो ! उस की साधना करलेनेपर मुक्ति फल मिलता है । हे राजन् ! ध्वस्ति, प्राप्ति, सम्वित् और प्रासाद, यह चार प्राणायामकी अवस्था हैं। अब प्रत्येकका स्वरूप यथाक्रमसे कहता हूं, सुनो। जिस अवस्था में अच्छे और बुरे कर्म्मों का फल संक्षेप से मिलता है और इस के साथ ही अन्तःकरण की मलीनता दूर होती है, उसका नाम ध्वस्ति है। जिस अवस्था में योगीपुरुष लोभ और मोह से उठेहुए इस लोक और परलोकके कामसमूह का सदा स्वयं निरोध करता है, उसका नाम प्राप्ति है । जिस अवस्था में योगी ज्ञान की अधिकता के कारण चन्द्र, सूर्य्य, गृह और नक्षत्रोंका समानप्रभाव प्राप्तकरके, भूत, भविष्यत्, अदृश्य और दूर का विषय जानलेता है उसका नाम सम्वित है। और जिस के द्वारा योगी का मन पञ्चवायु, इन्द्रिय और इन्द्रियोंके विषय समूहका प्रासाद अर्थात् शुद्धि प्राप्तकरता है उसका नाम प्रासाद है । हे राजन्! प्राणायाम का लक्षण और योगचर्य्या में प्रवृत्त होनेपर उसके आसनकी विधि कहता हूं, सुनो ! पद्मासन, अर्द्धासन, स्वस्तिका सन, इत्यादि आसन आश्रय करके मन २ में ओंकार का जप करता हुआ योगचर्य्या मेंप्रवृत्त होवे। समभाव और समआसन से बैठ, दोनों चरण सिकोड, मुख ढकाहुआ और दोनों जंघा अग्रभाग में स्थापित करके संयत चित्त से ऐसी स्थिति करे, दोनों हाथोंसे

जिस से अंडकोष न छुएजायें। उससमय मस्तक को कुछेक ऊपर उठाले। दाँतसे दाँतका स्पर्श न होंनेदे केवल अपनी नासिका का अग्रभागदेखता रहे। इस के अतिरिक्त किसी ओर को दृष्टि न डाले। उस अवस्थामें रजोगुणसे तामसिक वृत्ति का,सतोगुण से राजस वृत्तिका संहार करके केवल निर्मलतत्व का विचार करता हुआ योगी पुरुष योगाभ्यास में तत्पर होवे। क्रम से इन्द्रियों को इन्द्रिय विषय से मन और प्राणादि के सहित आकर्षित करके प्रत्याहार में प्रवृत्त होवे। कछुआ जैसे अपने सब शरीर को सिकोड लेता है, उसी प्रकार सब मनोरथों को सिकोडकर केवल आत्मा में ही सदा आसक्त और एकाग्र होवे, ऐसा करनेपर आत्मा को आत्माद्वारा देखा जासकता है। ज्ञानवान योगीकंठ से नाभितक बाहर और भीतर पवित्रता करके प्रत्याहार का अभ्यासकरे।

आत्मा संयत करके योगसाधन में तत्पर होंने से योगियों के सब दोष नष्ट होजाते हैं, और अत्यन्त शान्ति प्राप्त होती है, प्राकृतगुण और परब्रह्म इन का परस्पर पृथक्रूपसे दर्शन होता है और व्योमादि परमाणु, तथा पापरहित शुद्धस्वरूप आत्माका भी वह प्रत्यक्ष दर्शन करता है। इसप्रकार योगीपुरुष नियमित भोजन करके प्राणायाम में तत्पर होवे, और धीरे२ योग भूमि जीतकर अपने घरकी समान उस में आरोहण करे। भूमिजय न करसकने से, उस के द्वारा काम क्रोधादि सम्पूर्ण दोष, रोग, और मोह बढता है। इसकारण भूमि विना जय किये उस में आरोहण न करे। जिसके द्वारा पञ्चप्राण अधीन वा संयत होते हैं, उसका नाम प्राणायाम है। जिस के द्वारा मन को धारण अर्थात् निजपद में प्रतिष्ठित करके, आत्म दर्शन किया जाय, उसका नाम धारणा है। यती पुरुष जिस अवस्था मे इन्द्रियों को उन के विषय से लौटाता है, उस का नाम प्रत्याहार है। योग परायण महर्षियों ने इस विषय में जो उपाय बताया है, उसका अनुसरण करने से योगी के शरीर में रोगादिक दोष उत्पन्न नहीं होसकते हैं। प्यासा पुरुष जैसे यंत्र नलादिकी सहायतासे धीरे २ जलपीता है, योगी उसीप्रकार परिश्रम के साथ वायुपानकरे। पहिले नाभि में फिर हृदय में अनन्तर यथा क्रम से कण्ठ,मुख, नासिका का अग्रभाग नेत्र, भ्रू मस्तक इन में और अन्त को परात्पर ब्रह्म में यह दश प्रकार की धारणा कही गई हैं। यह दशप्रकार की धारणा प्राप्त करके साक्षात् ब्रह्मस्वरूपता प्राप्त की जासकती है। उस की फिर मृत्यु नहीं होती, जरा, (वृद्धावस्था) श्रम, क्लेश, विषाद भी दूर होजाता है। तब वह तुरीय पद में स्थिति करता है; इसकाही नाम योगभूमि है। यह योगभूमि सातप्रकार की है; इसमें आरोहण करने से ब्रह्मपद की प्राप्ति होती है, इस में सन्देह नहीं। भूक, थकावट और चित्तकी चञ्चलता, इन सब उपद्रवोंके रहते योगी कभी योग चर्य्या में प्रवृत्त न होवे। अतिशीत वा ग्रीष्मकाल में भी ध्यान परायण होकर योगसाधन न करे।

अग्नि और जल के समीप, कोलाहल से भरे हुए स्थानमें,पुराने गोठ में चौराहे में, सूखेपत्तोंमें, नदी के तटपर, हत्यारेजीवों से युक्त श्मशान में, जहाँ भयकी सम्भावना हो ऐसे स्थान

में कुए के पास, अथवा चैत्य और वंबई के समीप भी योगाभ्यासन करे । सात्विक भावकी भलीभांति सिद्धि वा स्फुरण न होनेपर देशकाल का विचार न करे । क्योंकि असत् का कभी योगसाधन नहीं होता इस कारण उस को वर्जित करे । स्थानगुण और कालगुण से मन का भावान्तर, शुद्धि और दृढताहोती है और मन जब सतोगुण के उदय से ब्रह्ममय होजाय उस समय देशकाल के विचार करने का क्या प्रयोजन है? जो पुरुष मूर्खता से देशकाल का विनाविचार किये योगाभ्यास में प्रवृत्त होता है, उस को वह सब दोष उत्पन्न होकर योग साधन में विघ्नडाल देते हैं, वह बहरा, जड़, बोवला, स्मरणशक्ति शून्य और अन्धा होजाता है, तथा उस को शीघ्र ही ज्वर आजाता है । यदि प्रमाद से यह सब दोष उत्पन्न होजायें, तो उन की शान्ति के निमित्त यथेच्छ चिकित्सा करनी चाहिये, वह भी कहताहूँ, सुनो । यवागु को गरम और चिकनी करके भोजन करने से वात गुल्म की शान्ति होती है । जिस २ शरीर में रोग हो, उस२ में ही इसका प्रयोग करे । गरमहोनेपर ठंडा और ठण्डा होनेपर गरम होनेका उपाय करे । स्मृतिशक्तिका लोप होनेपर, शिरपर कीलक रखकर दूसरे काठ से उसको ताड़ित करे । ऐसा करनेपर तत्काल स्मृतिशक्ति का विकाश होगा । वाक् शक्तिका लोपहोनेपर, वाक्य धारणाकरे; श्रवणशक्ति का लोपहोने पर श्रवणेन्द्रिय धारण करे और मनचञ्चल होनेपर, उस में उस प्रलयकालीन स्थिर महाशैल की धारणा करे । स्मृतिशक्तिका लोपहोने पर, आकाश, पृथिवी वायु और अग्नि की धारणा करे । अमानुष सत्व से उत्पन्नहुए विघ्नों की यही चिकित्सा है । अमानुष सत्व यदि योगी के हृदय में प्रवेशकरे, तो वायु और अग्नि धारणा द्वारा ही उस को दग्ध करना चाहिये । हे राजन् ! योगके जाननेवाले पुरुष को सवप्रकार से शरीर की रक्षा करना उचित है । क्योंकि शरीर ही, धर्म्म, अर्थ, काम, और मोक्ष साधन का मूल है । विसय और प्रवृत्तिस्वरूप परिवर्त्तन, इन दो से योगी का ज्ञान नष्ट होजाता है । इसकारण प्रवृत्ति को पावे । योग प्रवृत्ति के यह प्रथम चिह्न हैं । यथा,—रोग शून्यता, अचञ्चलता, अनिष्ठुरता, शरीर में सुगंधिसञ्चार, मलमूत्र की अल्पता, कान्ति, प्रसन्नता, स्वर की मधुरता वा मिष्टता । लोग प्रेमसहित पीछे गुण कीर्त्तन करते हैं और कोई प्राणीभी नहीं डरता, यह अवस्था ही सिद्धि का श्रेष्ठ लक्षण है । अत्यन्त शीत और गर्म्मी से भी जिसको बाधा उत्पन्न नहीं होती, तथा जो पुरुष किसी से भी भय नहीं करता, उसको ही सिद्धि मिलती है । उनतालीसवां अध्याय समाप्त ।

चालीसवाँ अध्याय ।

दत्तात्रेय वोले, आत्म दर्शन होनेपर योगी को जो उपसर्ग प्रगट होते हैं, उनको संक्षेप से कहता हूँ, सुनो । उससमय अनेक काम्य क्रिया और मनुष्योचित अनेक भोग्य विषयों के भोगने में इच्छा होती है । स्त्री, दानफल, विद्या, माया, धन, स्वर्ग, देवत्व, इन्द्रत्व, अनेक रसायन, यज्ञ, जल और अग्नि में प्रवेश करना, और श्राद्धआदि में उस की कामना का सञ्चारहोता है ।

जब मन इसप्रकार, अभिलाष परवश वा कामना के अधीन होजाय तो यत्नपूर्वक उस को उन विषयों से लौटावे। जो योगी मन को इसप्रकार लौटाकर ब्रह्म में लगा-सकता है, उस के सब उपसर्ग परास्त होजाते हैं। इन उपसर्गों के जीतनेपर फिर सात्विक राजसिक और तामसिक भेद से अन्यान्य उप-सर्ग प्रगट होकर योगी को वशीभूत करने की चेष्टा करते हैं। उन मे प्रातिभ, श्रावण, दैव, भ्रम, आवर्त्त यह पाँच उपसर्ग योग विघ्नों के निमित्त अत्यन्त उत्कटरूप से प्रगट होते हैं। जिसके द्वारा,वेदार्थ,काव्यशास्त्रार्थ और सम्पूर्ण विद्या शिल्पादि योगी के हृदय में प्रकाशित होते हैं, उसका नाम प्रातिभ है। जिसके द्वारा सम्पूर्ण शब्दार्थ का ज्ञान और हजार योजन से भी शब्द सुनाई दे, उसकानाम श्रावण है जिस के प्रभाव से योगी साक्षात् देवता की समान होकर सम्पूर्ण संसार के दर्शन करने में समर्थ होता है, पण्डित लोग उस को दैव कहते हैं। जिसके प्रभाव से योगी का मन समस्त आचार भ्रष्ट और दोष मुक्त होकर शून्य में भ्रमता है, उस का नाम भ्रम है। और जिस अवस्था में ज्ञानावर्त्त, जलावर्त्त की समान, विकल होकर मन को नष्ट करता है, उसकानाम आवर्त्तनामक उपसर्ग है।

सम्पूर्ण देवयोनि, अर्थात् योगी सम्प्रदाय इन महाघोर विघ्नों के उपसर्ग बल से योग भ्रष्ट होकर वारम्वार संसार चक्र में घूमते हैं। इसकारण योगी पुरुष मनोमय सफेद कम्बल ओढकर चित्त को केवल परब्रह्म मे ही लगावे और उन की ही चिन्ताकरे।

योगी सदा योगमुक्त होकर इन्द्रिय जय, और लघु आहार के साथ, भूःआदि सात प्रकार की सूक्ष्म धारणा मस्तक में धारण करे। वह पृथिवी धारण करने पर उसके सुखलाभ में समर्थ होगा। वह आत्माको पृथिवी समझे ऐसा होनेपर उस पृथिवी के वन्धन च्युतहोंगे। उसी प्रकार जल में सूक्ष्मरस, तेज में रूप, वायु में स्पर्श और आकाश में शब्दधारणा करके त्यागन करे। मन द्वारा सब प्राणियों के मनमें प्रविष्ट होनेपर, मानसी धारणा धारण करके सूक्ष्म मनरूप में उत्पन्न होवे। योगी पुरुष इस प्रकार सब प्राणियों की बुद्धि में प्रविष्ट होकर, सूक्ष्म बुद्धि स्वरूप ग्रहण करके उसका त्याग करे। हे अलर्क! जो योगी इन सात सूक्ष्म भावोंको भलीभांति जानकर छोड़दे, ऐसा करने से उसका पुनर्जन्म नहीं होता। आत्मावान् पुरुष सातोंधारणा की सूक्ष्मता वारम्वार देखकर, वारम्वार सिद्धित्याग करताजाय। कारण कि हे राजन्! क्योंकि वह जिस २ भूत में प्रेम करता है, उस उस भूत मेंही आसक्त होकर नष्ट होजाता है। इसकारण परस्पर संसक्त सूक्ष्म भूतों को जानकर जो छोड़सकता है वही परमपदको प्राप्तहोता है। हे राजन्! इन सात सूक्ष्म संधान पूर्वक भूतादि में आसक्ति छोड़देने परही, सदाचारी पुरुष की मुक्तिहोती है। गन्धादि में आसक्ति होनेपरही विनाश होता है। और उसको निश्चयही फिर जन्म ग्रहण करनाहोता है। योगी इन सात प्रकार की धारणाका अतिक्रम करने से, इच्छानुसार उन उन सूक्ष्मभूतों में लयपाता है, और देव, असुर, गन्धर्व, सर्प और राक्षसों के शरीर में

लीनहोता है। किन्तु कहींभी संसक्त नहीं होता। अधिकक्या, अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्यत्व, ईशित्व, वशित्व, कामाव सायित्व यह आठ प्रकार के मोक्ष सूचक ऐश्वरिक गुणोंकाभी वह अधिकार करे। जिस अवस्था में सूक्ष्म सेभी अतिसूक्ष्म होसकता है, उसका नाम अणिमा है। जिसके द्वारा शीघ्रकारिता का आविर्भावहो उसका नाम लघिमा है। जिस के द्वारा सब संसारका पूजनीय होजाय उसका नाम महिमा है। जिसके द्वारा सब पदार्थ प्राप्त करलिये जायँ उसका नाम प्राप्ति है। जिसके द्वारा सर्वव्यापी होसकता है, उसका नाम प्राकाम्यत्व है। जिस के द्वारा सब का ईश्वर होसके उस का नाम ईशित्व है। जिसके द्वारा सब को वश में रक्खाजासके उस का नाम वशित्व है। यही योगी का सातवां गुण है। और जिस के जिसस्थान में जो इच्छा हो सो करसके उसका नाम कामावसायिता है। अधिक क्या, योगी पुरुष इन आठप्रकार के गुणों की सहायता से साक्षात्, ईश्वर की समान कार्य्य करसकता है। इन सब गुणों के प्रगट होते ही समझना चाहिये कि, योगी की मुक्ति में अब विलम्ब नहीं। उसकी निर्वाण शान्तिभी उपस्थित हुई है। उसका फिर जन्म, मृत्यु क्षय, वृद्धि तथा अन्य प्रकारका परिणाम वा विकार नहीं होगा; वह पृथिवी आदि पंचभूत से भी छेद, भेद, क्लेद, शुस्कता और दाह प्राप्त नहीं होगा। रूप, रस, और गंधादि भी उस को वशीभूत नहीं करसकते। उस को शब्दादि विषयभोगका लेशमात्र नहीं होगा। उन के साथ फिर किसी प्रकार का सम्बंध नहींरहेगा वह जन्म, जरा, मृत्यु, मान, अभाव, सुख, दुःख सबका अधिकार ही दूर २ होजायगा हेराजन्! जैसे सुवर्णखण्ड को अग्नि में जलाकर दूसरे सुवर्णखंड के साथ मिलादेने से फिर पृथक्ता नहीं रहती, उसीप्रकार योगरूप अग्नि द्वारा रागद्वेषादि दोषभस्म होजानेपर योगी भी ब्रह्म के साथ एक संगही मिलजाता है। फिर उस को पृथक्भाव से रहना नहीं होता। जैसे अग्नि में अग्निफेकने से मिलजाती है, और तन्मयहोजाने से उस को उस अग्नि से पृथक् नहीं कहाजासकता, वैसेही दोषों के जलजाने पर ब्रह्म के साथ जब मिलता है, तब फिर कभी पृथक् नहीं होता। हेराजन्! जल जैसे जलमें फेंकदेने से एकहोजाता है, उसी प्रकार योगी का आत्मा परमात्मा में मिलजाता है। चालीसवां अध्याय समाप्त।

इकतालीसवाँ अध्याय

अलर्क बोला, हे भगवन्! योगीलोग किस प्रकार आचार पद्धति का अनुसरण करें और जिस ब्रह्ममार्ग का अनुसरण करने से विघ्न नहीं होता, उस के यथायोग्य सुनने की इच्छाहै। दत्तात्रेय बोले, हेमहाराज! मान और अपमान यह दोनों मनुष्यमात्र के प्राप्ति और उद्वेग के कारण हैं। यह दोनों योगियों के निकट विपरीतार्थ होनेपरही उन को सिद्धि देते हैं। अर्थात् मान और अपमान इन को विष और अमृत कहते हैं। उन में अपमान अमृत और मान विष है। योगी ऐसा समझनेपर ही सिद्धिप्राप्त करता है। योगी भलीभाँति देखकर पैररक्खे। वस्त्रद्वारा विनाछाने जल न

पिये, सद्वासत्य से पवित्र वचनबोले और बुद्धि की सहायता से भलीभाँति विचार करे । अचानक किसी कार्य्य को न करे । अतिथि सत्कार, श्राद्ध, यज्ञ, यात्रा और उत्सव में कहीं न जाय । सिद्धि के निमित्त बहुत से लोगो का आश्रय न ले। गृहस्थियों के घर जब अग्नि और धुएँ से शून्यहोवे, और जब घर के सब लोग भोजन करके निश्चिन्त होजायँ तब ही योगीपुरुष भिक्षा करने को जावे । संसार में जिससे निन्दा वा तिरस्कार न हो ऐसे विधान से चले, और साधुओं को सेवित पदवी को दूषित न करे ।

गृहस्थियों के घरमें ही भिक्षाकरे । लाजयुक्त श्रद्धावाला, जितेन्द्रिय, वेदपाठी और महात्मा विशेष करके किसी प्रकार से दूषित वा पतित न हो ऐसे गृहस्थियों के घरही भिक्षा करे । पतितों के घर भिक्षाकरना जघन्यवृत्ति कहलाती है । यवागू, मट्ठा, दूध, फल,मूल, प्रियङ्गु सत्तू आदि योगियों का पवित्र भोजन है। इसकारण इन सब वस्तुओं को मांगकर सावधानी और भक्ति के साथ भोजनकरे । भोजनकरने से पहिले प्राणाय ऐसा कहकर एकवेर जलपिये । इसकानाम योगीकी प्रथम आहुति है । फिर यथाक्रम से अपानाय, समानाय उदानाय कहकर दूसरी, तीसरी, चौथी और पाँचवी आहुति दे । अनन्तर प्राणायाम से पृथक् करके इच्छानुसार शेषभोजन करे। फिर दूसरीवेर जलपान पूर्वक आचमन करके हृदय छुए । चोरी न करना, ब्रह्मचर्य्य से रहना, त्याग, लोभशून्यता, अहिंसा यह पाँच सन्यासी के व्रत हैं; और क्रोध न करना, गुरुसेवा, पवित्रता, लघु भोजनकरना, और नित्य वेदपाठ करना यह पाँच उनकेनियम कहेगए हैं। जो सबका सार स्वरूप है और जिसके द्वारा सिद्धि होती है, ऐसे, ज्ञानकीही चर्चा वा आलोचना करे । क्योंकि अनेक प्रकार के ज्ञान की आलोचना करने से योग में विघ्न पड़ता है । जो यहजाननेयोग्य है, यहजानने योग्य है यह कहताहुआ घूमता है, वह सहस्र कल्प में भी यथार्थज्ञान प्राप्त नहीं करसकता । सङ्गत्याग, क्रोधजय, इन्द्रिय संयम, और लघु आहार करके मन को ध्यान में लगावे । गुफा, वन और निर्जन स्थान का आश्रय करके नित्य सावधान होकर ध्यानधारणा में प्रवृत्तहोवे । वाग् दण्ड मनोदण्ड, और कर्मदण्ड यहतीन प्रकार के दण्ड जिसके अधीन हैं, वही त्रिदण्डी और वही महा यति है । इस दृश्यमान स्थावर जङ्गमात्मक सम्पूर्ण जगत् को जो आत्ममय विचारता है;हे राजन् उसको कौनप्रिय,और कौन अप्रिय है ? जिस की बुद्धि शुद्ध होगई है, जिस को मृत्तिका और सुवर्ण में समान ज्ञान होगया है; और जो सब प्राणियों के हृदय में नित्य, अव्यय ब्रह्मको ही विराजमान देखता है, उस का फिर जन्म नहीं होता । सम्पूर्ण वेदों की अपेक्षा यज्ञश्रेष्ठ है यज्ञसे जप श्रेष्ठ जप से ज्ञानमार्ग श्रेष्ठ और उस ज्ञानमार्ग की अपेक्षा भी जिस सङ्ग और राग दोनों का मिलान नहो, ऐसा ध्यानही श्रेष्ठ है । इस ध्यान के सिद्ध होने पर, नित्यस्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति होती है । सावधान, ब्रह्मनिष्ठ, अप्रमत्त, पवित्र, एकान्त में रहने की इच्छावाला, जितेन्द्रिय और आत्मवान् होकर इसयोगको प्राप्त

करे, ऐसा करने से आत्मा में आत्मा का योग होकर मोक्ष मिलती है । इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।

बयालीसवां अध्याय ।

दत्तात्रेयजी बोले, जो योगी उपरोक्त विधान से भलीभांति योगयुक्त होकर स्थिति करता है । सैंकड़ों जन्मों में भी फिर उस को स्वपद से निवृत्त नहीं करासकता । जो विश्वरूप, विश्व के ईश्वर, विश्व के कारण, विश्व के आधार, और वह न कर्त्ता हैं, जिनके सहस्रों मस्तक,चरण और गर्दन हैं; उन प्रत्यक्षस्वरूप परमात्मा को देखकर, उन की प्राप्ति के निमित्त, परम पवित्र और विराट्स्वरूप 'ॐ' इस एकाक्षर का जप करे । अकार, उकार, मकार यह तीन अक्षर ओंकार का स्वरूप हैं, यही उन की तीनमात्रा हैं । यह तीनमात्रा यथाक्रम से सत् रज,और तमोगुणमय हैं । योगी इस ओंकारस्वरूप श्रवण और जपकरे । यही उस का वेदपाठ होगा । इस के अतिरिक्त ओंकार की दूसरी आधीमात्रा है । वह उपरोक्त तीनों गुणों के परे और ऊपर स्थित है । गान्धार नामक स्वर के आश्रय से उस का नाम गान्धारी हुआ है । उसकी गति और स्पर्श पिपीलिका की समान है । वह मस्तकपर दीखता है । ओंकार प्रयुक्त होकर जैसे मस्तकपर गमन करता है, वैसेही योगी अक्षर २ में ओंकारमय होजाता है । प्राणधनुष, आत्मावाण और ब्रह्म वेध्यस्वरूप है । सावधान होकर उसब्रह्म के विद्धकरनेपर तन्मय होजाता है । ओम् यह अक्षरही तीनवेद, तीनलोक, तीनअग्नि, ब्रह्मा विष्णु और महादेव भेद से तीनदेवता, तथा साक्षात्ऋक् साम और यजु स्वरूप है । ओंकार की साढेतीन मात्रा हैं । जो योगी उस में तत्पर होता है वहलीन होजाता है ।

अकार भूर्लोक, उकार भुवर्लोक, और मकार स्वर्गलोक कहाजाता है । ब्रह्म प्रथममात्रा, दूसरीमात्रा का नाम अव्यक्त, तीसरीमात्रा साक्षात् चित् शक्ति और आधी मात्रा परमपद अर्थात् ब्रह्मपद है । इसप्रकार क्रमानुसार इन को योगभूमि समझे । ओम् इस अक्षर के उच्चारण करते ही सत् असत् सबका ग्रहण हो जाता है । पहिली मात्राह्रस्वस्वरूप,दूसरीमात्रा दीर्घस्वरूप और तीसरीमात्रा प्लुतस्वरूप है तथाआधीमात्रा का स्वरूप निश्चय करने शक्ति के वाहर है । इसप्रकार जो ओंकार अक्षरस्वरूप परब्रह्मको भलीभाँतिजानता और ध्यान करता है, वह संसार चक्र से छुटजाता है, और तीनप्रकार के बन्धनों को तोड़कर उस परमात्मस्वरूप परब्रह्म में ही लीनहोजाता है । जिस का कर्म्म बंधन शेष रहता है, वह अरिष्ट द्वारा मृत्यु के पीछे योगी होता है । इसकारण योग सिद्ध हो चाहे न हो अरिष्ट को जानना उचित है । ऐसा होनेपर मृत्यु के समय पछताना नहीं पड़ता । बयालीसवाँ अध्याय समाप्त।

तेंतालीसवां अध्याय ।

दत्तात्रेय बोले, हेमहाराज ! मैं आपके निकट अरिष्टोंका वर्णन करता हूँ, सुनो । योगीपुरुष उन के देखतेही अपनी मृत्यु जानलेता है । जो प्राणी देवमार्ग, ध्रुव, शुक्र, अपनी छाया

अरुन्धती, इनसब को न देखसके, वह एक वर्ष के भीतर ही परलोक सिधारताहै । सूर्य्य मंडल को किरणशून्य और अग्नि को तेजहीन देखे वहबारहवर्ष से अधिक नहीं जी सकता । जो प्राणीस्वप्न में वमि,मल और मूत्र में सुवर्ण वा चाँदी देखे वह दशमहीने जीता है । प्रेत और पिशाचादि,गन्धर्व नगर और पीलेवृक्ष देखने से नौ महीनें बचता है । जो मनुष्य अचानक स्थूल होकर कृशहोजाय;और कृशहोकर स्थूल होजाय;उस की मृत्यु आठमहीने पीछे ही समाप्त होजाती है । धूल और कीचडमें पैर रखने से जिस पञ्जा,वा सामने का चिह्न खण्डाकार दीखे वह सातमास बचता है । जिसके शिरपर गीध,कबूतर,चील,कौवा तथा अन्यकोई मांसाहारी पक्षी उड़कर बैठजाय,वह छै महीने बचता है । काकपंक्ति धूल वृष्टि द्वारा ताड़ित होने से और अपनी छाया विपरीत देखने से, चार पाँच मास जीवित रहता है । जो पुरुष विनामेघ के दक्षिणदिशामें बिजली और रात में इन्द्रधनुष देखे,वह दोतीन महीने जीता है । जो पुरुष घी,तैल,दर्पण, वा जलमें अपनी मूर्त्ति न देखपावे अथवा मस्तक हीन देखे,वह एक महीने से अधिक नहीं जीता । हे राजन ! जिसके शरीर से मृतक के सी गंध निकले,वहपन्द्रह दिन जीता है । स्नान करते ही जिस के चरण और छाती सूखजाय और जल पीने पर भी कण्ठ सूखारहे वह दशदिन जीता है । वायु छिन्न भिन्न वा घूमकर जिसके मर्म्मस्थानमें भेदकरे और छूनेसे भी रोमाञ्च नहो उसकी मृत्यु उपस्थित जाने । जो मनुष्य स्वप्न में ऋच्छ और वानर की सवारी में चढ़कर गान करता हुआ दक्षिणदिशा को जाय, उसकी मृत्यु निकटही है । लाल काले वस्त्र धारण किये स्त्री को स्वप्न में गान और हास्य करता हुआ लेजाय, वह भी नहीं बचता । जो मनुष्य स्वप्न में महाबली, नंगे क्षपणक को हास्य मुख से जाताहुआ देखे, उसकी मृत्युभी उपस्थित जाने । जो पुरुष अपनें शरीर को शिरतक कीचड़ में डूबाहुआ देखे, उसकी शीघ्र मृत्यु होती है । स्वप्न में केश, अङ्गारा, भस्म, सर्प और जल शून्य नदी देखने से दशदिन के पश्चात् ग्यारहवें दिन मरजाता है । स्वप्न में अत्यन्त भयङ्कर और विकट प्रकृति काले पुरुषों को शस्त्रलिये पत्थर में मारताहुआ देखने से शीघ्र मरजाता है । सूर्य्योदय के समय शृगाली जिसके सामने, पीछे अथवा चारोंतरफ से निकले, वह भी शीघ्रही परलोक सिधारता है।

भोजन करके उठतेही जिसको क्षुधालगे और दाँत काँपनेलगे, उसकी आयु समाप्त हुईजानें । जिसको दीप निर्वाण की गंध न आवे; दिन वा रातमें डरे और दूसरे के नेत्रों में अपना प्रतिबिम्बदेखे वह भी नहीं बचता । योगी पुरुष आधी रातमें इन्द्रधनुष, दिनमें नक्षत्रों को देखे तो नहीं बचसकता । जिसकी नासिका टेढ़ीहोजाय, दोनों कान ऊंचे नीचे, और बाएंनेत्र से जल गिरे, उसकी आयुसमाप्त हुई जाने । जब मुंहलालवर्ण और जिह्वाकाली हो तो बुद्धिमान मनुष्य अपनी मृत्युनिकट जाने । जोप्राणी स्वप्नमें ऊंट वा गधे की सवारीमें चढकर दक्षिण दिशाकोजाय उसकी निश्चय आसन्न मृत्युजाने । जोपुरुष दोनों कानों को मूदकर अपना शब्द न सुनसके, और जिस के नेत्रोंकी कान्ति नष्टहोजाय वह भी नहीं बचसकता, स्वप्न में गढे में गिरकर जो मनुष्य

न निकलसके उसके जीवनका वह शेष समय जाने। जिसकी दृष्टिऊंची होगई है, और रक्त-वर्ण धारण करके वारम्वार घूमती हैं, किसी प्रकार स्थिर नहीं रहती; जिसका मुखगरम और नासिकागढा वढगया है, उसको भी दूसरा शरीर धारण करनाहोता है। जो मनुष्य स्वप्नमें अग्नि में गिरकर नहीं निकलसकता, अथवा जल में प्रविष्ट होकर भी फिर वाहर निकलने में असमर्थ होतो उसके जीवनका वह शेष काल है। जो मनुष्य दिनमें अथवा रातमें भूतों से ताड़ितहो वह निश्चय ही सातरात में परलोक सिधारता है जो मनुष्य अपने सफेद निर्मल वस्त्रको लाल अथवा कालादेखे, उसकी मृत्युभी निकटजाने। जिनका स्वभाव उलटा होजाय उनकी मृत्यु निकट जाने। जिनसे सदानम्रहोना उचित है, और जो लोगपूजनीय गिनेजाते हैं, उनका जो पुरुष तिरस्कार वा निन्दा करे, और देव पूजासे विमुख गुरु, वृद्ध और ब्राह्मणों की निन्दा करे, पिता माताका सत्कार और जमाई का आदर न करे। और जोज्ञानी और महात्मा लोगोंका अनादर करे, चतुरलोग उसका काल निकटही जानें।

योगीलोग यत्नपूर्वक जानलें, यह सव अरिष्टरात दिन फलदेते हैं। उनको विशेष रूपसे उस २ कालके ऊपर ध्यान रखना चाहिये। यह सव फलजैसे अत्यन्त भयङ्कर हैं, वैसेही सवको सहज में मालूमहोजाते हैं। सवको विशेष रूपसे जानकर उनका उपस्थित समय सदाही मनमें रक्खे। इसप्रकार सव जानकर भयशून्य स्थान में रहे, और योगमें मनलगावे।

वह अरिष्ट देखकर मृत्युकाभय छोड़देय, और उन अरिष्टोंका स्वभाव विचारकर जिस समय वह उपस्थितहों, दिनके उस भागमें योगधारण करे। उस दिनके पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न, वा रातमें अथवा जिस समय अरिष्टदेखे ठीक उसीसमय योगयुक्त होवे। जवतक वह दिन न आवे, तवतक इसी प्रकार योगचर्य्या करे। सव भयछोड़कर कालको जीते घरमें अथवा और जहांरहने से मनस्थिर होसके ऐसे स्थान में रहकर तीनगुणों को जीते, और योगयुक्त चित्तसे परमात्मा में अन्तःकरण प्रविष्ट करके आत्माको तन्मय करे, अन्तमें चिद्वृत्तिको भी त्यागदे। ऐसा होनेपर इन्द्रिय, बुद्धि, और वाक्यकेपरे परमनिर्वाणपद भोगने में समर्थहोगा।

हे अलर्क ! मैंने आपके निकट यह सव यथार्थ कहा है। अव जिस उपाय से आप ब्रह्म प्राप्तकरें सो संक्षेप से कहता हूँ सुनो। चन्द्रकान्त मणि चन्द्रमा के संयोगसेही जल निकालती है, किरणों के साथ विनामिले कभी जल नहीं निकालसकती, यह योगीके योगसिद्धि की उपमा अर्थात् योगीके स्थिर चित्त होने पर ही उसके हृदय में आनन्दका सञ्चार होता है। चञ्चल चित्तहोने से नहीं।

सूर्य्यकान्तमणि किरणों के संयोग सेही अग्नि प्रकटकरती है। इकली कभी नहीं करसकती यह भी योगीकी दूसरी उपमा है अर्थात योग के साथ संयोग न होनेपर योगीको कभी ब्रह्म का दर्श नहीं होता।

चैंटी, चूहा, नौला, आदि जिस घरमें गृह स्वामी है, उस घरमेंही रहते हैं। गृहस्वामी के नष्ट होनेपर दूसरी जगह चलेजाते हैं। गृहस्वामी के मरने से इनको कुछभी दुःख नहीं होता। यह भी योगी के योगसिद्धि की

दूसरी उपमा है। अर्थात् शरीर के पीछे शरीर का आविर्भाव और तिरोभाव होता है। यह स्वभावसिद्ध नियम है, इसका उसमें ममता वा दुःख क्या है? यही विचारकर ममता न करे, और शरीर के क्षय विनाश से दुखी न होकर एकाग्र चित्तसे योग साधन करे।

दीमक अत्यन्तक्षुद्र शरीर होनेपर भी उस की सहायता से ढेर की ढेर मृत्तिका सञ्चयकर लेती है। योगी इससे भी योगसाधन की शिक्षा सीखे। अर्थात् ब्रह्मसाधन बहुत भारी कार्य्य होने परभी, योग चर्चा रूप सामान्य उपाय से अधीन कियाजासकता है। यह योग चर्चा भी चाहे कितनी ही कठिन हो, धीरे २ अभ्यास करने से सहज में ही कृत कार्य्य होसकताहै

पशु; पक्षी और मनुष्यादि प्राणी फूल और पत्तेवाले वृक्ष को नष्टकरदेते हैं? यह देखकरही योगीलोग सिद्धि प्राप्तकरते हैं। अर्थात् जिस स्थान में समृद्धि है, वहीं विनाश है। तुमचाहे जितने धनी, मानी, गुणी और ज्ञानी क्यों न हो, कालतुम को निश्चयही नष्टकरेगा। ऐसा विचारने से वैराग्य का उदय होता है, रुरुनामक मृगशिशु के सींगका अग्रभाग तिल का कृति होनेपरभी, उस के साथही साथ बढ़ता है, इस बातका ध्यान रखने से योगी सिद्धि प्राप्तकरता है द्रव पूर्णपात्र हाथ में लियेहुए पृथिवीसे ऊपर को चढ़ते समय मनुष्यशरीर के ऊपर विशेष लक्ष्य रखनेसे, योगी क्या नहीं जानसकता? लोगजीवन के निमित्त सर्वज्ञ गाढ़ने की जो चेष्टा करते हैं, उस को यथा जानने पर योगी कृत्य २ होजाता है, जहां वासकियाजाय वही घर है; जिस के द्वारा जीवनकी रक्षा हो, वही भोजन है; उसीप्रकार जिस के द्वारा धन मिले, वही सुख है; इसकारण इस विषय में फिर ममता कैसी?

पुत्रबोला तब राजाअलर्क ने दत्तात्रेय को प्रणाम करके विनीतभाव से कहा, हे ब्रह्मन्! सौभाग्यसेही मुझ को शत्रुओं से पराजित होने से उत्पन्न ऐसा बड़ाभय उपस्थित हुआ था? और सौभाग्य से ही काशिपति इतना पराक्रमी और समृद्धि सम्पन्न हुआ था? जिन के नाश होने से मैं यहां आया हूँ और जिन के प्रभाव से आपका संग प्राप्त किया है, सौभाग्य सेही मेरा बलछोट और सेवक नष्ट हुए हैं, सौभाग्य से ही कोपक्षय होजाने के कारण उसका भय उपस्थित हुआ था? सौभाग्यसे ही आप के चरण युगल मेरे स्मृति मार्ग में प्राप्त और उक्तियैं मेरे हृदय में विराजमान हुए हैं, सौभाग्य से ही आप का समागम प्राप्त करके मुझको ज्ञान भी उत्पन्न हुआ है, हेब्रह्मन्! सौभाग्यसे ही आपने मेरेऊपर कृपा की है। पुरुष के जब सुमदिन आते हैं, तब अनर्थ भी अर्थरूप में बदलजाते हैं। देखो, इस भयङ्कर विपत्तिने भी आपके समागम से मेरा उपकार किया। अधिक क्या कहूँ सुबाहु और काशिपति दोनो शत्रुहोनेपर भी मेरेउपकारी हैं। क्योंकि इन के लिये ही मैं आप के पास आया था।

आप योगियों के भी ईश्वर हैं। आप के प्रसादरूपी अग्नि संयोग से मेरा अज्ञान भस्म होगया है। अब ऐसा यत्न करूँगा, जिस से फिर ऐसा दुःख भोगना न पड़े। जो अनेक विषय दुःखरूप वृक्षों का बन स्वरूप है, उस गृहस्थ आश्रम का त्याग करूँगा। अब इस

विषय में आपकी अनुमति पाने की इच्छा है। क्योंकि आप महापुरुष और ज्ञानदाता हैं।

दत्तात्रेयबोले, हेराजेन्द्र! जाओ। तुम्हारा कल्याण हो। मैंने तुमको जैसा उपदेशकिया है, तुम निर्मल और निरहङ्कार होकर उसी के अनुसार करो, ऐसा करने से मोक्षपदवी पाओगे। ऋषि के यह वचन सुनकर राजा अलर्क उन को प्रणाम करके शीघ्रही वहांआया जहां काशिपति और भ्रातासुवाहु थे; फिर काशिपति और सुवाहु के निकट जाकर हँसता हुआ बोला कि हे काशिपते! तुमको राज्यकी इच्छा हुई है। अतः इसपरम समृद्धिमान राज्य को स्वयं भोगो, वा सुवाहु को दो। अथवा तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो। काशिराज बोले, हे अलर्क! तुमने विनायुद्ध किये ही छोड़दिया। इसका क्या कारण है? यहतो क्षत्रियों का धर्म्म नहीं है। तुमभी क्षत्री का धर्म्म भलीभाँति जानते हो। राजा मंत्रियों का जय और मृत्यु का भय छोड़ शत्रुको लक्ष्य करके बाणछोड़े और शत्रुको जीतकर सिद्धि के निमित्त भोगों को भोगताहुआ यज्ञ सम्पादनकरे। अलर्कबोला हेवीर! मेराभी पहिले यहीअभिप्राय और धारणा थी। अब उस के विपरीत भावका उदयहुआ है कारण सुनो। सम्पूर्ण जीवों का संग जैसे भौतिक है, उनके अंतःकरण और गुणभी वैसे ही भूत के सम्वाय मात्र हैं। केवल चिच्छक्ति रूपी ईश्वरही सत्य है। इस के अतिरिक्त और कुछनहीं है, जबयह बातजानली है, तो हे राजन्! शत्रु, मित्र, स्वामी, और सेवक कल्पना किस प्रकार से होसकती है? इसकारण जब मैंने दत्तात्रेयके प्रसाद से ज्ञानप्राप्त किया है, तो इन्द्रियों को जय, और सङ्ग त्यागकर के परब्रह्म में रमणकरूँगा। परब्रह्मको जय करते ही सबजीतलिया जाता है। जिस के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, उन के साधन के निमित्त साधना करनी उचित है। इन्द्रियों को जीतने परही सिद्धि प्राप्तहोती है। देखो, मैं तुम्हारा शत्रुनहीं हूँ, और न तुमही मेरे वैरी हो; सुवाहुभी मेरा अरिष्टकारी नहीं है। मैंयहबात भलीभाँति जानता हूँ आप अब और शत्रुकी खोजकीजिये। राजा सुवाहु यह सुन प्रसन्न होकर उठा, और परमसौभाग्य है, ऐसा भ्राता को कहकर काशिराज से कहनेलगा।

तैंतालीसवां अध्याय समाप्त।

चौवालीसवां अध्याय।

सुवाहुबोला, हे नृपश्रेष्ठ! मैं जिस कारण से आप की शरण में आयाथा, वह सब ही पाचुका। अब जाताहूं, आप सुखी होवें। काशिराजने कहा, किस निमित्त आप मेरी शरणमें प्राप्त हुए थे? और क्या प्रयोजन आपका सिद्ध हुआ? यहबात जाननेके लिये मुझे बडा कौतुहल उत्पन्न हुआ। अतएव आपमेरे निकट सब कहिये। अलर्क अपने पिताका राज्य बलात्कार से भोगता था। आपने उस शत्रु के जीतनेकी मुझे प्रेरणा की थी। इसकारण ही मैंने आपके छोटेभाई का राज्य आक्रमण करके, आपके वश में किया है। आप अपने कुलके अनुसार इसराज्यको भोगिये। सुवाहुबोला, हे महाराज! जिस कारण मैंने ऐसा उद्योग किया था, और आपको भी कष्ट दिया था, उस को सुनो। मेरा यह भ्राता तत्ववित् होनेपर भी मांसादिक

भोग में आसक्त होगये थे। मेरे दोनों बडे-भाई मूढ होनेपर भी तत्वज्ञान युक्त हुए थे। क्योंकि, हमारीमाताने बालकपन में उन दोनों के और मेरे मुख में जैसे स्तन्यदिये थे, वैसेही हमतीनोंके कानमें तत्वज्ञानका उपदेश दियाथा।

हे राजन्! जो जो विषय मनुष्य मात्रको अवश्य जानने चाहिये, माताने हमतीनों के हृदय में उन सबका प्रकाश किया था, केवल इसी के हृदय में नहीं। जैसे एकसार्थीके दुखी होनेपर साधुमात्रको ही दुःखहोता है; हे राजन्! हम को भी वैसाही हुआ हैं। कारणकि हमारे साथ इस अलर्क का सम्बंध है। इसके इसशरीर में हमारी भ्रातृ कल्पना है। यह गार्हस्थ्य मोह से आच्छादित होकर दुखी होगया था। इससे ही हमको दुःख हुआ। इसहीकारण मैंने विशेष विचारकरके स्थिर किया कि, दुःख से ही इसको वैराग्य उपस्थित होगा। ऐसानिश्चय करके ही मैंने आपका आश्रय लियाथा। उस दुःखसे ही इसको तत्वज्ञान का उदय होकर वैराग्य उत्पन्न हुआ। इससे मैं कृतकार्य्यहुआ हूं। आपका कल्याणहोवे। मैं चला। हे राजन्! इसने मदालसा के गर्भ में वास और उसीप्रकार उसका स्तनपान किया था अतएव और स्त्रियों के पुत्र जिसमार्ग के पथिक नहीं होसकते, यह उसमार्ग का पथिक होवे। यही विचारकर मैंने आपका आश्रय लिया था। मेरा कार्य्य भी सिद्ध हुआ है। अब फिर सिद्धिप्राप्त करने के लिये जाऊंगा। हे राजन्! स्वजन, वान्धव, और सुहृत दुःखीहोनेपर जोलोग उनकी उपेक्षा करते हैं, उन सब प्राणियों को दयावान् नहीं कहा जासकता है। मित्र, कुटुम्बी और बंधु इनके समर्थ होनेपर भी जो पुरुष दुःख भोगता है, उस के उन मित्रादिकों कीही निन्दा होती है। उसकी कभी निन्दा नहीं की जासकती। हे राजन्! मैंने आपके संसर्ग से ऐसा कार्य्य साधन किया है। इसकारण आप सुखसे रहिये मैं जाता हूं। आप साधुओं में अग्रणी और ज्ञानी होवें।

काशिराज ने कहा कि—आप ने सरलस्वभाव अलर्क का बड़ा उपकार किया। मेरे उपकार के निमित्त क्यों नहीं यत्न करते? साधु के साथ साधु का समागम अवश्य ही फलदायी होता है, कभी निष्फल नहीं होता। इसकारण आप के संसर्ग से मेरी उन्नति होना सर्वथा उचित है॥

सुबाहु बोला कि-धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन को चार पुरुषार्थ कहते हैं। उन में आप के धर्म, अर्थ और काम सिद्धहुए हैं। मोक्ष का केवल अभाव है। इसकारण मैं संक्षेप से आप के निकट कहता हूँ। आप एकाग्रचित्त से सुनिये। हे राजन्! सुनकर भलीभांति विचारपूर्वक मुक्ति के निमित्त यत्न करें। हे महाराज! आप कभी ममता और अहङ्कार के वशीभूत न होना। भलीभांति धर्म की आलोचना करें। क्योंकि लोग धर्म्माभाव से ही निराश्रय होजाते हैं। आप स्वयंही विचारकर समझें कि मैं किसका हूँ? रात्रि के अन्त में विचारकर बाह्यान्तर्गत आलोचना में प्रवृत्त होवें। अव्यक्त से प्रकृतिपर्यंत विकारहीन, चेतनाहीन, व्यक्त वा अव्यक्त सब विषय ही जाने और साथ२ में यह भी जाने कि—संसार में जाननेयोग्य क्या है? जाननेवाला कौन है?

और मैं कौन हूँ ? यह विशेषरूप से विचार करही आप सब कुछ जानसकेंगे । शरीरादिक अनात्म पदार्थ में आत्मज्ञान और दूसरे का अपना कहना ही मूर्खता है । हे राजन् ! लौकिक व्यवहारके अनुसार मैं ही सर्वान्तर्यामिहूँ

आपने जो कुछ पूंछा था वह विस्तार पूर्वक कहागया । अब मैं जाता हूं । बुद्धिमान् सुबाहुने काशिपति से ऐसा कहकर प्रस्थान किया । तब काशिराज जभी अलर्क की भलीभाँति पूजा करके अपने नगर में लौटआये । अलर्क भी अपने बड़ेपुत्रको राजपदपर अभिषिक्तकर आत्मसिद्धिके निमित्त वन में चलागया । फिर बहुत कालके पीछे निर्द्वन्द्व और संगहीन होकर अनुपम योगसिद्ध प्राप्तकी, और मोक्षपद पाया ! देव, असुर और मनुष्यों सहित सम्पूर्ण संसार गुणमय पाशो में बंधाहुआ है और नित्य बधता जाता है । पुत्र, पौत्र अपने और पराये से यहाँ पाश प्रकाशित होरहे हैं । यह भिन्नदर्शी संसार उस में खिंचाहुआ होने से दुःख से व्याप्त होगया है । उस के ऊपर अज्ञानरूपी दलदल में फँसाहुआ होने से इस के उद्धार की आशा भी नहीं है । बुद्धिमान् अलर्क ने यह देखकर और आपने जो उद्धार पाया है उस को देख कर यह बात कही कि-हाय कैसा कष्ट है ? हम ने राज्य करने के पीछे जाना कि योग की अपेक्षा चरमसुख दूसरा नहीं है ।

पुत्र बोला, हे तात ! आप मुक्ति के निमित्त इस श्रेष्ठ योग का अवलम्बन कीजिये । ऐसा करने से ब्रह्म को प्राप्त करके शोक के वशीभूत नहीं होगे । मैं जाता हूँ । यज्ञ वा जप से मेरा क्या प्रयोजन है ? कृतकृत्य पुरुष जो कुछ करे, मुक्ति के निमित्त वही करना चाहिये । मैं आप की आज्ञा लेकर स्वच्छन्दता से मुक्ति के निमित्त विशेष यत्न करूँगा, जिस से मुझ को मोक्ष मिलेगी ॥

पक्षि बोले, उस ने पिता से ऐसा कहकर उन की आज्ञा ली, और निःसङ्ग होकर चला गया । श्रेष्ठ बुद्धि का सञ्चार होने से वानप्रस्थ में तत्पर होकर चौथे आश्रम में प्रवेश किया । वहाँ भाई के साथ मिलकर गुणादिक बन्धनों को त्याग दिया और तत्काल प्राप्तहुई सद्बुद्धि के उदय होने से परमसिद्धि प्राप्त की ।

हे ब्रह्मन् ! आपने हम से जो कुछ पूंछा था, वह सब विस्तारपूर्वक आप के निकट वर्णन किया । चौवालीसवां अध्याय समाप्त ॥

पैंतालीसवां अध्याय ।

जैमिनिबोले, हेब्राह्मणो! प्रवृत्ति और निवृत्ति भेदसे वैदिक कर्म दो प्रकारका है । आपलोगोंने उसका भलीभाँति वर्णन किया । कैसा आश्चर्य है? पिता के प्रसाद से आपको ऐसाज्ञान उत्पन्नहुआ है, जिस के प्रभाव से इसप्रकार तिर्य्यग योनि प्राप्त करनेपरभी आपका मोह दूरहोगया है ? आपही धन्य हैं! कारण कि आप का मन उस पहिली अवस्थामें ही है । इसकारण विषयों से उत्पन्न हुए मोह से भी वह विचलित नहीं होता । इस से सबप्रकार से सिद्धिही प्राप्त करोगे । सौभाग्य से ही भगवान् मार्कण्डेय ने आपकी कथा कहीथी ! आपने विशेषरूप से सबकेही संदेह दूर किये । यह संसार विपत्ति से भराहुआ है, इसकारण यहा घूमतेहुए मनुष्य आपकी समान तपस्वियों का

संग प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते । ज्ञानदर्शी आपका संग पाकरभी यदि मैं अपना मनोरथ सिद्ध न करसकूँ तो कहीं नहीं करसकूंगा । आप प्रवृत्ति और निवृत्तिमार्ग को जैसा जानते हैं वैसा और कोई नहीं जानता । हे द्विजोत्तमगण ! यदि मेरे ऊपर दयाकरने की इच्छा है, तो मुझे निम्नोक्त विषय भली भाँति समझादीजिये । यह स्थावर जंगमात्मक संसार कैसे उत्पन्नहुआ ? प्रलयकाल में इसका लय कैसे होता है! किसप्रकार वंशसे देवऋषि पितर और भूतादि का जन्म होता है! मन्वन्तर कैसे प्रकट हुए हैं? इस के अतिरिक्त सब वंशों का पूरा वृत्तान्त, सृष्टि, प्रलय, कल्पका विभाग, मन्वन्तरों की अवस्था, पृथिवी की स्थिति और परिमाण, समुद्र, पर्वत, नदी और वन का वृत्तान्त भूलोक, स्वर्गलोक और पातालका विवरण, सूर्य्य चन्द्रादि ग्रह, नक्षत्र, तारोंकी गति, यह सब प्रलय पर्य्यन्त सुनने की मेरी इच्छा हुई है । सब संसार के प्रलयकाल में गिरनेपर जोकुछ शेषरहे उस के जानने की भी इच्छा है ।

पक्षि बोले, हे मुनिसत्तम ! आपने जो प्रश्न किये, उन की तुलना नहीं होती । हम विस्तार से कहते हैं, सुनो । सम्पूर्ण व्रतों के पारदर्शी, परमबुद्धिमान् और शान्तस्वभाव द्विज पुत्र क्रोष्टुकि से भगवान् मार्कण्डेय ने जैसा कहा था, हम वही कहते हैं । हे प्रभो ! क्रोष्टुकि ने ब्राह्मणों से सेवित महात्मा मार्कण्डेय से यही पूंछा था । भृगनन्दन ने प्रसन्न होकर उन से जो कुछ कहा था, हम विस्तार से वही कहते हैं, आप सुनें । जो संसार के नाश और उत्पत्ति के क्षेत्र हैं ; जो विष्णुरूप से इस को पालन करते हैं ; और रुद्ररूप से प्रलय में संहार करते हैं, उन पद्मयोनि पितामह को प्रणाम करके भगवान् मार्कण्डेय कहनेलगे । अव्यक्तयोनि ब्रह्मा के उत्पन्न होतेही तत्काल उन के चारों मुख से वेद और पुराण निकले । महर्षियों ने उस पुराणसंहिता को बहुत अंश में विभक्त और वेद के भी सहस्रों भाग रचे । उन महात्मा के उपदेश के अतिरिक्त धर्म, ज्ञान वैराग्य और ईश्वरभाव यह चार सिद्ध नहीं होते सप्तर्षियों ने उन के मन से उत्पन्न होकर उन से वेद ग्रहण किया, और मनसे उत्पन्नहुए दूसरे आर्षऋषियों ने पुराण संग्रह किये । च्यवन ने भृगु के निकट से वह पुराण लेकर ऋषियों को सुनाए । ऋषियों ने दक्ष को उपदेश किया । दक्ष ने मुझ से कहे । इस से ही मेरा उन में अधिकार है । आज मैं वही तुम को सुनाता हूँ । उस के सुनने वा विचारने से कलि का पाप नष्ट होजाता है । हे महाभाग ! तुम एकाग्रचित्त से आद्योपान्त सुनों । मैंने दक्ष के निकट पूर्वकाल में जिसप्रकार सुना था, उसीप्रकार तुम से कहता हूँ । जो संसार के आदिकारण हैं, जिन का जन्म, मरण नहीं, जो चराचर संसार के आधार और विधाता हैं, जिन के द्वारा सृष्टि, स्थित, और प्रलय होती है, उन आदिपुरुष ब्रह्मा को प्रणाम करके और जो सब के कारण हैं, जिन का कारण कोई नहीं, जिन में सब संसार प्रतिष्ठित है, जो सब संसार के नेता और बुद्धि के आधार हैं, उन हिरण्यगर्भ को प्रणाम करके सर्वश्रेष्ठ भूतप्रपञ्च विस्तार से वर्णन करता हूँ । महत् से विशेष तक संपूर्ण -

भौतिक सृष्टिविकार, लक्षण और पाँचप्रकार के प्रमाणसहित आनुपूर्विक विधान कहूँगा। जिसप्रकार यह मूर्तसृष्टि पुरुषद्वारा अधिष्ठित और इसकारण नित्य होने पर भी अनित्य की समान स्थित है, यह भी कहूँगा। हे महाभाग! तुम मनलगाकर उस को सुनो।

जो अव्यक्त नाम से गिनीजाती है, महर्षि लोग जिसको सत्स्वरूप सूक्ष्मप्रकृति कहतेहैं जो किसीप्रकार किसीकाल में विचलित, क्षय और जीर्ण नहीं होता, जिसका किसीप्रकार का परिमाण वा निश्चयनहीं, जो किसी के भी आश्रित नहीं है जोगन्ध, रूप, रस, शब्द, और स्पर्शहीन है, जिनका आदि और अन्त नहीं, जो संसार के उत्पत्ति स्थान हैं, जिन से सत, रज, और तम यह तीन गुण उत्पन्न हुए हैं जिनका विनाशनहीं, जो चिरकालसे है,, जिनका स्वरूपजानना असंभव है, और जिनसे सवका जन्म हुआ है, वह प्रधानस्वरूप ब्रह्म सवके आगे विराजमान होकर, प्रलय के पहिले सव जगत् में ओत प्रोत भाव से व्याप्त होकर स्थित हैं। सत, रज और तम यहतीन गुण जिन में परस्पर के अनुकूल और विना व्याघात के स्थित है। सृष्टिकाल में क्षेत्रज्ञ के अधिष्ठान से उन २ गुणों की सहायता द्वारा सृष्टि क्रिया में प्रवृत्त होनेपर पहिले प्रधानतत्व प्रकट होकर, महत्तत्व को घेरता है। वीजजैसे त्वचा से आवृत होताहै प्रधान भी उसीप्रकार महत्तत्व को आवरण करता है। यह महत्तत्व सात्विक, राजस और तामस भेद से तीनप्रकारका है।

अनन्तर महत्तत्व से तीन प्रकार का अहङ्कार प्रगट होता है। इन के नाम वैकारिक, तैजस और तामस हैं। इस अहङ्कार को भूतादि कहते हैं। महत्तत्व जैसे प्रधानतत्व द्वारा आवृत्त होता है; अहङ्कार भी वैसे ही महत्तत्व द्वारा आवृत और उसी के प्रभाव से विकृत होकर शब्द तन्मात्र की सृष्टि करता है। शब्द तन्मात्र से शब्दलक्षण आकाश का जन्म होता है। तव अहङ्कार शब्दमात्र आकाश को आवरण करता है। उस से स्पर्श तन्मात्र का जन्म होता है। तव वलवान वायु प्रगट होता है। स्पर्श यह वायु का गुण है। शब्दभाव आकाश स्पर्शमात्र को आवृत करता है। उस से वायु विकृत होकर रूपमात्र की सृष्टि करता है। वायु से ज्योति की उत्पत्ति होती है। रूप यह ज्योति का गुण है। स्पर्शमात्र वायु रूपमात्र को आवृत करती है। अनन्तर ज्योति विकृत होकर रसमात्र की सृष्टि करता है। उस से रसात्मक जल की उत्पत्ति होती है। वह रसात्मक जल रूपमात्र को आवृत करता है। अनन्तर रसमात्र जल विकृत होकर गन्धमात्र की सृष्टि करता है। उस से पृथिवी की उत्पत्ति होती है। गन्ध उसका गुण है। इसप्रकार उन २ पदार्थों में जो तन्मात्र है, उस से ही तन्मात्रता गिनीजाती है। इस का किसी प्रकार विशेष निर्वाचन नहीं कियाजासकता। इसकारण इन को अविशेष कहते हैं। इसप्रकार अविशेष के से वह शान्त, घोर और मूढ भी नहीं हैं। तामस अहङ्कार से भूत तन्मात्र की उक्तरूप की सृष्टि होती है। और सात्विक वैकारिक अहङ्कार से वैकारिक सृष्टिप्रवर्त्तित होती है। पञ्चज्ञानेन्द्रिय

और कर्मेन्द्रिय यह दश वैकारिक देवता हैं उनमें मन ग्यारहवाँ है वैकारिक देवता कहे जाते हैं। कर्ण, त्वचा, जिह्वा, नासिका' इन के द्वाराशब्द और स्पर्शादि का ज्ञान होताहै इसकारण इनको बुद्धियुक्त कहते हैं। और पाद, वायु, उपस्थ, हस्त और वाक यह कर्मेन्द्रिय हैं। क्योंकि इन के द्वारा गमन, मल मूत्र विसर्जन, आनन्द, शिल्प और वाक्य यह कार्य सम्पादन करें। शब्दमात्र आकाश स्पर्श मात्र में आविष्ट होनेपर, त्रिगुण वायु की उत्पत्ति होती है। स्पर्श इसकागुण है। शब्द और स्पर्श यहदो गुण रूप में आविष्ट होते हैं। अनन्तर तीन गुणयुक्त अग्नि की उत्पत्ति होती है। उस में शब्द, स्पर्श और रूप इनतीन गुणों का आवेश होता है। फिर शब्द, स्पर्श, और रूप रस मात्र में आविष्ट होकर चार गुणयुक्त रसात्मक जलकी उत्पत्ति करते हैं। अनन्तर शब्द, स्पर्श रूप और रस गन्धमात्र में आविष्ट होकर पृथिवी को आवृत करते हैं। उससे ही पाँचगुण युक्त स्थूलाकृति पृथिवी भूतगणों में दीखती है। इसकारण से ही वह शान्त, घोर और मूढ इन विशेष नामों से गिनेजाते हैं। यह एक दूसरे में प्रविष्ट होकर एक दूसरे को धारण करते हैं। यह घनावृत सम्पूर्ण लोकालोक पृथिवी के भीतर स्थित है। पहिले २ के गुण उत्तरोत्तर अनुविष्ट होते हैं। जैसे आकाश का गुण वायुमें इत्यादि यह आपस में विनामिले जब पृथक् रहते हैं, तब प्रजा सृष्टि नहीं करसकते। यह जब आपस में मिलकर सबप्रकार से एक होजाते हैं और जब पुरुष को अधिष्ठान और प्रवृत्ति का अनुग्रह प्राप्त है, तब महत से विशेषतक यह सम्पूर्ण पदार्थ अण्ड उत्पन्न करते हैं। यह अंडा जल के बबूले की समान जलका आश्रय करके क्रम से बढ़ता है।

तब ब्रह्म संज्ञक क्षेत्रज्ञभी उस प्राकृत अण्डे में बढ़ता है। वही प्रथम शरीरी और वही पुरुष कहाजाता है। वही भूतगणों के आदिकर्त्ता ब्रह्मा सबके आगे विराजमान होते हैं। उन में ही यह स्थावर जंगमात्मक सम्पूर्ण त्रिलोकी व्याप्त होरही है। समुद्र उस विराटरूपी अण्ड के जल हैं। देव, असुर, और मनुष्य समेत सम्पूर्ण जगत् उस अण्डे में ही प्रतिष्ठित हैं। द्वीप, अग्नि, समुद्र, और तारागणसमेत सब लोक उनमेंही प्रतिष्ठित हैं। जल, वायु, अग्नि आकाश और पृथिवी यह उत्तरोत्तर दशगुण विधान से बाहरकी ओर इस अण्डे को घेररहे हैं। फिर महत्तत्त्व इनके साहित उस को घेर रहा है। अव्यक्त अर्थात् प्रकृति इसमहान् के साथ उस को आवृत कररही है। इसप्रकारयह अण्ड उपरोक्त सातप्राकृत आवरणों से आच्छादित है। इसप्रकार आठ प्रकृति परस्पर को आवृतकरके स्थित हैं। यह प्रकृति नित्यस्वरूपा हैं। संक्षेप से यह विषय कहता हूँ, सुनो। जल में डूबाहुआ प्राणी जिसप्रकार जल से उठनेके समय जल और जलकी वस्तुओं को हटाता है ब्रह्माभी उसीप्रकार प्राकृति का प्रभु है। इस प्रकृति को क्षेत्र और ब्रह्माको क्षेत्रज्ञ कहते हैं यही क्षेत्र और काल का लक्षणजाने। इसप्रकार क्षेत्रज्ञ ब्रह्माद्वारा अधिष्ठित यह प्राकृत सृष्टिपहिले बिजली की समान प्रकट हुई है। पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त।

छयालीसवाँ अध्याय ।

क्रोष्टुकिबोला हेभगवन्! आपने अण्डका जन्म ब्रह्माण्डका महाप्रभाव, और ब्रह्माकी उत्पत्ति यथावत् कही । हेभृगु कुलोद्भव अब मैं आप से यह सुनना चाहता हूँ कि—प्रलय के अन्त में सबका संहार होनेपर फिर भूतोंकी उत्पत्ति किस प्रकार से होती है? मार्कण्डेयबोले, यह संसार प्रकृति में जब लीन होता है, विद्वान उस को प्राकृत प्रलय कहते हैं । प्रकृति के आत्मा में स्थित होनेपर सब पदार्थ लीन होजाते हैं । प्रकृति और पुरुष जब समान धर्म्म में स्थिति करते हैं,तब सत और तम यह दोगुण समान होजातेहैं । उससमय दोनों में से किसीकीभी किसी प्रकारकी वृद्धि वा न्यूनता नहीं रहती । दोनों परस्पर समभाव में मिलकर रहते हैं । जैसे तिल में तेल, दूधमें घी, सत और तममेभी वैसेही रजोगुणरहता है ।

ब्रह्माकी आयुका परिमाण दोपरार्द्ध काल है उनके दिनका परिमाण जितना है, रात्रिका भी परिमाण उसी प्रकार है । उनकी आदि नहीं; वह जगत् के आदि, पति, सबके उत्पत्ति स्थान, और सर्वापेक्षा प्रधान हैं । उनका स्वरूप विचारकर निर्णय नहीं कियाजाता । वह क्रिया के अतीत और परमेश्वर हैं । वह दिन में जागकर प्रकृति और पुरुषदोनों में प्रवेश करते हैं, और परमयोग के द्वारा उनको क्षोभित करते हैं । प्रकृति के क्षुभित होनेपर, वह ब्रह्मानामधारी देवता अण्डकोषका आश्रय करके उत्पन्नहोता है, यह मैं तुम से पहिले कहचुका हूं ।

वह पहिले क्षुभित करते हैं, फिर प्रकृति के स्वामी होकर स्वयं क्षुभित होते हैं । इस प्रकार सङ्कोच और विकास दो प्रकार के गुण की सहायता से वह प्रकृति में विराजते हैं । वह जगद्योनि निर्गुण होनेपर भी उत्पन्न होकर रजोगुणका आश्रय करते हैं, और ब्रह्मारूप से प्रगट होकर सृष्टिकरने में प्रवृत्तहोते हैं । ब्रह्मारूप से प्रजासृष्टि करके विष्णुमूर्त्ति धारण द्वारा धर्म्मानुसार प्रजाका पालन करते हैं । अनन्तर तमोगुणमयी रूद्रमूर्त्ति का आश्रय करके सम्पूर्ण जगत् का संहार करके शयन करते हैं । इसप्रकार वह निर्गुण होनेपर भी उक्त तीनों काल में तीनगुणों का आश्रय करते हैं । सबके उत्पत्ति स्थान वह परमेश्वर इसप्रकार सृजन, पालन, और लय, करने के कारण ब्रह्मा विष्णु, और महेश्वर नामकहेजाते हैं । ब्रह्मत्व में प्रजा सृष्टि, रुद्रत्व में संहार और विष्णुत्व में सबका पालन करते हैं । इसप्रकार वह स्वयम्भू तीन अवस्था का भोग करते हैं । उनमें रजोगुण साक्षात् ब्रह्मा, तमोगुणरुद्र और सतोगुण जगत्पति विष्णु है । इसप्रकार यह तीन देवता तीन गुणरूप में मिथुनभाव से एक दूसरे का आश्रय कियेहुए हैं । क्षणकाल भी इनका वियोग नहीं होता, और परस्पर क्षणकाल भी किसी को कोई नहीं छोड़ता ।

इसप्रकार देव देव चतुर्मुख ब्रह्मा, संसार सृष्टि के पहिले रजोगुण का आश्रय करके सब के सृष्टिकार्य्य में प्रवृत्तहोते हैं । वह हिरण्यगर्भ, वह देवादि, और प्रकारान्तर से अनादि हैं । वह भूपद्म कर्णिका का आश्रय करके सब से पहिले प्रगटहोते हैं । उन महात्मा की परमायु का परिमाण ब्रह्ममान के एकसौबरस हैं । उस

की संख्या वा गणना करताहूं, सुनो। पन्द्रह निमेप की एक काष्ठाहोती है। तीसकाष्ठाको कला कहते हैं। तीसकला का एक मुहूर्तहोता है। तीसमुहूर्त्त में मनुष्यों का एक रात दिन होता है। तीसअहोरात्र वा दो पक्षको एक मासकहते हैं। छै मासको एक अयन, और अयन में एक वर्षहोता है। दक्षिण और उत्तर भेद से अयन दो प्रकार के हैं। ऐसे मनुष्यों का एक वरस देवताओंका एक अहोरात्रहोता है उनमें उत्तरायण देवगणोंका दिन है।

इसप्रकार देव परिमाण के बारह सहस्रवर्षों से सत्य त्रेतादिक चारयुग बनते हैं। चार सहस्र दिव्यवर्षका सत्ययुग होता है। उसकी संध्या और संध्यांश दोनों देवमान के चारसौ वरस हैं तीन सहस्र दिव्यवर्षोंका त्रेतायुग होता है। उसकी संध्या और संध्यांश दोनों दिव्य तीनसौ वर्ष के हैं। दो सहस्र दिव्य वर्ष का द्वापरयुग होता है। उसकी संध्या और संध्यांश दोनों दोसौ दिव्यवर्ष के हैं। कलियुग का परिमाण देवमान के एक सहस्र वर्ष हैं। उसकी संध्या और संध्यांश दोनों एक सौ दिव्यवर्ष के हैं। कवियोंने इसप्रकार सवयुगों का परिमाण वारह सहस्र दिव्यवर्षों में विभक्त किया है।

इसको सहस्र गुण करने से जोकुछहो वही ब्रह्माका एक दिनकहते हैं। हे ब्रह्मन्! ब्रह्मा के उस एकदिन में चौदहमनु विभागक्रम से प्रगटहोतेहैं। फिर उनके सहस्र विभाग कल्पित होतेहैं। देवगण, सप्तर्पिगण, इन्द्र,मनु, मनु के पुत्र, राजा यह मनु के साथ जैसे उत्पन्न होते हैं, उसीप्रकार फिर पूर्ववत् संहार प्राप्तकरते हैं। एक सप्तति (सत्तर) सेभी अधिक चतुर्युग में एक मन्वन्तरहोता है। मनुष्यमान के वर्ष के अनुसार उनकी संख्या कहताहूं, सुनो। तीसकरोड़ सड़सठलाख, वीसहजार मनुष्य वर्षोंमें एक मन्वन्तर होता है। अव दिव्यमान के वर्षानुसार सुनो। वामन सहस्राधिक आठ सौ सहस्र दिव्यवर्षों में एक मन्वन्तर होता है।

इस कालको चौदहगुना करनेपर ब्रह्माका एक दिनहोता है। हे ब्रह्मन्! इस ब्राह्मदिन के अन्त में जो प्रलयहोती है, उसको पण्डित लोग नैमित्तिक प्रलय कहते हैं। भूर्लोक, भुवर्लोक, और स्वर्गलोक सवही विनाशशील हैं। उनमें प्रयुक्त सवकाही विनाशहोता है। केवल महर्लोक शेषरहता है। महर्लोक निवासी लोग भी प्रलयकाल में उत्पन्न हुए ताप से जनलोक में जाते हैं। तीनों भुवन एकार्णव होजाते हैं। ब्रह्मारात्रि में सोते हैं। ब्रह्माकी रातभी, उनके दिनकी समान परिमाणवाली है। इनरात के अन्तमेंही फिर सृष्टिक्रियाका आरंभहोता है। इसप्रकार दिनरात की गणना से ब्रह्माका जो एक वर्षहोता है, उसको सौगुना करके फिर सौगुना करनेपर जो संख्याहोती हैं, उसका नामपर है। ऐसे पचासवर्ष में परार्द्धहोता है। हे द्विजश्रेष्ठ! इसक्रम से ब्रह्माका एक परार्द्ध वीता है। जिसका अन्त में पाद्मनामक महाकल्प संघटित हुआथा। अव दूसरा परार्द्ध चलता है। इसका नाम वाराहकल्प है। यही पहिला कल्प गिनाजाता है। इति ब्रह्माकी आयु परिमाण नाम छियालीसवां अध्यायसमाप्त।

४७ अध्याय।

क्रोष्टुकिबोले,प्रजापतीश्वर,आदिकर्त्ताभगवान् ब्रह्मा जिसप्रकार सृष्टिकरते हैं, वह विस्तार पूर्वक मुझसेकहो। मार्कण्डेयबोले, हे ब्रह्मन्! यह लोक स्रष्टा, नित्य स्वरूप भगवान् जिस प्रकार प्रजाकीसृष्टि करते हैं, सोतुम से कहताहू। पद्मावसान प्रलय में वह निद्रा से उठकर सतोगुण में प्रविष्ट होते हैं, और देखते हैं कि संसार सूना है। उन ब्रह्म स्वरूप धारी जगत् के सृष्टिकर्त्ता नारायण के उद्देश से यह श्लोक कहागया है कि -जलकोनार कहते हैं वह उस में शयन करते हैं, इस कारायण नाम से गिनेजाते हैं। उन्हों ने उस जल में जागकर जाना कि-पृथिवी उस में डूबीहुई है। तब उस के उद्धार करने की इच्छा से कल्प की आदि में जिसप्रकार मत्स्य, कूर्मादिरूप धारण किये थे, उसीप्रकार शूकर मूर्त्ति धारण की। इसप्रकार सर्वज्ञ, सर्वप्रभु, सर्वकारण, वेदयज्ञमय ब्रह्मा ने दिव्य शरीर धारण करके जल में प्रवेशकिया। और पृथिवी का पाताल से उद्धार करके जल के ऊपर रक्खा। उससमय जनलोक वासी सिद्धलोग उनकी ध्यानधारणा में तत्परहुए। पृथिवीका देह अतिविस्तारवाला होनेके कारण, जलके ऊपर रखतेही, नौकाकी समान, स्थित होगया, मग्न वा प्लावित नहींहुआ अनन्तर पृथिवी को समान करके उस में पर्वतरचे सम्वर्त्तक अग्नि में पूर्व सृष्टि जलने के कारण पर्वत छिन्नभिन्न होगयेथे, सब पर्वत एकार्णव में डूबगयेथे। वायुद्वारा जल इकट्ठा होकर जिस जिस स्थान में स्थिरहुआथा, उस उस स्थान में ही पर्वत प्रगटहुए।

तदुपरान्त उन्हों ने सात द्वीप शोभित भूविभाग करके चारलोक कल्पित किये। उन के पूर्व कल्पादि की समान सृष्टिविषयक चिन्ता में प्रवृत्त होने पर तमोमय सृष्टि प्रगट हुई। यह सृष्टि बुद्धिपूर्वक नहीं थी। तम, मोह, महामोह, तामिस्र, अन्धतामिस्र, अविद्या यह पांच तमोमय सृष्टि के अन्तर्गत है। यह महाप्रभाव ब्रह्मा से उत्पन्न हुई। ध्यान करते २ उन से जो पांचप्रकार की सृष्टि हुई, उस में किसीप्रकार के ज्ञान वा बुद्धि का लेशमात्र नहीं। क्या बाहर, क्या भीतर कहीं भी ज्ञान का संपर्क नहीं। आत्मा इस में गुप्तभाव से विराजमान है यह केवल पर्वत परम्परा की सृष्टिमात्र है। इस में मुख्य अर्थात् प्रधान २ पर्वत प्रगटहुए। इसकारण इस का नाम मुख्यसर्ग है। इस सृष्टिद्वारा किसीप्रकार का फल नहोते देखकर वह फिर दूसरे प्रकार की कल्पना में प्रवृत्त हुए। उस से तिर्य्यक्स्रोतः प्रगट हुआ। तिर्य्यक् प्रवृत्त होने के कारण उस का नाम तिर्य्यक् स्रोतः हुआ। पशु आदि तिर्य्यक् अर्थात् नीचजाति के जीव तिर्य्यक् स्रोतः नाम से विख्यात हैं। यह तमोगुण से आच्छादित, अविद्या के वशीभूत, कुमार्गगामी, अज्ञान में तत्पर और अहङ्कारयुक्त हैं। यह अट्ठाईस मार्गो में विभक्त और परस्पर आवृत अर्थात् कुछ नहीं समझनेवाले, इन के अन्तर में केवल प्रकाश अर्थात् ज्ञान की स्फूर्त्ति होती है। इन की सृष्टि से कुछ फल न होता हुआ देखकर वह फिर ध्यान में तत्पर हुए, तब ऊर्द्धस्रोतो नामक दूसरे प्रकार की सृष्टि प्रगटहुई। यह सृष्टि सतोगुणप्रधान होने से

भीतर और बाहर अनावृत और प्रकाशयुक्त हुई। इसकारण इस में प्रीति और सुख की अधिकता देखीगई। इस तीसरी सृष्टि का नाम देवसृष्टि है। भगवान् ब्रह्मा ने प्रसन्नचित्त से इस की कल्पना की। इस सृष्टि के प्रगट होने पर ब्रह्मा अत्यन्त प्रसन्न हुए। अनन्तर उन्हों ने दूसरे प्रकार की श्रेष्ठ सृष्टि के निमित्त ध्यान करना आरम्भ किया। वह जो ध्यान वा चिंता करते हैं वह कभी निष्फल नहीं होती। इसकारण ध्यान में प्रवृत्त होने पर अर्वाक् स्रोतो नामक साधक सृष्टि प्रगट हुई। अर्वाक् अर्थात् रज और तम इन दो गुणों के अनुसार ही प्रधानतः प्रवृत्ति होती है, इसकारण इस का नाम अर्वाक्स्रोत है। अथवा नीचे की तरफ ही विसर्जन व्यापार सम्पादन होता है, इसकारण इस को अर्वाक्स्रोत कहते हैं। अथवा देवता की अपेक्षा सब प्रकार से नीच और अनेक अंश में तिर्य्यक्स्रोत की समान होने से अर्वाक्स्रोत नाम हुआ है। मनुष्यों को अर्वाक्स्रोत कहते हैं। यह तमोगुण और रजोगुण प्रधान हैं; इन में दुःख का भाग ही अधिक है, अतएव यह वारम्वार कार्य्यानुष्ठान में प्रवृत्त होते हैं। यह प्रधानतः ज्ञान संपन्न होने के कारण भीतर और बाहर प्रकाशयुक्त हैं। और यह सृष्टि के उद्देश्य साधन करने में समर्थ हैं।

पांचवीं सृष्टि का नाम अनुग्रहसृष्टि है। यह चार भागों में विभक्त है। जैसे विपर्यय, सिद्धि, शान्ति और तुष्टि। अतीत और वर्त्तमान दोनों विषय ही इस अनुग्रह सृष्टि के ज्ञानगोचर होते हैं। यही भूतादि भूतगणों की छटी सृष्टि है। यह सब ही परिग्रहशील, संविभागनिरत और सब के प्रेरक हैं। ब्रह्मा की प्रथम सृष्टि महत्तत्व है। दूसरी सृष्टितन्मात्र परम्परा है। इस का ही नाम भूतसृष्टि है। तीसरी सृष्टि वैकारिक है। इस को इन्द्रियसृष्टि कहते हैं। इसप्रकार ब्रह्मा बुद्धिपूर्वक यह प्राकृतसृष्टि करते हैं। उन की चौथी सृष्टि मुख्य सर्ग है। मुख्य स्थावर इस सृष्टि के अन्तर्गत है। उक्त तिर्यक्स्रोत, जो तिर्यक्योनि कहीजाती है, वह पञ्चम सृष्टि है। छटी सृष्टि उर्ध्व स्रोत है इस का नाम देवसृष्टि है। सातवीं सृष्टि अर्वाक् स्रोत है। इस का नाम मानव सृष्टि है। आठवीं सृष्टि अनुग्रह है। यह सत और तम दोनों गुणयुक्त है। इन में पांच वैकारिक सृष्टि और तीन प्राकृत सृष्टि हैं। नवम सृष्टि का नाम कौमार है। तुम्हारे निकट प्रजापति की विधान कीहुई प्राकृत, वैकृत और कौमार यह नौप्रकार की सृष्टि कही। सैंतालीसवां अध्याय समाप्त।

-----*-----

अड़तालीसवां अध्याय।

क्रोष्टुकि बोले, हे ब्रह्मन्! आप ने संक्षेप से सब सृष्टि का वर्णन किया। किन्तु देवादि की सृष्टि विस्तार से कहिये। मार्कण्डेय बोले, हे ब्रह्मन्! ब्रह्मा के सृष्टिकार्य में प्रवृत्त होने पर देव से स्थावर तक चारप्रकार की प्रजा उन के मन से उत्पन्न हुई। वह सब ही शुभाशुभ पूर्वकर्म के बल से उत्पन्न होने के कारण मुक्तिलाभ में असमर्थ होकर प्रलयकाल में संहार को प्राप्त होते हैं। ब्रह्मा, देव, असुर, पितर और मनुष्य इस चारप्रकार की प्रजा के उत्पन्न करने की इच्छा से अपनी आत्मा को

उस जल के साथ संयोजित किया। उस से उन प्रजापति की तमोमयमात्रा का अतिशय प्रादुर्भाव हुआ। उन के सृष्टि की इच्छा करने पर उन के जघन देश से पहिले असुर प्रगट हुए। तब उन्हों ने तमोमय शरीर को त्याग दिया। त्याग करते ही यह देह तत्काल रात्रि-रूप से उत्पन्न हुआ।

अनन्तर उन्होंने दूसरे प्रकार का शरीर धारण किया; और सृष्टि की इच्छा करनेपर सतोगुण के उद्रेकद्वारा उन के मुख से देवगण उत्पन्न हुए। उन्होंने उसदेहकोभी त्यागदिया त्यागकरते ही वह सतोगुण प्रधान दिनरूप से प्रकट हुआ। तदुपरान्त उनके सतोगुणमात्र दूसरा शरीर धारण करके पितृवत् मनन में प्रवृत्त होनेपर पितर प्रगट हुए। पितरों का दर्शन करके उन्होंने उस शरीरको भी त्याग दिया। त्यागकरते ही वह दिन और रात दोनों के मध्य वर्त्तिनी संध्यारूप से प्रकट हुआ। तब उन्होंने रजोमात्रमय दूसरा शरीर धारण किया, उससे रजोगुणमय मनुष्य प्रकट हुए। उन्होंने मनुष्यों की सृष्टि करके उस शरीर को भी त्यागदिया। तब यह शरीर प्रकाशमय होगया। हेद्विज! देव देव ब्रह्माके यह सब शरीर ही दिन, रात, संध्या और ज्योत्स्नानामसे विख्यात हुए हैं। उन में ज्योत्स्ना, संध्या, दिन यहतीन सतोगुणमय हैं। और रात तमोमयी है। इसकारण ही देवता दिन में और असुर रात में बलवान् होते हैं और मनुष्य ज्योत्स्ना में, तथा पितर संध्याकाल में बलशाली, और शत्रुगणों के अजेय होते हैं। इनका विपर्य्यय प्राप्त होनेपर ही विपत ग्रस्तहोते हैं। ज्योत्स्ना रात, दिन, संध्या, यह चार ब्रह्मा के सत, रज तम, इ तीनगुण युक्त शरीर स्वरूप हैं।

प्रजापति ब्रह्मा जब इनचार प्रकारके शरीरको उत्पन्नकरके क्षुधा और तृष्णा से व्याकुलहुए तो रात में रज और तमोगुण मयी दूसरी देह धारणकी। अनन्तर भगवान् अजने रात्रि के अन्धकार में विरूप और श्मश्रुयुक्त मूर्खोंकी सृष्टिकी, वह उस देह के भक्षण करने को उद्यत हुए। उनमें से जिन्होंने रक्षाकरेंगे ऐसा वचन कहा, वह राक्षसहुए। और जिन्होंने यक्षण अर्थात् भक्षण करेंगे कहा। वह यक्ष हुए। उनको देखकर क्रोध से ब्रह्मा के बाल शिर से गिरपड़े। यह सब सर्प, अर्थात् चलने से सर्प और हीनत्व होनेसे अहि हुए। सर्पों को देखकर उन को क्रोध उत्पन्न हुआ, तो क्रोधके कारण क्रोधात्माओं की सृष्टि हुई अर्थात्, कपिल वर्ण, उग्रस्वभाव मांस भक्षक प्राणियों का आविर्भाव हुआ। अनन्तर गो अर्थात् वाक्यका ध्यान करते २ उनके पुत्र रूप से गंधर्वों का जन्म हुआ। इसप्रकार उपरोक्त आठ प्रकारकी योनियों के उत्पन्न होनेपर वह विभुअपने देहसे पशु और पक्षियों की, मुखसे बकरोंकी, छाती से मेंढोंकी, उदरसे गौओं की दोनोंपार्श्व और चरणों से, घोड़े, हाथी, गधे, खरगोश, मृग, ऊँट, इत्यादि की सृष्टि की। उन के रोमसे फलमूल वाली औषधियें उत्पन्नहुई। इसप्रकार विभु ब्रह्माने पशु और औषधियों को उत्पन्न करके यज्ञ किया। यह यज्ञ कल्पकी आदि में त्रेतायुग के आरंभ में अनुष्ठित हुआथा। गौ, बकरी, भैंस मैंढा और गधा इनको ग्राम्य पशु कहते हैं।

आरण्यपशु का वृत्तान्त कहता हूँ सुनो। कुत्ते आदि, दोखुरवाले, हाथी, वानर, पक्षी, जलचर पशु और सरीसृप, गायत्री, त्यृच, त्रिवृत साम, रथन्तर, अग्निष्टोम यज्ञ यह सब उन्होंने प्रथममुखसे रचना किये। दक्षिणमुखसे यजु, त्रैष्टुभछन्द, वृहत्स्तोम, वृहत् साम और उक्थ यह सब उत्पन्नहुए। साम, जगतीछन्द वृहत्स्तोम, वैरूप, अतिरात्र, यह पश्चिम मुखसे प्रगट हुए। इक्कीस अथर्वाण, आप्तोर्य्याम, अनुष्टुभ, वैराज, यह सब उत्तर मुखसे प्रगट हुए। उन भगवान् विष्णुने कल्प की आदि में, विजली, वज्र, मेघ, इन्द्रधनुष और पक्षियों को उत्पन्नकिया। उन्होंने पहिले देव असुर, और पितर आदि चार प्रकारकी प्रजा उत्पन्न करके, फिर स्थावर और जंगमकीसृष्टि की। उस से यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा मनुष्य, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, मृग और सर्प यह सब उत्पन्न हुए। उनमें स्थावर, जंगम, नश्वर, अविनश्वर, जिसका जैसा काम था उन्होंने सृष्टि करने से पहिले वही निर्द्धारण किया। वह उत्पन्न होकर ही उस उस कार्य के अनुसारी होते हैं। हत्यारापन, दयालुता कोमलता, क्रूरता, धर्म्म, अधर्म, सत्य मिथ्या, इन सब से युक्त होकर उन उन प्राणियों का जन्म होता है। उन में से जिसकी जैसी रुचि है उसको वही घटता है। सब शिक्षक और विधाता वह ब्रह्माही स्वयं उन २ प्राणियों के शरीर और इन्द्रियों के भिन्न २ रूप कल्पना तथा विनियोग करते हैं। वह आदि में वेदशब्दोंसेही देवादि भूतगणों के नाम, रूप और कर्म्म प्रपञ्चरचते हैं। इस प्रकार ऋषि, देवता तथा रात्रिके अन्त में और जो २ जन्म ग्रहण करते हैं। ऋतु के परिवर्त्तन समय में जैसे अनेक प्रकार के ऋतु चिह्नसबको प्रकट होते हैं। युग के आरंभमें भी ठीक उसी प्रकार होते हैं। अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा के रात के अन्त में जागने पर, इसीप्रकार सम्पूर्ण सृष्टियें कल्प २ में प्रगट होती हैं।

अड़तालिसवांअध्यायस समाप्त.

उड़न्चासवां अध्याय।

क्रौष्टुकि वोले, हे ब्रह्मन्! आपने जो अर्वाक् स्रोतो नामक मनुष्यसृष्टि की वात कही, भगवान् ब्रह्माने उसकी जिस प्रकार सृष्टिकी, सो विस्तार से कहिये हेमहामते! उन्होंने जिस प्रकार वर्ण और गुण तथा ब्राह्मणादि वर्णों के विहित कर्म्म रचे, वहभी कहिये।

मार्कण्डेय वोले, ब्रह्माने सृष्टि करने में प्रवृत्त होकर पहिले एक सहस्रमिथुन उत्पन्न किये। वह सवही सतोगुण युक्त और मनस्वीहुए। अनन्तर उन्होंने वक्षःस्थलसे एक सहस्र मिथुन उत्पन्न किये। वह सव रजोगुणयुक्त और अहङ्कारयुक्त हुए। अनन्तर उन्होंनें उस से एक सहस्र मिथुन उत्पन्न किये। वह सवही रज तमोगुण युक्त और चेष्टा सम्पन्न हुए। अनन्तर उन्होंने दोनों चरणों से और एक सहस्र मिथुन उत्पन्न किये। वह सवही तमोगुण युक्त, श्रीहीन और क्षुद्राशय हुए। वह सब प्राणीही कामातुर होकर मैथुन करने में प्रवृत्त हुए। तवसे इस कल्प में ऐसे मिथुन नहीं उत्पन्न होते हैं। उस समय स्त्रियों को मास २ में ऋतु नहीं होताथा। इस

कारण मैथुन करने से भी प्रसवनहीं हुआ । वह आयु के अन्त में प्रसव करते थे । सोभी एक वेर । मन २ में ध्यानकरने से ही एकवेर यह प्रसव क्रियासम्पादन होती । प्रत्येक मिथुन ही भलीभाँति दोषस्पर्शहीन शब्दादि विषय अधिकार करता । इसप्रकार प्रजापति की मानसी सृष्टि से ही यह संसार परिपूर्णहोगयाथा । उस युग में शीत, ग्रीष्म दोनोंही अल्प थे । प्रजाके लोग इच्छानुसार सहजमें नदी, समुद्र, सरोवर और पर्वत सब में वास और विचरण करतेथे । हे महामते ? वह विषय मात्र से ही स्वाभाविक तृप्ति भोग करते । कभी उन को किसी प्रकार का कष्ट उपस्थित नहीं होताथा । वह द्वेष और अहङ्कार को नहीं जानते थे; उन के निश्चित घरभी नहीं थे, सागर, पर्वत, जहां इच्छा होती वहीं रहते । निष्काम होकर जहां तहां विचरणकरते । मन में नित्य आनन्द मानते थे ।

पिशाच, सर्प, राक्षस, अहङ्कार युक्त मनुष्य पशु, पक्षी, नाके, मछली, बिच्छुआदि, यह सवही अधर्म्म से प्रगट हुएथे । उस समय फल, मूल वा पुष्प नहींथे, ऋतु और वर्ष आदि के भी नाम की गन्ध नहीं थी, वहुत शीत अथवा वहुत गर्मी भी नहींथी सब ही सुख का समयथा समय के साथ उन को अद्भुत सिद्धि सम्पादन होती थी । उन को पूर्वाह्न वा मध्याह्न में चञ्चलता उपस्थित होती तो इच्छामात्र से ही वह फिर तृप्ति पाते थे ।

और इच्छा मात्रसे ही मानसिक सुख मिलताथा । जल की सूक्ष्मता के कारण उससमय उन को रस संबंधी अनेक प्रकार की सिद्धि होकर उन का मनोरथ पूरा करती थी । उन को शरीर का किसी प्रकार काभी संस्कार नहीं करना होता था । वह सब ही स्थिर यौवन थे । विना संकल्पकेही उनकी मिथुन प्रजा जन्मग्रहण करती थी वह एक सङ्ग ही उत्पन्न होते, मरते और समान रूप युक्त होते । उन को इच्छा द्वेष नहीं था । इस भावसे ही वह परस्पर कालयापन करते । उनमें श्रेष्ठ और नीच भाव नहीं था । सब ही समान रूप आयु भोग करते । किसी कीभी मृत्यु पहिले नहीं होती थी । जब मरते सब साथ ही मरते । सुख काभी कोई तारतम्य नहीं था । वह सबही मनुष्य परिमाण में चार सहस्र वर्ष जीवित रहते । उन में से कोई भी किसी प्रकार का क्लेश नहीं पाता था । अत्यन्त सुख से समय विताते और समय आनेपर ही मरते थे । सब जगह ही सिद्धि प्राप्त करते । किसी को किसी वस्तुका अभाव नहीं था । वह क्रम२ से नष्ट होतेथे अचानक कोई नहीं मरता था । उन सब के नष्ट होनेपर आकाश से और मनुष्य गिरते । वह प्रायः गृह संज्ञित कल्प वृक्ष होकर उत्पन्न होते । उन कल्पवृक्षों से उनके सम्पूर्ण भोग सम्पादनहोते । त्रेतायुग में वह उन कल्पवृक्षों का आश्रय करकेही जीवन धारण करते थे । अनन्तर कालके साथ उन को राग उत्पन्न हुआ । इस कारण महीने२ ऋतु होने से वारम्वार गर्भ की उत्पत्ति होनेलगी । हे ब्रह्मन्! रागोत्पत्ति होनेसे, उन गृहसंज्ञित वृक्षोंकी शाखा गिरकर वस्त्र प्रसव करनेलगी, फलों से गहने उत्पन्न होने लगे ।, और उनसे ही उनके सुरस, सुन्दर वर्ण, महावलकारक, अमाक्षिक मधु आदि उत्पन्न होनेलगे । उस मधु का पान करके वह त्रेतायुग

में प्राणाधारण करने लगे । अनन्तर कालान्तर क्रम से उन्होंने फिर भोग युक्त होकर ममतायुक्त हृदय द्वारा उन सब वृक्षोंका ग्रहण किया । इस अपचार से उनके यह सब वृक्ष नष्ट होगये । फिर शीतोष्णादि द्वन्द्वोंके प्रगट होनेपर उनके निवारणार्थ सबने पहिले पुर निर्माणकिये । उन में मरुभूमि,दुर्ग,पर्वत,आदि प्रतिष्ठित हुए । वह सब अपनी अंगुलिके साथ नापकर उनमें ही रहने लगे । पहिलेसेही उन्होंने नापने के लिये प्रमाण बना रक्खे थे । जैसे, परमाणु, त्रसरेणु महीरज, केशाग्र, लिप्का यूका और यवोदर । ग्यारह यवोदर में एक अंगुलि होती है । अर्थात् ११ जौ यथा क्रम से एक के पीछे एक रखने से, उन के मध्य भाग का जो परिमाण हो वही अङ्गुलि शब्द से निर्दिष्ट होता है । इसप्रकार छै अङ्गुलियों में एक पद, दोपद में एक वितस्ति, दो वितस्ति में एक हाथ, चार हाथ में एक धनुष, दोसहस्र धनुष में एक गव्यूति, चार सहस्र गव्यूति में एक योजन । बुद्धिमानों ने गणना के निमित्त ऐसा निर्देश किया है । चारप्रकार के दुर्गों में पहिले तीन स्वाभाविक अर्थात् मनुष्यकृत नहीं हैं । चौथा कृत्रिम अर्थात् मनुष्य रचित है । इस के अतिरिक्त उन्होंने उस में पुर, खेटक, द्रोणीमुख, शाखानगर- कर्वटक, ग्राम, घोष, भिन्न २ घर ऊँची २ दीवारें, और खाई निर्माण कीं । उन के एक योजन के चौथे अंश को विष्कम्भ कहते हैं । विष्कम्भ के आठ भाग में एक पुर होता है । पूर्व और उत्तर की ओर को पुर निर्माण कराजाय । ऐसा पुर ही श्रेष्ठ है । पुर के आधे को खेटक कहते हैं खेटक का चौथा अंश कर्वट है । उस का आठवां अंश द्रोणीमुख है । मंत्री और राजा के भोगने योग्य स्थान को शाखा नगर कहते हैं । खेतों के योग्य पृथिवी में वसति का नाम ग्राम है । ग्राम में शूद्र का भाग ही अधिक रहता है, और उस में किसान रहते हैं । नगरादि के कार्य्योद्देश से मनुष्य जहां रहते हैं, उसी का नाम वसति है । जिस ग्राम में दुष्टों का भागही अधिक है, जो दूसरे की भूमि हो, और जीवन निर्वाह करने के लिये दूसरे लोग रहते हों, ऐसे ग्राम को अकमी कहते हैं । वह इसप्रकार अपने २ रहनेयोग्य नगरादि निर्माण करके द्वन्द्व निवारण के निमित्त घर स्थापन करनेलगे । पहिले जैसे उन के ग्रहाकार वृक्षथे,उन का स्मरण करके वैसे ही घर निर्माण करनेलगे । वृक्ष की शाखा जैसे एक के पीछे एक ऊँची और नीची होकर रहती हैं, उसी प्रकार की उन्होंने शाखा बनाईं । हे द्विजोत्तम ! पहिले कल्पवृक्षों की जो शाखा थीं वही घरों की शाखा हुईं ।

वह इसप्रकार शीतोष्णादि का प्रबंध करके वार्त्तोपाय की चिन्ता में तत्पर हुए । मधुसहित सब कल्पवृक्ष नष्ट होचुके थे । इसकारण वह भूँखप्यास से व्याकुल होगये । अनन्तर उस त्रेता के आरम्भ में उन को कृषि विषयक सिद्धि प्राप्त हुई । उन की इच्छानुसार वर्षा होनेलगी । उस वृष्टि का जल निम्नगामी होने से नदियें प्रगट हुईं । पहिले जो जल पृथिवी में गिरा था, मृत्तिका के संयोग से उस के दोष नष्ट होगये । उस समय वृक्ष और गुल्म उत्पन्न हुए । वह सब ऋतु में फलपुष्प

देते हैं और ग्राम्य तथा अरण्य दोभाग में विभक्त हैं ।

त्रेतायुग में ही प्रथम इसप्रकार औषधियें प्रगट हुईं । हे मुने ! उन औषधियों से ही उस युग की प्रजा ने प्राण धारण किये थे । उस काल राग और लोभ का सहसा आविर्भाव होने से प्रजा ने यथाशक्ति नदी, खेत, पर्वत, वृक्ष, गुल्म औषधि सब को ग्रहण किया । हे द्विज ! उस दोष से ही सब औषधियें उन के सामने अन्तर्द्धान होगईं । उन के नष्ट होने पर प्रजा फिर व्याकुल होगई, और सब ने ही क्षुधार्त्त होकर ब्रह्माजी की शरणली । पृथिवी ने जो औषधियें छिपाली थीं, उस का यथार्थ कारण जानलिया, और सुमेरु को बछड़ा बनाकर उस वसुन्धरा को दुहा । इसप्रकार शस्यदोहन करने पर उन के बीज प्रगट हुए । उस से ग्राम्य और अरण्यभेद से दोप्रकार की औषधियें उत्पन्न हुईं । इन के सत्रह समूह गिनेजाते हैं । फल पकतेही वह नष्ट होनेलगे । व्रीहि, जौ, गेहूँ, अणु, तिल, प्रयङ्गु, कुलथी, श्यामाक, मुनिअन्न, यव, तिल, गवेधु, कुरुविन्द, मोंठ, यह चौदह ग्राम्यारण्य औषधि कहलाती हैं । औषधियों के उत्पन्न होने पर भी जब उन का फिर अंकुर नहीं जमा, तब पितामह ब्रह्मा ने उन की वृद्धि के निमित्त कृषि और कर्मजनित हस्त सिद्धि भी विधान की । तब से औषधियें कृष्टपच्य होकर उत्पन्न होनेलगीं । इस प्रकार कृषिकार्य में सिद्धि प्राप्त होने पर भगवान् स्वयम्भू ने प्रजा के गुणानुसार यथोचित मर्यादा स्थापन और सब के वर्णाश्रम तथा उन के धर्म भी निर्देश करदिये । उसी के अनुसार क्रियाशील ब्राह्मणों का प्राजापत्य स्थान गिनाजाता है । संग्राम में स्थिर रहनेवाले क्षत्रियों का ऐन्द्र स्थान स्वधर्म पालनशील वैश्यों का मारुतस्थान और सेवा तत्पर शूद्रों का गान्धर्व स्थान निर्दिष्ट हुआ है । अठासी सहस्र ऊर्ध्वरेताऋषि जिस स्थान में निवास करें, गुरुवासियों का वह स्थान कहागया है । और सप्तर्षियों का जो स्थान है, वनवासी लोगों का भी वही स्थान है, गृहस्थी लोग प्रजापति के स्थान, सन्यासी स्वयं ब्रह्मा के स्थान और योगि लोग अमृत स्थान को प्राप्त करते हैं । यही स्थान कल्पना कहीगई है ।

उड़चासवां अध्याय समाप्त ।

पंचासवां अध्याय ।

मार्कण्डेयबोले, अनन्तर भगवान् ब्रह्माजी के ध्यान परायण होनेपर उन के मनसे प्रजा कार्य्य कारण के सहित प्रकट हुई । मैंने पहिले जिनकी बात कहीथी, उन सबने भी जन्म ग्रहण किया । देवादि से स्थावर पर्य्यन्त सब प्रजाही त्रिगुणमयी गिनीजाती है । स्थावर और जंगम सब इसप्रकारही उत्पन्न हुए । बुद्धिमान् ब्रह्माकी जब वह प्रजानहीं बढी? तब उन्होंने अपने अनुरूप और प्रकार के मानस पुत्रोंकी सृष्टि की । इनका नाम भृगु, पुलस्त्य, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, मरीचि, दक्ष, अत्रि, वसिष्ठ यह नौ ब्रह्माके मानसपुत्र पुराणों में निश्चित हुए हैं । अनन्तर ब्रह्माने फिर क्रोधात्मसंभव रुद्रकी, संकल्पकी और धर्म्म की सृष्टि की यह धर्म पूर्वोंकामी पूर्वज है । उन्होंने पहिले जो सनन्दादि प्रजा की सृष्टि की

थी वह समाधिपरायण और निरपेक्षहोने से संसार में आसक्त वा लिप्त नहीं हुए थे। यह सबही भविष्यज्ञान सम्पन्न, रागशून्य और मत्सरहीन हुए थे। प्रजा सृष्टि विषय में उन की उदासीनता देखकर प्रभावशाली ब्रह्माको अत्यन्त क्रोध हुआ। उससे सूर्य्य की समान प्रकाशित, विशाल शरीर युक्त अर्द्ध नारी नर-देह पुरुषने जन्म ग्रहण किया। यह देखकर ब्रह्माने उस से कहाकि, तुम आत्मा को विभक्त करो। यह बात कहकर ब्रह्माअन्तर्द्धान होगये। उस पुरुष ने उन की बातके अनुसार स्त्रीत्व और पुरुषत्व को पृथक् करके, पुरुषत्व को ग्यारह भागों में विभक्त किया। उससे सौम्य, असौम्य, शान्त, अशान्त, श्वेत और कृष्ण भेदसे अनेक प्रकार के स्वभाव और वर्ण युक्त पुरुष और स्त्रियों को उत्पन्न किया। अनन्तर ब्रह्माने आत्मसंभूत उसपुरुष को अपनी सदृश प्रथम स्वायम्भुवमनु और उस स्त्रीको शतरूपा रूपसे निर्माण किया, उन स्वायम्भुव मनुने तपके प्रभाव से सर्वथा निष्पाप शतरूपा को पत्नी रूपसे ग्रहणकिया। शतरूपाने उस पुरुष से दोपुत्र प्रसवकिये। उनकानाम प्रियव्रत और उत्तानपादहुआउन्होंने अपने कर्म्म बलसे ख्याति प्राप्त की। शतरूपा के गर्भ से दो कन्याभी उत्पन्न हुईं। उनका नाम ऋद्धि और प्रसूति हुआ। उनमें पिताने दक्षको प्रसूति और रुचिको ऋद्धिदान की। दक्षिणा सहित यज्ञ उन के पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ। इसकाही नाम दम्पतिमिथुन है। अनन्तर दक्षिणा के गर्भ से यज्ञ के बारह पुत्र उत्पन्न हुए। उन्होंने ही स्वायम्भुव मन्वन्तर में याम नामक देवता रूपसे यशप्राप्त कियाथा। प्रसूतिके गर्भसे दक्ष ने चौबीस कन्या उत्पन्न की। उन के नामकहताहूँ सुनो। यथा श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, मेधा, बुद्धि, लज्जा, तप, शान्ति, सिद्धि, कीर्ति, इन तेरह दक्ष कन्याको धर्म्म ने पत्नीरूप से ग्रहण किया। शेष ग्यारह छोटी कन्याओं के नाम यथा क्रमसे ख्याति, सती सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा, स्वधा,। भृगु, भव, मरीचि अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ, अत्रि, वह्नि और पितर इत्यादिकों ने इन तेरह कन्याओं को पत्नीरूप से ग्रहणकिया श्रद्धाने कामको, श्रीनेदर्प को, धृतिने नियम को, तुष्टिने सन्तोष को और पुष्टिने लोभको उत्पन्न किया। और मेधाके गर्भ से श्रुत, क्रिया के गर्भ से दण्ड, विनय और नय; बुद्धिके गर्भ से बोध, लज्जा के गर्भ से विनय, और वपु उत्पन्नहुआ। शान्ति से क्षेम, सिद्धि से सुख, कीर्ति से यश ने जन्म ग्रहण किया यह सबही धर्म्म के पुत्र हैं। कामसे अतिमुद और हर्ष उत्पन्न हुआ। यह धर्म्म के पौत्र हैं। अधर्म्मकी भार्य्या हिंसा है। उस के गर्भ से अनृतका जन्म हुआ। उसकी कन्याका नाम निर्ऋति। नरक और भय यह दो निर्ऋति के पुत्र हैं। माया और वेदनायह दो-उन की स्त्री हैं।

उन में मायाने सब प्राणियों के संहारक मृत्युको उत्पन्न किया। औररौरव से वेदनके गर्भसे दुःख की उत्पत्ति हुई। मृत्यु के गर्भ से व्याधि जरा, शोक, तृष्णा, क्रोध इन्होंने जन्म ग्रहण

किया । अथवा इनसब ही दुःखसे उत्पत्ति गि-नी जाती है । यह सबही अधर्म लक्षण और ऊर्द्धरेता हुए । इसकारण इन के भार्य्या पुत्र भी नहीं हुए । हेमुने ! मृत्युकी दूसरी स्त्रीका नाम निर्ऋति है । इसकी एक और स्त्रीका नाम अलक्ष्मीहै । उसके गर्भ से मृत्यु के चौदह पुत्र उत्पन्न हुए । इन अलक्ष्मी के पुत्रों ने ही मृत्यु की आज्ञा पालनकी थी । वि-नाश काल उपस्थित होनेपर ही यह लोगों को लिपटते हैं । इनका वृतान्त सुनो । मनुष्योंकी दश इन्द्रिय और मनमें स्थिति करते हैं,और स्त्री पुरुषको अपने२ विषय में नियुक्त करते हैं । अनन्तर यह राग और क्रोधादि की सहायता से इन्द्रियोंको आक्रमण करके ऐसी योजना कर-ते हैं,जिससे वह अधर्मादि के द्वारा हानि प्राप्त करते हैं । इनमें से कोई अहङ्कार और कोई बुद्धि में रहता हैं । उनसे प्रेरित हुए मनुष्य मोहका आश्रय करके स्त्रियोंके विनाशके निमित्त यत्न करते हैं इनमें से कोई२ मनुष्य आदि के घर में निवास करते हैं ।

इन में से दुःसह नामक विख्यात मृत्यु काक की समान स्वरयुक्त, नग्न, चीरधारी अधोमुख और क्षुधा से अत्यन्त कृश है । ब्रह्मा ने उस तपोनिधि को सब के भक्षणार्थ उत्पन्न किया । इस से वह अत्यन्त भयङ्कर दंष्ट्राकराल मुख से सब के भक्षण करने को उद्यत हुआ, तब जगत् के कारण नित्य और शुद्धस्वरूप, सर्वब्रह्ममय,पितामह ब्रह्मा ने कहा कि—इस संसार को भक्षण मत करो, क्रोध को त्यागकर शान्ति धारण करो, और रज अंश त्यागकर तामसी वृत्ति को छोडदो । दुःसह बोला, कि जगन्नाथ ! मैं भूख और प्यास से पीडित होकर दुर्बल होगया हूँ । हे नाथ ! किस प्रकार मेरी तृप्ति होसकती है, और कि-सप्रकार मैं बलवान् होसकता हूँ, तथा मेरा आश्रय ही क्या है, जिस से मैं शान्तिपूर्वक जीवनयात्रा निर्वाह करसकूँ, कहिये ।

ब्रह्माजी बोले कि—हे वत्स ! संसार तुम्हारा आश्रय है, अधर्मी लोग तुम्हारा बल है और नित्य क्रियाहीन द्वारा तुम्हारी पुष्टि सञ्चित होगी । और वृथा स्फोट तुम्हारे वस्त्र होंगे । मैं तुम को भोजन भी देता हूँ । क्षत, कीटदू-षित, कुत्ते से देखाहुआ, टूटे पात्र में स्थित, मुख की वायु से ठंढा कियाहुआ, उच्छिष्ट, कच्चा, चाटाहुआ, असंस्कृत, टूटेआसनपर बैठकर दोनों संध्या में भक्षित, रजस्वला द्वारा ताड़ित, भुक्त अथवा देखाहुआ जो कुछअन्न जल है, वह सबही मैं तुम्हारी पुष्टि के निमित्त देताहूं । जो अश्रद्धा से अग्निमें होमकियाजाय तिरस्कार पूर्वक दान कियाजाय, विनाजल के फेंकाहुआ, अथवा जो त्यागकरने के निमित्त ही सम्पादितहो, अतिआश्चर्य्य से दान किया-जाय, क्रोधी और रोगीका दियाहुआ, ऐसे दूषित पदार्थोंका तुम भक्षणकरना । अथवा पुनर्भवा के पुत्र और कन्या परलोक के निमित्त जो कुछ अनुष्ठान करें, तुमवही भक्षणकरना । मैंने तुम्हारीतृप्ति के लिये उसको दिया । अथवा कन्या के ऊपर लियेहुए धनसे जो क्रिया की जाय, अथवा असत् शास्त्र के अनुसार जो क्रिया संपादितहो, पुष्टि के निमित्त उसकोही भक्षण करना । अथवा सत्यको छोड़कर जो धन उपार्जन कियाजाय वा जो कुछ पढ़ाजाय,

तुम्हारी सिद्धि के निमित्त वह सबही मैंने दिया । इसके अतिरिक्त कालमी तुमको देताहूं । हे दुःसह! जो गर्भवती स्त्री से मैथुन करें, अथवा संध्या आदि नित्यकार्य्य का व्यतिक्रम करें, अथवा जो लोग असत् शास्त्र के अनुसार क्रिया अनुष्ठान, वा वातचीत करें उन सबके ऊपरही तुम्हारा अधिकार होगा । पंक्तिविच्छेद, पाकभेद, वृथापाक, और नित्यगृह क्लेश इन सबमें तुम वासकरना ।

गौआदि को बांधकर पोषण न करनेवाले, और संध्या समय घरमें जल न देनेवाले लोगों को तुम से भयहोगा । नक्षत्र और गृहपीड़ा, तथा तीन प्रकार के उत्पात् दर्शन में जो शान्तिकार्य्य का अनुष्ठान न करें, तुम उसका भक्षण और तिरस्कार करना । जो वृथा उपवासकरें, स्त्री, द्यूत और मद्यपान में सदा आसक्तरहें, विड़ाल व्रतधारण करें, तुम उनका भक्षण और तिरस्कार करना । ब्रह्मचारी होकर जो अध्ययन करें, विनाजाने जो यज्ञ करें, तपोवन में रहकर जो अजितेन्द्रिय रहे, ग्राम्य भोग करने के निमित्त जो चेष्टाकरे, वह अध्ययन, वह यज्ञ, वह चेष्टा, और उसचेष्टा का जो फलहो, वही तुम भोजन करना । अथवा ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र यह अपने २ विहित कार्य्य से भ्रष्ट होकर, परलोक की इच्छा से जो चेष्टाकरें, उसचेष्टा और आहार का फलही तुम्हारा खाद्यहोगा । इसके अतिरिक्त तुम्हारी पुष्टि के निमित्त जो कुछ देताहूं सो सुनो । वैश्य देव वलिके अन्त में तुम्हारा नाम लेकर जो कुछ तुम्हारे निमित्त दियाजाय, वह भी तुम्हारा भोजन होगा । जो सब पदार्थों का यथोचित संस्कार करके भोजन करें, जो पुरुष वाहर और भीतर से पवित्र है, जिसको लोभ नहीं, और जो पुरुष स्त्री के वशीभूत नहीं है, तुम उसका घर छोड़देना । जो अपने २ कार्य्य द्वारा पितर, देव और अतिथियों की पूजा करते हैं, उनके घरमें मतजाना । जिस घरमें वालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष और कुटुम्बीरहते हैं उसघर कोभी त्यागदेना । जिसघर की स्त्रियें काय मन से उसमें आसक्त हैं, वाहर जाने की इच्छा नहीं करतीं, और जो लज्जायुक्त हैं, ऐसे घरकोभी त्यागदेना । जिसघर आयु और सम्बंध विचारकर शयन और आसन की व्यवस्था है, तुममेरे वचनसे उसघर कोभी त्यागदेना । जिसघर के लोग करुणायुक्त हैं, सदाही श्रेष्ठकार्य्य में तत्पर और सामान्य रूप उपकरण मेंही दत्तचित्त हैं ऐसे घरकोभी छोड़देना । जिसघर में गुरु, वृद्ध और ब्राह्मणों के आनेपर लोग आसनसे उठखड़ेहों, उस घरको भी त्यागदेना । जिस घरका द्वार और वृक्ष गुल्मादि द्वारा विद्ध नहो, और जिस घरमें पुरुष का मर्म्म भेद नहीं होता, वह घरभी तुम्हारे पक्षमें श्रेष्ठ नहीं है । जो पुरुष देव पितर, मनुष्य और अतिथियों को देकर शेष अन्नसे जीविका निर्वाह करता है, तुम उसका घरभी छोड़देना । जो सत्यवादी, क्षमायुक्त, अहिंसक, अनुताप और निन्दाहीन हैं, उनको तुम छोड़देना । जो स्त्री स्वामी की सेवामें दत्तचित्तहो दुष्ट स्त्री का संगहीन, और कुटुम्वस्वामी के भोजन करलेने पर भोजन करके शरीर का पालन करतीहो उसको तुम त्यागदेना ।

जो ब्राह्मण यज्ञ, वेदपाठ, दान इन सबमें

तत्पर है, और सदा यज्ञ कराने, वेद पढ़ाने, और प्रतिग्रह से जीविका निर्वाह करे, उस कोभी तुम छोड़देना। हे दुःसह! दान, वेद पाठ, और यज्ञ इनमें जो क्षत्रिय सदा तत्पर रहे, और सत्मार्ग में शास्त्र के अनुसार जीवन यात्रा निर्वाह और वेतन ग्रहण करे, उसको तुम त्यागदेना। जो वैश्य तीनों गुणयुक्त और पशुपालकहो, तथा व्यौपार और कृषिकार्य से जीविका निर्वाह करे, उसकोभी तुम त्यागदेना। जो शूद्र, दान, यज्ञ और द्विजसेवा में तत्पर रहे, तथा ब्राह्मणादि तीनोंवर्णों की शुश्रूषा करके अपना पालन करे तुम उसको भी त्यागदेना। जिसघर में घरकास्वामी श्रुतिस्मृति के अनुसार जीवन निर्वाह करे, और उसकी स्त्रीभी उसीकी अनुगामिनीहो, तथा जिसस्थान में गुरुपूजा, देवपूजा और पितृपूजा होतीहो, स्त्री स्वामीकी सेवामें तत्पर रहे, उस घरमें अलक्ष्मीका भयकहां? जो घर लिपापुता और पुष्पों द्वारा सदा सजा हुआ रहे, तुम उसघर की तरफ दृष्टिपात करने में समर्थ नहीं होगे। जिसघर में सूर्यकभी शय्या न देख सके, नित्य अग्नि और जल वर्त्तमान रहे, तथा नित्यप्रति सूर्यको दीपक दिखायाजाय, वही घरलक्ष्मी के रहने का स्थान है। जिस स्थान में चन्दन, वीणा, दर्पण, मधु घृत, ब्राह्मण और ताम्रपात विराजमान् रहें, वह घरभी तुम्हारा आश्रय स्थान नहीं है। जिसस्थान में कण्टक युक्तवृक्ष, निष्पावलता, पुनर्भू भार्य्या और वल्मीक विद्यमान रहें, वह घरही तुम्हारा स्थान है। जिस घरमें पाँच पुरुष तीन स्त्री, तीन गौ और अन्धकार मेंही अग्नि जलती रहे, वह घरही तुम्हारा स्थान है। जहां एक बकरा, दो गौरी, तीन गौ, पाँच भैंसे, छै घोड़े, और सात हाथीहों, तुम उस घरको शीघ्रशोषणकरना। जिस घरमें कसैडी आदि पात्र जहां तहां पडेहों। स्त्रियें मुषल, उदुम्बर में बैठें वही स्थान तुम्हारे आश्रय योग्य है। जहां पके और वेपके धान्यदीखें, और उसी प्रकार सब शास्त्र भी देखेजायँ, तुम उस घरमें इच्छानुसार विचरना। जिसघर में दिनरात क्लेश रहे, वा मनुष्य की हड्डीहो वह घरही तुम्हारे तथा राक्षसों के रहने योग्य है। जो सपिण्ड, समानोदक, और बन्धु बान्धवोंको बिनादिये भोजन करें, तुम तत्काल उनका आश्रय करना।

जिस घर में पद्म, महापद्म, प्रसन्नमुखी युवती, वृषभ और ऐरावत कल्पित हों, तुम उस घर को त्यागदेना। जिस घर में अशस्त्र और विनायुद्ध के भी शस्त्रधारी देवमूर्त्तियें कल्पित हों, तुम उस घर को त्यागदेना। सूप की वायु, घड का जल, वस्त्र से निचोडा जल और नख के अग्रभाग का जल, इन से जो स्नान करें, ऐसे कुलक्षण पुरुषों का तुम आश्रय करना। जो पुरुष देशाचार नियम, जातिधर्म, जप होम, मंगल, देवताओं की उपासना, भलीभांति शौच, और सम्पूर्ण लोग वाद का अनुष्ठान और अनुशरण करता है, तुम उस के साथ कभी न रहना। मार्कण्डेय बोले कि-ब्रह्मा दुःसह से ऐसा कहकर उस स्थान मेंही अन्तर्धान होगये। दुःसह भी उनकी आज्ञापालन करनेलगा। पंचासवां अध्याय समाप्त।

---

५१ अध्याय ।

मार्कण्डेय बोले कि—दुःसह की भार्या का नाम निर्माष्टि है । ऋतु समय में चण्डालदर्शन होने से कलि की भार्या में उस का जन्म हुआ । इन की सन्तान जगत्व्यापी है । उन की संख्या सोलह है । उन में आठ पुत्र और आठ कन्या हैं । यह सब ही अति भयङ्कर हैं। इन के नाम दन्ताकृष्टि, उक्ति, परिवर्त्त, अङ्गधुक्, शकुनि, गण्डप्रान्तरति, गर्भहा और शस्यहा । यह आठ कुमार उस के पुत्र हैं । अब कन्यागण के नाम सुनो, जैसे नियोजिका विरोधिनी, स्वयंहारी, भ्रामणी, ऋतुहारिका, स्मृतिहरा, बीजहरा और विद्वेषिणी । उन में स्मृतिहरा और बीजहरा यह दो कन्या अत्यन्त दारुण हैं प्रकृति और विद्वेषणी सब संसारको भय उत्पन्न करती हैं । इन सब कन्या के कर्म और दोषशान्ति का उपाय कहता हूँ, हे द्विजोत्तम! आठ कुमारोंके कार्य और द्वेषशान्तिकी विधि भी सुनो । दन्ताकृष्टि उत्पन्न हुए बालक के दांतों में स्थित करके दुःसह की सहायता कहने के निमित्त अति संहर्ष करती है। सफेद सरसों शय्या के ऊपर बखेरकर उस की शान्तिविधान करे । उस समय औषधि के जल में स्नान, सत् शास्त्र का कीर्त्तन, ऊँट, गेंडे की हड्डी और क्षौम वस्त्र धारण, भगवान् जनार्दन का नाम कीर्त्तन, चराचर गुरु ब्रह्मा अथवा जिस का जो कुलदेवता हो, उस का नाम भी स्मरण करना चाहिये ।

एकस्त्रीके गर्भमें दूसरी स्त्रीका गर्भ परिवर्तित और वक्ताके वाक्यकोभी विपरीत रूपसे प्रतिपादित करके प्रसन्न होताहै, इसकारण इस का नाम परिवर्त्त है । इनसे भी सफेदसरसों और रक्षोघ्न मंत्र जपद्वारा रक्षा विधान करे । अङ्गधुक्, वायुकी समान प्रस्फुरणोक्त शुभाशुभ सूचना करता है । कुशद्वारा उसका शरीर ताड़न करे । यह कुमार काकआदि पक्षी और कुत्ते शृगालादि में स्थिति करके शुभाशुभ बताता है । इसकारण प्रजापतिने स्वयंकहाहै कि, अशुभ घटनामें विलम्ब और एक साथही उद्योग त्याग करे । और शुभ घटनामें शीघ्रता करे । गण्ड प्रान्तरति गण्डान्तमें स्थिति करके आधे मुहूर्तमेंही सम्पूर्ण कार्य्य, ऐश्वर्य, और अनसूयता हरण करलेता है । विप्रोक्ति देवतास्तुति, मूलोत्खात, गोमूत्र और सरसों जलमें स्नान, और उसको जन्मनक्षत्र, ग्रहपूजा, शास्त्र दर्शन इत्यादि उपायोंसे उसकी शान्ति होती है । गर्भहा, स्त्रियोंके गर्भमें रहकर उनकाफल नाश करता है । उसकी प्रकृति अत्यन्त दारुण है । नित्य पवित्र होकर स्थिति, प्रसिद्ध मंत्र लिखना, श्रेष्ठ मालाआदि धारण, पवित्र घरमें रहना, इन सब उपायोंसे सदा उसकी रक्षा करे । शस्य समृद्धि नाशकरने के कारण इसका नाम शस्यहा है । पुरानी पादुका धारण, अपसव्य गमन, चण्डाल प्रवेशन, बाहर बलिदान, इनसब उपायों से उसकी रक्षा करे। परदार और परद्रव्य हरणादि निन्दित कार्य्य में नियुक्त करता है इसकारण इस कन्याका नाम नियोजिका है । सत् शास्त्रादि पठन, क्रोध लोभादि वर्जन और क्रोध त्यागने से शान्ति होती है । जबकोई किसीको कोसे, उसका विचार करना उचित है, यह नियोजिकाही ऐसा कराती है । इस कारण ज्ञानी लोग उसके वशीभूतनहीं । यह-

नियोजिकाही दूसरे की स्त्रीआदि संसर्ग में मेरे चित्त और आत्माको नियोजित करती है, बुद्धिमान् मनुष्य ऐसा विचारे । परस्पर प्रीतियुक्त स्त्रीपुरुष, बन्धु, मित्र, पिता, माता, पुत्र, सवर्ण इनमें विरोध कराती है, इसकारण इसका नाम विरोधिनी है । बलिप्रदान, अतिवाद सहन, अर्थात् अति कडवे वचन कहनेपर भी उनको सहलेना, शास्त्र में विधान किये आचार का पालन, इत्यादि उपायों से विरोधिनीकी शान्ति करे । खल अर्थात् गोलाआदि और घरसे धान्य गौसे दूध, और घी, तथा ऋद्धि युक्त द्रव्यों से समृद्धि नष्ट करती है, इस कारण इस कन्या का नाम स्वयं हारि का है । यह स्वयं हारिका सदा ही छिपकर रहती है । पाकशाला से आधा पकाहुआ अन्न, अन्न गृह में अन्न । और परि वृश्यमान अन्न भोक्ता के साथ भोजन करना ही इसका स्वभाव है । इस के अतिरिक्त लोगो का जूँठाअन्न, और गौ स्त्री के स्तनों से सदाही दूध हरण करती है । फिर, दही से घी, तिलसे तैल, मद्य घर से मद्य, कपास से डोरा और कुसुमादि से वर्ण निरन्तर हरण करनाभी इसस्वयंहारिका का दूसरा स्वभाव है । इसकी रक्षा के निमित्त कृत्रिम स्त्रीमूर्ति मोरका जोड़ा निर्माण, होमाग्नि तथा देवोद्देश से दीहुई धूप, इन दोनों की भस्म से दूध आदि के पात्र शुद्धकरे । ऐसा करनेपर ही उसकी रक्षा होगी । एकस्थान में रहनेवाले पुरुष को उद्वेग को उत्पन्न करती है, इस कारण उस कन्याका नाम भ्रामणी हुआ है। इस पुरुष के आसन, शय्या और अधिष्ठित पृथिवी खण्ड में सफेद सरसों बखेरने परही उसकी रक्षा होती है । वह पुरुष सदा यही विचारे कि, यह दुष्टा पापिनी कुमारी मुझको वारम्वार भुलावा देती है । इस प्रकार विचार समाधि पूर्वक सूक्त जपकरे । ऋतुहारिका अर्थात् स्त्रियों का पुष्प होतेही तत्काल उस को हरण करती है, इसकारण इस का नाम ऋतु हारिका है । इसकी शान्ति के निमित्त तीर्थ, देवक्षेत्र, चैत्य, पर्वतकी कन्दरा, और नदी सङ्गम में स्नान कराना चाहिये । स्त्रियों की स्मृति हरण करती है, इसकारण इसका नाम स्मृति हारिका है । शुद्ध देश में वास करनेसे ही उस की शान्ति होती है । स्त्री पुरुष दोनोंके ही वीज हरण और भय उत्पन्न करती है, इसकारण इसका वीज हारिणी नाम हुआ है । पवित्र अन्न भोजन और स्नान करनेसे ही उस की शान्ति होती है । अष्टमकन्या का नाम द्वेषिणी है । यह कन्या सब को ही भय देती है । क्योंकि स्त्री पुरुष सब को ही लोगोंका शत्रु वनाती है । इसकी शान्ति के निमित्त, मधु, दूध और घृताक्त तिल होम करे । इस के अतिरिक्त मित्र विन्दा नामक इष्ट क्रियाकरनेसे भी इसकी भली प्रकार से शान्ति होजाती है । हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ? इन सब कुमार कुमारियों की जो अठारह सन्तान हैं, उन के नामसुनो । दन्ताकृष्टि की कन्या का नाम कलहा है । यह कलहा जो इच्छा हो वही कहती है, और तिरस्कार, असत्य तथा दुष्ट वाक्य प्रयोग करती है । बुद्धिमान् संयत होकर उस की चिन्ता करे । ऐसा करने से गृहस्थी होसक्ता है । लोगों के घर में रात दिन कलह करातीहै

इसकारण इसका नाम कलहा है। यह कलहा कुटुम्बनाश का कारण है। इस के शान्तकरने की विधि सुनो। बलिकार्य्य में मधु, घी और दूध में भीजीहुई दूब फेंके और अग्नि में आहुति दान करे। उससमय ऐसा कहना चाहिये कि, मैं कुष्माण्ड, यतुधान और अन्यान्य सबकी यथाविधि पूजा करता, हूँ, वह सब प्रसन्न होवें, और मेरी विद्या, तपस्या, संयम, यम, कृषि और वाणिज्य कार्य्य में शान्ति विधानकरें। यह सब महादेव के प्रसाद से और महेश्वर के मत के अनुसार मनुष्यों के ऊपर सदा प्रसन्न रहें, और प्रसन्न होकर सब के दुष्कृत, दुःनुष्ठित और अन्यान्य जो कुछ महापातकों से उत्पन्न हुए विघ्नों के कारण हैं, उन सब को दूर करें। उन केप्रसाद से सब प्रकार के विघ्न नष्ट होवें। उद्वाह, सम्पूर्ण वृद्धिकर्म्म, प्रण्यानुष्ठान योग, गुरु, और देवपूजा, जप यज्ञ विधान, यात्रा, शरीर की आरोग्यता, भोग्य, सुख, दान, धन, वृद्ध, बालक, आतुर इन सब की और मेरी सदाशान्ति विधानकरें। चन्द्र, सूर्य, अग्नि वायु, और मेघ सदा मेरी शान्ति सम्पादन करें। उक्तिका पुत्र काल जिह्व है। तालवृक्ष उसकाघर है। वह जिसकी माताको आक्रमण करे, वही असुधुओंको कष्ट देती है। परिवर्त्त के विरूप और विकृत दो पुत्र हैं। वह वृक्षाग्र दीवार, खाई और समुद्र का आश्रय करते हैं, और गर्भवती का परिवर्त्तन करतेहैं इस परिवर्त्तन करते २ गर्भस्राव होजाता है। इसकारण गर्भावस्था में स्त्रियें, वृक्ष, पर्वत, दीवार, सागर और खाई का आश्रय करके न चलें। अङ्गधुक् का पुत्र पिशुन है। वह अजितेन्द्रिय लोगों के अस्थि मज्जागत होकर उन के बल का ग्रास करता है।

शकुनि के पांच पुत्र हैं, श्येन, काक, कपोत गृध्र और उलूक। देव और दैत्योंने उनको ग्रहण कियाथा। उन में मृत्यु ने श्येन को, कालने काकको, निर्ऋतिने उलूक को, व्याधि ने ग्रध्र को, उनके ईश्वर स्वयं यम ने कपोत को ग्रहण किया। इनसब में उलूक अत्यन्त भयङ्कर है। यह इन सब को पाप उत्पन्न करते हैं।

इसकारण श्येनादिक जिसके ऊपर बैठजायँ उसको अपने रक्षाके निमित्त विशेष शांति करनी चाहिये। जिस घर में यह संतान प्रसव और घोंसला बनावें और जिसघर के मस्तकको कबूतर आक्रमण करे, उसघर को त्यागदे। हे द्विज! श्येन, कपोत, गृध्र, काक, उलूक यह घर में प्रवेश करके गृहवासियों की मृत्यु सूचितकरते हैं। चतुर पुरुष ऐसे घर का त्याग और शांति कार्य करे। स्वप्नमें भी कबूतर का देखना श्रेष्ठ नहीं है। गण्ड प्रान्त रति के छै पुत्र कहे गये हैं। वह स्त्रियों के रज में रहते हैं। उन का काल भी कहता हूँ सुनो। प्रथम के चारदिन, तेरहवां और ग्यारहवां दिन, श्राद्ध दान, पूर्णमादिपर्व काल, इन सब में गमन करना स्त्रियों को उचित नहीं। गर्भहा का पुत्र विघ्न और कन्या मोहनी है। इन में से विघ्न गर्भ में प्रवेश करके भक्षण करता है, और मोहनी भक्षण करके मोह उत्पन्न करती है। उस मोह से सर्प, मेंडक, कछुआ और अन्यान्य जीव उत्पन्न होते हैं।

वह इसप्रकार अस्वस्त होकर छै मास गर्भवती का मांस भोजन करता है । जो स्त्री रात में अथवा त्रिपथ वा चौराहे में वृक्षच्छाया का आश्रय, श्मशान भूमि में अवस्थान, उत्तरीय वर्जन तथा रात में रोती है, यह मोहनी उस का ही आश्रय करती है । शस्यहा का एक पुत्र है, उसका नाम क्षुद्र है । यह क्षुद्र छिद्र पानेपर ही सदा शस्य नाश करता है । छिद्रों को सुनो । अतृप्त होकर अशुभदिन में रोपण करने से ही ऐसा होता है । इसकारण श्रेष्ठ दिन में चन्द्रमा की पूजा करके हृष्ट, तुष्ट और सहायवान होकर, वपन कार्य्य में प्रवृत्त होवे । दुःसह की जो नियोजिका नाम्नीकन्या की बात कही है, उस के गर्भ से प्रचोदिका नाम्नी कन्या का जन्म हुआ है । इस प्रचोदिका की चार कन्यां हैं, मत्ता, उन्मत्ता, प्रमत्ता और नवा । वह सदाही विनाश के निमित्त मनुष्यों के शरीर में प्रवेश करके उन को दारुणकार्य्य में प्रेरित करती हैं, तथा धर्म्म को अधर्म्मरूप में, काम को अकामरूप में, अर्थ को अनर्थरूप में और मोक्ष को अमोक्षरूप में दिखाती हैं । जो अपवित्र हैं, उन को ही यह इसप्रकार विडम्बित करती हैं । लोग इन आठ कुमारियों से पुरुषार्थ भ्रष्ट होकर भ्रमण करते हैं । जब धाता और विधाता के उद्देश से पूजा न दी जाय, उस समय ही यह घर में प्रवेश करते हैं । जो स्त्री, पुरुष एकसङ्ग पान भोजन करते हैं, उनके शरीरमें ही इनका आवेश होता है । युवास्त्रियों के शरीरों में इन सबोंका शीघ्रही प्रवेश होता है, और विरोधिनी के तीन पुत्र हुए उनके नाम—चोदक, ग्राहक और तमप्रच्छादक हैं इनका वासस्थान सुनो—दीपक के तेलसे भीगी जगह में, लाँघीहुई वस्तुओं में और जहाँपर स्त्रियें ऊखल, मूशल, खड़ाऊँ सूप, दराँती और पाँव से खेंचेहुए आसन आदि पर बैठती हैं, तथा घरलीप के विना देवार्चन किये स्त्रियें चलती हैं और जो करछुली से अग्नि निकालकर दूसरे को देती हैं । इतनी जगहपर वह विरोधिनी के पुत्र वासकरते हैं एक तो स्त्री पुरुषों की जिह्वापर बैठकर झूँठ सच कहाता है उसका नाम चोदक है और वही घरमें कुटिलता कराता है, दूसरा जो दुर्बुद्धि स्त्री पुरुष के कान में रहता है और उनके वचनको ग्रहण करता है उसका नाम ग्राहक है, तीसरा मनुष्यों के मनको खेंचकर तमोगुण से आच्छादित करदेता है और क्रोध उत्पन्न करता है उसका नाम तमप्रच्छादक है । स्वर्णहारीके चोरीकर्म से तीन पुत्रहुए उनके नाम सर्वहारी, अर्द्धहारी और वीर्यहारी यह सब, जिस घरमें लीपा पोता नहीं जाता और आचार हीन है, जहाँ विना पैरधोयें चौके में जाते हैं तथा खरिहन, गोशाला और उस घरमें जहाँ द्रोहरहता है, इतने स्थानों में वह तीनों अपनी इच्छानुसार विहार करते हैं और भ्रामणी के एकही पुत्रहुआ जिसका नाम काकजंघ है वह काकजंघ जिसके शरीर में प्रवेश करता है उसको किसी जगह सुख नहीं मिलता और जो मनुष्य खाते समय गाते व हँसते हैं और हे ब्रह्मन् ! जो संध्याकाल में मैथुन करते हैं उनके शरीर में वह प्रवेश करता है, और ऋतुहारिणी के तीन कन्या हुईं; कचहरा, व्यंजनहारिका और तीसरी जाति हारिणी है । जिस

लीका विवाह सम्यक् प्रकार से नहीं होता है व विवाह का समय बीतनेपर विवाह होता है तौ उस स्त्रीके दोनों कुचों को वह कुचहरा हरलेती है, भली प्रकार श्राद्ध और मातृगणों का पूजन विनाकरे जिस कन्या का विवाह होता है उसके भोजन को वह व्यंजन हारिका हरलेती है और जिस सूतिकागृह (सोवर) में अग्नि, जल धूप, दीप तथा कोई शस्त्र, मूसल आदि न रहे एवं सरसों और रेता भी न बखेरा जाय ऐसे घर में वह जात हारिका घुसकर उस बालक को हरलेती है और हे द्विज ! वह बालक को एक क्षणभर में मारकर तहाँ ही डालजाती है।

उस जातिहारिणी का मुख बडा भयानक है और सदा मांस ही खाती है इस से उस की रक्षा का यत्न प्रसूती के स्थान में भलीप्रकार करै, उस का घर जब शून्य होता है तब प्रचंड नामक स्मृतिहरा का पुत्र वहां जाकर जच्चा की बुद्धि हरता है। उस प्रचण्ड के पुत्र और नाती लखोलीक हुए वह सब चाण्डाल योनि में दंड और फाँसी लिये रहते हैं, तथा भयंकर मुखवाले हैं, वह सब चाण्डाल योनि लीक भूँख से विकल होकर परस्पर में ही एक को एक खाने को दौडे, तब प्रचण्ड ने उन्हें रोककर और सब का समय नियत किया सो सुनो—प्रचण्ड ने कहा कि—आज से लेकर लीकों को जो कोई रहनेदेगा उस को मैं निःसंदेह दण्ड दूँगा चाण्डाल के स्थान में जिस स्त्री के गर्भ रहता है तो उन लीकों के दोष से वह बालक तथा पहिले हुए बालक भी सब नाश को प्राप्त होजाते हैं और स्त्री पुरुष के वीर्य को हरनेवाली जो वीर्यहारिका है उस के दो कन्या हुईं पहिली वातरूपा और दूसरी अरूपा है इन के घुसने का वृत्तान्त सुनो—जो पुरुष ऋतुमती हुई अपवित्र स्त्री से भोग करता है उस की देह में वह वातरूपा घुसकर उस के प्रमेह आदि रोग उत्पन्न करदेती है ऐसे ही स्त्री के भी, इसीप्रकार जो पुरुष ऋतुमती के पवित्र होने पर गमन नहीं करता है तो उस के शरीर में वह अरूपा घुसकर उस का वीर्य हरलेती है, और जो विद्वेषणी सदा भृकुटि चढाये रहती है उस के दो बालक हुए पहिला अपकारक दूसरा प्रकाशक है जो स्त्री पुरुष सदा ही अशुद्ध रहते हैं और नपुंसक हैं तथा किसी की चुगली करते हैं, अपवित्र पानी से नहाते हैं एवं चंचल हैं और जो वैर रखते हैं ऐसे मनुष्यों के देह में वह दोनों घुसकर, माता, भाई, मित्र तथा गुरु आदि स्वजनों से भी विरोध कराता है एवं मनुष्यों के अर्थ, धर्म को नष्ट करता है पहिला यह है जिस का नाम प्रकाशक है और। दूसरा जो अपकारक है वह मनुष्यों के गुण और मित्रता को खेंचता है, हे क्रोष्टुकि! यह सब दुःसह की सन्तान जो महापातकी, दुष्टात्मा तथा प्रसिद्ध और व्याप रही है उस को मैंने कहा। इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ॥

बावनवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी ने कहाकि—हे क्रोष्टुकि! ब्रह्मा जी का तामससर्ग तो मैंने कहा अब रुद्रसर्ग सुनो कल्प के आदि में ब्रह्माजी ने अपने समान पुत्र होने के लिये ध्यान किया तो आठ कन्या और आठ पुत्र हुए वही आठकन्या इन आठ कुमारों की स्त्री हुईं उन आठ में से एक पुत्र-

नील लोहित अंगका जो ब्रह्माजी के हृदय से हुआ था वह बड़े जोर से रोनेलगा, तब ब्रह्माजी ने कहाकि—तुम क्यों रोते हो तब उसने कहाकि—मेरा नाम रखदीजिये, फिर ब्रह्माजी ने कहाकि—हेदेव! तुम रोवोमत तुम्हारानाम रुद्र है इन के इतना कहतेही वहभी सातोंपुत्र रोनेलगे, तब ब्रह्माजी ने उन सातों के जोर नामरक्खे, हे द्विज! उनसवों के जो २ स्थान हैं और उन आठों के जो स्त्री पुत्र हुए उनके नाम सुनो—उन कुमारो के नाम—भव, सर्व्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र, और महादेव, इसप्रकार नामकर्ण करके फिर उन के स्थान नियत करे, भवका स्थान सूर्य, सर्व्व का जल ईशान का पृथिवी पशुपति का अग्नि, भीमका वायु, उग्रका आकाश, और महादेव का चन्द्रमा, इसीप्रकार क्रम से यह उनके स्थान हैं। उनकी स्त्रियों के नाम—सुवर्चना, उमा, विकेशी, स्वधा, स्वाहा, दिशा, दीक्षा, और रोहिणी यह उनकी स्त्रियाँ हुई, हे द्विजश्रेष्ठ! अब रुद्रादि नाम सहित सूर्यादि के पुत्रों के नाम सुनो, शनिश्चर, शुक्र, मंगल, मनोजव, स्कन्ध, सर्ग, संतोष, बुध, इसी क्रमसे यह सब उन के पुत्र हैं इसी प्रकार रुद्र की स्त्री सती थी जिसने दक्ष के यज्ञ में अपने शरीर को त्यागदिया, वही सती हिमवान् की पुत्री हुई और मैनाके गर्भ से उत्पन्न होकर पार्वतीनाम हुआ, और पार्वती के भ्राता का नाम मैनाक है जो समुद्रका सखा है, फिर पार्वतीजी का विवाह महादेवजीसे ही हुआ और भृगुकी स्त्री जो ख्याति नामक थी उसके दोपुत्र हुए उन का नाम धाता और विधाता हुआ, सबदेवों के देव जो नारायण हैं उनकी स्त्री लक्ष्मी जी हुई आयति और नियति दो कन्या जो महात्मा मेरुकी हैं वही दोनों कन्या धाता और विधाता की स्त्री हुई उन दोनों के एक २ पुत्रहुआ आयति के पुत्र का नाम प्राण और नियति के पुत्र का नाम मृकण्डु हुआ जो मेरे (मार्कण्डेय के) पिता हैं, मृकण्डु का विवाह मनस्विनी से हुआ जिनसे मैं उत्पन्न हुआ हूँ और मेरे पुत्र का नाम वेदशिरा है तथा प्राण की स्त्री धूम्रवती हुई उस के पुत्रों के नामसुनो।

पहिला द्युतिमान् और दूसरा अजर है इन के भी बहुत से पुत्र नाती हुए, और मरीचि की स्त्री सम्भूति नामक हुई उस का पुत्र पूर्णमासहुआ तथा उस के पुत्र विरजा और पर्वत नामक हुए, हे द्विज! इन दोनों के पुत्रों का वृत्तान्त मैं वंशावली में कहूँगा, और अङ्गिरा जी की स्त्री स्मृति नामक हुई, उस की पुत्रियों के नाम सुनो—शिनीवाली, कुहू, राका, भानुमती और अनुसूयाजी जो अत्रिजी की स्त्री हुई उस के सब पुत्र परमतेजस्वी हुए, चन्द्रमा दुर्वासा और योगी दत्तात्रेयजी थे. पुलस्त्य की स्त्री प्रीति हुई तिस का पुत्र दत्तोलिका हुआ यही पहिले जन्म में स्वायम्भुव मन्वंतर में अगस्त्य थे और कर्दम, अर्व्वरी तथा सहिष्णु यह तीनों पुत्र थे, पुलह प्रजापति से क्षमा नामक स्त्री में उत्पन्न हुए क्रतुकी सन्तति नाम स्त्री हुई उन से बालखिल्य हुए यही लोग साठ हजार ऋषि बालब्रह्मचारी कहाते हैं और वशिष्ठजी के ऊर्ज्जानाम स्त्री से सात पुत्र हुए, उन के नाम—रज, गात्र, ऊर्द्ध्वबाहु, सबल, अनघ, सुतमा, शुक्र, यही सप्तर्षि हैं और

ब्रह्मा के पहिले पुत्र जो अग्नि हैं उन का विवाह स्वाहा से हुआ, हे ब्रह्मन्! उन के भी तीन पुत्र महाप्रतापी हुए पावक, पवमान् और शुचि जो जल का भोजन करते हैं अर्थात् सोखते हैं उन के पैंतालीस सन्तान हुईं पश्चात् तीन पुत्र और हुए जो पितासहित सब उनचास कहाये और दुर्जय थे, हे क्रोष्टुकि! ब्रह्मा के उत्पन्न करे पितरों का जो मैं वर्णन करचुका हूँ वह अग्निष्वात्ता, वर्हिषद्, अनग्न और साग्नि आदि हैं। उन पितरों से स्वधा के दो कन्या हुईं पहिली मेना दूसरी धारिणी है, हे द्विज! यह दोनों कन्या परमयोगिनी और ब्रह्म की जाननेवाली हुईं। बावनवाँ अध्याय समाप्त।

तरेपनवाँ अध्याय ।

क्रोष्टुकि बोले कि–हे भगवन्! आपने जो स्वायम्भुव मन्वन्तर का वर्णन करा उस को मैं विस्तार से सुनना चाहता हूँ, मन्वन्तर का प्रमाण और उस समय में जो २ देवता, ऋषि, इन्द्र और राजा हुए उन का वृत्तान्त अलग २ वर्णन करिये, मार्कण्डेयजी कहते हैं कि–इकहत्तर चौयुगी का एक मन्वन्तर होता है उस का प्रमाण मनुष्यों के वर्ष के प्रमाण से कहता हूँ कि–मनुष्यों के तीस करोड सरसठलाख वीस हजार वर्ष का एक मन्वंतर होता है मन्वंतर का यही प्रमाण है अन्य नहीं; आठ लाख बावन हजार वर्ष का स्वायम्भुव मन्वंतर का प्रमाण है तदनंतर इसीप्रकार से स्वारोचिष मन्वंतर का भी प्रमाण है और औत्तम तामस, रैवत, तथा चाक्षुष इन छःमनुओं के वीतनेपर वैवस्वत मन्वंतर होता है जो अब वीतरहा है; सावर्णि, पंचरौच्य और भौत्य यह अब आवेंगे इन का वृत्तांत मन्वंतरो के वर्णन में विस्तार से कहूँगा, देवता, ऋषि, इन्द्र और पितर जो मन्वंतरों में होते हैं उन सब की उत्पत्ति, संग्रह और सन्तान भी कहता हूँ हे ब्रह्मन्! सुनो–उन महात्माओं के जो क्षेत्र और पुत्रहुए वहभी कहूँगा, स्वायम्भुव मनुके जो दश पुत्र अपनी समान जिन्होंने इस पृथ्वी के सातों द्वीप, समुद्र, पर्वत और खण्डों को वश में कर राज्यकरा, पहिले त्रेतायुगके आदि स्वायम्भुव मन्वंतर में प्रियव्रत के पुत्र और स्वायंभुव के पोतों ने सकल पृथिवीका राज्य करा, प्रियव्रत का विवाह काम्या से हुआ जो कर्दम प्रजापति की कन्या थी उससे प्रियव्रत के दो कन्या और दशपुत्र हुए दशो पुत्र महा बली और प्रजापतिके समान हुए उन के नाम आग्नीध्र, मेधातिथि, वपुष्मान् , ज्योतिष्मान् द्युतिमान्, भव्य और सवन; मेधा, अग्निबाहु और मित्र योगनिष्ठ तपस्विहुए, पूर्व जन्म की जाति को स्मरण करनेवाले इन महाभागों ने राज्य की ओर को अपना चित्त न लगाया। तब प्रियव्रत ने उन सातों को धर्मानुसार सातद्वीपों के राज्य पदपर स्थापित करा, उन सब द्वीपो के नाम मुझ से सुनो–पिताने अग्नीध्रको जाम्बूद्वीप का राजा करा, मेधातिथि को प्लक्षद्वीप का राज्यपद दिया। शाल्मलद्वीप का राज्य वपुष्मान को दिया, ज्योतिष्मान् को कुशद्वीप में राजा किया, क्रौंचद्वीप में द्युतिमान् को और शाकद्वीप में भव को राजा बनाया. सवन को पुष्करद्वीप का राज्य दिया मेधावी और धातकी सवन के पुत्र हुए, पुष्करद्वीप के दोभाग

करके उन दोनों को स्थापित करा, भव्य के सात पुत्र हुए उन के नाम मुझ से सुनो—जलध, कुमार, सुकुमार, मनीवक, कुशोत्तर, मोदाकी और सातवां महाद्रुम हुआ । भव्य ने उन में से प्रत्येक के नाम से शाकद्वीप में वर्ष स्थापन करे, द्युतिमान् के भी सात पुत्र हुए उन को मुझ से सुनो—कुशल, मनुग, उष्ण, प्राकार अर्धकारकमुनि और सातवां दुन्दुभि कहा है, क्रौंचद्वीप में उन के नाम प्रसिद्ध हुए और ज्योतिष्मान् के भी सात पुत्रों के नाम से कुशद्वीप में सात वर्ष हुए उन के मुझ से सुनो—उद्भिद, वैणव, सुरथ, लम्बन, धृतिमत् प्राकार और सातवां कापिल, शाल्मलद्वीप के राजा वपुष्मान् के भी सात पुत्र हुए; स्वेन, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और सातवां केतुमान हुआ, वह शाल्मलद्वीप भी सात भाग होकर इन के नाम से प्रसिद्ध हुआ, प्लक्षद्वीप के राजा मेधातिथि के भी सात पुत्र हुए, उस प्लक्षद्वीप के भी सात भाग करके सातों को देदियें और उन के भी नाम से वर्ष प्रसिद्ध हुए उन के नाम सुनों—शाकभव, शिशिर, सुखोदय, आनन्द, शिव, क्षेमक और ध्रुव; हे मुने! प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौंच और शाक इन पांच द्वीपों में सदा वर्णाश्रमधर्म बनारहता है और हिंसा भी नहीं होती है तथा इन द्वीपों में सब धर्म साधारण है, हे ब्रह्मन्! जम्बूद्वीप का राज्य राजा प्रियव्रत ने आग्नीध्र को दिया, राजा आग्नीध्र के प्रजापति के समान नौ पुत्र हुए उन के नाम नाभि, किंपुरुष हरिवर्ष, इलावर्त्त, रम्य, हिरण्य, कुरु, भद्राश्व और नवां केतुमाल हुआ, इन सब के नाम से जम्बूद्वीप में नौवर्ष हुए. हिमनामक वर्ष को छोडकर और किंपुरुषादि सब वर्षों में स्वाभाविक सिद्धि रहती है विनायत्न करे ही सब जीव सुख से रहते हैं. उन को किसी प्रकार की विपत्ति तथा जरामरण नहीं है और धर्माधर्म भी नहीं हैं एवं उत्तम, मध्यम और नीच भी नहीं है, इन में युग की अवस्था और ऋतुओं के धर्म नहीं होते, आग्निध्र के पुत्र महाराजा नाम हुए उनसे ऋषभदेवजी हुए ऋषभदेवजी के सौपुत्र हुए सबसे बड़े भरत हैं उन सबको ऋषभदेव ने राज्यपदपर स्थितकर, हिम दक्षिण वर्ष जो हिमसे दक्षिणभाग में है उसको भरतको दिया और आप तप करने को पुलहजी के आश्रम पर गए तबसे यह भारत वर्ष हुआ, राजा भरत के धर्मात्मा सुमति हुआ राजा भरत भी सुमति को राज्यदेकर आप तप करने को वन में चलेगये राजा प्रियव्रत के इन्हीं पुत्र पौत्रोंने, स्वायंभुव मन्वंतर में पृथिवी का पालनकरा. हे भगवन्! यही स्वायंभुव सर्ग है जो मैंने कहा—पहिला मन्वंतर यही है, अब कहो क्या सुनोगे वही मैं कहूं। इति तरेपनवाँ अध्याय समाप्त ।

चौवनवाँ अध्याय.

क्रोष्टुकिबोले कि—हे मुने ! कितने द्वीप, समुद्र, पर्वत और कितने वर्ष हैं तथा उनमें नदियें कौन २ हैं, पृथ्वी का प्रमाण, लोकालोक और चारोंतरफ का तथा चन्द्र सूर्यकी गति भी हे भगवन्! मुझसे सविस्तार कहिये तब मार्कण्डेयजीने कहा कि हे विप्र! संपूर्ण पृथ्वी का विस्तार पचासकरोड़ योजनहै इनके सब अस्थानों

को सुनो-जो मैंने जम्बूद्वीप को पुष्कर पर्यन्त कहा है उसको अब विस्तार से सुनो हे ब्रह्मन्! पहिले द्वीपसे दुगुना दूसरा द्वीप है दूसरे से तीसरा दुगुना है अर्थात् जम्बूद्वीप से प्लक्ष, प्लक्ष से शाल्मल, शाल्मल से कुश, कुश से क्रौंच, क्रौंच से शाक, और शाक से दुगुना पुष्कर द्वीप है इन द्वीपों में लवण, गन्ने का रस, दधि, दूध, घृत और जलके समुद्र एक से एक दुगुने होकर चारोंतरफ घेरेहुए हैं अब जम्बूद्वीप का प्रमाण सुनो-एक लाख योजनलम्बा और चौड़ा है, इस द्वीप में सातवर्ष हैं और सातों में सात पर्वत हैं पर्वतों के नाम-हिमवान्, हेमकूट, ऋषभ, मेरु, नील, श्वेत और शृंगी यही पर्वत हैं इनके मध्यमें और दो पर्वत हैं उनका विस्तार लाख २ योजन का है इन दोनों के उत्तर और दक्षिण में दो २ पर्वत और इन दोनों पर्वतों के उत्तर के जो पर्वत हैं वह सब दशांश लम्बाई में कम होतेगये हैं तथा दो २ हजार योजन ऊँचे और चौड़े हैं और छः वर्ष पर्वत हैं वह पूर्व और पश्चिम के समुद्र में मिलेहुए हैं तथा उत्तर दक्षिण को नीचे और बीच में ऊँचे हैं। तीन वर्ष उत्तर और तीन वर्ष दक्षिण में हैं इनके बीच में इलावर्त्त वर्ष है वह आधे चन्द्रमा सा विराजमान् है, उससे पूर्वमें भद्राश्व और पश्चिम में केतुमाल वर्ष है, इलावर्त्त के मध्य में सुवर्ण का पर्वत है जिसे मेरु कहते हैं, वह चौरासी हजार योजन ऊँचा है और सोलह हजार योजन पृथिवी में घुसाहुआ है तथा सोलह हजार योजन चौड़ा है, शराव की समान, इसकी चोटी बत्तीस सहस्र योजन चौड़ी है, उस पर्वत का रंग कहते हैं-पूर्व की ओर सफेद, दक्षिण में पीला, पश्चिम में नीला और उत्तर की तरफलाल है वह पर्वत, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंसहित है, उस पर्वत पै आठोंदिशाओं में, इन्द्रादि आठोंदिग्पाल क्रमसे रहते हैं इसके मध्यमें ब्रह्मलोक है यह चौदह हजार योजनऊँचा है, उसके नीचे दश हजार योजन ऊँचे, पूर्व आदि चारों दिशाओं में चार विकुम्भ पर्वत हैं उनके नाम-मन्दर, गन्धमादन, विपुल और सुपार्श्व इन चारों के ऊपर चारवृक्ष हैं मन्दर पर कदंब का, गन्धमादन पर जामुन का, विपुलपर पीपल का और सुपार्श्व के ऊपर बड़ का वृक्ष है, पर्वतों का विस्तार ग्यारह २ सौ योजन का है, जठर और देवकूट नामक पर्वत इसकी पूर्वदिशा में है तथा उनके समीपही आनील और निषधनामा पर्वत हैं, निषध और परिपात्र यह दोनों पर्वत मेरु की पश्चिम की तरफ हैं, जठर और देवकूट की समानही इनका भी विस्तार है, कैलाश और हिमवान मेरुकी दक्षिण की तरफ हैं, पूर्व और पश्चिम के पर्वतों की समान यह भी चौड़े हैं, शृङ्गवान और जारुधि यह दोनों पर्वत उत्तर की तरफ हैं जिस तरह इनके दक्षिण के पर्वत समुद्र में मिले हैं उसी प्रकार यह भी आधे समुद्र तक

मिले हैं, हे द्विजश्रेष्ठ ! यही आठों मर्याद पर्वत कहाते हैं, हिमश्चल और हेमकूट आदि पर्वत परस्पर में नौ हजार योजन हैं, मेरु के पूर्व दक्षिण आदि चारोंतरफ इलावृत के मध्यमें यह सब पर्वत हैं, गन्धमादन पर्वतपर जो जामुन का वृक्ष है उसका फल बड़े हाथी कीदेह के समान है वह वृक्षसे टूट २ कर पर्वत की चोटीपर गिरताहै उस फलका जो रस बहताहै वही जम्बू नदी कहाती है, जिसमें जाम्बूनद-नामक सुवर्ण उत्पन्न होता है, वही जम्बूनदी मेरु पर्वत के चारों ओर घूमकर उसी जामुन के वृक्षके नीचे होकर बहती है और वहाँ के रहनेवाले सब उसी का जलपीते हैं, भद्राश्ववर्ष में हयग्रीव नामक विष्णु रहते हैं और भारतवर्ष में कूर्मरूप, केतुमाल वर्षमें वाराहजी और उत्तरमें मत्स्यभगवान् निवास करते हैं, हेद्विज श्रेष्ठ । इन चारोंखण्डों में नक्षत्रों की स्थिति के अनुसार वर्षों की स्थिति है और वहाँ के शुभाशुभ फल का वर्णन भी है । इति चौवनवां अध्याय समाप्त

पञ्चपनवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी ने कहाकि-हेद्विज! मन्दर आदि चार पर्वतोंपर चार वन और चार सरोवर हैं, उन के नाम सुनो-पूर्व के पर्वतपर चैत्ररथ वन है,दक्षिण के पर्वतपर नन्दनवन, पश्चिमके पर्वतपर भ्राजवन और उत्तर के पर्वतपर सावित्रवन है, पूर्व के पर्वतपर अरुणोदय सरोवर-दक्षिण के पर मानससरोवर, पश्चिम के पर शीतोद और मेरुके उत्तर के पर्वतपर महाभद्र सरोवर है । शीतार्त्त, कमुञ्ज, कुकुलीर, सुकंकवान, मणिशैल, वृषवान, महानील, भवाचल, सुविन्दु, मन्दर,वेणु तामस, निषध और देवशैल आदिकयह सब पर्वत मन्दर पर्वत की पूर्व दिशा में हैं, और त्रिकूट, शिखराद्रि, कलिङ्ग, पतङ्गक, रुचक, सानुमान्, ताम्रक, विशाखवान्, श्वेतोदर, समूल, वपुधार, रत्नवान्, एक शृंग, महाशैल, राजशैल, पिपाठक, पंचशैल, कैलाश, हिमवान् और अवलोत्तम यह सब महापर्वत मेरु के दक्षिण तरफ हैं, सुरक्ष, शिशिराक्ष, वैदूर्य पिंगल, पिंजर, महाभद्र, सुरस, कपिल, मधु, अंजन, कुक्कुट, कृष्ण, पाण्डर, अचलोत्तम, सहस्रशिखर, पारियात्र और शृंगवान् यह सब पर्वत, मेरुके पश्चिमभाग में विष्कम्भ के समीपही हैं, अब उत्तर के पर्वत सुनो-शंखकूट, वृषभ, हंसनाभ कपिलेंद्र,सानुमान्,नील, स्वर्ण शृंगी, शात शृंगी पुष्पक,मेघ,विरजाक्ष वराहाद्रि, मयूर और जारुधि यहसब पर्वत मेरुके भागमें हैं, हेब्रह्मन् ! इन पर्वतों की गुफायें अत्यन्त मनोहर हैं यह सब पर्वत वन और निर्मल जल के सरोवरों से शोभायमान हैं, हेद्विज! इस भूमि में पुण्यात्मा मनुष्य ही जन्म धारण करते हैं, यह सब भूमि स्वर्ग के तुल्य है किंतु स्वर्ग से भी इसमें अधिक गुण है, यहाँ जो कोई रहते हैं उन को पहिले जन्मका पाप पुण्य स्पर्श

नहीं करता है देवगण भी अपने पुण्यको इसी भूमि में आकर भोगते हैं, हेब्रह्मन्! शीतान्त आदि जो पर्वत हैं, उन सबोंमें विद्याधर, यक्ष, किन्नर, सर्प, राक्षस और गन्धर्व इन देवताओं का यह निवासस्थान है यह भूमि महापुण्य और मनोहर है तथा उपवन, देवताओं और सुन्दर तालावों से शोभायमान है, यहाँ की हवा सदा सुखदायकहै, यहाँके रहनेवालोंकी कभी उदासीनता नहीं होती है, हेद्विज! यह पृथ्वीरूप पद्म जिस के मैं चार पत्तेवाले कहचुका हूँ- भद्राश्व और भारत आदि जो वर्ष हैं यही इस के चारोंतरफ पत्र समान हैं । भारतवर्ष मेरु से दक्षिणमें हैं यही कर्म भूमि है अर्थात् भारतवर्ष का कराहुआ ही पापपुण्य भोगना पड़ता है इस से इस को कर्मभूमि कहा है, अन्य वर्षों में पापपुण्य नहीं होता है इसलिये इस भूमि को सब से श्रेष्ठ जानना चाहिये । क्योंकि-इस में कर्ममात्र होता है । स्वर्ग, अपवर्ग और मनुष्य नारकीय तथा तिर्यक् आदि योनिभी भारतवर्ष में करेहुए कर्म से ही मिलती हैं, इति पचपनवाँ-अध्याय समाप्त ॥

छप्पनवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी ने कहा कि-हेक्रौष्टुकि ! पृथ्वी के आधार और जगत् के कारण जो नारायण हैं उन के चरण से त्रिपथगा गंगाजी उत्पन्न हुई हैं, वह गंगा, चन्द्रमण्डल में घुसकर सूर्यकी किरण से पवित्रहोकर बहनेलगीं,वहाँ से बढ़कर मेरु पर्वतपर आईं, वहाँ चार धारा में होकर बहनेलगीं और मेरुकूट के तटपर रुकगईं, जब वहाँपर गंगाजी का जल बहुत फैल गया तब विना रुकावट बहकर मन्दार आदि चारोंपर्वतोंपर अलग २ बहचला, उन चारों पर्वतोंपर जब जल जोर से गिरा तो उन पहाड़ों के टुकड़े २ होकर बहगए और जो पूर्वकी ओर धारा बहकर गई थी उसका नाम सीता है, वह चैत्ररथ वन में जाकर उस वनको जलमय करके वरुणोद सरोवर में जामिली और वहाँसे सीतान्त पर्वतपर होकर क्रमसे सब पर्वतोंपर बहतीहुई पृथ्वी पै आकर भद्राश्वखण्ड में आई वहाँसे फिर समुद्र में जामिली, इसी प्रकार अलकनन्दा नामक दूसरी धारा भी गन्धमादन पर्वतपर आकर फिर वहाँसे मेरुपाद पर्वतपर जाकर आगे नंदन वनको जलमय करतीहुई बड़े जोर से मानसरोवर में जागिरी, फिर वहां से शैलराजपर आकर त्रिशिखर पर्वतपर गईं फिर आगेचलकर दक्षिण के सब पर्वतोंको डुबोतीहुई हिमवान् नामक महापर्वतपर आईं वहाँ शिवजीने उनको अपनी जटामें धारण करलिया और न छोड़ा, जब राजा भगीरथने महादेवजी का व्रत और उपचार से पूजन तथा स्तुतिकरी तब शिवजीने प्रसन्न होकर उनको अपनी जटामें से छोड़दिया फिर वहां से सातधारा होकर गंगाजी चलीं,उसमेंसे चारधारा तो दक्षिणके समुद्र

में मिलगई और तीन धारागङ्गाजी की सब स्थानों को जलमय करतीं पूर्व दिशा को गईं उसमें से एक धारा तो भगीरथजी के साथ २ दक्षिण दिशाको चली, ऐसे ही पश्चिम तरफ की गंगाजी, विपुलेशा होकर वैभ्राज नामके वनमें गईं उनका नाम स्वरक्षु प्रसिद्ध हुआ वहां से वह जलमय करती हुईं शीतोद नामक सरोवर पर आईं वहां क्रम करके सब पर्वतों के शिखरोंपर होकर केतुमाल वर्ष में आकर फिर क्षार समुद्र में मिलगईं चौथी धारा मेरु और सुपार्श्व पर्वतपर होकर सविताके वनमें गईं वहाँ उनका नाम सोमाहुआ, उस वनको भी जलमय करती हुईं महाभद्र सरोवर में जामिलीं वहांसे फिर शंखकूटपर पहुंची, वहां से वृषभादि पर्वतों को डुबोती हुईं उत्तर दिशा के महासमुद्र में जामिलीं हे ब्रह्मन्! यह गंगाजी का निर्णय और जम्बूद्वीप तथा वर्षों की कथा जिसप्रकार थी सो मैंने कही हे क्रौष्टुकि! किम्पुरुषादि वर्षों में प्रजालोक निर्भय और सब प्रकार सुखी रहते हैं, नवों वर्षों में सात २ कुलाचल पर्वत हैं और उन पर्वतोंमें से अनेकों नदी बहती हैं, हे द्विज! किम्पुरुष आदि वर्षों में सकल वस्तु विनायत्न के पृथ्वी से प्राप्त होती हैं भारत वर्ष में मेघके जलवर्षने से प्राप्तहोती हैं और आठ वर्षोंमें वार्क्षी, स्वाभाविकी, देशी, तोयोत्था, मानसी और कर्मजा यह सिद्धियें मनुष्यों को प्राप्तहोती हैं, जहां सकल कामना वृक्ष से प्राप्तहोती हैं वह वार्क्षी सिद्धि है, जहांपर सब मनोरथ स्वभावसेही सिद्धहोते हैं वह स्वाभाविकी सिद्धिकहातीहै, जहाँ देशसेही सबकामना सिद्धहोती हैं वह देशी सिद्धि है, जहां जलसेही सब कार्य होते हैं वह तोयोत्था सिद्धि है, जहांपर ध्यान करके ही सब कार्य पूर्णहोते हैं वह मानसी सिद्धिजानो, और जो उपासना आदि से कार्य सिद्धहोते हैं वह धर्मजा सिद्धि है हे ब्रह्मन्! इनवर्षों में युगोंका धर्म, आधि व्याधि और पाप पुण्य नहीं होता है। इति छप्पनवां अध्याय समाप्त।

सत्तावनवाँ अध्याय।

क्रौष्टुकि–बोले कि–हे भगवन्! आपने जम्बूद्वीप का तो वर्णनकरा परन्तु यह जो कहा कि पुण्यदायक कर्म और पाप दायक कर्म, भारतवर्ष के अतिरिक्त और किसी वर्षमें नहीं होता केवल भारतवर्ष में ही कर्म करनेसे स्वर्ग, मोक्ष और जन्म मरण मनुष्य पाते हैं हे ब्रह्मन्! जिस कारण और वर्षोंमें कर्म नहीं होता तथा इस भारत वर्षको जो कर्मभूमि कहा यह सब विस्तार से वर्णनकरिये इसमें जो भेद हैं और जिस प्रकार यह स्थित है तथा इसमें जितने देश और पर्वत हैं वह भी कहिये मार्कण्डेयजीने कहाकि–हेक्रौष्टुकि! इस भारतवर्ष के नौ भेद हैं, वह समुद्रतक हैं और सब वर्ष परस्पर में अगम्य हैं उनके नाम–इन्द्रद्वीप, केशरुमान,

ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गान्धर्व और वारुण इनसे भारत नामा नवम द्वीप अतिउत्तम है जो समुद्र से घिराहुआ है, उत्तर से दक्षिण पर्यंत यह हजार योजन चौड़ा है इसके पूर्व ओर के छोर में भील बसते हैं और पश्चिम के अन्त में यवन रहते हैं हे ब्रह्मन्! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इस भारत के मध्य में बसते हैं, यज्ञ, वेदपाठ और वाणिज्य आदि कर्मों से ब्राह्मणादि चारोंवर्ण पवित्र हैं और इन्हीं कर्मोंसे इनका व्यवहार भी चलता है, स्वर्ग, अपवर्ग की प्राप्ति और पापपुण्य भी कर्म करके ही इनको होता है, अब इस वर्ष के पर्वतों के नाम सुनो—महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विंध्य और पारिपात्र, इस वर्षमें यह सात कुलाचल हैं, इनके समीप और भी अनेकों पर्वत हैं उनमें भी बड़े २ चौड़े सानु हैं उनके नाम सुनो कोलाहल, सर्वभ्राज, मन्दर, दर्दुराचल, वातस्वन, वैद्युत, मैनाक, स्वरस, तुंगप्रस्थ, नागगिरी, रोचन, पाण्डुराचल, पुष्पगिरि दुर्जयंत, रैवत, अर्बुद, ऋष्यमूक, सगोमन्त, कूटशैल, कृतस्मर, श्रीपर्वत और चकोर आदि सैंकड़ों पर्वत इस भारतवर्ष में हैं, इस वर्षमें जो २ श्रेष्ठ नदियें बहती हैं उन को सुनो–गंगा, सरस्वती, सिंधु, चन्द्रभागा, यमुना, शतद्रु, वितस्ता, ऐरावती, कुहु, गोमती, धूतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, विपाशा, देविका, रंक्षु, निश्चीरा, गण्डकी और कौशिकी यह नदियें हिमवान् पर्वत से निकली हैं। वेदस्मृति, वेदवती, वृत्रघ्नी, सिंधु, वेण्वासा, नंदनी, सदनीरा, मही, पारा, चर्मण्वती, नूपी, विदिशा, वेत्रवती, शिप्रा और अवर्णी यह सब नदियें पारिपात्र पर्वत से निकली हैं । महानद शोण, नर्मदा, सुरथा, अद्रिजा, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, चित्रोत्पला, शतमखा करतोदा, पिशाचिका, सुमेरुजा, शुक्तिमती सकुली, त्रिदिवा, क्रमु, स्कंधपाद प्रसूता, वेगवाहिनी, शिप्रा, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, तापी, निषधावती, वेण्या, वैतरणी, सिनीवाली, कुमुद्वती, करतोया, महागौरी, दुर्गा और अन्तःशिरा यह सब पवित्र जलभरी नदियें विन्ध्याचल से निकली हैं। गोदावरी, भीमरथा, कृष्णा, वैण्वा, तुंगभद्रा, सुप्रयोगा, वाह्या और कावेरी यह उत्तम नदियें सिह्यपाद नामक पर्वत से निकली हैं। कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुष्पजा और उत्पलावती, यह नदियें मलयगिरि से निकली हैं इन का जल भी अत्यंत शीतल है. पितृसोमा, ऋषिकुल्या, इक्षुका, त्रिदिवा, अभया, लंगूलिनी और वंशकरा यह नदियें महेन्द्र पर्वत से निकली हैं। ऋषिकुल्या, कुमारी, मन्दगा, मन्दवाहिनी, कृपा और पलाशिनी इन नदियों की शुक्तिमान् पर्वतसे उत्पत्ति हुईहै सरस्वती और गंगा तथा समुद्र में मिली हैं इस से अति पवित्र हैं और यह सब जगत् की माता हैं, सकल पापों को हरनेवाली हैं. हे द्विज ! इस वर्ष में और भी छोटी २ सहस्रों नदियें बहती हैं कुछेक ऐसी हैं

जो केवल वर्षाऋतु में वहती हैं और कुछ सदा वहती हैं. मत्स्य देश और कूट, कुल्य, कुंतल, काशी, कोशल, अथर्व, अर्कलिंग, मलक और वृक यह सब मध्यदेश कहाते हैं। सह्यपर्वत के उत्तर में जहाँ गोदावरी नदी वहती है वह देश सवदेशों से पवित्र और रमणीक है महात्माशुक्राचार्यका जो गोवर्धनपुरहै वहभी अत्यन्त पवित्र है, वाल्हीक, वाटधान, आभीर,कालतोयक,अपरान्त,शूद्र, पल्लव चर्मखण्डिक, गान्धार, गवल, सिन्धु, सौवीर, भद्रक, शतद्रुज, कलिंग, पारद, हारभूषिक, माठर, व्यूहभद्र कैकेय और दशमलिक इन देशों में क्षत्रिय. वैश्य और शूद्र रहते हैं। काम्बोज, दरद, वर्बर, हर्षवर्द्धन, चीन, तुषार, वहुल, वाह्यतोनर आत्रेय, भरद्वाज, पुष्कल, कुशेरुक, लम्पाक, शूलकार, चुलिक, जागुड़ औषध और निभद्र इन देशों में भील रहते हैं तामस, हंसमार्ग, काश्मीर, तुंगन, शूलिक, कुहक, ऊर्ण और दर्व यह देश भारतवर्ष के उत्तर और दक्षिण में हैं, अवपूर्वदिशा के देश कहताहूँ, सुनो—अभ्रारक, मुदकर अन्तर्गिरि, वहिर्गिरि, मवङ्ग, रङ्गेय, मानद, मानवर्तिक, वाह्योत्तर, मविजय, भार्गव, ज्ञेयमल्लक, माग्ज्योतिष, मद्र, विदेह, ताम्रलिप्तक, मल्ल, मगध और गोमन्त यह सब देश पूर्वदिशा में हैं, अवदक्षिण के देश सुनो—पुण्ड्र, केरल, गोलांगूल, शैलूष, मूषिक, कुसुम, नामवासक, महाराष्ट्र, माहिषक, कलिंग, आभीर, वैशिकी, आढकी, शवर, पुलिंद, विन्ध्यमौलेय, विदर्भ, दण्डक, पौरिक, मौलिक, अश्मक, भोगवर्द्धन, नैषिक, कुन्तल,अन्ध, उद्भिद और वनदारक यह देश दक्षिणमें हैं अब अपरान्त के नामसुनो-सूर्यारक, कालिवल, दुर्ग, आनिकूट, पुलिन्द, सुमीन, रूपप, स्वापद, कुरुमिन कटाक्षर नासिक्य और नर्मदा के उत्तर तरफ के देश, भीरुक, कच्छ, समाहेय, सारस्वत, काश्मीर, सुराष्ट्र, अवन्ति और अर्बुद यह सब अपरान्त देश हैं अब विंध्यपर के देश सुनो-सरज,कुरूप,केरल, उत्कल,उत्तमार्ण,दशार्ण, भोज्य, किष्किंधक, तोशल, कोशल, त्रिपुर, विदिश, तुम्बुर, तुम्बुल, पटव,नैषध, अन्नज, तुष्टिकार, वीरहोत्र और अवन्ति यह सब देश विन्ध्याचल के ऊपर हैं अब, पर्वतों के आश्रय से जो देश हैं उनको सुनो—नीहार हंसमार्ग, कुरु, गुर्गण, खस, कुन्त, मावरण, ऊर्ण, दार्व, कूत्रक, त्रिगर्त्त, गालव, किरात और तामस, यह हैं। सत्ययुग और त्रेता आदि युगोंकी विधि इसभारत वर्ष में है और यह चार भाग में स्थित है, इस के दक्षिण,पश्चिम और पूर्वमें भी समुद्र हैं तथा उत्तर की तरफ धनुषकी समान हिमवान् पर्वत है। हे द्विजश्रेष्ठ! यह भारतवर्ष सवका बीज है क्योंकि—यहाँ कर्म करने से ही माणी ब्रह्मत्व,इन्द्रत्व, देवत्व, और पवनत्व तथा मृग, पशु एवं अप्सरा आदि की योनि पाता है: सर्प और स्थावर योनियों में भी मनुष्य शुभाशुभ कर्म करके

जाता है. हे ब्रह्मन्! इसीकारण यह कर्म भूमि है अन्य वर्ष कर्मभूमि नहींहैं हे विप्र! देवताओं को भी यही इच्छा रहती है कि- हमभी किसीप्रकार देवलोक से गिरकर भारतवर्ष में मनुष्य होते तो अच्छा था क्योंकि-जो कर्म मानुष-शरीर से होसक्ते हैं वह देवता आदि से नहीं होसक्ते हैं यह जीव अपने करेहुए कर्मरूपी वेडी से बँधकर सुख-दुःख भोगता है, विनाकर्म करे किसी को सुख-दुःख नहीं होता है. इति सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ।

अट्ठावनवाँ अध्याय ।

क्रौष्टुकि बोले कि-हे भगवन्! आपने भारतवर्ष को तो भलीप्रकार, नदी, पर्वत और देशों सहित वर्णनकरा, आपने पहिले भारतवर्ष में कूर्मभगवान् को कहा परन्तु उनका निवासस्थान नहीं कहा, सो भली प्रकार कहिये, कूर्मरूपी जो जनार्दन हैं वह किसप्रकार इस में वास करते हैं. उन से मनुष्यों का किसप्रकार शुभाशुभ होताहै और जैसा उनका मुख तथा पैर हैं वह भी कहिये. मार्कण्डेय जी बोले कि-हे द्विज! कूर्मरूपी भगवान् इस में पूर्वमुख विराजमान् हैं, इस भारत वर्ष में नौ भेद हैं, । उन कूर्मभगवान के चारोंओर नक्षत्र नौ प्रकार से स्थित हैं, हे द्विजश्रेष्ठ! उन के जो विषय हैं उन को सुनो-वेदमंत्र, विमाण्डव्य, शाल्वनीप, शक, उज्जिहान, घोपसंख्य, खश और उसके मध्य में सारस्वत, शूरसेन, मत्स्य, माथुर, धर्मारण्य, ज्योतिषिक, गौरग्रीव, गुडाश्मक, वैदेहक, पञ्चाल, संकेत, कंकमारुत कालकोटि और पाखण्ड यह देश पारिपात्र पर्वत के आश्रयी हैं। कापिंगल, कुरु, ब्राह्म, उडुम्बुर और हस्तिना यह सब जल निवासी कूर्म भगवान् की पीठ के मध्य में हैं और कृतिका, रोहिणी तथा मृगशिरा यह तीन नक्षत्र मध्यवासियों का शुभाशुभ बतलाते रहते हैं । वृषध्वज, अंजन, पद्माख्य, मानवाचल, सूर्यकर्ण, व्याघ्रमुख, खर्मक कर्वटाशन, चन्द्रेश्वर, खश, मगध, शिवी, मैथिल, शुभ, वदनदन्तुर, प्राग्ज्योतिष, लौहित्य, सामुद्र, पुरुषादक, पूर्णोत्कट, और भद्रगौर हे द्विज! इसीप्रकार उदयगिरि, काशाय, मेखला, मुष्ट, ताम्रलिप्त, एकपादप, वर्द्धमान और कोशल यहदेश कूर्म भगवान् के मुखपर स्थित है, आर्द्रा, पुनर्वसु और पुष्य यहनक्षत्र, मुखवासियों का सुख-दुःख बतलाते हैं । हे क्रौष्टुकि! अब कूर्म भगवान के चरणोंपर के देशसुनो कलिंग, वङ्ग, जठर, कोशल, मूषिक, चेदि, ऊर्द्ध्व कर्ण और मत्स्यादि सब विन्ध्यवासी देश तथा विदर्भ, नारिकेल, धर्मद्वीप, ऐलिक, व्याघ्रग्रीव, महाग्रीव, त्रिपुर, श्मश्रुधारी, किष्किन्धा, हेमकूट, निषध, कटकस्थल, दशार्ण, हारिक, नग्न, निषाद, काकुलालक, पर्ण और शबर यह सब देश कूर्मभगवान् के दक्षिण चरण के पूर्व भागपर विराजमान हैं, श्लेषा, मघा और पूर्वाफाल्गुनी यह तीन नक्षत्र, बायें और दाहिने चरणपर स्थित रहकर वहाँ के निवासियों

को शुभाशुभ बतलाते हैं । लङ्का, महेन्द्र, मलयाद्रि, कालाजिन, शैलिक, निकट, दर्दुरपर्वतपर के देश, कर्कोटक वन के देश भृगुकच्छा, कोङ्कन, आभीर, वेण्यातट के देश, अवन्ती, दासपुर, अकणिनों के रहने का देश, महाराष्ट्र, कर्णाट, गोनर्द्ध, चित्र कट, चोल, कोलगिरि, क्रौंचद्वीप, जटाधर कावेरी, ऋष्यमूक के वासी और नासिक्य लोक तथा शङ्ख, मुक्ता वैदूर्य आदि पर्वतों के रहनेवाले, इसीप्रकार वारिचर, लोक, चर्मपट्ट, गणवाह्य, कृष्णद्वीप और वारिलके रहनेवाले, सूर्याद्रि और कुसुमाद्रिपर जो पुरुष बसते हैं उन के नाम औखावन, पिशिक, कर्मनायक, दक्षिण, कौरुष, ऋषिक, तापसाश्रम ऋषभ, सिंहल कांचीवासी, त्रिलङ्ग कुंजर, दरी, कच्छ वासी, ताम्रपर्णी यह सब कूर्मके दक्षिणओर स्थितहैं उत्तराफाल्गुणी, हस्त औरचित्रा यह तीन नक्षत्र कूर्म की दक्षिणकोख में विराजमान रहतेहैं तथा वाह्यपाद और काम्बोज, प्लह्व, वड़वामुख, सिन्ध, सौवीर, आनर्त्त, वनितामुख, द्रावण, मार्गिग, शूद्र, कर्ण, प्राश्रेय, वर्बर, किरात, पारद पाण्ड्य, पारशव, कल, धूर्तक, हैमगिरिक, सिंधुपालक, रेवत, सौराष्ट्र, दरद, द्राविड़ और महार्णव यह सब देश कूर्म के दाहिने चरण में स्थित हैं, स्वाति, विशाखा और मैत्र यह तीन नक्षत्र उन देशों में शुभाशुभ की सूचना करते हैं। मणिमेघ, क्षुराद्रि, खञ्जन, अस्तगिरि, अपरान्तिक, हैहय, शांतिक, विप्रशस्त, कोङ्कण, पञ्चनद, वमन, अवर, तारक्षुर, अंगतक, शर्कर, शाल्मवेश्मक, गुरुस्वर, फाल्गुनक और वेणुमती, में रहनेवाले, फाल्गुलुक, घोर, गुरुह, कल, एकेक्षण, व्याघ्रकेश, दीर्घग्रीव, सचूलिक, अश्वकेश, यह सब देश कूर्म की पुच्छ में स्थित हैं, ज्येष्ठा, मूल और पूर्वाषाढ यह तीन नक्षत्र कूर्म की पुच्छ में स्थित रहते हैं। माण्डव्य, चण्डखार, अश्वकाल, नत, कुन्यतालडह, स्त्रीवाह्य, वालिका, नृसिंह, वेणुमतीवासी, वालावस्थ, धर्मवद्ध, उलूक और उरुकूर्चवासी, कूर्मभगवान् के बायें चरण में स्थितहै, उत्तराषाढ़, श्रवण और धनिष्ठा यह तीन नक्षत्र वहां स्थित हैं । कैलाश हिमाचल, धनुष्मान, वसुमान्, क्रौंच, कुरुवक, क्षुद्रवीणलोक, रसालय, कैकेय, भोगप्रस्थ, यामुन, अन्तर्द्वीप, त्रिगर्त्त, अग्नीज्य, अर्दन, अश्वमुख, प्राप्त चिविड़, केशधारी, दासेरक, वाटधान, शवधान, पुष्कल, अधम, किरात, तक्ष, शिलाश्रय, अम्बाल, मालवा, मद्र, वेणुक, सवदन्तिक, पिङ्गल, मानकलह, हूण, कोहलक, माण्डव्य, भूतियुवक, शातक, हेमतारक, यशोमत्य, गान्धार, खरसागर, राशि, यौधेय, दासमेय, राजकन्या, श्यामक और क्षेमधूर्त्त यह सब देश कूर्मभगवान् की बाईं कोख में स्थित हैं, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद और उत्तराभाद्रपद यह तीन नक्षत्र वहां रहते हैं। नैमि, नवराज, पशुपाल, कीचक, काश्मीरक, राष्ट्र, अभिसारलोग, दवदअङ्गन, कुलट, वनराष्ट्रक,

सौरिष्ट, ब्रह्मपुरक, वनवाह्यक, किरात, कौशिक, नन्द, पह्लवलोलन, दार्वाद, मरक, कुरट, अन्नदारक, एकपाद, खश, घोष, स्वर्गभौम, अनवद्यक, यवन, हिंग, चीरप्रावरण, त्रिनेत्र, औरव और गन्धर्व-आदि देश हे द्विजोत्तम! कूर्मभगवान् के पूर्व और उत्तर के चरणपर स्थित हैं, रेवती, अश्विनी और भरणी यह तीन नक्षत्र भी वहां रहते हैं हे मुनिसत्तम! इन देशों में इतने नक्षत्र, इतने ही मनुष्य और इतने ही पर्वत हैं जो मैंने तुम से कहे इन देशोंमें इन्हीं नक्षत्रोंके अशुभ होने से मनुष्यों को दुःख मिलता है, जब यही नक्षत्र अच्छे ग्रहों के साथ होते हैं तब सब को सुख प्राप्त होता है जिस नक्षत्र का जो ग्रह स्वामीहै उसके दुःस्थ होने से उस देश में मनुष्यों को भय (दुःख) प्राप्त होता है और उसी के उत्कर्ष अर्थात् उत्तम स्थानपर होने से मनुष्यों का कल्याण (सुख) होता है, हे द्विजश्रेष्ठ! सब देशों में पृथक्२ नक्षत्र और ग्रहोंकरके दुःख सुख होता है; सब देशों में अपने२नक्षत्रोंके दुःस्थहोने से सब लोग सुख-दुःख पाते हैं, हे द्विजोत्तम! ग्रहों के प्रतिकूलहोनेसे जो भय होताहै उसके दूर होने को, ज्योतिषी, मनुष्यों को जप और दान करने का उपदेश करते हैं, ग्रह के विगड़ने से द्रव्य, गोठ, भृत्य, सुहृद्, पुत्र, औरस्त्री आदि करके पीड़ा पुण्यात्माओं को भी होती है, अपने ऊपर पापग्रहों की दृष्टि होनेपर अल्पपुण्य और अतिपापियों को सर्वत्र भय होता है, दिशा, देश, लोग, राजा, पुत्र आदि से, नक्षत्र और ग्रह के अनुकूल और प्रतिकूल रहने के अनुसार मनुष्यों को शुभाशुभ फल होता है और ग्रहों के अनुकूल होने से मनुष्यों को सुख होता है तथा ग्रह के ही प्रतिकूल होने से दुःख होता है हे द्विज! नक्षत्रों सहित कूर्मभगवान की रचना जो कही वही सब देशों में शुभाशुभ फल की देनेवाली है, हे ब्रह्मन! इसलिये बुद्धिमानों को चाहिये कि–अपनी नक्षत्र और ग्रह की करीहुई पीड़ा को ज्योतिषीसे बूझकर उसकी शांति और पूजाकरैं।आकाशसे देवता और दैत्यों के जो शत्रुलूकेगिरतेहैं उनको भी लोकवाद कहते हैं, इसलिये ग्रह और लोकवाद दोनों की शान्ति करै क्योंकि--मनुष्योंको उन्ही के गिरने से यहाँ शुभाशुभ होता है, हेद्विजोत्तम!वह ग्रहादि अनुकूल होने पर शुभका उदय और पापकी हानि करते हैं तथा वही ग्रहादि प्रतिकूल होनेपर बुद्धि और द्रव्यादि का नाशकरते हैं इस लिये बुद्धिमान् को उचितहै कि--लोकवाद और ग्रहकी शान्ति पीड़ा के समय अवश्य करावे, आप किसी से वैर न करै व्रतादि करै, शान्ति स्तोत्र पढै; जप, होम स्नान और दान करै तथा क्रोधादिकसे रहित रहै, बुद्धिमान् किसी से द्रोह न करके सब से प्रीति करै, झूंठ न बोलै, विवाद न करै और ग्रहकी पूजा मनुष्यों को सब दुःखों में करनी उचित है क्यों-

कि-इसप्रकार पूजा और शान्ति करनेसे अत्यंत पीड़ाभी नष्ट होजाती है। जो मनुष्य पवित्र हैं उनकोभी ग्रहों से शुभा शुभ फल होता है. भारतखण्ड में रहने- वाले कूर्म भगवान्‌का वर्णन करा, यह कूर्म भगवान् अचिंत्यात्मा हैं, इन में सकल जगत् स्थित है और इनमें ही सब देव नक्षत्रों के स्वामी रहते हैं। हेद्विज! इसी प्रकार अग्नि, पृथ्वी और चंद्रमा कूर्मकेमध्य में स्थित हैं, वृष और मेष यह दोनों राशि भी कूर्म के मध्य में हैं, कर्क और मिथुन यह दोनों राशि मुख में हैं, कर्क और सिंह दाहिने चरण में, सिंह, कन्या और तुला यह तीन राशि कोख में हैं, तुला, वृश्चिक दक्षिण और पश्चिम के चरणमें हैं वृश्चिक और धनु पीठ में रहते हैं, धन, मकर और कुम्भ यह तीनराशि वायव्य कोण के चरण में स्थित हैं, कुम्भ और मीन दाहिनी कोख में रहते हैं, हेद्विज! मीन और मेष पूर्व और उत्तर के चरण में स्थितरहतेहैं पूर्व में देशतथा इन देशोंमें नक्षत्र और नक्षत्रों में राशियें इसीप्रका- र राशियों में सकलग्रह स्थित रहते हैं इस कारण ही ग्रह और नक्षत्र की पीड़ा को देशपीड़ा कहते हैं, देशपीड़ा होनेपर स्नान करके दान, होमादि विधिको करै। ग्रहों के मध्यमें विराजमान यह वैष्णवपादही साक्षात् नारायण और ब्रह्मा हैं। इति अ- ट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त॥

———

उनसठवाँ अध्याय.

मार्कण्डेयजी ने कहाकि हेमुने! मैंने इस भारतवर्ष का वर्णन यथावत् कहा, सत्य त्रेता, द्वापर, और कलि यह चार युगहैं इस भारतमें ही युगों का प्रचार व प्रक- टता होतीहै, इस भारतवर्ष में ही चारों वर्णों की व्यवस्था है, हे द्विज! यहाँ सत्य आदि चारों युगों में लोक क्रमसे चार, तीन, दो और एकसौ वर्षपर्यंत जीवित रहते हैं। हे ब्रह्मन्! देवकूट शैलराज के पूर्व की ओर जो वर्ष है उस को ही भद्रा- श्ववर्ष कहते हैं, श्वेतवर्ण, नील, शैवाल, कौरज, पर्णशालाग्र यह पाँच तहाँ के कुल पर्वत हैं, इन से उत्पन्न हुए और अनेकों छोटे २ पर्वत भी हैं उन सब पर्वतोंपर नानाप्रकार के सहस्रों देश बसेहुए हैं उन देशों में शीत, शंखवत, भद्रा और चक्रा- वर्त्ता आदिनदियें बहती हैं, वह सब लम्बी चौडी और शीतल जलों से युक्त हैं, वहाँ के बसनेवाले शंख की समान श्वेत वर्ण और सुवर्ण की समान कान्तिमान् हैं, परमपवित्र स्वभाव, देवताओं की समान गतिवाले और सहस्रवर्ष पर्यंत जीवित रहते हैं, उनमें कोई उत्तम, अधम नहीं हैं, सब देखने में एकसमान हैं, स्वभाव से ही तितिक्षा आदि आठ गुणों से यु- क्त हैं। तहाँ भी चतुर्भुज विष्णुभगवान् अश्वशिरा रूप से रहते हैं, उन के शिर, हृदय, मेढ्र, चरण और तीननेत्र हैं, उन जगत्प्रभु के ही सब देश हैं। इस के अनंतर पश्चिम में एक मालवर्ष है, उस

को मुझ से सुनो–विशाल, कम्बल, कृष्ण, जयन्त, हरि, विशोक, और वर्द्धमान् यह सात तहां के कुलपर्वत हैं और भी सहस्रों पर्वत हैं, जिनपर जनसमूह बसता हैं; मौलि, महाकाय शाकपोत, करम्भ, और अंगुल आदि सैकड़ा प्राणी बसते हैं, तहां के निवासी–चक्षु, श्यामा, कंवला, अमोघा, कामिनी तथा और भी सहस्रों नदियों का जल पीते हैं। यहां के लोकों की भी सहस्रवर्ष की आयु होती है, यहां भगवान् वराहरूप से रहते हैं। इन के चरण, हृदय, मुख, पीठ और पसलियों पर तीन२ नक्षत्रों के साथ सब देश स्थित हैं, तहां के सब नक्षत्र अनुकूल हैं। हे मुनिसत्तम ! मैंने यह तुम से केतुमाल वर्ष का वर्णन करा। इसके अनन्तर उत्तरकुरुओं का वर्णन करूँगा वह तुम मुझ से सुनो–तहां के वृक्ष मीठे फलवाले और नित्य पुष्पफल युक्त रहते हैं, उनके फलोंमें से वस्त्र और भूषण उत्पन्न होते हैं, सकलकामना और सकलकामनाओं के फल भी वही देते हैं तहां की भूमि मणिमयी है और वायु सदा सुगंधित सुखदाई चलता है। देवलोक से भ्रष्टहुए प्राणी ही तहां जन्म लेते हैं। तहां स्त्री पुरुष साथही उत्पन्न होते हैं और परस्पर एक समान समयतक जीवित रहते हैं, चक्रवाक के जोड़े की समान उन की परस्पर की प्रीति और अनुराग की सीमा नहीं है। उन सब के जीने का परिमाण साढ़े चौदहसहस्रवर्ष है। गिरिराज चन्द्रकांत और सूर्यकांत यह दोनों तहां के कुलाचल हैं, तिसवर्ष में की महानदी पवित्र और निर्मल जल से बहनेवाली भद्रसोमा है, उसके सिवाय उत्तरवर्ष में और भी सहस्रों नदियें हैं, उन में कोई क्षीरवाहिनी और कोई घृतवाहिनी हैं, तहां दधिके तालाव और बहुत से गण्डपर्वत हैं, तहां नानाप्रकार के अमृत की समान स्वादुफल उत्पन्न होते हैं, वहां जो सैकड़ों सहस्रों वन हैं उन में ही इन की उत्पत्ति होती है, तहां विष्णुभगवान् प्राक्शिरा मत्स्यरूप से विराजमान रहते हैं हे विप्र ! तहां तीन२ के क्रमसे बटेहुए नौ नक्षत्र हैं और हे मुनिसत्तम ! तहां दिशाभी नौभाग में बटीहुई हैं हे मुने ! वहां के समुद्र में भी चन्द्रद्वीप और भद्रद्वीप परमपवित्र प्रसिद्ध हैं हे ब्रह्मन् ! यह मैंने तुम से उत्तरकुरुओं का वर्णन करा। अब मुझ कहनेवाले से किम्पुरुषादिवर्षोंका वर्णन सुनो-इति उनसठवाँअध्यायसमाप्त॰

साठवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी बोले कि–हे ब्रह्मन् ! किम्पुरुष नामक वर्ष में मनुष्यों की आयु दशसहस्र वर्ष की होती है, वहाँ के स्त्री पुरुष रोग रहित हैं, उस वर्षमें, नंदन वन की समान एक प्लक्ष नामक बड़ाभारी वन है, उसी वन के फलों का रस पान करके वह लोग सदा तरुण बने रहते हैं, उसी रस के पान करने से वहाँ की स्त्रियों के शरीर में से कमल की समान गन्ध निकलती है। अब हरि वर्ष का वृत्तांत सुनो–वहाँ मनु-

ष्यों की, चांदी के समान कांति है, मानो वहाँ के लोग देवलोक से गिरकर, देवताओं की समान रूपवान् होकर जन्मते हैं और वह लोग गन्ने का रस पिया करते हैं कि-जिस के पीने से, सदा युवा और रोग रहित रहते हैं। अब मेरुवर्ष (इलावृत खण्ड) का वृत्तांत सुनो— वहाँ सूर्य की उष्णता अधिक नहीं होती है और वहाँ के लोग जरारहित हैं वहाँ सूर्य-चन्द्र की किरणें मनुष्यों की इच्छानुसार पडती हैं तथा नक्षत्र और ग्रहों का प्रकाश मेरुके बाहर होता है, वहाँ के मनुष्य, कमल समान कांति वाले हैं और उन के शरीर से भी कमल की गन्ध आती है, वह जम्बू फलों का रस पीते हैं और सब के सब कमल नेत्र हैं, उन की आयु तेरह सहस्रवर्ष की होती है, मेरु के मध्य में सराव (ढकने) के आकार से स्थिति है इलावृत में मेरु ही महाशैल है इसप्रकार इलावृत का वर्णन करा। अब रम्यक वर्ष का वृत्तांत सुनो—वहाँ अत्यन्त ऊँचा एक बड का वृक्ष है उस के पत्र सदा हरे रहते हैं वहाँ के निवासी उसी वृक्ष के फलों का रस पीकर जीते हैं वहाँ सबों की आयु दश सहस्रवर्ष की होती है और वह रतिकर्म में अतिचतुर हैं तथा जरा और दुर्गन्धता से रहित हैं। इस के उत्तर में हिरण्मय वर्ष है वहां हिरण्वती नदी वहती है, जो निर्मल जल और कमलोंसे शोभित है, वहाँ के मनुष्य महाबलवान् और तेजस्वी होते हैं तथा सुडौल, धनवान् और प्रियदर्शन होते हैं इति साठवाँ अध्याय समाप्त।

इकसठवाँ अध्याय।

क्रौष्टुकि बोले कि-हे मुने! जो २ मैंने पूछा उस को आपने विस्तार से कहा और पृथ्वी तथा समुद्र आदि की स्थिति, प्रमाण, ग्रह और ग्रहों का प्रमाण, नक्षत्रों के स्थान, भूर्भुवादि लोक, सब पाताल और स्वायम्भुव मन्वंतर का भी वृत्तांत कहा, इस के अनन्तर मन्वंतर, मन्वंतरों के स्वामी, ऋषि, देवता और उन के पुत्र राजाओं को सुनने की इच्छा करता हूँ सो कहिये, मार्कण्डेयजी ने कहा कि-हे ब्रह्मन्! स्वायम्भुव मन्वंतर के अनंतर स्वारोचिष मन्वन्तरहै। अरुणास्पद नगरमें, वरुणा नदी के तटपर एकअतिश्रेष्ठ द्विजरहता था अश्विनीकुमारसेभी अधिकरूपवान् था, वहकोमल स्वभाव, सच्चरित्र, वेदवेदाङ्ग का पारगामी, अतिथियों का प्रिय और रात्रि में आनेवाले अतिथियों को विशेष रूप से आश्रय देताथा, एक दिन उस ब्राह्मण के चित्त में यह आया कि मैं अतिमनोहरबगीचे, और अनेकों नगरों से शोभायमान पृथ्वी को देखूँ, इसी विचार में था कि-उस के घर कोई एक अतिथि आपहुँचा, वह नानाप्रकार की औषधियों को जाननेवाला और मन्त्रविद्या में चतुर था, इस ब्राह्मण ने श्रद्धा के साथ पवित्र चित्त से उस अतिथि की प्रार्थना करी तब उसने अनेकों रमणीयदेश, नगर, वन, नदी, पर्वत और पवित्र स्थानों का वर्णनकरा। ब्राह्मण ने आश्चर्य में होकर कहाकि अनेकों देशोंको देखकर आपको बहुत श्रम हुआ है, तथापि आप अवस्था में अतिवृद्ध नहीं है और तरुणाई से अतिदूरभी नहीं पहुँचे हैं, आपने थोडे समय

में ही पृथ्वी का पर्यटन कैसे किया! अतिथि ब्राह्मण ने कहाकि--हेविप्र! मन्त्र और औषधि के बलसे ही मेरी गति कहीं नहीं रुकती है, मैं आधेदिनमेंही एक सहस्र योजन चललेताहूं मार्कण्डेयजी कहते हैं कि--ब्राह्मण उस की बातपर विश्वासकरके फिर आदर के साथ बोला कि--हेभगवन्! मेरे ऊपर मंत्रौषधि के प्रभाव को बताने का अनुग्रह करिये, समग्र पृथिवी को देखने की मेरी बड़ी अभिलाषा है तब उदारबुद्धि अतिथि ब्राह्मण ने उस को चरणों में लगाने का एक लेप दिया और उस की कही हुई दिशाओंको भी अभिमंत्रित करदिया, हेद्विजसत्तम! वह द्विज, उस अतिथि के दियेहुए लेप को चरण में लगाकर, अनेकों झरनों से युक्त हिमालय के देखने को गया, उससमय वह मन में विचारनेलगा कि--मैं आधेदिन में सहस्र योजन जाकर दूसरे आधे दिन में लौट आऊँगा। फिर वह हिमालय के ऊपर आपहुँचा परन्तु इतने दूरपर्यंत मार्ग चलनेपरभी उस को अधिकथकावट प्रतीत नहींहुई, वह तहाँ पहुँचकर इधर उधर विचरनेलगा तिससे उस के चरणमें बरफ लिपटगया उस बरफके लगने के समय उसकी वह परमौषधि का लेप धुलगया तब वह मूढ़सा होकर इधर उधर घूमता हुआ हिमालय की गुफाओं को देखने लगा, सबही गुफायें अति मनोहर, सिद्ध, गंधर्वों की सेवन करीहुई, किन्नरों की विहार करीहुई और देवताओं के इधर उधर क्रीड़ा करने से और भी मनोहर प्रतीत होतीथीं। हेमुने! उस श्रेष्ठ द्विजने उन गुफाओं को सैकड़ों दिव्य अप्सराओं से भराहुआ देखा, तिससे उस के रोमांच खड़े होगए और चित्तकी पूरी तृप्ति न हुई। हेमुने! कहीं तो झरनोंमें से जल की धाराओंके निकलने और गिरने के कारण हिमालय सकल लोकों के चित्तों को हररहा कहीं मोर नाचते २ कूक लगाकर गुफाओं को गुंजार देते हैं,कहीं कोकिल और पपीहा आदि पक्षी विचररहे हैं, कहीं कर्णों को अपनी ओर खींचनेवाले नरकोकिलाओं के मधुर शब्द होरहे हैं, वृक्षों के फूलों की सुगंधि से महका हुआ वायु उस का वीजना करता है, यह देखकर उस के अन्तःकरण में अति आनन्द का अनुभव हुआ, वह मन में विचारनेलगा कि--फल का आकर फिर देखूँगा, ऐसा विचारकर घर को जाने का सङ्कल्प किया परन्तु चरणों का लेप छूटजाने से, चलने की शक्ति से रहित होगया तब चिन्ता करनेलगा कि--मैंने नासमझी में यह क्या करलिया, चरणों का लेप छुटकर बरफ के जल में मिलगया, यह पर्वत बडा दुर्गम है और मैं भी यहां बहुत दूर आपहुँचा हूँ, यहां तो मेरी संध्या और अग्निहोत्रादि सब क्रिया नष्ट होजायगी, बडा सङ्कट आपडा, अब मैं यहां कैसे करूँगा, यह हिमालय सब पर्वतों में प्रधान हैं, यहां जोदेखो सो सब ही: रमणीय है, जिस को देखता हूँ वही वस्तु दृष्टि को पकडलेती है, सैकडों वर्ष देखने पर भी तृप्ति नहीं होसक्ती, इस के चारोंओर किन्नर अति मनोहर मधुर आलाप के साथ सब के कानों को अपनी ओर खैंचते हैं, प्रफुल्लित वृक्षों की गंध को सूँघकर भी नासिका उधर को ही अत्यन्त खिचीजाती है, यहां की वायु के स्पर्श से भी अति सुख होता है, फल

भी बडे ही रसीले हैं, इस दशा में यदि किसी तपस्वी को देखपाऊँ तो वह अवश्य ही घर जाने का मार्ग बतादेय। मार्कण्डेयजी कहतेहैं कि–ब्राह्मण ऐसी चिन्ता करते २ हिमाचल पर विचरनेलगा, चरणों में लगी औषधि का बल न रहने से अति दुर्बल होगया ऐसी दशा में उस श्रेष्ठ मुनि को, परमरूपवती महाभागा वरूथिनी नामवाली श्रेष्ठ अप्सरा ने देखा, देखते ही तत्काल मुनि की ओर को उस का प्रेम बढा और हृदय काम के वेग से खिचनेलगा, उस समय वह चिंता करनेलगी कि-यह अति रमणीय आकृतिवाला पुरुष कौन है ? यदि यह तिरस्कार न करै तो मेरा जन्म सफल होजाय। आहा ! इस की कैसी रूपमाधुरी है ! आहा ! कैसी परमसुन्दर गति है ? आहा ! इस की दृष्टि में कैसी गम्भीरता है ? क्या पृथ्वी भर में इस की समान कोई पुरुष है ? मैंने देवता, दैत्य, सिद्ध, गन्धर्व और पन्नग सब ही देखे हैं, परन्तु उन में इस महात्मा की समान रूपवान् एक भी नहीं है, अतएव जैसा मेरा अनुराग इस के ऊपर हुआ है यदि यह भी मेरे ऊपर वैसाही अनुराग करै तो मैं अपने अनेकों जन्मों का पुण्य संचय जानूँ, अधिक क्या कहूँ यदि यह आज मेरे ऊपर प्रेम की दृष्टि डालै तो त्रिलोकी में कोई भी स्त्री मेरी समान पुण्यवती नहीं होय ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि–वह दिव्य स्त्री वरूथिनी इसप्रकार विचारतीहुई कामातुर होकर, उस कमनीय मूर्ति द्विजकुमार के नेत्रों के सामने आपहुँची । द्विजकुमार, उस सुन्दर रूपवती वरूथिनी को नेत्रों के सामने देखकर नम्रता से उस के समीप आकर यह वचन बोला हे कमल के कोष की समान कांतिवाली तू कौन है ? किस की स्त्री है ? और यहां क्या करती है ? मैं ब्राह्मण हूँ, अरुणास्पद नगर से यहां आया हूँ, मेरे चरण का लेप, बरफ का जल लगने से यहां छूटगया है. हे मदिरेक्षणे ! जिस के कि प्रभावसे मैं यहां आयाथा,वरूथिनी बोली कि–मैं अप्सरा हूँ, मेरा नाम वरूथिनी है, मैं सदा ही इस हिमालय पर विचरती हूँ, हे विप्र ! मैं तुम्हें देखकर कामातुर होगई हूँ, इस समय तुम्हारे अधीन हूँ, आज्ञा करिये कि–तुम्हारा क्या कार्य करूँ ? ब्राह्मण ने कहा कि–हे शुचिस्मिते ! जिस उपाय से मैं अपने घर जासकूँ वह मुझे बताओ, हे कल्याणि ! देखो मेरे सकल कर्म भ्रष्ट होगए हैं, ब्राह्मण के कर्त्तव्य, सकल नित्य, नैमित्तिक कर्मों की क्षति होरही है, इस से हे भद्रे ! मेरा हिमालय से उद्धारकर ब्राह्मण को परदेश में रहना कभी भी ठीक नहीं है, हे भद्रि ! मेरा कुछ अपराध नहीं है केवल देशों को देखने का कुतूहल था । ब्राह्मण घरमें रहे तो उस के सब कर्म बनसक्ते हैं, परन्तु इस प्रकार परदेश में रहने से सब नित्य, नैमित्तिक कर्म भ्रष्ट होजाते हैं, अधिक कहने से क्या ? हे यशस्विनी ! जिस से मैं सूर्य का अस्त होने से पहिले ही अपने घर पहुँच सकूँ तैसा उपाय करो ॥

वरूथिनी कहनेलगी कि–हे महाभाग ! ऐसा मत कहो और वह दिन कभी नहो जब तुम मुझे छोडकर जाओ , हे ब्राह्मणकुमार ! इसस्थान की समान रमणीय स्वर्ग भी नहीं है, इसलिये मैं इन्द्रलोक छोडकर यहाँ रहती हूँ, इस रम-

णीय और एकांत स्थान में तुम मेरे साथ भोग करो, जब तुम्हें उस भोगका आनंद मिलेगा तब तुम अपने चित्त से घर और बन्धुमित्रादि सब को भूलजाओगे; वस्त्र, माला, भूषण, भोजन और चंदनादि जो कुछ कहो वह मैं लाऊँ क्यों कि--मैं कामातुर होरही हूँ । वीणा, वेणुशब्द और किन्नरों के मनोरम्य गीत सुनो—देखो यहां शरीर को आनंद देनेवाली वायु, पवित्र अन्न और जल सदा वर्त्तमान रहता है, इच्छानुसार शय्या, सुगंध, और चंदनादि रहता है । हे महाभाग ! इस से अधिक तुम्हारे घर में क्या है । यहाँ रहने से सदा तरुण रहोगे, इसप्रकार वह वरूथिनी कहकर, अनुरागयुक्त (प्रसन्न-होओ, प्रसन्नहोओ) ऐसा कहती हुई उन्मत्त की समान, उस ब्राह्मणसे, आलिंगन करने को झुकी, तब ब्राह्मणने कहाकि-हे दुष्ट ! तू मुझे मतछू जो तेरे योग्य हो वहाँ जा, मैंने विनाजाने तुझ से बूझा, सायं और प्रातःकाल होम करनेसे मनुष्य को शाश्वतलोक मिलता है, हेमूढ़ ? होम के ही प्रताप से तीनोंलोक स्थित हैं, यह सुन, वरूथिनीबोली कि--हेद्विजमैं सुन्दरी क्या तुम्हारी प्रिया नहीं हूँ, या पर्वत रमणीकनहीं है जो इन गंधर्व और किन्नरों को छोड़कर जाने की इच्छा करते हो, कुछ दिन मेरेसाथ भोग करलो तब फिर निःसंदेह अपने घर को चले जाना, तब ब्राह्मण ने कहाकि--गार्हपत्यआदि तीनों अग्नि मेरे अभीत हैं और अग्नि की ही शरण मुझको रम्य है, वेदयुक्त स्वधा और स्वाहाकी ही वाणी मेरी प्रिया है, वरूथिनी बोली कि हेब्राह्मण! आत्मा के आठ गुण हैं, उस में मुख्य दया है, हेधर्मपालक ! वह दया मुझपर क्यों नहीं करते, हेकुलनंदन ! अब तुम मेरे ऊपर प्रसन्न होओ, मैं तुम्हारे विरह से अवश्य प्राण त्याग दूँगी, यह बात मिथ्या मत जानो । तब ब्राह्मण ने कहाकि--यदिमेरे ऊपर तेरी ऐसी ही प्रीति है तो मुझे कोई ऐसा यत्न बता कि--जिससे मैं अपने घर पहुँचजा-ऊँ । तब वरूथिनी ने कहाकि-तुम अपनेघर निः-संदेहपहुँचजाओगे किन्तु कुछदिन मेरेसाथ भोग करो । ब्राह्मणबोला कि--हे वरूथिनी । ब्राह्मणों को भोग करना शास्त्रमें नहीं आया, ब्राह्मणोंकी क्रिया यद्यपि इसलोकमें क्लेशदायक जान पड़ती है परन्तु परलोक में अत्यंत सुखदायक है । फिर वरूथिनी कहने लगी कि—हे ब्राह्मण ! इससमय मेरे साथ भोग करके मेरे प्राणों की रक्षा करो, तुम्हें सकल धर्मों का पुण्य होगा और मेरे साथ भोग करनेसे तुम्हें दोनोंबातें प्राप्त होंगी अर्थात् जो तुम मुझे निराश करोगे तो मैं मरजाऊँगी, तुम्हें पाप होगा । ब्राह्मण ने कहा कि—मुझे गुरु की आज्ञा है कि-परस्त्री की अभि-लाषा कभी न करना इसलिये मैं तेरी इच्छा नहीं करता हूँ, तू विलापकर चाहें शोक कर ।

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि--इतना कहकर वह महाभाग ब्राह्मण कुमार जल के आचमन से पवित्र होकर, गार्हपत्य अग्नि को प्रणाम करके मनही मन में कहने लगा कि--हे गार्हपत्य अग्ने ! तुम सकल कर्मों के उत्पन्न करनेवाले हो, तुम से ही आहवनीय और दक्षिणाग्नि हैं, तुम्हारे ही तृप्त होने से सब देवता तृप्त होकर जल बरसाते हैं, उस से पृथ्वी में अन्न उत्पन्न होता है कि--जिस से सकल प्राणियोंका जीवन है, यह बात सत्य है तो हे गार्हपत्याग्ने ! इसी

सत्य से, सूर्यास्त से पहिले मैं अपने घर पहुँच-जाऊँ, जो मैंने क्रिया के समय वैदिक कर्म का त्याग न करा होतो उससत्य से आज मैं अपने घर पहुँच कर सूर्य का दर्शन करूँ, जैसे मेरी कभी परस्त्री वा परधन की ओर को बुद्धि नहीं हुई है तैसे ही उस पुण्य के बलसे मेरी इच्छित कामना सिद्ध होय॥इतिइकसठवाँ अध्यायसमाप्त॥

बासठवां अध्याय ।

मार्कण्डेयजी बोले कि-हे क्रौष्टुकि! यह बात जब ब्राह्मणकुमारने कही तो उसीसमय गार्हपत्याग्नि देवता उसके शरीर में प्रवेश करगये उसका आवेश होते ही प्रभामण्डल के मध्य में स्थित मूर्त्तिमान् अग्नि की समान वह द्विजकुमार दमकनेलगा और उस की प्रभा से वह स्थान भी प्रकाशित होगया जब ऐसा रूप उस ब्राह्मण का वरूथिनी ने देखा तो और भी मोहित होगई, जब ब्राह्मण के शरीर में अग्निका आवेश होगया तो उसीसमय वह पहिले की समान शक्तिमान होकर चलने को उद्यतहुआ, वरूथिनी देखती ही रहगई और ब्राह्मणकुमार बड़ी शीघ्रगति से वहां से चलदिया तब वरूथिनी उसके विरहके शोकसे और कामदेवके वेग से निःश्वास होकर कांपनेलगी । ब्राह्मणने उसीक्षण अपने घर पहुँचकर सकलवैदिकक्रिया करी और वरूथिनी उस ब्राह्मण के प्रेम में विकल होकर लम्बी श्वासें लेनेलगी इसीप्रकार दिनका अन्त होगया और रात्रिहुई,वहसुन्दरी गर्म स्वांस लेलेकर और हाहा कहकर वारम्वार रुदन करतीहुई अपनी मन्दभाग्यता की निन्दा करने लगी । आहार, विहार, वह रमणीक वन और कन्दरा आदि उस की आंखों में कांटे से चुभने लगे । चकवा-चकई की समान विरहसे दुःखी होकर अपनी युवावस्था की निन्दा करनेलगी, और कहती थी कि-मैं बड़ी अभागिनी हूँ जो इस पर्वतपर आई और ऐसा मनुष्य न जाने कहां से मेरी दृष्टि के सामने आगया और मेरी आशा पूरी न करी अब मैं जानती हूँ कि-यह कामकी दुःसह अग्नि मुझे अवश्य जलादेगी । इस रमणीक वन में कोकिला आदि की सुहावनी बोली भी उस महाभागविना मुझे जलाती है ।

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे मुने ! इस प्रकार वह कामातुर वरूथिनी उस ब्राह्मणके रूपका ध्यान करके प्रेम से व्याकुल होगई, इतने ही में कलिनामक गन्धर्व, जो पहिले वरूथिनी पर आसक्त था और वरूथिनीने उस का निरादर करा था वह उस स्थानपर आया और वरूथिनी को देखा और अपने मन में विचारने लगा कि-यह गजगामिनी क्यों गर्मस्वांस लेलेकर अपने कोमल शरीर को जलाती है । इसे किसी मुनि ने शापदिया है वा किसी ने अपमानकरा है जो इसप्रकार विलख २ कर रोती है, यह बात जानने को कलिने ध्यानकरा, ध्यान करते ही इसका सब वृत्तान्त जो कुछथा जानलिया और प्रसन्न होगया कि-ब्राह्मणने मेरे विषय में बहुत अच्छा

करा, अब मेरे पूर्वजन्म का पुण्यउदय हुआ क्योंकि-पहिले मैंने बडी प्रीति से मिलने की इच्छा करी थी तब भी इस ने मेरा निरादरकरा था, परन्तु अब मैं जानता हूँ कि--यह मुझे प्राप्त होगी क्योंकि–अब इस का मन मनुष्यके रूपपर मोहित हुआ है जो मैं भी वैसाही मनुष्य का रूप बनाऊँ तो यह मुझे भी प्यारकरै.

मार्कण्डेयजी बोले कि--हे क्रौष्टुकि ! वह गन्धर्व मंत्र के बल से उसी ब्राह्मण का रूप धारण कर, जहाँ वह वरूथिनी थी वहाँ जाकर विचरनेलगा, तब वह अप्सरा उसे देख कर अतिहर्ष से उस के पास गई और उस को वही ब्राह्मण जानकर कहनेलगी कि–मुझपर प्रसन्न होओ नहीं तो तुम्हारे विरह में अपना प्राण त्यागकरूँगी, तब तुम्हें बडा पापहोगा और सकल क्रिया करी हुई व्यर्थ होजायगी इस लिये मेरे साथ, इन सुहावन कन्दराओं में भोग करके मेरे प्राणों की रक्षा करो, तुम्हें धर्म होगा । हे महामति ! मैं जानगई कि–मेरी आयु अब पूरी होगई क्योंकि–मेरे चित्त को आनन्द देनेवाले तुम, मुझ से छूटते हो । कलि बोला कि-हे सूक्ष्मांगी । मेरी किस क्रिया की हानि होती है जो तू यह बात कहती है, इस बात से मैं संकट में प्राप्त हूँ । जो मैं कहूँ वह बात तू करै तो अवश्य मेरा तेरा संगम होसक्ता है ।

वरुथिनी बोली कि–हे महाराज ! आप प्रसन्न हूजिये, और जो कुछ कहें मैं वही करूँ, यदि कोई असाध्य बात भी कहें तो उस को भी करसकती हूँ । गन्धर्व बोला कि–हे सुभ्रू ! जब मैं तुझ से रति करूँ उस समय तू अपनी आँखें बन्द करलेय देखै नहीं तो मैं तुझ से भोग करसक्ता हूँ अन्यथा नहीं, यह सुन वरूथिनी बोली कि–जो आप कहते हैं मैं वही करूँगी क्योंकि–मैं इससमय सब तरह से आप के अधीन हूँ । इति बासठवां अध्याय समाप्त ॥

तिरेसठवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी ने कहाकि -हेक्रौष्टुकि!तदुपरांत गन्धर्व ने उस वरुथिनी के साथ पर्वत की गुफा, प्रफुल्लित वन, हृदय के प्रिय मनोहर सरोवर, कन्दरा, नदियों के रमणीय पुलिन तथा औरभी रमणीय स्थानों में प्रसन्नता पूर्वक रमण किया और हेमुने!भोगके समय उस अप्सराने नेत्रों को मूँदकर, अग्नि के आवेशके कारण उस ब्राह्मण का जो तेजःस्वरूप होगया था उसका चिंतन किया । हेमुनिसत्तम! तदनंतर कुछ समय में उस अप्सराने गंधर्व के वीर्य से औ द्विज के रूप का चिंतवन करने से गर्भ धारण करा । फिर वह विप्ररूपधारी, उस गर्भवती वरूथिनी को समझाकर और प्रेम के साथ आज्ञालेकर चलागया । तदनंतर उस वरूथिनी के अग्निकी समान दमकताहुआ और जैसे सूर्य अपनी किरणों से सब दिशाओं को प्रकाशित करता है तैसे ही सबदिशाओं को प्रकाशित करताहुआ एक पुत्र उत्पन्नहुआ, सूर्य की समान अपनी किरणों से प्रकाशित होनेके कारण वह बालक स्वरोचिनाम से प्रसिद्धहुआ ॥

वह महाभाग प्रतिदिन शुक्लपक्ष के चन्द्रमाकी समान, गुणों के साथ बढने लगा,उस महाभाग ने क्रम से धनुर्वेद, चारोंवेद और सब विद्याओं

को पढ़कर युवावस्था पाई; उस सदाचार ने एक समय मन्दराचलपर विचरतेहुए एक भय से घबड़ाई हुई कन्या को देखा, इस को देखतेही उस कन्याने कहा कि--मेरी रक्षा करो तब इसने उस भयसे कातर नेत्रवाली कन्यासे इसप्रकार कहा कि--तू भयभीत मत हो और वह बालक वीरके समान उस कन्याके निकट गया और कहने लगा कि--तुझे क्या भय है वह मुझ से कह, तब वह कन्या गर्म स्वांसलेकर बोली कि-मैं इन्दीवर नामक गन्धर्व की कन्या हूँ, मेरा मनोरमा नाम है और मेरी माता मरुधन्वा की पुत्री है, मन्दार विद्याधर की कन्या विभावरी मेरी सहेली है और दूसरी पारमुनि की कन्या कलावती मेरी सखी है, एकदिन मैं उन दोनों सखियों के साथ कैलाशपर्वत के निकटगई तो वहाँपर एक महातपस्वी मुनि को देखा कि--उन का कण्ठ प्यास से सूखरहा है और भूँख से अतिदुर्बल तथा आंखों में गड़हे पड़रहे हैं, मैं उनकी ऐसी सूरत देखकर हँसी तब वह मुनि क्रोधकर शाप देने लगे, दुर्बल शरीर, दुर्बलता के स्वर से कुछेक कांपतेहुए ओठों से यह कहा कि--अरी दुष्ट तपस्विनी! तू ने मेरी हँसी करी है तिस से शीघ्रही तुझ को राक्षस भोगेगा यह शाप सुनकर उस मुनि को मेरी दोनों सखियों ने ललकारा कि--अरे मुनि! तेरी ब्राह्मणताको धिक्कार है, क्योंकि--तुझ में क्षमा नहीं है इसकारण तेरा तप वृथा है और तू क्रोध से ही दुर्बल हो रहा है किन्तु तप से नहीं, जिस के चित्त में क्षमा है वही ब्राह्मण है, क्रोधरहित रहनाही तप है यह उपदेश की बातें सुनकर उस तपस्वी ने, मेरी दोनों सखियों को भी शाप दिया कि--तुम में से एक के कुष्ठ और दूसरी के क्षयी रोग होगा इस शाप के देते ही एक को कुष्ठ और दूसरी को क्षयी रोग होगया तथा मुझे एक राक्षस पकड़ने को चला आता है निकटही तो गरजरहा है क्या उस का गर्जना आप नहीं सुनते हैं आज तीनदिन से वह मेरा पीछा नहीं छोड़ता है, और सम्पूर्ण अस्त्रों का हृदय मेरे पास है। हे महामते! उस हृदय को मैं आप को देती हूँ उस से मेरी, इस राक्षस से रक्षा करिये यह अस्त्रहृदय पहिले पिनाकधारी महादेवजी ने स्वायम्भुव मनु को दिया था, उन्हों ने सिद्धवसिष्ठजी को दिया दिया और वशिष्ठ ने मेरे नानाचित्रायुध को दिया, नाना ने मेरी माताके विवाह में पिता को दिया हे वीर! उसी हृदय को मैंने बालकपने में अपने पिता से पाया। यह सकल अस्त्रों का हृदय, शत्रुओं का नाश करनेवाला है, इसको आप लीजिये यह सब अस्त्रों का काम देगा, इसी से इस दुष्टात्मा राक्षस को शीघ्र मारिये जो कि--ब्राह्मण के शाप से मेरे पीछे आता है

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रौष्टुकि! तब वह बालक बोला कि-वह अस्त्रहृदय मुझे दो तब मनोरमा ने, हाथमें जल लेकर वह हृदय रहस्य निवर्त्तन सहित देदिया। इतने में ही वह भयङ्कर राक्षस भी गर्जताहुआ आपहुँचा, और कहनेलगा कि-मेरे डर से तेरी कोई भी रक्षा नहीं करसक्ता है, तू शीघ्र मेरे पास आ, नहीं तो मैं तुझे खाजाउँगा, इस प्रकार कहते हुए उस राक्षस को, तिस स्वरोचि ने देखा तो अपने मनमें विचारने लगा कि-जो इस को

ग्रहण करलूँगा तो उस महर्षि का वाक्य सत्य होजायगा, इसलिये ऐसा विचार रहा था कि—इतनेही में उस राक्षस ने शीघ्रता से आकर विद्याधरी को पकड़लिया, तब वह सुलक्षणा हाय २ कहकर दीनता के साथ विलाप करनेलगी, तब स्वरोचि उधर को एक बार देखते ही बड़े क्रोध में भर गए और धनुष पर आग्नेयास्त्र नामक प्रचण्ड अस्त्र चढ़ातेहुए उस राक्षस की ओर को टकटकी लगाकर देखनेलगे। यह देखते ही भय से घबड़ाया हुआ वह राक्षस उस मनोरमा को छोड़कर स्वरोचि से कहनेलगा कि भगवन् प्रसन्न हूजिये, इस अस्त्रको उतारिये, मैं अपना वृत्तान्त कहता हूँ, उस को सुनिये। हे महाभाग! परमते-जस्वी बुद्धिमान् ब्रह्ममित्र ने जो घोर शाप दिया था आपने उससे मुझ को मुक्त करदिया, हे महाभाग! आपसे बढ़कर मेरा उपकार करनेवाला कोई नहीं है, क्योंकि आपने मुझ को परमकष्टदायक ब्रह्मशाप से मुक्त किया है। स्वरोचिने कहा कि—महात्मा ब्रह्ममित्र ने तुम को पहिले किस कारण से और क्या शाप दिया था! राक्षस कहनेलगा कि ब्रह्ममित्र मुनि ने अथर्ववेदके तेरहवें अधिकारमें ज्ञान प्राप्त करके आठ भागमें बंटेहुए समस्त आयुर्वेद को पढा था। मेरा नाम इन्दीवर है, मैं इस कन्याका पिता और खड्गी नलनाभ नामक विद्याधर का पुत्र हूँ। मैंने पहिले उन ब्रह्ममित्र मुनि से यह प्रार्थना करी थी कि—हे भगवन्! मुझको सम्पूर्ण आयुर्वेद सिखादो। हे वीरवर विनयके साथ नम्र होकर बार २ प्रार्थना करने पर भी जब मुनि ने मुझको आयुर्वेद विद्या नहीं दी, हे पुण्यात्मन्! तब मैं जिससमय वह अपने शिष्योंको पढ़ातेथे उससमय छुपकर तिस विद्या का अभ्यास करने लगा, आठ मासके भीतर विद्याका अभ्यास होजाने पर मैं बार २ अत्यन्त हास्य करनेलगा मुनि उस हास्य से मेरा सब वृ-त्तान्त जानगये और कोप में भरकर गरदन हिलातेहुए इसप्रकार कठोर वाक्य कहनेलगे कि—हे दुर्मते! तूने राक्षस की समान छुपकर विद्या का हरण किया और मेरी अवज्ञा करके हँसी की है इस लिये तू मेरे शापसे अपने अधिकार से दूर होकर निःसन्देह सात रात के बीच में राक्षस होजायगा।

जब इसप्रकार मुनिने शापदिया तो मैंने उन को प्रणाम और शुश्रूषा करके प्रसन्न करा तब वह मुनि प्रसन्नहोकर मुझसे क-हने लगे कि—हे गन्धर्व! जो कुछ मेरे मु-खसे निकल गया वह तो मिथ्या नहीं हो-सक्ता किंतु अवश्य होगा, परन्तु अब मैं तुझे यह वरदान देताहूँ कि—तू राक्षस होकर फिर अपने शरीर को पावेगा। जब तू राक्षस और भ्रष्टबुद्धि होकर क्रोधसे अपनी कन्या को खाना चाहैगा तो उस समय किसी की अस्त्राग्निसे तू भस्म होगा।

जगा तब फिर तू अपना शरीर और बुद्धिको पाकर गन्धर्वलोक में जावेगा । हे महाभाग ! मैं वही गन्धर्व हूँ जो पहलेतक राक्षस था और अब आपने मुझे इस महा सङ्कट से बचालिया तथा राक्षसीभाव भी छुड़ादिया, मैं तुमपै अतिप्रसन्न हूँ, मुझसे कुछ मांगिये । मैं अपनी मनोरमा कन्या आपको देता हूँ इसको ग्रहण करिये और अष्टाङ्ग सहित जो आयुर्वेद मैंने पढ़ा है वह भी ग्रहण कीजिये ॥

मार्कण्डेय जी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि वह गन्धर्व आयुर्वेद की विद्या स्वरोचि को देकर और आप वस्त्राभूषण तथा माला आदि धारण कर पहिले रूप को प्राप्त हो गया जब उसने कन्या को वेदोक्त विधि से दान करने का निश्चय किया तब वह कन्या अपने पिता से कहने लगी कि हे पिताजी ! इन को देखने से ही इन की प्रीति मुझे थी और जो इन महात्मा ने मेरा उपकार किया है इसकारण और भी अधिक अनुराग हुआ है परन्तु यहदोनों सखियें मेरेही दुःखसे पीड़ित हैं इस कारण मुझे भोग विलास आदि कुछ नहीं भाता क्योंकि मेरी सखियों को, मेरे ही कारण से यह दुःख हुआ है इस कारण उन्हें दुःख में छोड़कर आप भोगविलास तो कोई क्रूर पुरुष भी नहीं करेगा फिर मैं सखी होकर कैसे करूँ । हे पिता जिसप्रकार यहदोनों सखियें मेरेकारण दुःख में फँसी हैं इसी प्रकार मैं भी उनके दुःख से दुःखित हूँ यह सुन स्वरोचि ने कहा कि हे कल्याणि तू सोच मतकर मैं आयुर्वेद के प्रभाव से तेरी दोनों सखियों का नवीन रूप करदूँगा ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रौष्टुकि जब उस गन्धर्वने अपनी कन्या मनोरमा स्वरोचि को देदी तब स्वरोचि ने उसी पर्वत पर विधिके अनुसार उससे विवाह किया तदनंतर मनोरमा के पिता ने उन दोनोंका आदरकर धैर्य दिया और आप विमान पर चढ़कर गंधर्वलोक को गया तदुपरांत महात्मा स्वरोचि भी मनोरमा को साथ लेकर उस बगीचे में गए जहाँ वह दोनों सखियें शाप के कारण रोग से आतुर पड़ी थीं और रोग नष्ट करने वाली औषधियों के रस से महात्मा स्वरोचिने उन दोनों सखियों को नीरोग कर दिया तब तो वह दोनों सखियें पहिले रूपसे भी अधिक सुन्दर होगई और अपनी सुन्दरताई के प्रकाश से उस पर्वत की दशों दिशा प्रकाशित करदीं ॥ इति तरेसठवाँ अध्याय समाप्त ॥

—०—

चौंसठवाँ अध्याय

मार्कण्डेय जी बोले कि हे क्रौष्टुकि ! इसप्रकार वह सखियें जब आरोग्य हो गई तब उन में से एक सखी हर्षपूर्वक स्वरोचि से बोली कि-हे प्रभो! मैं मन्दार

विद्याधर की कन्या हूँ और विभावरी मेरानाम है, तथा आप मेरे उपकारी हैं इसलिये मैं अपने को आपके अर्पण करती हूँ और एक विद्याभी आपको देती हूँ जिस से सकल जीवों की बोली आप समझसकेंगे। मार्कण्डेयजी बोले कि—हे क्रोष्टुकि! स्वरोचि ने उस कन्या से अपना विवाह करलिया और वह विद्या भी सीखली, तब दूसरी सखी कहनेलगी कि—हे कुमार! मैं पार नामक ब्राह्मण की कन्या हूँ और मेरे पिता, ब्रह्मचारी, ब्रह्मर्षि तथा वेद वेदांग के जाननेवाले थे; एक समय पर्वत पर कोकिलाओं के शब्द से रमणीक वसंत ऋतु में पुञ्जिकस्था अप्सरा उनके पास आई तब पार मुनि ने उसको देख कामातुर होकर उस अप्सरा से भोग किया, जिस से उसी पर्वत पर मैं उत्पन्न हुई। तब वह मेरी माता अप्सरा, सर्प, व्याघ्र और सिंहादि युक्त वन में मुझे अकेला छोड़कर चलीगई। हे महराज! फिर तो मैं चन्द्रमा की कला की समान दिन २ बढ़नेलगी, तदनंतर दैवयोग से एक गन्धर्व वहाँ आया और मुझे घर लेजाकर पालने लगा तथा कला की समान बढ़ने से मेरा कलावती नाम हुआ। तदनंतर एक राक्षस ने मेरे पिता से मुझे माँगा परंतु उन्होने नहीं दिया, तब उसने क्रोध करके, मेरे पिता के सोजाने पर उन्हें शूल से मारडाला, उन के मरने से मैं अत्यंत उदास हुई और आप मरने को उद्यत हुई, उस समय शिवपत्नी सती जी ने आकर मुझे रोका और कहा कि शोक मत कर महाभाग स्वरोचि तेरे पति होंगे और उनका पुत्र मनु होगा, हे सुन्दरी! सम्पूर्ण निधि तेरी आज्ञा में रहेंगी और जो तू चाहेगी वह तुझे देंगी, यहा पद्म से सेवित पद्मिनि विद्या मैं तुझे देती हूँ इस विद्या के प्रभाव से नव निधि तेरी आज्ञा में रहेंगी और जो तू चाहेगी वह सब तुझे देंगी, हे स्वरोचि! इसप्रकार सतीजीने मुझसे कहाथा औरसतीजीका वचन मिथ्या नहीं होसक्ता इस से निश्चय होता है कि—वह स्वरोचि आप ही हैं और वही कलावती मैं हूँ तुम मेरे स्वामी हो, पद्मिनि विद्या और अपना शरीर मैं आपके अर्पण करती हूँ कृपाकर ग्रहण करिये॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रोष्टुकि! यह सुन स्वरोचिने विद्या और कलावती को ग्रहण करलिया, विभावरी और कलावती की प्रीति से स्वरोचि ने बहुत आनंद पाया। स्वरोचि ने देवताओं की समान विधि पूर्वक उन दोनों कन्याओं से विवाह किया। और उस विवाह में देवताओं ने बाजा बजाया तथा अप्सराओं ने नृत्यकिया। इति चौंसठवाँ अध्याय समाप्त।

—०—

पैंसठवां अध्याय

मार्कण्डेयजी बोले कि हे क्रौष्टुकि ! वह स्वरोचि देवताओं की समान उन तीनों स्त्रियों के साथ व्रत करने आदि से युक्त रमणीक स्थान में क्रीडा और विहार करते थे विद्याके प्रभाव से सब निधि पद्मि नी के वश में रहकर सकल भोग के रत्न मधु और मधुर रस आदि पदार्थ उनको प्राप्त रहते थे ! वस्त्र, माला, भूषण गन्ध चंदन और सुवर्ण के अतिस्वच्छ आसन तथा जिस वस्तु की स्वरोचि इच्छा करते थे वह सब वस्तु और सुवर्ण के बर्तन एवं शय्या तथा नाना प्रकारके पदार्थ स्वरोचि के लिये निधि पहुँचाती थीं, इसप्रकार उन के साथ स्वरोचि ने दिव्य गंध से भरे हुए और कांतियों से अत्यंत प्रकाशवान् पर्वत पर विहार किया, वह स्त्रियें भी स्वरोचि के साथ आनंदयुक्त रहती थीं, जिसप्रकार स्वर्ग में इन्द्र क्रीडा करते हैं उसीप्रकार स्वरोचि भी उस पर्वतपर विहार करते थे, स्वरोचि और उनस्त्रियों की प्रीति देखकर एक हंसिनी ने वैसीही इच्छा अपने मन में करके जल में बैठीहुई एक चकवी से कहा कि यह स्वरोचि धन्य है जो इस युवावस्था में इन प्यारी स्त्रियों के साथ इच्छापूर्वक भोग विलास करता है क्यों कि इस संसार में प्राय: यह देखने में आता है कि—जो पुरुष युवा और स्वरूपवान् है तो उस की स्त्री कुरूपा है, जो स्त्री अच्छी है तो पुरुष अच्छा नहीं है, जो पुरुष स्त्री को प्रेम करता है तो स्त्री पुरुष को नहीं चाहती और जो स्त्री, पुरुष को प्रेम करती है तो उसे पुरुष नहीं चाहता है, दोनों में समान प्रीति होना अत्यंत दुर्लभ है इस-लिये यह स्वरोचि महाभाग्यवान् है क्यों कि—इसकी स्त्रियें इसे अत्यंत प्रीति करती हैं और यह भी उन स्त्रियों को चाहता है और जिस स्त्री पुरुष में परस्पर प्रेम है वह धन्य है, यह बात सुन वह चकवी मन में कुछ आश्चर्य न मान कर कहनेलगी कि—हे हंसनी ! तू इन की क्या प्रशंसा करती है इन्हें स्त्रियों से कुछ लज्जा नहीं है क्यों कि—यह कई स्त्रियों से भोग करते हैं इस से इनकी प्रीति सब में समान नहीं रहसक्ती, जब इन का चित्त एक जगह नहीं रहता है तो सब स्त्रियों में समान प्रीति कैसे रहसक्ती है, इस कारण यह स्त्रियें इन्हें प्यारी नहीं हैं और न स्त्रियें इनको प्रेम करती हैं। यह केवल तुम्हारा ध्यान है, जिस प्रकार और लोग हैं वैसे ही यह भी है, यदि स्वरोचि का सच्चा प्रेम एक स्त्री के साथ होता तो दूसरी स्त्री के साथ भोग विलास कभी न करते, इन स्त्रियों ने इनको विद्यादान रूपी मूल्य देकर सेवक की समान मोल लेलिया है, एक पुरुष की प्रीति अनेक स्त्रियों में समान नहीं रह सक्ती, किंतु हे हंसनी ! मेरा पति और मैं धन्य हूँ, क्यों कि—मैं एक हूँ और मेरापति भी एक है, एक की प्रीति एक को

साथ सदा बनी रहती है ॥

मार्कण्डेयजी ने कहा कि—हे क्रौष्टुकि! यह स्वरोचि सब जानवरों की बोली जानने के कारण उस हंसनी और चकवी की वार्तालाप सुनकर अतिलज्जित हुआ और विचारने लगा कि—यह इनका कहना सब सत्य है, इसप्रकार स्वरोचि को विहार करते हुए उस पर्वत पर सौवर्ष बीत गये तदनंतर एक दिन स्वरोचि ने अतिसुन्दर एक मृगको देखा और उसके सब अंगभी हृष्टपुष्ट थे तथा सुन्दर २ हरिणियों के मध्यमें विहार करता था कि—इतने में बहुतसी हरिणियें उस मृग के शरीर में लिपटकर उसका मुँह सूँघने लगीं, तब हरिण ने उनसे कहा कि—तुम मुझे निर्लज्ज बनाती हो इससे तुम यहाँ से चली जाओ, मैं स्वरोचि नहीं हूँ, न मेरा वैसा स्वभाव है, स्वरोचिकी समान निर्लज्ज मृग जहाँ होयँ वहाँ जाओ! जो एक स्त्री अनेक पुरुषों से रहती है वह, और जो एक पुरुष, अनेक स्त्रियों से भोग करता है यह दोनों अति निन्दा के पात्र हैं। उस पुरुष की सकल क्रिया और धर्म प्रति दिन नष्ट होता है जो परस्त्री में आसक्त है। इसलिये जो ऐसा हो, परलोक से विमुख हो और ऐसाही स्वभाव रखता हो उसे तुम ढूँढलो क्यों कि—मैं स्वरोचि की समान निर्लज्ज नहीं हूँ ॥ इति पैंसठ वां अध्याय ॥

छियासठवाँ अध्याय

मार्कण्डेयजी बोले कि—हे क्रौष्टुकि! हरिण और हरिणियों की यह बात सुनकर स्वरोचि ने अपने को अति निर्लज्ज समझा हे मुनिसत्तम! चकवी और मृगके उप देशसे उस स्वरोचि ने अपनी स्त्रियों का त्यागने का विचार करा, परन्तु फिर उन स्त्रियों में आसक्त होकर स्वरोचि ने अपने मनको विहार करने में लगाया और वह ज्ञान कथा सब भूलगया तथा उनके साथ उस पर्वत पर छःसौ वर्षतक विहार करा, तदनंतर स्वरोचि के, जय मेरुनंदन और प्रभाव यह तीन महाबली पुत्र उत्पन्न हुए। मनोरमा से जय, विभावरी से मेरुनंदन और कलावती से प्रभाव हुए, तब स्वरोचि ने पद्मिनी विद्याके प्रभाव से उन तीनों के लिये तीन पुर रचे।

पूर्व दिशा में कामरूप पर्वत पर का उत्तम विजय नामक नगर, विजय नामक पुत्र को दिया। उत्तर दिशा में मेरुनन्दन के लिये नंदवती नामक परम प्रसिद्ध अति ऊँचे किले और परकोटे से शोभायमान पुरी बसाकर, तीसरे पुत्र कलावतीनंदन प्रभाव के लिये दक्षिणापथ में तालनामक नगर बसाया हे ब्राह्मण! ऐसे पुरुषप्रवर स्वरोचि ने अपने पुत्रों का अलग २ नगरों में बसाकर, उन स्त्रियों के साथ मनोहर स्थानों में विहार करा। एक समय उस धनुर्धारी ने वन में जाकर विहार करते में

दूर जाते हुए एक शूकर को देखकर धनुष का रोदा खैंचा, उसी समय एक हिरनी आई और वह बारम्बार कहने लगी। कि-प्रसन्न होकर इस बाण का प्रहार मेरे ऊपरही करो। इसको मारने से क्या होगा, अब शीघ्र मुझे ही गिराओ, तुम्हारा छोडाहुआ बाण मुझे दुःख से छुडादेगा । स्वरोचि ने कहा कि तेरे शरीर में तो हमे किसी प्रकारका रोग भी प्रतीत नहीं होता फिर तू किसकारण से प्राणों को छोडना चाहती है ? मृगी ने कहा कि जिस पुरुष का हृदय अन्य स्त्रियों में आसक्त है उस में मेरा मन लगा है, उसके विरह में मैं प्राण छोडती हूँ और औषध ही क्या है! स्वरोचि ने कहा कि अरी डरपोक! क्या उसका तेरेऊपर अनुराग नहीं है क्या तेराही उसके ऊपर प्रेम है कि जिस को न पाने से प्राण त्यागने को उद्यत हुई है, मृगी ने कहा कि—तुम्हारा कल्याण हो मैं तुम्हारी ही इच्छा करती हूं, तुम ने ही मेरे मन को हरा है अतएव मरना चाहती हूं मेरे ऊपर बाण छोडो, स्वरोचि ने कहा कि हे चंचलनेत्रे! तू मृगी है और हम मनुष्य रूपधारी हैं, मुझ समान का तेरे साथ कैसे संयोग होगा, मृगी ने कहा कि यादि मेरे ऊपर तुम्हारे चित्त में प्रेम हुआ है तो मुझे आलिङ्गन करो, यदि तुम्हारे चित्तमे किसी प्रकार का कपटभाव न होगा तो तुम्हारी जो इच्छा होगी वह पूर्ण करूंगी ऐसा करने से तुम मेरा सन्मान करोगे ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि तब उस स्वरोचि ने हिरनी को आलिंगन किया-उस के आलिंगन करते ही उस हिरनी ने दिव्य शरीर धारणकरा उसको देखकर स्वरोचि ने अचम्भे में होकर बूझा कि तू कौन है, हरिणी प्रेम और लज्जायुक्त होकर गद्गद वाणीसे कहनेलगी कि मैं इस वनकी देवता हूं देवताओं ने मुझसे प्रार्थना करी है, तुम्हे मेरे गर्भ से मनु की उत्पत्ति करनी होगी, हे महामते! मैं देवताओं के वचन के अनुसार कहती हूं, तुम मेरे गर्भ से भूलोक का पालन करने वाले मनु को उत्पन्न करो, मेरी भी तुम्हारे ऊपर प्रीति है, मार्कण्डेय जी कहते हैं कि--स्वरोचि ने उसके गर्भ में अपनी समान तेज के पुंजरूप शरीरवाला सकल सुलक्षणों से युक्त पुत्र उसी समय उत्पन्न करा ।

उस बालक के उत्पन्न होने के समय देवताओं ने बाजे बजाये, गन्धर्व गाने लगे और अप्सरा नृत्य करने लगीं, नागगण और ऋषि मुनि उस बालक के ऊपर जल छिड़कने लगे तथा देवताओं ने फूल बर्षाये । स्वरोचि ने उस बालक का तेज देखकर उसका नाम द्युतिमान् रक्खा, उस के तेजसे सब दिशा प्रकाशित होगई, वह द्युतिमान् महाबली और अतिपराक्रमी हुआ, वह स्वरोचि का पुत्र होने के कारण उस का नाम स्वारोचिष प्रसिद्ध हुआ।

तदनंतर स्वारोचिने एकदिन उस रमणीक पर्वत पर विचरते हुए एक हंस और हंसनी को देखा, उस समय हंसनी ने हंस से रतिकी इच्छा करी तब हंसबोला कि अब तू मुझे छोड़दे क्यों कि—मैंने तेरे साथ बहुत दिनतक भोग विलास करा है,सदा भोग न करना चाहिये और अब वृद्धावस्था भी निकट आगई है इसलिये हे हंसनी ! अब मेरे और तेरे वियोग का समय आगया है, यह सुन हंसनी ने कहा कि—भोग किसकाल में न करना चाहिये क्योंकि—सकल जगत् भोगमय है और ब्राह्मणभी भोगके ही लिये अपने मनको वशमें करके यज्ञ करते हैं तथा इसलोक में भी परलोकके भोग की इच्छा करके अनेकप्रकार के दान और धर्मादिक करते हैं ! हे हंस ! तुम भोगकी इच्छा क्यों नहीं करते, बड़े २ विवेकी और समाधि वाले मनुष्योंके कर्मका फलभी भोगही है और तुम तो तिर्यक् योनि हो,हे हंसनी ! जिसका चित्त भोग और कुटुम्ब आदि में आसक्त है उसका मन परम रमा में किस प्रकार स्थित रहसक्ता है क्यों कि—जो प्राणी स्त्री,पुत्र और मित्रादिमें आसक्त हैं वह अवश्य दुःख पाते हैं जिसप्रकार वन के बूढ़े हाथी सरोवर की दलदल में फँस-ते हैं । हे भद्रे ! क्या तू स्वरोचि को नहीं देखती है कि—संगके ही कारण बाल्या वस्था से कामासक्त होकर स्नेहरूपी दल-दलमें फँसरहा है, जबतक तरुण अवस्था थी तबतक तो स्त्रियोंके प्रेममें फँसारहा अब जो पुत्रादि हुए तो उनके प्रेममें स्वरोचि का चित्त फँसाहै इस दलदलसे इसका नि-कलना अत्यंत दुर्लभहै, हे हंसनी ! मैं स्व-रोचिके समान स्त्रीके वश में नहीं हूँ मुझे विचार है,इसकारण अब मैं भोगसे निवृत्त होता हूँ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रोष्टुकि ! यह बात उस हंस की सुनकर स्वरोचि उद्विग्नचित्त हो और अपनी स्त्रियोंसहित विरक्त होकर अन्य तपोवन में तप करने को चलेगए,वहां जाकर स्त्रियों सहित घोर तपस्या करके सकल पापों का नाशकर निर्मल लोकको चलेगए।इति छियासठवां अध्याय समाप्त ॥

—०—

सड़सठवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी ने कहा कि--हे क्रोष्टुकि! उस स्वारोचिष द्युतिमान् को,भगवान् प्रजा पति ने प्रजापालन करनेको मनुकी पदवी दी, अब उन के मन्वन्तर का वृत्तांत सुनो, उससमय जो देवता ऋषि और जो राजा मनु के पुत्रहुए उन सबको सुनो उस स्वारोचिष मन्वन्तर में पारावत और तुषित देवता तथा विपश्चित इन्द्रहुए,ऊर्ज स्तम्ब, प्राण, दत्तोलि, ऋषभ, निश्चर और अर्वरीर यह सप्तर्षि हुए, महात्मा स्वारोचिषके चैत्रकि पुरुषादिसात पुत्रहुए

सब पृथ्वीपालक और परमपराक्रमी थे, जबतक वह मन्वंतर रहा तबतक उन्हीके वंशने पृथ्वीका राज्यकरा, हे कौष्टुकि! जो मनुष्य श्रद्धायुक्त इस मन्वन्तरकी कथा और स्वारोचिष के जन्मको सुनता है वह सकल पापों से छूटजाता है, इति सड़सठवाँ अध्याय समाप्त ॥

—०—

अड़सठवाँ अध्याय

कौष्टुकिबोले कि हे भगवन् आपने स्वारोचिष का जन्म और चरित्र तो वर्णन करा, परन्तु अब भोगदायिनी पद्मिनी विद्याके अधीन जो ८ निधि हैं उन सब को विस्तार से कहिये, हे गुरो! आगे निधिके स्वरूप और किस निधिसे कौनवस्तु प्राप्त होती है यह सब भली प्रकार से वर्णन करिये।

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि पद्मिनी विद्या की देवता लक्ष्मी जी हैं, और जो आठ निधि उनके अधीन हैं उनको सुनो--पद्म महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नन्द, नील और शङ्ख यह आठ निधि हैं, हे कौष्टुकि! जिसको सत्वगुण युक्त ऋद्धि प्राप्त होती है उसके यहां यह आठों निधि रहती हैं और यही आठों निधि प्रसिद्ध हैं जो मैंने तुम से कहीं हैं। हे मुने! जो मनुष्य देवताओं को प्रसन्न करता है और साधु सेवा करता है उसके धनपर यह सब सिद्धि सर्वदा कृपादृष्टि रखती हैं और हे द्विज! निधियों के जो स्वरूप हैं वह भी मुझ से सुनो--पद्म नामक निधि पहिले मयनामक राक्षस के घरमें रहती थी और उस मय के पुत्र तथा पौत्र प्रपौत्र आदिके ऊपर अतिप्रसन्न रहकर सदा उसके घरमें रहती थी, यह निधि सत्वगुण के आश्रय है और महाभागा है, इसकारण इसे सात्विक निधि कहते हैं। यह निधि-सुवर्ण, चांदी और तांबा आदि धातुओं को देती है, जिस मनुष्य पर इस निधि की कृपादृष्टि होती है वह मनुष्य, धातुओं का क्रय विक्रय अधिक करता है और बहुत यज्ञकरके दक्षिणा देता है, वह मनुष्य देवालय और सभा आदि भी बनवाता है। दूसरी निधि सत्वाधार महापद्म है, यह सत्वप्रधान महापद्म निधि, जिसपर प्रसन्न होती है उसके घरमें महापद्मरागादि रत्नोंका संग्रह रहता है और वह मोती, मूँगा आदि का क्रय विक्रय अधिक करता है।

तथा उस योगशील पुरुषको इन सकल द्रव्योंका स्थान देदेती है। इसी प्रकार उस मनुष्यके पुत्र और पौत्रादि को भी बनाये रहती है। तथा सात पीढीतक उस पुरुषको नहीं छोड़ती है। तीसरी मकर नामक निधि जिसके यहां रहती है वह पुरुष यदि सुशील होतोभी अवश्यक्रोधी होजाता है और धनुष बाण ढाल तथा तरवार आदि शस्त्रधारणकरता है और उसकी राजा आदिके साथ मि-

नता होता है।वह शूरवीर क्षत्रियकी वृत्ति रखता है,उसकी शस्त्र आदिके क्रयविक्रय करनेमें ही अधिक प्रीति होती है । यह निधि एक पुरुष तक ही रहती है। चौथी कच्छप नामक निधि जिस के ऊपर दृष्टि करती है वह मनुष्य द्रव्यके लिये चार सेवा युद्ध में मरण को प्राप्तहोता है और इस कच्छप निधिका तामसी स्वभाव है इसकारण मनुष्यको तामसी करदेती है परन्तु पुण्यात्मा मनुष्यके साथ समान व्यवहार करती है । वह सकल कर्मोंका करने वाला होता है और किसी का विश्वास भी नहीं करताहै,जिसप्रकार कछुआ अपने सब अंगोंको समेट लेताहै उसी प्रकार यह मनुष्यभी सब वस्तुओं से अपने मनको खैंचकर धन में लगाता है न किसी को देता है, न आप खाताहै और खर्च होजानेसे व्याकुल होजाताहै, यह कच्छप नामक निधि एक पुरुषतकही रहती है पांचवीं रजोगुणी मुकुन्द नामक निधि,जिसके ऊपर दृष्टि करती है वह मनुष्य गुणी होता है और वीणा, वेणु तथा मृदंगादि बाजोंका संग्रह करताहै और गाने, बजाने तथा नाचनेवालोंको बहुतधन देताहै और भाट,भाँड नट आदि कौतुक करनेवालों को सदा भोजन आदि देतारहताहै और उसको वेश्या तथा वेश्यागामी पुरुषों से अधिक प्रीति रहती है यह भी एकपुरुष तकही रहती है । राजस और तामस गुणों से युक्त छठी नन्द नामक निधि जिसपर दृष्टिकरती है वह सकल धातु रत्न और पवित्र धन आदिका संग्रह और उसी का क्रय विक्रय करता है तथा अपने सब कुटुम्ब और अतिथि आदि का पालन करताहै, हे मुने ! यह मनुष्य किसी का भी अपमान नहीं करताहै और सबसे प्रीति रखताहै, उस मनुष्य की सब कामना पूर्ण होतीहैं और उसे अत्यंत सुन्दरी स्त्रियें बहुत प्राप्त होती हैं, हे मुनिसत्तम ! यह निधि सात पीढ़ीतक आठों अंगसे प्रीतिपूर्वक एक घरमें रहती है, सबकी दीर्घायु करतीहै और सबकी ऐसी बुद्धि करदेती है कि—उसके घर कोई भाई, बन्धु वा परदेशी आवैं तो उनको भोजन देय, उस मनुष्यका मन परलोक में नहीं लगता है और पुरवासी लोकोंसे भी प्रीति नहीं करताहै पुराने मित्रों से उसको प्रेम कम होजाताहै और नवीन २ लोगों से प्रीति उत्पन्न होती है ।

हे क्रोष्टुकि । इसीप्रकार सातवी नील नामक निधि भी सत्वगुण और तमोगुण युक्त तथा सत्संगी है इसकी दृष्टि जिस के ऊपर होती है वह मनुष्य भी सत्संगी होताहै । और वह वस्त्र, कपास, धान्यादि तथा फल पुष्प आदि का संग्रह करताहै हे मुने । मोती, मूँगा, शंख, सीपी तथा काष्ठ इत्यादि और जो वस्तु जल से उत्पन्न होतीहैं वह इन सबका संग्रह करता

है एवं अन्य पदार्थों का भी क्रय विक्रय करता है और तालाब पुष्करिणी आदि बनवाता है तथा बगीचे आदि भी लगाता है नदियों में बाँध बँधवाता है, वृक्षों के थांवले बनवाता है, और वह मनुष्य पुष्प चंदन आदिके भोगसे अतिप्रसन्न रहता है, यह निधि तीन पीढीतक रहती है। आठवीं शंख नामक निधि रजोगुण और तमोगुण दोनो से युक्त है, हे द्विज इसकी दृष्टि जिसपर होती है वह मनुष्य भी अति गुणी होताहै एक के ही आश्रित रहता है दूसरे के यहाँ नहीं जाता है, हे क्रोष्टुकि। यह शंख निधि जिसके यहाँ रहती है उसका लक्षण सुनो वह मनुष्य अपना उपार्जन करा हुआही अन्न खाता और वस्त्र पहिनता है, वह कुत्सित अन्न खाता है और मैले वस्त्र पहिनता है तथा स्त्री, पुत्र, भाई, मित्र और पुत्रवधू आदि किसीको अन्नवस्त्र नहींदेताहै वह अपनेही पालन पोषण में लगारहता है। हे क्रोष्टुकि! इन्हीं आठ निधियों से सकल मनुष्यों के अर्थ सिद्ध होते हैं। हे द्विज! एक निधि की दृष्टि से मनुष्य को एक काही फल मिलता है और दो की दृष्टि से दोका सुख मिलता है इसीप्रकार क्रमसे सब को समझ लेना, जिसको सम्पूर्ण निधि प्राप्त होती हैं उसके यहां पद्मिनी विद्या भी रहती है। इति अड़सठवाँ अध्याय समाप्त॥

उनहत्तरवाँ अध्याय

क्रोष्टुकि बोले कि–हे भगवन्! स्वरोचिष मन्वन्तर और आठोनिधिका वृत्तांत तो आपने मेरे बूझने के अनुसार विस्तार से कहा और स्वायंभुव मन्वन्तर को भी आप पहिले कहचुके, अब तीसरे उत्तम नामक मन्वन्तर का भी वृत्तांत मुझ से कहिये॥

मार्कण्डेयजी ने कहा कि राजा उत्तानपाद के सुरुचि नामक स्त्री से महाबली और पराक्रमी उत्तम नामक पुत्र हुआ वह उत्तम महात्मा, धर्मात्मा पराक्रमी, धनवान् राजा और सकल प्राणियों में सूर्य समान प्रतापीहुआ हे महामते! वह राजा उत्तम शत्रु मित्र और प्रजा तथा पुत्र सब को समान जानता था दुष्टों के लिये यम और साधुओं के लिये चन्द्रमा की समान सुखदायक था इन्द्रने जिस प्रकार शची से विवाह करा था उसी प्रकार उत्तानपाद के धर्मात्मा पुत्रने बहुला नामक कन्या से विवाह किया।

हे द्विजोत्तम जिसप्रकार रोहिणी से चन्द्रमा प्रीति रखते हैं उसी प्रकार महाराज उत्तम भी उस बहुला स्त्री में अपने मन को लगाये रहते हैं। बहुला के अतिरिक्त और किसी काम में उन का चित्त न लगता था चित्त इतना लगने के कारण स्वप्न में भी उसी को देखता था जिस समय बहुला को देखता उस समय कामासक्त होकर

उस के देह से लिपटजाता और तन्मय होजाता था बहुला का शब्द सुनने से उत्तम का चित्त व्याकुल होजाता था बहुला के अधरामृत पान करने के समय उत्तम को माला आदि भूषण अंगपीड़ा के समान मालूम होते थे इसलिये सब को निकाल देता था, हे विप्र वह उत्तम, बहुला से क्षणभर भी अलग न रहता था भोजन के समय भी बहुला का हाथ पकड़कर कुछ भोजन करलेता था परन्तु बहुला उत्तम से प्रसन्न नहीं रहती थी, इसी प्रकार वह महात्मा उत्तम उसको प्राणसे भी अधिक प्रिय समझता था और बहुला उसको तुच्छ जानती थी एक दिन राजा उत्तम मद्यपान कर रहाथा और उस मद्य में से, आदर तथा प्रेम के साथ एक मदिरा का पात्र बहुला को भी पीनेके लिये देने लगा, उस सभा में बहुत से राजा लोग बैठे थे और नाच होरहा था तथा गवैये मधुर स्वरोंसे गारहे थे। परन्तु उस समय राजाओं के सामने बहुला ने मदिरा का पीना स्वीकार न करके अपना मुँह फेर लिया यह देख राजा उस समय अति लज्जित हुआ और राजा को क्रोध आगया तब सर्पकी समान लम्बी २ स्वांस लेकर, द्वारपालों को बुलाकर कहा कि इस बहुला ने मेरा निरादर करा है और मुझे शत्रुसमान जानती है इसलिये हे द्वारपालो इस दुष्टा को पकड़ कर निर्जन वन में ले जाकर छोड़दो इसमें कुछ विचारने की आवश्यकता नहीं है ॥ मार्कण्डेयजी ने कहा कि हे क्रौष्टुकि । यह आज्ञा राजा की पाकर द्वारपालों ने उस बहुला को रथपर चढ़ाया और निर्जन वन में लेजा कर विना विचारे छोड़ दिया। बहुला ने अपने को उस वनमें द्वारपालों का छोड़ जाना अनुग्रह समझा कि राजा मुझे न देखे यही अच्छा है। यहाँ राजा उत्तम बहुला के विरह से अत्यंत दुखी था इस कारण उस दिन से राजा की रुचि किसी स्त्री पर न हुई किन्तु रातदिन राजा उसी सुन्दरी के ध्यान में रहता था और धर्म पूर्वक अपने राज्य का पालन करता था एक दिन एक ब्राह्मण दुःख से पीडित राजा के निकट आकर बोला कि-हे महाराजा मैं दुःखी होकर जोकुछ आप से कहता हूँ उस को सुनिये क्योंकि--राजा के अतिरिक्त कोई मेरा दुःख नहीं छुड़ा सक्ता है, रातको मैं अपने घर सोता था, न जाने कौन मेरे घरका द्वार खोलकर आगया और मेरी स्त्री को चुराकर लेगया उसको आप ढूढकर लादीजिये ॥

राजा ने कहा कि-हे द्विज! जब तुम स्वयं ही नहीं जानते कि-किस समय, कौन मनुष्य लेगया, तो मैं अनजान किसको पकड़ूँ और कहाँसे लादूँ तब ब्राह्मण बोला कि-हे महाराज! मेरे सोते समय मेरे घर का द्वार नहीं खुला था, न जाने

कौनसी तरफ से मेरी स्त्री को कौन ले गया यह कोई नहीं जानता परन्तु आप जानते होंगे क्यों कि—आप हम लोगों के पालक हैं और धन आधिक का छठा भाग लेते हैं, आप कोही रक्षक समझ कर सब प्रजा अपने घर में रात को निश्चिन्तसोती है, यह बात सुनकर राजाने कहा कि—तुम्हारी ब्राह्मणी को मैंने नहीं देखा है कि—उसका कैसा रूप है और स्वभाव है सो सब कहो ब्राह्मण ने कहा कि—हे राजन्! कठोर तो उसके नेत्र हैं, उसका डील बहुत ऊँचाहै, बाहु छोटी हैं, मुख दुर्बल है और कुरूप है परन्तु मैं उसकी निन्दा नहीं करता हूँ हे महाराज! उसकी बोली भी अतिकठोर है, स्वभाव भी अच्छा नहीं है और रूपभी देखनेयोग्य नहीं है, हे राजन्! उसकी पहिली अवस्था भी बीतगई है, ऐसी मेरी स्त्री है, यह बात मैं सत्य २ कहता हूँ, यह सुन राजा बोला कि—हे ब्राह्मण! जो स्त्री कल्याणी होती है वह सुख देती है और तुम्हारीसी स्त्री सदा दुःख देती है तो तुम ऐसी स्त्री को वृथा चाहते हो मैं तुम्हें दूसरी स्त्री देताहूँ हे विप्र! स्त्री में रूप और शील मुख्य है जिस स्त्री में रूप और शील नहीं है उसको त्याग देना ही अच्छा है यह सुन ब्राह्मण बोला कि—हे राजन् स्त्री को अवश्य रखना चाहिये क्योंकि स्त्री सेही पुत्र होता है हे नरेन्द्र! स्त्री की रक्षा अवश्य करनी चाहिये क्योंकि-उससे आत्मारूप पुत्र उत्पन्नहोता है और फिर उसी से अपने आत्माकी रक्षाहोती है और हेपृथ्वीनाथ!जो स्त्री की रक्षा न करै तो वह स्त्री स्वतंत्र होकर व्यभिचारिणी होजाती है तब उस से वर्णसंकर पुत्र उत्पन्नहो, वह पुत्र उन पितरों को जो स्वर्ग में भी होतो नरक में गिरादेता है, इस कारण जबतक मेरी स्त्री न मिलेगी तबतक प्रति दिन मेरे धर्म की हानि होगी अर्थात् मेरी नित्य क्रिया छूटजायगी और जब नित्यक्रिया छूटगई तो नरक में जाना पड़ेगा, हे महीपाल! उस स्त्री से जो पुत्र उत्पन्न होगा वह आप को छठा भाग देगा और मेरा धर्म भी बना रहेगा, इसलिये मैंने उस स्त्री के चिन्ह आपको बतलादिये, अब आप उस को लाकर मेरी रक्षा करिये क्यों कि—आपको अधिकारहै

मार्कण्डेय जी बोले कि—हे क्रोष्टुकि! इस प्रकार ब्राह्मण के वचन सुन और अपने मन में विचार कर तथा अपने लोगों को साथ लेकर रथपर चढ़कर वह राजा उस ब्राह्मण के साथ उस ब्राह्मणी को ढूँढ़ताहुआ पृथ्वी पर विचरता २ एक बड़े भारी वन में किसी तपस्वी के आश्रम पर पहुँचा और रथ से उतरकर उस आश्रम के भीतर गया, वहाँ तेज से दमकते हुए मुनिको कुशासन पर बैठे देखा, उस मुनि ने भी राजा को अपने

आश्रम पर आया देख, शीघ्रता से उठ कर स्वागत से उनका सन्मान करा और अपने शिष्यसे कहा कि--इन्हे अर्घ्यदेनेको जल लाओ, तब शिष्यने कहा कि--हेगुरो विचार कर आज्ञा दीजिये क्योंकि जो राजा अर्घ्य देनेयोग्यहो तो अर्घ्य दें नहीं तो न दें, सो कहिये, तब उस मुनि ने ध्यान करके राजा का सब वृत्तान्त जान लिया और अर्घ्य के लिये आज्ञा नहीं दी परन्तु राजा से कुशलक्षेम बूझ वार्त्तालाप किया और आसन देकर बहुत आदर कर फिर ऋषि ने कहाकि हे राजन् मैं जानता हूँ कि--आप महाराज उत्तानपादके पुत्र हैं और आपका नाम उत्तम है, परन्तु यह बतलाइये कि आप यहाँ किस कार्यको आये हैं। राजाने कहा कि--हे मुने! इस ब्राह्मण की स्त्री को घर में से कोई दुष्ट लेगयाहै, मैं उसको नहींजानता हूँ, उसी ब्राम्हणीको ढूढ़नेके लिये मैं यहाँ आया हूँ और एक बात मैं आप से बहुत विनय के साथ बूझता हूँ कृपाकर उसे बताइये क्योंकि--मैं इस समय आपका अभ्यागत हूँ ऋषि ने कहा कि--हे पृथ्वीपालक! जो आपको बूझना हो वह निःशङ्क होकर बूझिये, मैं तत्व पूर्वक कहूँगा राजाने कहा कि--हे मुने! पहिले जब मैंने आपका दर्शन करा तब तो आपने अर्घ्य लानेको शिष्यको आज्ञा दी जब शिष्य अर्घ्य लानेको उद्यत हुआ फिर आपसे बूझकर चुप होरहा और आपने आज्ञा न दी, सो सब मुझसे कहिये ऋषिने कहाकि हे राजन्! आपको अपने आश्रम में आया देख, जल्दी में मैंने अर्घ्य के लिये आज्ञा देदी परन्तु शिष्य ने मुझे समझाया और जिसप्रकार मैं भूत, भविष्य तथा वर्त्तमानका वृत्तांत जानता हूँ उसी प्रकार यह शिष्य भी इस संसार के भूत भविष्यादि का वृत्तांत मेरे प्रसाद से जानता है जब शिष्य ने मुझ से कहा कि-गुरुजी विचार कर आज्ञा दीजिये तब मैं ध्यान करके आपका सब वृत्तांत समझगया इस लिये मैंने आपको अर्घ्य न दिया यद्यपि आप स्वायंभुव मनु के वंश में उत्पन्न हुए हैं परन्तु मैं आपको अर्घ्ययोग्य नहीं समझता हूँ राजा ने कहा कि हे ब्रह्मन् मैंने ज्ञान से वा अज्ञान से ऐसा क्या कुकर्म करा है जिसकारण से इतने दिन में अभ्यागत होनेपर भी आपने मुझे अर्घ्य नहीं दिया तब ऋषीने कहा कि--हे राजन् आपने जो अपनी स्त्री को निर्जन वन में छोड़कर उस के कारण से सकलधर्म छोड़दिये क्या वह वृत्तांत आप भूलगए जो मुझसे बूझते हैं, हे नरेन्द्र! जिसप्रकार सुशीला स्त्रीका मनुष्य पोषण करता है, उसी प्रकार दुःशीला स्त्री का भी पालनकरना मनुष्य को उचितहै देखिये इस ब्राह्मण की स्त्री जो हरीगई है इस के अनुकूल नथी परन्तु अपने धर्म

दर्पे के लिये यह ब्राह्मण आप से स्त्री लाने की याचना करता है, हे राजन्! जो पुरुष अपना धर्म छोड़कर अधर्म करता है उसको राजा दण्ड देकर अपने धर्म में स्थापित करता है और जब आप स्वयंही धर्म को छोड़ देते हैं तो आपको कौन दूसरा धर्म में स्थापित करैगा ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि-हे क्रोष्टुकि! यह बात मुनिकी सुनकर राजा अति लज्जित होकर कहनेलगा कि---आपका कहना सब सत्यहै।यहकहकर ब्राह्मणकी स्त्रीका वृत्तांत बूझनेलगा कि---हे भगवन् उस ब्राह्मणी को कौन लेगया है,कहाँ रक्खा है और कहाँ है सो मैं नहीं जानताहूँ कृपाकर आप बतलादीजिये क्योंकि आप भूत भविष्य औरवर्त्तमान तीनों काल को देखते हैं तब ऋषि ने कहा कि-उस ब्राह्मणी को आदि का पुत्र बलाक नामक राक्षस हरलेगया है, उत्पलावर्तक नाम वनमें रहता है, हे राजन्!आप शीघ्र जाइये इसी समय आप उसको देखियेगा, शीघ्र जाइये उस ब्राह्मणी को लाकर इस ब्राह्मण को देदीजिये कि-जिसमें आपकी समान यह ब्राह्मण भी दिन दिन पापी न हो।इति उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥

सत्तरवाँ अध्याय

मार्कण्डेयजी बोले कि-हे क्रोष्टुकि! तदनंतर राजा मुनि को प्रणाम कर रथपर चढ़कर मुनि के बतायेहुए उत्पलावर्त्तक वनमें गया, वहाँ पहुँचकर जैसा रूप और स्वभाव उस ब्राह्मणी का ब्राह्मण ने राजा को बताया था उसी रूपसे उस ब्राह्मणी को बेल खातेहुए पाया, यह देख राजा ने ब्राह्मणी से बूझा कि-तू इस वन में किसप्रकार आई है सो सत्य कह, तू तो विशाल के पुत्रकी स्त्री है, यह सुन ब्राह्मणी ने कहा कि-मैं अतिरात्र ब्राह्मण की कन्या हूँ और विशाल के पुत्र की स्त्री हूँ जिसका नाम आपने लिया है, मुझे दुरात्मा बलाक राक्षस सोते में चुराकर इस वनमें लाया है, मेरा माता, भ्राता और पति आदि से भी वियोग होगया, जिसने माता, भ्राता तथा अन्य सम्बंधियों से मुझे छुड़ाया है वह राक्षस भस्म होजाय क्योंकि मैं यहाँ बड़ी दुःखित हूँ, परन्तु मैं यह नहीं जानती कि वह किसलिये मुझे यहाँ लाया है क्योंकि वह नतो मुझे खाता है और न मेरे साथ भोग करने की इच्छा करता है, राजा ने कहा कि मैं तेरे पति का भेजाहुआ आया हूँ अब तू यह बता कि वह राक्षस कहाँ गया है, ब्राह्मणी ने कहा कि हेमहाराज! वह राक्षस इसी वन में रहता है यदि आपको भय नहो तो वन में देखिये ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे क्रोष्टुकि! तब उस ब्राह्मणी के बतायेहुए मार्ग से राजा वहाँ गया जहाँ वह राक्षस भाई बन्धुओं सहित रहता था, जब राक्षस ने

राजा को देखा तो दूर से ही पृथिवी पै झुक २ कर प्रणाम करता हुआ राजा के समीप आया और कहने लगा कि जो आप मेरे स्थानपर आये हैं बड़ी कृपा करी अब आप जो आज्ञा दें वह मैं करूँ क्योंकि मैं आप का आज्ञाकारी हूँ, यह अर्घ्य लीजिये और आसन पर बैठिये. हम सब आपके दास हैं और आप हमारे स्वामी हैं, जो आज्ञा दीजिये वह हम सब करें, राजा ने कहा कि--तुम ने सब कुछ किया और अतिथिसेवा भी होचु की परन्तु यह कहो कि--तुमने ब्राह्मण की स्त्री को किसलिये इस वन में लाकर रक्खा है, यह तो कुछ सुरूपा भी नहीं है किन्तु कुरूपा है इसे भोग करने के लिये लाये नहोंगे, हां राक्षस हो खाने के लिये लाये होगे फिर खाते क्यों नहीं। राक्षसने कहा कि-हे महाराज! जो राक्षस मनुष्यों को खाते हैं वह दूसरे हैं मैं तो अपने वनके उत्तम २ फल आदि पदार्थ खाताहूं, मेरा स्वभाव भी मनुष्यों के समान है और मेरी स्त्रियोंका भी स्वभाव वैसाही है जो कोई अच्छे मन से मुझे भोजन देता है वही मैं खाताहूं, मैं जीवो को खानेवाला राक्षस नहीं हूं, मैं मनुष्यों पर दया रखताहूँ इसी कारण दूसरे राक्षस मुझ से विरोध रखते हैं, जो मैं दुष्ट स्वभाव होता तो वह राक्षस मेरे मित्र होते, हे महाराज! मेरे घरमें बहुतसी राक्षसी स्त्रि ये अप्सराके समान सुन्दर २ हैं, मनुष्यों की कुरूपा स्त्रियोंसे मुझे क्या प्रीति होगी तब राजा ने कहा कि-हे निशाचर! जब तुम इस ब्राह्मणी से भोग करने और खानेकी इच्छा नहीं रखते तो फिर कि सलिये इस को ब्राह्मण के घर से रात्रि के समय चुरालाये राक्षस ने कहा कि--हे महाराज यह ब्राह्मण रक्षोघ्न मंत्र जानता है और यज्ञोंमें जाकर उस मंत्र को पढ कर मेरा उच्चाटन करता है, उसी मंत्र के प्रभावसे उच्चाटन होने के कारण मैं भूखा रहजाता हूं, मैं कहाँजाऊं प्रत्येक यज्ञ में तो यही ब्राह्मण मंत्र पढ२ कर मेरा उच्चाटन करदेता है, यही विचार करके मैंने यह दण्ड इसको दियाहै कि- बिना स्त्री के यज्ञ कर्म ठीक नहीं होगा, इसलिये मैं उस की स्त्री को चुरालाया हूं

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि--हे क्रोष्टुकि उस ब्राह्मण की विकलता राक्षस से सुन कर राजा उदास होकर शोचनेलगा कि यह राक्षस भी ब्राह्मण का वृत्तांत कहने में मेरी निन्दा करता है और अर्घ्य देने के समय उस मुनि ने भी मेरी निन्दा करी थी कि-तुम अर्घ्य के योग्य नहीं हो इस राक्षस ने उस ब्राह्मण का वृत्तांत कह कर मुझे व्याकुल करादिया क्योंकि मैं भी स्त्री के न होने से बड़े सङ्कट में पड़ा हूं॥ मार्कण्डेयजी कहते हैं कि जब राजा इस प्रकार चिन्ता करने लगा, तब राक्षस

प्रणाम कर हाथ जोड़ बोला कि हे महाराजा जी मैं आपके राज्य में रहताहूं और आप का दास हूं आप मुझ पर प्रसन्न हो कर आज्ञा दीजिये, राजा ने कहा कि हे राक्षस जिस स्वभाव से ब्राह्मण को तूने बतलाया उसी स्वभावसे मैं भी पड़ाहूं इस लिये मैं तुझसे कहता हूं कि अब तू इस ब्राह्मणी की दुःशीलता को भोगले क्यों कि जब तू इस की दुःशीलता को भोगलेगा तब यह ब्राह्मणी सुशीला होजायगी, तब उस राक्षस ने राजा की आज्ञानुसार अपनी माया से उस ब्राह्मणी के शरीर में घुसकर अपनी शक्ति के बल से उसकी सब दुःशीलता भोगली, जबउस ब्राह्मणी की दुःशीलता जाती रही तब वह सुशीला होकर राजा से बोली कि-हे महाराज ! प्रारब्ध के वश होकर उस महात्मा ब्राह्मण से वियोग हुआ और राक्षस से संसर्ग हुआ इस राक्षस का कुछ दोष नहीं है और न मेरे महात्मा पतिका,न और किसी का दोष है किन्तु मैं अपना कर्मफल भोगती हूँ पूर्वजन्म में मैंने किसी स्त्री पुरुषका वियोग करायाथा इसीसे मेरेपतिसे मेराभी वियोग हुआ उस महात्मा का कुछ दोष नहीं है, राक्षस ने कहा कि—हे प्रभो ! आपकी आज्ञानुसार मैं इस ब्राह्मणी को उस ब्राह्मणके घर पहुँचादूंगा इसके अतिरिक्त और जो कुछ आप आज्ञा दीजिये वहभी मैं करूं, राजा बोला कि—हे राक्षस ! इस ब्राह्मणी को तू उसके घर पहुंचादेगा तबमेरा सबकार्य पूर्णहोजायगा और हे वीर ! जब कभी मैं कार्यके समय तुझे स्मरण करूं तब तुझे आजाना उचित है, तदनंतर उस राक्षस ने तथास्तु देसा कहकर फिर उस ब्राह्मणी को शुद्ध और सुशीला बनाकर उस ब्राह्मणके घर पहुंचादिया,इति सत्तरवां अध्याय समाप्त

इकहत्तरवां अध्याय

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि—हे क्रौष्टुकि ! उस ब्राह्मणी को ब्राह्मणके घर भिजवा कर तदनंतर राजा लम्बी २ स्वांस लेकर चिंता करनेलगा कि—मेरा कैसा पुण्य है ? कि—उस मुनिने कहा तुम अर्घ्य योग्य नहीं हो फिर उस राक्षसने भी ब्राह्मणके विषय मेरी निन्दा करी अब मैं क्या कहूँ ? क्या करूँ ? मैंने तो अपनी स्त्री को त्याग दिया, अब मैं उसी महात्मा मुनिसे जाकर बूझता हूं जो कहेगा वह मैं करूंगा, यह बात मनमें विचारकर चिन्ता करताहुआ रथपर चढ़कर, जहां वह महामुनि धर्मात्मा त्रिकालदर्शी रहते थे वहां गया, उन के आश्रम पर पहुँचकर रथ से उतर प्रणाम करके जो वार्त्ता राक्षस से हुई थी वह सब कही और ब्राह्मणी का दर्शन उसकी दुःशीलता हरण, उस ब्राह्मणी को ब्राह्मण के घर पहुंचा देना तथा फिर अपना आनेका कारण सब कहदिया, तब ऋषि बोले कि—हे नराधिप

जो कुछ वहांका वृत्तान्त है और जिस लिये तुम आये हो वह सब मुझे मालूम है, तुम्हारे उदास होने काभी कारण जानता हूं और जिस कार्य को तुम आये हो उसे भी सुनो, मनुष्यों के धर्म, अर्थ और काम का प्रबल कारण स्त्री ही है, जो स्त्री को त्याग देता है उसका विशेष धर्म छूटजाता है, हे राजन्! बिना स्त्री के मनुष्य, ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो, वैश्य हो अथवा शूद्र हो वह अपनेकर्मके योग्य नहीं रहता है, आपने जो अपनी स्त्रीको त्याग दिया यह कुछ अच्छा नहीं करा क्योंकि जिसप्रकार स्त्री को पतिका त्यागकरना निषिद्ध है उसीप्रकारपुरुषकोभी स्त्रीकात्यागना निषिद्ध है, राजा बोलाकि-हेभगवन्! मैं क्या करूं यह मेरे कर्मों का फल है, मुझ से मेरी स्त्री प्रीति नहीं रखती थी इस लिये मैंने उसको त्यागदिया हे मुने ! जो कुछ अपराध वह करतीथी वह सब मैं क्षमा करता था, उस की वियोग की अग्नि में अबतक मैं जलता हूं, जबसे मैंने उसे वनमें त्यागदिया है तबसे नहीं मालूम कि--वह कहां है, उस को किसी व्याघ्र, सिंह अथवा निशाचरने खालिया, क्या हुई, ऋषि बोले कि हेराजन्! आपकी स्त्री को किसी व्याघ्र सिंहवा निशाचर आदि किसीने नहीं खाया है, इस समय वह अपने धर्मपूर्वक रसातल लोक में विराजमान है राजा ने कहा कि--हे ब्रह्मन्! उस पाताल में कौन लेगया और किसप्रकार वह दोषरहित है, यह अति आश्चर्य की बात है, कृपाकर इसका वृत्तान्त कहिये ॥

ऋषिने कहा कि-हे राजन्! नागोंके राजा कपोतक नाम सिद्ध हैं, जब आपने अपनी स्त्री को वनमें छोड़दियातबवहउसवनमें भटकती फिरतीथी उससमय तिस नागराज ने उसे देखा और उसका रूप शील देखकर बहुत प्रसन्न हुआ, उस से वृत्तांत बूझकर उसी समय उसे पाताल में लेगया, हे महाराज! उस नागराज की कन्या नन्दा अति रूपवती है और उसकी स्त्री का नाम मनोरमा है, जब नागराज आपकी स्त्री को पाताल में लेगया तब नन्दा नामक अपनी कन्या से बोला कि यह स्त्री तेरी माता की सपत्नी (सौत) होयगी यह बहुत सुंदर है इसे घर में लेजा, नन्दा ने नागराज को इस का कुछ उत्तर नहीं दिया तब नागराज ने क्रोधित हो कहा कि तू गूंगी होजा इस प्रकार नागराजने जब अपनी कन्या को शाप दिया तो उसी समय वह कन्या गूंगी होगई और उस स्त्री को नागराज ने कन्या के साथ घर में रक्खा ॥

मार्कण्डेय जी बोले कि हे क्रोष्टुकि! यह बातें सुनकर राजा अति प्रसन्न हो बोला कि हे मुनिसत्तम! मेरा कैसा अभाग्य है कि वह स्त्री मुझसे छूट गई, हे भगवन्! सब मनुष्य तो मुझ से प्रीति करते हैं परन्तु मेरी स्त्री मुझ से प्रीति नहीं

रहती इसका क्या कारण है महामुनि! उस स्त्री को मैं अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय रखताथा परन्तु वह मुझ से सदा दुःशीलता रखती थी इस का क्या कारण है, सो कहिये, ऋषि ने कहा कि-जब उस स्त्री से आपका विवाह हुआ था उस समय सूर्य, मंगल, शनैश्चर, शुक्र और बृहस्पति तुम्हारी स्त्री के दृष्टिगोचर में बलवान् न थे। और उस मुहूर्त में चंद्रमा तथा बुध आपके अरिष्टकारक थे, इसलिये अब मैं आपसे कहता हूं कि अपनी स्त्री के साथ धर्म और क्रिया अपने घर जाकर करिये और प्रजा का धर्मपूर्वक पालन कीजिये॥

मार्कण्डेय जी बोले कि-हे क्रोष्टुकि! इस प्रकार जब उस ऋषि ने राजा से कहा तब महाराज उत्तम ऋषि को प्रणाम करके और [illegible] अपने नगर को आया॥ इति इकहत्तरवां अध्याय समाप्त॥

बहत्तरवाँ अध्याय

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रोष्टुकि! महाराज उत्तम अपने नगर में जाकर उस शीलवती स्त्री को जिसे राक्षस लेगया था ब्राह्मण के साथ देखकर अति प्रसन्न हुआ ब्राह्मण ने कहा कि हे महाराज! मैं आपसे अति प्रसन्न हूं, आप धर्म के जानने वाले हैं क्योंकि-आपने मुझे मेरी स्त्री से मिलाकर मेरे धर्म की रक्षा करी, राजा ने कहा कि हे द्विजोत्तम! आप तो अपने धर्म की रक्षा से प्रसन्न हुए परन्तु मैं संकट में पड़ा हूं क्योंकि मेरी स्त्री मेरे घर में नहीं है ब्राह्मण बोला कि-हे महाराज यदि आप की स्त्री को वन में कोई हिंसक जीव खागया हो तो अब उसका क्रोध करना वृथा है, आप दूसरा विवाह करके स्त्री ले आईये और अपने धर्म की रक्षा करिये, आपने तो क्रोध के वश होकर अपने धर्म को बिगाड़ा है, राजा ने कहा कि हे ब्राह्मण! मेरी स्त्री को किसी ने नहीं खाया है वह जीती है और अभीतक उसका धर्मभी बचहुआ है तो फिर कैसे मैं दूसरा विवाह करूँ ब्राह्मणने कहा कि यदि आप की स्त्री जीती है और उसका धर्म भी बचा हुआ है तो आप बिना स्त्री के अपना जन्म क्यों बिगाड़ते हैं, यह सुन राजा ने कहा कि-वह स्त्री मुझ से सदा प्रतिकूल रहती है उसके आने पर भी मुझे सुख नहीं होगा और कारण यही है कि-वह मुझसे प्रसन्न नहीं रहती है तुम कोई ऐसा यत्न करो कि-जिस से वह स्त्री मेरे वश में रहै, ब्राह्मण ने कहा कि-हे राजन्! जो आप अपनी स्त्री से प्रीति करना चाहते हैं तो मित्रविन्दा का यज्ञ करिये जो लोग परस्पर में मित्रता करना चाहते हैं वह यही यज्ञ करते हैं इसकी विधि मैं जानता हूं कराढूँगा, हे महाराज जिस स्त्री पुरुष में विरोध होता है उसको मित्रविन्दा का यज्ञ करने से परस्पर में प्रीति होजाती है, मैं उस से आपकी प्रीति कराढूंगा,

जहाँ वह आपकी स्त्री हो वहाँ से ले-आइये, अब वह आपसे प्रीति रक्खेगी॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-जब ब्राह्मण ने इसप्रकार कहा तब राजा ने यज्ञ की सब सामग्री मँगवाई और उस ब्राह्मण ने राजा से मित्रविन्दा का लागदार यज्ञ कराया, जब यज्ञ पूर्ण होगया तब ब्राह्मण ने राजा से कहा कि हे राजन् ! अब आप अपनी स्त्री को अपने यहाँ रखिये और उस के साथ अनेकप्रकार के यज्ञादि करिये तथा भोग कीजिये ॥

मार्कण्डेयजी कहते मैं कि-हे क्रोष्टुकि! इसप्रकार ब्राह्मण के कहने से राजा विस्मित हुआ और उस पराक्रमी राक्षस को स्मरण करा, स्मरण करते ही वह राजा के समीप आपहुँचा और प्रणाम कर बोला कि–जो आज्ञा हो वह मैं करूं तब राजा ने कहा कि—मेरी स्त्री पाताल में है उस को लादो यह सुन वह राक्षस पाताल में गया और वहाँ से उस स्त्री को लाकर राजा के सामने करदिया तब वह उस समय प्रेम युक्त होकर राजा देखने लगी और बारम्बार प्रसन्नता साथ कहने लगी कि-हे महाराज ! र प्रसन्न हूजिये, तब राजाने कहा प्रिये ! मैं तो तुझपर सदा प्रसन्न फिर रानी ने कहा कि-महाराज ! तुझपर प्रसन्न हैं तो मैं आप चाहती हूँ कि मेरे ही कारण से नागराज ने अपनी कन्या को शाप दिया कि–जिस से वह गूँगी होगई और वह मेरी सखी है इस कारण मुझे उसका उपकार करना सबप्रकार उचित है, यदि आपकी शक्ति हो तो ऐसा कोई उपाय करिये जिससे कि-वह बोले, यह अभिलाषा मेरी पूर्ण होजाने से मैं समझूँगी कि-मुझे सब पदार्थ मिलगए ॥

मार्कण्डेजी कहते हैं कि-यह बात रानी से सुनकर, राजा ने ब्राह्मण से कहा कि-हे विप्र ! यदि कोई गूंगा होजाय तो उसके बोलने का क्या उपाय करना चाहिये, ब्राह्मणने कहा कि-हे महाराज! आप आज्ञा दें तो मैं सरस्वती का इष्ट करूं इस से आपकी स्त्री की सखी बोलैगी॥ मार्कण्डेय जी कहते हैं कि-हे क्रोष्टुकि ! राजा की आज्ञा से उस ब्राह्मण ने उस सखी के बोलने के लिये सरस्वती का इष्ट किया और एकाग्र चित्त से सरस्वती सूक्त का जप करा तब वह सखी बोलने लगी, यह देख रसातल में सब लोगों ने गर्गमुनि से बूझा कि-इस गूंगी की जिह्वा किसप्रकार खुलगई, तब मुनि ने कहा कि यह उपकार इसकी सखि के पति महाराज उत्तम ने करा है, इसप्रकार यह नागकन्या नन्दा ज्ञान पाकर उसी समय महाराज उत्तम के नगर में आई अपनी सखी से मिली, बहुत आशीर्वाद देकर महाराज उत्तम की स्तुति करनेलगी

तथा आसनपर बैठकर राजासे मधुर वचन बोलीकि-हेवीर! इस समय जो आपने मेरा उपकार करा है इस कारण मैं आपकी तन-मन से दासी हूं और हे नराधिप ! आप के महापराक्रमी पुत्र उत्पन्न होयगा वह चक्रवर्ती होगा, शास्त्रों का तत्त्व और अर्थ जाननेवाला, धर्मात्मा, मन्वन्तर का ईश्वर और बुद्धिमान् मनु होगा, इस प्रकार वह नागकन्या महाराज उत्तम को वरदान देकर और अपनी सखी से मिलकर पाताल को चलीगई, यहां महाराज उत्तम को अपनी स्त्री के साथ क्रीड़ा करते और प्रजापालन करते बहुत दिन व्यतीत होगए तदनंतर महात्मा उत्तम के उसी स्त्री से, पूर्णमासी के चंद्रमाकी समान सुन्दर एक पुत्र उत्पन्न हुआ उस पुत्र के उत्पन्न होने से सकल प्रजा हर्षित हुई और आकाश में देवताओं ने नगाड़े बजाकर फूलों की वर्षा करी, उस बालक का प्रकाशवान् शरीर और शील स्वभाव देखकर मुनियों ने उसका नाम औत्तम रक्खा ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रोष्टुकि ! महाराज उत्तम का पुत्र औत्तम मनु हुआ इस महाराज उत्तम का सकल चरित्र तथा औत्तम का जन्म जो मनुष्य नित्य श्रवण करेगा उस को किसी के साथ वैर विरोध नहीं होगा, हे ब्राह्मण ! उस औत्तम मन्वन्तर में जो२ देवता, इंद्रगण और ऋषि हुए उनको सुनो, इति बहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥

तिहत्तरवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी बोले कि-हेक्रोष्टुकि ! इस तृतीय औत्तम प्रजापति के मन्वतर में जो २ देवता, इन्द्र, ऋषि और राजा हुए उनको सुनो पहिला स्वधा नामक दूसरा सत्यनामक तथा और भी देवताओं के गण नाम के अनुसार कार्य करने वाले हुए हे मुनिसत्तम ! तीसरे शिव नामक देवतागण हुए उस में जितने देवता थे वह मंगलरूप और पाप के नाशनेवाले थे, उस औत्तम मन्वंतर में देवताओं का चौथा प्रवर्दन नामक गण हुआ और पांचवें वशवर्ती नामक गण में जो देवता हुए उनके भी जैसे नाम थे वैसे ही उनके रूपगुणथे,यही पांचगण यज्ञों में भाग लेने वाले थे और इसीप्रकार उस श्रेष्ठ मनु के मन्वंतर में सब मिलकर बारह गण कहलाते थे, इन सब के स्वामी महाभा[illegible] सुशान्ति थे जो सौ यज्ञ करके इन्द्र [illegible] थे, विघ्नों के नाश के लिये जि[illegible] नाम के अक्षरों से शोभायमान [illegible] था अब भी महीतल पर गाई जा[illegible] सुशान्ति देवराज, शिव पार्वती [illegible] तथा अपने अनुगामियों सहित [illegible] करें, उस औत्तम मनु के महाव[illegible] पराक्रमी देवताओं की समान [illegible] हुए तिनका नाम आज, पर[illegible]

दिव्य हुआ, जबतक औत्तम मनु का मन्वंतर रहा तबतक उसी मनु के वंश ने प्रजापालन करा, सतयुग त्रेता आदि इकहत्तर चौयुगी का एक मन्वंतर होता है सो मैं पहिले कहचुका हूं, उस औत्तम मन्वंतर में महात्मा वशिष्ठजी के जो तेजस्वी और तपस्वी सात पुत्र थे वही सप्त ऋषि हुए ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रोष्टुकि! यह औत्तमनामक तीसरा मन्वंतर तो कहा अब तामस नामक चौथे मन्वंतर को सुनो, उस तामस मनु का जन्म वियोनि से हुआ था जिस के यश से सकल जगत् प्रकाशित होगया था, सब मन्वंतरों में उस तामस मनु का जन्म और चरित्र अति उत्तम और मनोहर है.

इति तिहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥

चौहत्तरवाँ अध्याय.

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे, क्रोष्टुकि ! एक स्वराष्ट्रराजा बड़ा विख्यात और पराक्रमी तथा बुद्धिमान्था जिसने अपने समय में अनेकयज्ञ करे और अनेकसंग्रामों में विजय पाई, उस राजा ने मंत्रों से सूर्य का आराधन करा तब सूर्य भगवान् ने प्रसन्न होकर उस को बहुत आयु दी और राजा की सौ पतिव्रता स्त्रियें थीं हे मुने! उस राजा की आयु तो बहुत थी परन्तु उस की स्त्रियों की आयु थोड़ी थी, वह सब स्त्रियें तो समय पाकर मरगई और राजा के मंत्री तथा नौकर आदि भी समय पाकर सब मरगए. इन सब के मरजाने से राजा अतिउदास होगया और उसका पराक्रम घटनेलगा, जब उस का पराक्रम घटगया और मंत्री आदि के मरजाने से बहुत दुःखी हुआ तदनंतर एक दिन विमर्द नामक कोई मनुष्य आया और उसने राजा को राज्यगद्दी से उतार दिया तब राजा अपने राज्य से पृथक् होकर वन में जाकर वितस्ता नदी के तटपर तपस्या करने लगा ग्रीष्मकाल में पञ्चाग्नि तापताथा, वर्षाकाल में भीगता था और शिशिर ऋतु में निराहार व्रत रहकर जलमें शयन करता था एक समय वर्षाकाल में तप करताथा एक दिन ऐसा जल वर्षा कि-सब जलमय होगया उस जलार्णव में पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण कुछ मालूम नहीं होता था चारों तरफ अंधेरा छागया था,यद्यपि राजा ने उस जलार्णव में व्याकुल होकर बहुत प्रार्थना करी किन्तु सूखा स्थान न पाया जहां बैठकर निश्चिन्ताईसे तपस्या करता,इतनेमें जलकी लहर आई और राजा बहकर बहुत दूर निकल गया कि-दैवयोग से एक हरिणी मिलगई तो उसकी पूंछ को राजा ने पकड़ लिया तब उस पूंछ के सहारे से उस जलार्णव में डूबता उछलता फिर किनारेपर पहुंच गया तदनंतर वह हरिणी बड़े दलदल

को लाघती हुई राजा को एक वन में ले गई, उस अन्धकार में तिस हरिणी के खैंचने से राजा बहुतही थकगया था, परन्तु उस हरिणी के अंग के स्पर्श से राजा को बहुत आनंद होता था इस कारण उस अन्धकार में राजा कामासक्त हुआ और उस हरिणी की पीठ सहलाने लगा तब हरिणी राजा को कामासक्त देखकर बोली कि-हे महाराज ! मेरी पीठ क्यों सहलाते हो, इस काम के करने से तुम्हारा सब सत्कर्म नष्ट होजायगा, हे राजन ! तुम अनुचित जगह कामासक्त हुए हो और तुम्हारा मुझपर कामासक्त होना उचित है परन्तु तुम्हारे साथ संगम करने में लोकविघ्न डालते हैं, यह सुन राजा को आश्चर्य हुआ और हरिणी से कहा कि—तू कौन है जो मनुष्य की समान बोलती है और वह लोक कौन हैं जो मुझको तेरे साथ संगम करने में विघ्न करते हैं, मृगी ने कहा कि-हेराजन ! पहिले जन्म में मैं तुम्हारी ही स्त्री थी, मेरा नाम उत्पलावती था, आपकी सौ रानियों में मैं श्रेष्ठ थी और मेरे पिता का नाम दृढधन्वा था, राजा ने कहा कि-जब तू पतिव्रता धर्मपरायणथी तो फिर ऐसा क्या कर्म करा था जिस से इस योनि को प्राप्त हुई और जो तुझे पूर्व जन्म का वृत्तान्त स्मरण है इस का क्या कारण है ?

हरिणी ने कहा कि—हे राजन् ! मैं बालकपन में पिता के घर अपनी सखियों के साथ खेलने को एक वन में गई तो वहां एक मृगी के साथ एक मृग को देखा फिर वह मृगी मेरे पास आई उस को मैंने मारा तब वह डरकर चलीगई यह देख उसका हिरण क्रोधित हो मुझ से बोला कि —हे मूढे ! तेरी कैसी बुद्धि है ? तेरी ऐसी दुःशीलता को धिक्कार है कि-तूने इस के गर्भाधान कालको निष्फल करदिया उस मृग को मनुष्य की समान बोलते देख मैं डरकर कहने लगी कि हे मृग ! तू किस प्रकार इस योनि में प्राप्त हुआ है, मृग ने कहा कि—मैं निवृत्ति चक्षुष ऋषि का पुत्र हूं, सुतपा मेरा नाम है, मैं इस मृगी को देखकर कामासक्त हो मैं भी मृग बनगया, मेरा इस मृगी से बड़ा प्रेम है और यह मृगी भी मुझे अति प्रेम करती है हे दुष्ट ! इस मृगी से जो तूने मेरा वियोग करा है इस लिये मैं तुझे शापदेता हूं, यह सुन मैंने कहा कि—हे मुनि ! बिनाजाने मुझ से यह अपराध हुआ है क्षमा करिये और शाप न दीजिये, यह सुन मृगरूप मुनि ने कहा कि-अच्छा शाप न दूंगा, परंतु तू मुझ से प्रीतिकर, तब मैंने मृगरूप मुनि से कहा कि—मैं बन की मृगी नहीं हूं तू दूसरी मृगी पर अपना चित्त चला मुझ से ऐसा भाव मतरख, यह बात

सुनकर वह मृगरूप मुनि क्रोध से लाल२ नेत्र कर कहने लगा कि–हे मूढे ! जो तू कहती है कि—मैं मृगी नहीं हूं तो मैं कहताहूं कि–तू अवश्य मृगी होगी, यह सुन मैं दुःखित हो उस मुनि को प्रणाम कर बोली कि—हे मुने ! क्षमा कीजिये मैं स्त्री हूं आप की बात अच्छी तरह नहीं समझी इस कारण यह बात मेरे मुख से निकलगई किन्तु जिस स्त्री के पिता नहीं होता है वह स्त्री अपने आप पति करलेती है हे मुनि ! मैं अपने अधिकार से आपको किस प्रकार पति बना सक्ती हूं, मैं आप के आधीन हूं और आपके चरणों पर गिरती हूं, कृपाकर मेरा अपराध क्षमा कीजिये, हे महामते ! मुझपर प्रसन्न हूजिये जब मैंने इस प्रकार दीन होकर कहा तब वह मुनि बोले कि– जो मैंने कहदिया वह तो किसी प्रकार मिथ्या हो नहीं सक्ता, मरनेपर तू अवश्य मृगी होगी, जब तू हरिणी होगी तब सिद्धवीर्य मुनि के, महाबाहु लोल नामक पुत्र तेरे गर्भ से उत्पन्न होंगे, जब वह तेरे गर्भ में आवेंगे उस समय तुझे इस जन्म की सब बातें स्मरण होजावेंगी और इन बातों के स्मरण रहने से तू मनुष्य की समान बोलेगी, जब उन का जन्म होगा तब तू हरिणी के शरीर से छूटकर और अपने पति से पूजित हो उत्तम लोक को प्राप्त होगी जिस लोक को मुनिजन बहुत तपस्या करके पाते हैं और वह लोल अपने पिता के सब शत्रुओं को मारकर सकल पृथ्वी को जीत कर मनु होंगे, हे महाराज ! इस शाप से मेरा जन्म तिर्यक्योनि में मृगी का हुआ, अब आप के स्पर्श से मैं गर्भवती होगई, इसी से मैं कहती हूं कि—आप का मन अनुचित जगह नहीं प्राप्त हुआ है और मैं आपकी अगम्या भी नहीं हूं परन्तु मेरे गर्भ में जो लोल हैं वह आप के साथ संगम करने में विघ्न करते हैं।

मार्कण्डेय जी ने कहा कि–इस प्रकार उस मृगी की बातें सुनकर राजा अति प्रसन्न हुआ और कहा कि–मेरा पुत्र सब शत्रुओं को जीतकर मनु होगा, फिर उस मृगी के सुलक्षणों युक्त बालक उत्पन्न हुआ, उस बालक के उत्पन्न होने से सकल जीवों को आनन्द हुआ, और वह हरिणी अपने शापके कष्ट से छूटकर उत्तम लोक को चलीगई तदनंतर उस महात्मा पुत्र को ऋद्धिदेनवाले लक्षणों युक्त देखकर, उस बालक का नाम रखने के लिये सब मुनियोंने कहा कि–यह तामसी योनिसे उत्पन्न हुआ है और इस के जन्मते समय सब में अन्धकार छागया था इस कारण इसका नाम तामस विख्यात होगा ॥

मार्कण्डेय जी ने कहा कि–हे मुनिसत्तम ! तदनंतर उस बालक का उस

के पिताने वन में ही पालन करा, जब तामस को बुद्धि हुई तब अपने पिता से कहा कि-हे तात ! तुम कौन हो? मैं किस प्रकार तुम्हारा पुत्र हूं, मेरी माता कहां है और आप किसप्रकार इस वन में आए सो सब सत्य २ कहिये, यह सुन राजा ने अपने राज्य से पृथक् होने का और अन्य वृत्तान्त जो बीता था सब अपने पुत्र से कहसुनाया, यह सुन तामस ने भी सूर्य का आराधन करा तब सूर्यभगवान् ने प्रसन्न होकर उसे अति दिव्य अस्त्र और उसके चलानेकी विद्या भी दी, उसी अस्त्रसे तामस सब शत्रुओं को जीतकर और उन सबको कैद करके अपने पिता के सामने ले आया, फिर अपने पिता की आज्ञानुसार उन सब को छोड़कर अपने धर्मकार्य में प्रवृत्तहुआ तदनन्तर वह राजा तपस्या और यज्ञ आदि करके सुख के साथ अपना शरीर त्यागकर परलोक को प्राप्तहुआ । वह महाराज तामस सकल पृथ्वी को जीत कर मनु विख्यात हुए. उस मन्वन्तर में जोर देवता, इन्द्र, ऋषि और उस मनु के पुत्र जो राजाहुए, उन सबका वृत्तांत भी सुनो, सत्य, सुधि, सुरूप और हर यही सत्ताईस देवगण थे, महाबली और पराक्रमी राजा शिखि सौ यज्ञकरके देवताओं का स्वामी अर्थात् इन्द्र हुआ था. ज्योतिर्धामा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, वलक और पीवर यही सात सप्तर्षि हुए थे. हे मुनिसत्तम ! उस तामस मनुके पुत्र ख्याति, शांत, दान्त और जानुजंघ आदि बड़े२ पराक्रमी हुए. इति चौहत्तर वां अध्याय समाप्त ॥

पिछत्तरवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेय जी कहते हैं कि–हे क्रोष्टुकि! अब पाँचवें मनु जो रैवत नाम से प्रसिद्ध हैं उन का वृत्तान्त विस्तार से कहता हूं, सो सुनो, एक ऋतवाक् ऋषि थे उनके पहिले कोई सन्तान नहीं हुई फिर बहुत दिन पीछे रेवती नक्षत्र के अन्त में उन के एक पुत्र उत्पन्न हुआ, तब ऋषि ने उस बालक की विधिपूर्वक जात कर्म आदिक क्रिया करी, और उसके बड़े होने पर उपनयन आदि करा परन्तु वह बालक अत्यंत दुःशील हुआ, जिस दिन से वह बालक उत्पन्न हुआ उस दिन से ऋषि को बड़े २ दुःख और रोगों ने घेरलिया तथा उस बालक की माता भी कुष्ट रोग होने से अति पीड़ित हुई, तब ऋषि बहुत दुःखित होकर मन में शोच करने लगे कि–इतने दिनों में तो एक पुत्र उत्पन्न हुआ तो मेरा ऐसा अभाग्य है कि-वह दुर्बुद्धि होगया तब दूसरे मुनि पुत्र की स्त्री सम्मुखी को लेलिया और बोले कि–ऐसे पुत्र के होने से बिना पुत्र रहना अच्छा है क्योंकि–कुपुत्र बालक माता-पिता दोनों के चित्त को दुःखदेता है और स्वर्गवासी पितरों को नरक में डालदेता

है, ऐसे कुकर्मी पुत्र को धिक्कार है कि-जिस से मित्रों का उपकार नहो और पितर भी तृप्त नहों तथा जिस पुत्र से माता पिताको दुःख हो उस पुत्रका जन्म वृथा है, वही पुत्र धन्य है जिसकी सब लोग प्रशंसा करें और परोपकारी हो, अच्छा स्वभाव रक्खे, अच्छे कार्यों को करै. कुपुत्र और मूर्ख से परलोकके लिये कोई कर्म नहीं होता है तथा कुपुत्र से माता पिताको नरक होता है, गति नहीं होती, किन्तु वहपुत्र मित्रोंको दुःख और शत्रुओं को सुख देता है, वह माता पिता को युवावस्था में ही वृद्ध करदेता है ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रोष्टुकि ! इसप्रकार उस पुत्रका चरित्र देखकर तिस मुनिका सब उत्साह जातारहा, तदनंतर गर्ग मुनिके समीप जाकर कहा कि-हे गर्गजी ! मैंने सुव्रत धारण करके पहिले वेदों को पढ़ा फिर विधिपूर्वक अपना विवाह करा, हे महामुने ! आजतक मैंने स्त्रीयुक्त वैदिकक्रिया, स्मार्त्तक्रिया और षट्क्रिया आदि सब करीं किन्तु विना समाप्त करे किसी क्रियाको नहीं छोड़ा. और पुन्नाम नरक के भय से विधिपूर्वक अच्छे मुहूर्त्त में पुत्रकी इच्छा करके स्त्री गमन किया मैंने कामासक्त होकर स्त्री गमन कभी नहीं किया, फिर यह वालक दुःशील क्यों हुआ जो मुझे और मित्र आदिकों को दुःख देता है इसका कारण क्या है विस्तार से वर्णन करिये, गर्गजी ने कहा कि-हे मुने ! यह तुम्हारा पुत्र रेवती नक्षत्र के अन्तमें उत्पन्नहुआ है, वह समय अच्छा नहीं था, इसकारण आपको दुःख देता है, इस में तुम्हारा, उस वालक का, उसकी माताका और तुम्हारे कुलका कुछ दोष नहीं है, उसके दुःशील होनेका कारण वही रेवतीनक्षत्र है, यह सुन ऋतवाक् मुनि वोले कि-मेरे एक पुत्रहुआ सो भी रेवती नक्षत्रके दोष से दुःशील होगया इसलिये कहता हूं कि इस रेवती नक्षत्रका पतन होजाय ॥

मार्कण्डेयजी ने कहा कि—इसप्रकार ऋतवाक् मुनिके शाप देनेसे रेवतीनक्षत्र स्वर्ग से नीचे गिरपड़ा यह देख सबलोग आश्चर्य करनेलगे और वह रेवती नक्षत्र कुमुदाद्रि पर्वतपर गिरा तो उसके गिरने से वह पर्वत और उसकी गुफायें सब प्रकाशवान् होगईं, उसी दिनसे उस पर्वत का नाम रैवत प्रसिद्ध हुआ और सब पृथ्वी में वह पर्वत रमणीय हुआ, उस नक्षत्रकी ज्योतिसे वहांपर पंकजिनी नामक एक सरोवर प्रकटहुआ और उस सरोवर से अति रूपवती एक कन्या निकली वह कन्या रेवती नक्षत्रकी ज्योतिसे उत्पन्नहुई इसकारण प्रमुचि मुनिने उस का नाम रेवती रक्खा और अपने आश्रम पर लाकर पालनेलगे क्योंकि वह प्रमुचि मुनि बड़े महात्मा और दयावान् थे, जब

यह कन्या तरुण हुई तब उसे देखकर मुनि को चिंता हुई कि—इस कन्या का पति कौन होगा इस बातको शोचतेहुए बहुतदिन बीतगए परन्तु उस कन्याके योग्य किसी मनुष्यको न पाया तब उस मुनि ने अग्निशाला में जाकर अग्नि से बूझा कि-इस के पति होने के योग्य कौन पुरुष है तब अग्नि ने कहा कि—इस कन्याके स्वामी दुर्गम नाम राजा होंगे जो महाबली और धर्मवत्सल हैं ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि—हे क्रोष्टुकि! तदनंतर उसी समय महाराज दुर्गम शिकार खेलकर प्रमुचि मुनि के आश्रम के निकट आये, यह राजा दुर्गम प्रियव्रत राजा के वंश में महाराज विक्रमशील का पुत्र कालिंदी से उत्पन्न हुआ था. जब राजा दुर्गम प्रमुचि मुनि के आश्रम पर गया और मुनि को न देखा तब इस सुन्दरी को देखकर हे प्रिये कहकर बूझने लगा कि-इस आश्रम से मुनिराज कहाँ गये मैं उनको प्रणाम करने के लिये आया हूँ, मार्कण्डेयजी ने कहा कि-वह मुनि अग्निशाला से, राजा के, हे प्रिये ! कहने का शब्द सुनकर बाहर निकले तब राजा ने मुनि को देखकर और अतिनम्र होकर प्रणाम करा, तब उस मुनि ने राजा को राजसी लक्षणों से पहिचान कर अपने गौतम नाम शिष्य से कहा कि—इन के लिये शीघ्र अर्घ्य लाओ, एक तो यह महाराज बहुत दिन में आये हैं दूसरे मेरे जामाता हैं इस लिये मुझको अर्घ्य देना उचित है, जामाता का शब्द सुनकर राजा अति आश्चर्य में हुए कि—मुनि ने मुझे अपना जामाता किसप्रकार कहा इस का कारण कुछ समझ में नहीं आया तो राजा चुप होरहा और अर्घ्य ग्रहण करा, जब राजा आसन पर बैठे तब मुनि ने कहा कि हे राजन् ! अब अपने घर की कुशल क्षेम कहिये और हे नरेन्द्र ! अपने कोष, मंत्री, सेवक तथा मित्र आदि की कुशल कहिये और अपनी पतिव्रता स्त्री की भी कुशल कहिये यह सुन राजा ने कहा कि-हे सुव्रत ! आपके प्रसाद से मुझे सबप्रकार कुशल है परन्तु मुझे यह अति आश्चर्य है कि—यहां मेरी भार्या कौन है ? ऋषिने कहा कि—हे राजन् ! महाभागा रेवती यहाँ आपकी भार्या है क्या आप नहीं जानते हैं, राजा ने कहा कि-हे भगवन् ! सुभद्रा, शान्ततनया, कावेरीतनया, सुराष्ट्रजा, सुजाता, कदम्बा, वरूथजा, विपाठा और नंदनी यही सब मेरे घरमें मेरी भार्या हैं, रेवती को मैं नहीं जानता कि—कौन है, ऋषि ने कहा कि-हे राजन् ! इसीसमय तो आपने सुंदरी रेवती को अपनी प्रिया कहकर पुकारा था, यह बात क्या आप भूलगये, यही रेवती आप के योग्य स्त्री है, राजा ने कहा कि—हे मुने ! सत्य है, मैंने उसको प्रिया कहकर आपका वृत्तान्त बूझा है परन्तु मैंने किसी अन्यभाव से प्रिया नहीं कहा है, मैं आप

से प्रार्थना करता हूँ कि-मुझपर क्रोध न कीजिये, ऋषि ने कहा कि-हे भूपाल आप सत्य कहते हैं आपने दुष्टभाव से प्रिया नहीं कहा किन्तु अग्नि की प्रेरणा से आपने प्रिया कहा है, इस बात को मैंने पहिले ही अग्नि से बूझलिया था कि-इस सुन्दरी का स्वामी कौन होगा तब अग्नि ने मुझसे कहा कि-इसके पति महाराज दुर्गम होंगे इसलिये आपही इस कन्या के स्वामी हैं, हे नराधिप! यह कन्या मैं आपको देता हूँ ग्रहण करिये इसको आप प्रिया भी कहचुके हैं अब कुछ विचार न कीजिये, यह बात सुनकर राजा चुप हो गये और प्रमुचिमुनि विवाह की विधि करने लगे हे महामुने! जब प्रमुचिमुनि उस कन्या के विवाह का यत्न करनेलगे तब यह कन्या मुनि को प्रणाम करके बोली कि-हे तात! जो आपकी कृपा मुझपर है तो प्रसन्न होकर रेवती नक्षत्र में मेरा विवाह कर दीजिये, ऋषि ने कहा कि-हे कल्याणि! रेवती नक्षत्र में चन्द्र योग बहुत अच्छा होता है सो अब नहीं है क्योंकि-ऋतवाक् मुनि केशाप से रेवती नक्षत्र कुमुदाद्रि पर्वतपर गिरपड़ा, यहसुन कन्या ने कहा कि-हे तात! विना रेवती नक्षत्र के काल मुझको विफल मालूम होता है और विफलकाल में मेरा विवाह किसप्रकार होगा, मुनि ने कहा कि-ऋतवाक् तपस्वी ने रेवती नक्षत्र को क्रोधसे शाप देकर स्वर्ग से नीचे गिरादिया है और मैं महाराज दुर्गम से प्रतिज्ञा करचुका हूँ कि-यह सुंदरी आपकी भार्या होगी अब जो तू इससमय विवाह होने में विघ्न करैगी तो यह मुझपर बड़ा संकट होगा, फिर कन्या बोली कि-हे तात! क्या ऋतवाक् मुनि ने ही तपस्या करी है और आप ने वैसी तपस्या नहीं करी है, क्या मैं ब्राह्मण की कन्या नहीं हूँ, ऋषि ने कहा कि-हे बाले तू ब्राह्मण की कन्या नहीं है किन्तु मुझ तपस्वी की है, और मैं तप के प्रभाव से देवताओं को भी तुच्छ कर सक्ता हूँ, यह सुन कन्या ने कहा कि-हे तात! जब आप तपस्वी हैं तो फिर रेवती नक्षत्र को स्वर्ग में स्थापित करके उस काल में मेरा विवाह क्यों नहीं करदेते हो, ऋषि ने कहा कि-हे भद्रे! तेरा कल्याण हो धैर्यधर ऐसा ही होगा, तेरे लिये रेवती नक्षत्र को चंद्रमा के मार्गपर स्थापित करता हूँ॥

मार्कण्डेयजी ने कहा कि-हे द्विजोत्तम प्रमुचि मुनि ने उस कन्या को धैर्य देकर अपने तप के प्रभाव से जिसप्रकार पहिले रेवती को चंद्रमा से योगथा वैसा ही स्थापित करदिया उस कन्या का विवाह विधिपूर्वक मंत्रों से करके फिर प्रीतिपूर्वक जामाता से बोले कि-हे राजन्! विवाह की दक्षिणा बताओ मैं तुम्हें क्या दूँ, जो बात दुर्लभ हो वह भी मैं करसक्ता हूँ,

क्योंकि—मेरा तप कभी भङ्ग नहीं हुआ है, अपने तप के प्रभाव से मैं सब कुछ करसक्ता हूं, राजा बोला कि हे मुने! स्वायम्भुव मनुके वंश में मेरा जन्म है इस से मैं भी मनु होना चाहता हूं, ऋषि ने कहा कि—हेराजन्! तुम्हारी यह कामना इस प्रकार सिद्ध होगी कि—तुम्हारा पुत्र मनु होकर धर्मपूर्वक सकल पृथ्वी का भोग करेगा ॥

मार्कण्डेयजी ने कहा कि—हे क्रोष्टुकि! तदनन्तर राजा उस मुनिसे यह वरदान पाकर रेवती सहित अपने नगर में आया और उसी रेवती के गर्भ से महाराज दुर्गम के पुत्र रैवतनाम मनुहुए, वह रैवत मनु सब धर्मों के, शास्त्रों के अर्थ और वेदविद्या के अर्थ के जाननेवाले हुए तथा उनको संग्राम में कोई जीत न सका, हे ब्रह्मन्! उस रैवत मनुके मन्वन्तरमें जो देवता, मुनि, इन्द्र और राजा हुए उनको सुनो, सुमेधा नाम से देवता लोग प्रसिद्ध हुए और वैकुण्ठ तथा अमिताभ नामसे चौदह २ गणहुए उन सबके स्वामी विभु के जो सौ यज्ञ करके इन्द्रहुए हिरण्यलोमा वेदश्री, ऊर्द्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुधामा, पर्जन्य और महाभाग वशिष्ठ वेदवेदाङ्ग के जाननेवाले यही लोग सप्तर्षि हुए, बल बन्धु, महावीर्य, सुप्रचुन्य और सत्यक आदि रैवत मनु के पुत्रहुए, हे क्रोष्टुकि! यह रैवतपर्यंत जितने मनुओं का वृत्तांत हम तुमसे कहचुके हैं यह सब स्वायम्भुव मनु के वंशके हैं परन्तु स्वारोचिष मनु इस वंशसे अलग है । इति पिञ्चहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥

—⊱(॥)⊰—
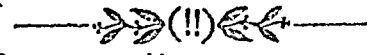
छिहत्तरवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी बोले कि—हे क्रोष्टुकि! पांच मन्वंतरों का वृत्तांत तो मैंने तुम्हें सुनाया अब छठे चाक्षुप मन्वन्तर का वृत्तांत कहता हूं सुनो—पहिले जन्ममें यह चक्षुष परमेष्ठी से उत्पन्न थे इसलिये दूसरे जन्ममें चाक्षुप कहाये जब यह उत्पन्न हुए तब उनकी माता उनको गोदी में लियेहुए कण्ठसे लगाकर प्यार करती थी, एकदिन चाक्षुष अपनी माताकी गोद में थे कि—इतने में अपने पूर्वजन्म का वृत्तांत स्मरण करके हंसनेलगे यह देखकर उनकी माता क्रोधित होकरबोली कि—हे पुत्र! यह तेरा हंसना कैसा है? मैं तेरे इसप्रकार हंसने से डरती हूं क्यों कि—अभी तेरी अवस्था इसप्रकार हंसने की नहीं है यह सुन बालक ने कहा कि एक तो मेरे सामने मार्जारी भयानक मुख की खड़ी है और मुझे खानेकी इच्छा करती है क्या तू नहीं देखती है? दूसरे जातहारिणी जिसको तू नहीं देखती है वह भी मारना चाहती है और तू अपना पुत्र समझकर प्रीति से कण्ठ लगाकर मुझे प्यार करती है तथा अत्यन्त प्रीति

से तेरा रोमांच होरहा है, नेत्रों में आंसू भरे हैं, यह तुम्हारी प्रीति देखकर मैं हँसदिया, अब इसका कारण सुनो कि जिसप्रकार यह मार्जारी अपने स्वार्थ के लिये मेरी तरफ देखरही है उसीप्रकार अन्तरिक्ष में जातहारिणी भी अपने स्वार्थ के लिये मुझे देखरही है, जिस प्रकार यह दोनों अपने स्वार्थ के लिये मुझे देखती हैं उसीप्रकार तुम भी अपने स्वार्थ के लिये मुझसे प्रीति करती हो, यह दोनों तो इसीसमय मारकर और खाकर अपना स्वार्थ करा चाहती हैं परन्तु तुम धीरे२ कार्य साधना चाहती हो यह समझकर कि—जब यह बड़ाहोगा तो मेरा उपकार करेगा और तुम यह नहीं जानती कि—मैं कौन हूं, तुम्हारा उपकार मुझ से नहीं होगा, कुछ पांच सात दिनसे मैं उत्पन्न नहींहुआ हूं किंतु चिरकालसे मैं हूं तो भी तुम इतना अनुराग कर मुझे अपने कण्ठसे लगाती हो और तात ! वत्स ! इत्यादि कहकर प्यार करती हो, यह बात पुत्र की सुन कर माता बोली कि हे वत्स ! मैं अपने उपकार के लिये तुम्हें प्यार नहीं करती हूं, तुम भी मुझसे प्रीति छोड़दो और जो उपकार तुम से होगा उस अपनेस्वार्थ को भी मैंने छोड़ा यह कहकर माता बालक को छोड़कर उस सूतिकागृह से चली गई, जब उसकी माता उसे छोड़गई तब उस शुद्धात्मा जड़वत् अंगवाले बालक को जातहारिणी उठाकर लेगई, वहां से लेजाकर उसे राजा विक्रान्त की स्त्री की शय्यापर रखदिया और उसके बालक को उठालेगई, उसको भी दूसरे के घर रखकर और उसके बालक को उठालेजाकर खागई, इसीप्रकार वह निर्दयी जातहारिणी एक के बालक को दूसरे के घर और दूसरे के बालक को तीसरे के घर रखकर उस तीसरे बालक को खाजाती है। तदनंतर महाराज विक्रान्त ने उस बालक का संस्कार जो क्षत्रियों के लिये होना चाहिये सब किया और अति उत्साह के साथ विधिपूर्वक उस बालक का नाम आनंद रक्खा, कुछ दिन व्यतीत होनेपर गुरु ने उस का उपनयन किया और कहा कि—हे कुमार ! पहिले अपनी माता को प्रणाम करके उनकी स्तुति करो, यह बात गुरु की सुनकर वह बालक हँसकर कहनेलगा कि--पालनेवाली माता की स्तुति करूँ वा जिसके उदर से उत्पन्न हुआ हूं उस की स्तुति करूं, गुरु ने कहा कि-हे राजन्! महाराज विक्रान्त की रानियों में श्रेष्ठ जो हैमिनी नामक है वही तुम्हारी माता है उसी की स्तुति करो यह सुन आनन्द बोला कि--यह हैमिनी विशाल नगर के रहनेवाले चैत्रकी माता है और उस चैत्र का पिता बोध नाम ब्राह्मण कहलाता है

मेरी माता दूसरी है, गुरु बोले कि-हे आनंद! यह क्या कहते हो, वह चैत्र कौन है? और तुम कहां उत्पन्न हुए हो सो सब कहो आनन्द बोला कि-हेब्रह्मन्! मैं महाराज चक्षुष के घरमें गिरिभद्रा नामक उनकी स्त्री के गर्भ से उत्पन्न हुआ हूं, मुझको जातहारिणी उठालाई है और इस हैमिनी रानी की शय्यापर मुझको रखदिया तथा हैमिनी के बालक को लेजाकर उस बोध ब्राह्मण के घरमें रख-और बोध ब्राह्मण के बालक को वह जातहारिणी भक्षण करगई, इस हैमिनी के पुत्र को उस बोध ब्राह्मण ने ब्राह्मण का संस्कार करके रक्खा है, मेरा आपने यहांपर गुरु होकर संस्कार करा है इस लिये आपका वचन मुझको अवश्य मानना चाहिये, जिसको आप कहैं उसी को मैं माता समझकर स्तुति करूं, गुरु ने कहा कि—हे वत्स! मुझे बड़ा संकट आपड़ा और मोह के कारण मेरी बुद्धि भ्रम में पड़गई मैं कुछ नहीं कहसकता, आनंद ने कहा कि--संसार का यही व्यवहार है इसमें मोह होने की क्या बात है? विचार करके देखिये तो न कोई किसीका पुत्र है और न कोई भाई बन्धु है, मनुष्य इस संसार में जन्म लेने से सम्बन्ध में फँसता है और मरनेपर सब सम्बन्ध छूटजाता है, इस लिये मैं कहता हूँ कि—संसारी मनुष्यों का कौन भाई है और कौन नहीं, मृत्यु के आगे सब बराबर हैं, आप क्यों भ्रम में पड़े हैं, देखिये इसी जन्म में मुझको दो माता और दो पिता मिले इसमें आश्चर्य की क्या बात है हे गुरो! मैं महाराज चक्षुष का पुत्र हूँ, मैं तपस्या करूंगा, आप महाराज विक्रान्त के पुत्र को विशाल नगर से मँगालीजिये॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रोष्टुकि! आनन्द की यह बात सुनकर राजा, रानी और उन के सब भाई बन्धु अति आश्चर्य में हुए, तथा उस से अपनी प्रीति तोड़कर, तपस्या करने के लिये वन में जाने की आज्ञादेदी तदनन्तर राजा विक्रान्तने विशाल नगर से अपने पुत्र को लाकर अपने राज्य का स्वामि करा तथा उस ब्राह्मण और ब्राह्मणी का भी पालन करा वह आनन्द वन में जाकर मुक्ति के बाधक जो कर्म हैं उनके नाश होने को तप करनेलगा, तब उसका तप देखकर ब्रह्माजी वहाँ आये और कहा कि—हेबालक! तू किसलिये ऐसा कठिन तप करता है? आनन्द ने कहा कि—हे भगवन्! आत्मा शुद्ध होने के लिये और संसार में फँसानेवाले कर्मों का नाश होने के लिये यह तप करता हूँ, ब्रह्माजी बोले कि जिसका कर्मक्षय होजाता है वही मुक्ति के योग्य होता है कर्मवाले की मुक्ति नहीं होती है इसलिये तुम कर्मों का क्षय करके सत्वाधिकारी होजाओ तो

मुक्ति पावोगे, तुम यहां से जाकर छटे मनु होजाओ और मनु होनेपर तुम्हें बिना परिश्रम मुक्ति प्राप्त होगी ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि—यह सुन महामति आनन्द बोला कि बहुत अच्छा ऐसा ही करूंगा फिर तपस्या छोड़कर ब्रह्माजी के कहेहुए काम में प्रवृत्त हुआ और ब्रह्माजीने उन्हें तप से रोककर चाक्षुष नाम उनका रक्खा इसी से वह चाक्षुष मनु कहलाये और राजा उग्रकी कन्या विदर्भा से चाक्षुषने अपना विवाह करलिया तथा उसी से चाक्षुष ने बड़े २ पराक्रमी पुत्र उत्पन्न करे, हे ब्रह्मन् ! उस चाक्षुष मन्वंतर में जोर देवता, ऋषि इन्द्र और उस मनुके जो पुत्रहुए, वह सब सुनो--उस मन्वंतर में आद्यनामक देवता हुए, उनमें से ही प्रसिद्ध कर्मवाले और यज्ञमें हवि भोजन करनेवाले आठ देवताओंका यह एक गण है, बड़े प्रसिद्ध बलवीर्यवान् और प्रभामण्डल की समान नेत्रवाले ऐसे प्रसूतनामक तीसरे देवताओं के भी अष्टक गणहुए इसीप्रकार भव्य नामक दूसरा देवताओं का अष्टक गण हुआ चौथा यूथकनामक भी उस मन्वंतर में अष्टक गणहुआ उसीप्रकार हे ब्रह्मन्! पांचवें गण में लेखनामक देवता हुए वह लोग अमृत का भोजन करते थे और इस मन्वंतरमें सौयज्ञ करके देवताओंके स्वामी मनोजव नाम इन्द्र हुये जो यज्ञभाग के भोक्ता कहलाये. सुमेधा, विरजा, हविष्मान्, उन्नत, मधु, अतिनामा और सहिष्णु यह लोग सप्तर्षिहुये. ऊरु, पुरु और शतद्युम्न आदि उस चाक्षुष मनु के पुत्र हुये जो महाबली राजाहुये हे ब्रह्मन् ! छठा मन्वंतर तो मैंने आपसे कहा और महात्मा चाक्षुष का जन्मचरित्र भी आप से कहा, अब सातवें वैवस्वत मनु जो इस समय वर्त्तमान हैं उनका वृत्तांत और जोर देवता इन के मन्वन्तर में हैं वह सब कहता हूँ सुनो · इति छिहत्तरवाँ अध्याय।

सतहत्तरवाँ अध्याय.

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि—हेक्रोष्टुकि ! विश्वकर्मा की कन्या संज्ञा नाम महाभागवती सूर्यभगवान की स्त्री थी उस से सूर्यभगवान् ने पुत्र उत्पन्न किये, वह पुत्र अनेकप्रकार के ज्ञान में चतुर हुए उनमें वैवस्वत बहुत प्रसिद्ध हुए और मनु हुए, विवस्वान् के पुत्र होने के कारण उनका नाम वैवस्वत हुआ जब सूर्यभगवान् संज्ञा के पास जाते थे तब संज्ञा इनके तेजको देखकर अपने नेत्र मूंदलेती थी एक दिन यह देखकर सूर्यभगवान् क्रोधित हो संज्ञा से बोले कि—हे मूढ़े ! जोकि—तू मुझे देखकर अपने नेत्र बन्द करलेती है इसकारण प्रजाओं का दण्ड देनेवाला यमनामक पुत्र तेरे उत्पन्न होगा इतनी बात सुनकर संज्ञा के भय केकारण

नेत्र चंचल होगए यह देख सूर्यनारायण फिर बोले कि--इस समय तू मुझे चंचल नेत्र करके देखती है इसलिये तेरे एक कन्या चंचला अर्थात् सदाचंचलनेत्रवाली नदी रूप होकर उत्पन्न होगी॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हेक्रोष्टुकि कुछ काल बीतने पर स्वामी के शाप देने के कारण संज्ञा के यमनामक पुत्र उत्पन्न हुआ और यमुना नामक कन्या हुई जो महानदी कहलाती है, वह संज्ञा सूर्य के तेज को अतिदुःख से सहती थी, जब तेज का दुःख नहीं सहागया तो शोचनेलगी के क्या करूं? कहां जाऊं? कि जहां सुख हो और किसप्रकार मेरे स्वामी सूर्यनारायण मुझपर प्रसन्न हों इसप्रकार वह संज्ञा अतिचिन्ता करके अपने पिता की शरण में जाना अच्छा समझकर, अपने शरीर की छाया को अपने समान बनाकर सूर्यभगवान् के संतोष के लिये अपनी जगहपर स्थापित करा और उस छाया से कहा कि--जिस प्रकार मैं यहां रहती हूं उसीप्रकार तूभी यहां रहकर इस मेरे पुत्र और कन्या का पालन करना, जब तुझसे सूर्यभगवान् किसीप्रकार बूझें तो मेरा जाना कभी न बताना किन्तु सबप्रकार से यही बात उनके चित्त बैठादेना कि-जिससे तुझही संज्ञा समझें, यह सुन छायारूपी संज्ञा बोली कि हे देवी! जबतक सूर्यभगवान् मेरे केश न पकड़ेंगे और शाप न देंगे तबतक मैं तुम्हारे ही कहनेपर चलूंगी तथा जब मेरी चोटी पकड़कर मुझे मारने वा शाप देनेपर प्रवृत्त होंगे तो मैं सब वृत्तान्त कह दूंगी, तदनन्तर संज्ञा अपनी छाया को समझाकर चलीगई और वहां जाकर अपने तपस्वी पिता को देखा तथा संज्ञा के पिता पिता विश्वकर्मा ने भी उसको देखकर बड़े आदर सत्कार से अपने घर रक्खा और वह संज्ञा भी आनन्दपूर्वक अपने पिता के घर रहनेलगी, तदनंतर संज्ञा से विश्वकर्मा बड़े प्रेम से बोले कि-हे पुत्रि! तुझे देखने से मुझे ऐसा आनंद होता है कि-बहुत दिन एकक्षण के समान जानपड़ते हैं परन्तु धर्म छूटाजाता है क्योंकि-स्त्रियों को बहुत दिनतक पिता के घर रहने से यश नहीं मिलता है किन्तु—माता पिता आदि को यही कांक्षा रखना चाहिये कि—स्त्री अपने पति के घर रहै, हे पुत्रि! तेरे पति सूर्यभगवान् तीनों लोक के स्वामी हैं इससे तुम जाकर उन्हीं के साथ रहो, मेरे घर तुम्हें बहुत दिन तक रहना उचित नहीं है, अब तुम अपने स्वामी के घर जाओ, फिर जब कभी तुम्हारा चित्त उदास हो तब तुम निःसंदेह यहां आकर मुझे दर्शन देजाना॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे मुने! इसप्रकार पिता के कहने से संज्ञा ने बहुत

अच्छा कहकर पिता का पूजन करा और वहाँ से चलकर उत्तरदिशा कुरुदेश में चलीगई, सूर्य के तापको न चाहतीहुई और सूर्य के तेजके डरसे संज्ञा घोड़ीकारूप धारण करके तप करनेलगी और वहाँ सूर्य भगवान उस छायाको अपनी स्त्री जानकर विहार करतेरहे तथा उसी छायासे सूर्य भगवान् के दो पुत्र और एक मनोरमा नाम की कन्या उत्पन्न हुई परन्तु वह छायारूपी संज्ञा जैसा प्रेम अपने बालकों के साथ रखती थी वैसा प्रेम संज्ञा के बालकों के साथ नहीं रखती थी, नित्यप्रति खाने पीने और वस्त्राभूषण से जितना अपने बालकों को मानती थी वैसा संज्ञा के बालकों को नहीं मानती थी यह बात देख वैवस्वत मनु ने तो क्षमा किया परंतु यम से न सहागया तब क्रोधित होकर संज्ञा के मारने के लिये चरण उठाया परन्तु मारा नहीं रुकगए, हे ब्रह्मन् ! तब वह छायारूपी संज्ञा कोप करके यम को शाप देने के लिये ओष्ठ चबाकर और दोनों हाथ पटककर बोली कि-मैं तुम्हारे पिताकी स्त्री हूँ जो तुमने मर्यादारहित करके मुझे चरण मारना चाहा तो मैं शाप देती हूं कि-यह तुम्हारा पैर इस समय पृथ्वीपर गिरपड़े ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रोष्टुकि ! इसप्रकार माताका शाप सुन यम भयसे घबड़ाकर पिता के निकट जाकर प्रणाम करके बोले कि—हे तात ! यह आश्चर्य कभी किसीने न देखा होगा कि--माता निर्दयी होकर अपने अबोध बालक को शाप दे, मनु ने मुझसे पहिले ही कहा था कि-यह माता नहीं है सो यह बात मुझे सत्य मालूम होती है, क्योंकि पुत्र यदि गुणहीन हो तो भी माता पुत्र के ऊपर प्रीति ही रखती है ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि--यम की यह बात सुनकर सूर्यभगवान्ने अपनी छाया नामक स्त्रीको बुलाकर बूझा कि—संज्ञा कहांगई है ? तब वह बोली कि हे विभावसो ! मैं विश्वकर्मा की कन्या हूं, संज्ञा मेरा ही नाम है, आपकी स्त्री हूं और यह सब पुत्र मुझसे ही उत्पन्नहुए हैं. यद्यपि सूर्यभगवान् ने अनेक प्रकार से उससे बूझा परन्तु उसने संज्ञा का कुछ भेद न बताया, जब सूर्यभगवान् क्रोधित होकर उसको शाप देनेको उद्यतहुए, तब उस छाया ने संज्ञा के विश्वकर्मा के घर जानेका सब वृत्तांत कहसुनाया, यह सुन कर सूर्यभगवान् विश्वकर्मा के घर गए, इनको देख विश्वकर्मा ने बड़ी भक्तिसे पूजन किया, फिर सूर्यभगवान् ने बूझा कि—यहां संज्ञा आई है, विश्वकर्माने कहा कि—हाँ आई थी परन्तु मैंने उसको फिर आपके घर भेजदिया है यह सुनकर सूर्य भगवान् ने ध्यान करके देखा तो संज्ञा को घोड़ीके वेषमें उत्तरादिशा कुरुदेश में

तप करतेपाया और उसको यह अभिलाषा भी मालूम हुई कि—मेरे स्वामी सुन्दर शरीर तथा शान्तमूर्ति होजावें, यह सब बात ध्यान से मालूमकर सूर्यभगवान् विश्वकर्मासे बोले कि—हे ब्रह्मन् ! मेरे शरीरका तेज घटादीजिये, यह सुनकर विश्वकर्माने संवत्सर चक्रवाले सूर्य के तेजको अपनी तपस्या के प्रभाव से घटा दिया, उससमय देवता स्तुति करने लगे.

इति सतहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥

अठहत्तरवाँ अध्याय.

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रोष्टुकि ! उससमय सब देवता और सप्तर्षि, त्रिलोकी के पूज्य सूर्यभगवान् की स्तुति करनेलगे कि—हे भगवन् ! ऋग्, साम और यजुर्वेद के स्वरूप जो आप हैं तिन को मैं नमस्कार करता हूं और ज्ञान, शुद्ध ज्योति, पवित्र निर्मलात्मा तथा अन्धकारनाशक आपके स्वरूपको नमस्कार है. वरिष्ठ, वरेण्य, पर, परमात्मा, व्यापक स्वरूप और आत्ममूर्ति आपको नमस्कार है आपका यह उत्तम स्तोत्र मनुष्यों को श्रद्धा से सुनना चाहिये और गुरु के समीप जाकर दक्षिणा देकर इस स्तोत्र को पढ़े अथवा कोई वस्तु इस स्तुति पढ़ने वाले को देकर सुने तो बहुत फल होय. आप सब पदार्थोंके कारण और ज्ञानियों के चित्तमें स्थित हैं और सूर्य महात्मा भास्कर तथा दिवाकरस्वरूप आपको नमस्कार है. रात्रि आपसे ही है और संध्या के ज्योत्स्ना करनेवाले भी आपही हैं मैं आपको नमस्कार करता हूं, सब जगत् आपही हैं, आपके ही भ्रमण करने से चराचर सहित ब्रह्माण्ड भी घूमता है, आपकी ही ज्योति लगने से सबको पवित्रता होती है, आपकी ही किरणें पड़ने से जलादि पवित्र होते हैं, जबतक जगत् को आपकी किरणोंका संयोग नहींहोता तबतक होम दान आदि धर्म से कुछ उपकार नहीं होता: सकल ऋचा, यह यजु और सकल साम आपके ही शरीर से निकले हैं, हे जगदीश ! आपही ऋचास्वरूप और आप यजुःस्वरूप हैं, आप ही सामस्वरूप हैं, इसीकारण हे नाथ ! आप त्रयीमय हैं, ब्रह्म का पर और अपरस्वरूप आप ही हैं । मूर्त्तिमान्, मूर्त्तिरहित, सूक्ष्म और स्थूलस्वरूप से तुम ही स्थित हो, निमेष और काष्ठास्वरूप आप ही हैं, कालस्वरूप, क्षयरूप आप ही हैं, अब आप प्रसन्न हूजिये और अपनी इच्छा से ही अपने तेजःस्वरूप को शान्त करिये । मार्कण्डेयजी कहते हैं कि—इस प्रकार देवता और देवर्षियों से स्तुति कियेहुए उन तेजोराशि अविनाशी सूर्यभगवान् ने अपने तेज को समेटलिया । उन सूर्य भगवान् का जो ऋचास्वरूप तेज था उससे पृथिवी यजुःस्वरूप से आकाश और सामस्वरूप

तेज से स्वर्ग, स्तुति करके शान्त किये हुए सूर्यभगवान् के तेज के त्वष्टा ने पन्द्रह भाग किये और उसमें के एक भाग से महादेवजी का शूल बनाया और उसी के भागों से विष्णु का चक्र, वसुओं की शक्ति, शिव की भयदायिनी शक्ति, अग्नि की शक्ति और कुबेर की पालकी को बनाया । उस विश्वकर्मा ने और देवताओं के भी उग्रशस्त्र तथा यक्ष और विद्याधरों के शस्त्र भी बनाये । उस तेज के सोलहवें भाग को सूर्यभगवान् अपने पास रखते हैं, और उस विश्वकर्मा ने शान्त कियेहुए तेज के पन्द्रह भागों से देवताओं के शस्त्र बनाये।तदनन्तर सूर्यदेव अश्व का रूप धारण करके उत्तर कुरु देशों में गए और तहाँ घोड़ी का रूप धारण करनेवाली संज्ञा को देखा । वह इनको आतेहुए देखकर परपुरुष की शंका से इनके सम्मुख को चली इनकी ओर को इस समय पीठ नहीं की कि—कहीं पीछे आकर बलात्कार न करें। तदनन्तर तहाँ इकट्ठे हुए उन दोनों की नासिका मिली तब उस घोड़ी के मुखसे नासत्य और दस्र नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए । उस समय जो वीर्यपात हुआ उस से घोड़ेपर सवार हाथ में ढाल तलवार लिये बख्तर पहिने तथा बाण और तरकस धारण किये हुए रेवन्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। तदनन्तर सूर्यनारायण ने अपना अनूपमस्वरूप प्रकट किया, उनके इस स्वरूप को देखकर वह संज्ञा परमप्रसन्न हुई।तदनन्तर अपने वास्तविक स्वरूप को धारण करनेवाली प्रीतिमती भार्या संज्ञा को सूर्यभगवान् अपने आश्रम पर लेआये । तब उस संज्ञा का पहिला पुत्र वैवस्वत नामक मनु हुआ और दूसरा पुत्र शापवश, धर्म अधर्म का देखनेवाला यम हुआ । तीसरी यमुनानदी नामक कन्या हुई और यम को जो पैर गिरजाने का शाप हुआथा उसको इसके पिता सूर्यभगवान् ने स्वयं शान्त करदिया अर्थात् दूर करदिया । वह यमराज जो कि—शत्रु मित्र के साथ समानभाव रखते थे और धर्म में चित्त रखते थे इसलिये उनको सूर्यभगवान् ने प्रजाओं के धर्म और अधर्म देखने के लिये दक्षिण दिशा में स्थित किया और यमुना पिता के शाप से कलिन्द देश में नदी होकर बहनेलगी तथा घोड़ीरूप संज्ञा के जो दोनों पुत्र अश्विनीकुमार थे उनको सूर्यभगवान् ने देवताओं का वैद्य बनाया और रेवन्त को सूर्यभगवान् ने गुह्यकगणों का स्वामी बनाया अब छाया संज्ञा के पुत्रों को सूर्यभगवान् ने जो आज्ञा दी वह भी सुनो, छाया संज्ञा के पहिले पुत्र जो रूप और गुण में वैवस्वत के समान थे उनका नाम सावर्णिक रक्खा, जिस समय राजा बलिइन्द्र होंगे उससमय वही सावर्णिक

मनु होंगे और दूसरा पुत्र जिसका नाम शनैश्चर था उसे सूर्यभगवान् ने ग्रहों में स्थापित करा, और तीसरी कन्या जिस का नाम तपती था उसका विवाह कुरुदेश के राजा सम्वरण से हुआ और उस राजा से तपती के एक पुत्र महाराज नामक उत्पन्न हुआ, अब इस सातवें वैवस्वत मनु के मन्वन्तर में जो २ देवता, सप्तर्षि, इन्द्र और उस मनु के पुत्र जो राजा हुए वह भीसुनो,इति अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त.

उन्नासीवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी बोले कि–हे क्रोष्टुकि ! इस वैवस्वत मन्वंतर में आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, साध्यगण, विश्वेगण, मरुद्गण, भृगुगण और आंगिरसगण यही आठगण देवताओंके प्रसिद्ध हैं; आदित्य वसु और रुद्र यह तीनगण कश्यपजी के पुत्र हैं. साध्य, मरुत और विश्व यह तीन गण धर्मपुत्र कहाते हैं. भृगुगण भृगुके पुत्र हैं, आंगिरसगण अंगिरा मुनिके पुत्र हैं और यह मारीच नामक सर्ग है जो इस समयतक वर्तमान है, यज्ञका भाग लेने वाले महात्मा ऊर्जस्वी इन्द्र हैं जो इन्द्र पहिले होचुके हैं और जो इन्द्र आगे होंगे तथा जो इससमय विद्यमान हैं इन सब इन्द्रों के लक्षण समान ही जानना और यह इन्द्र सहस्र नेत्रवाले हैं, सबका अस्त्र वज्र ही है तथा सब इन्द्र पुरन्दर कहाते हैं, सब इन्द्र मघवन्त, वृषा, शृंगी, गज गामी, शतक्रतु और तेजस्वी होते हैं यह सब शुद्ध धर्मकरके देवताओं के स्वामी हुए हैं, हे विप्र ! यह सब भूत, भविष्य और वर्तमानके स्वामी होते हैं, इस वैवस्वत मन्वन्तर में तीनलोक यह हैं–पृथ्वी भूर्लोक है, अन्तरिक्ष दिवलोक है और स्वर्ग दिव्यलोक कहाता है. अत्रि, वसिष्ठ कश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र और मरीचि के पुत्र जमदग्नि यह इस मन्वंतर में सप्तऋषि हैं, और इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नारिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट, कुरूष, प्रसध्र तथा वसुमान् यह नौ पुत्र वैवस्वत के बड़े प्रसिद्ध हुए, हे ब्रह्मन् ! इस वैवस्वत मन्वंतर की कथा को जोपुरुष कहेगा या सुनैगा उसके सकल पाप छूट जायँगे और महापुण्य को प्राप्त होगा.

इति उन्नासीवां अध्याय समाप्त ॥

अस्सीवां अध्याय ।

क्रोष्टुकि बोले कि–हे ब्रह्मन् ! स्वायंभुव आदि सात मन्वंतर और उन मन्वंतरों में जो देवता, ऋषि और राजाहुए वह तो आपने कहे, अब इस कल्पमें आगेको जो सात मनु होंगे और उनके समय में जो देवता आदि होंगे उन सबको भी कहिये, मार्कण्डेयजी बोले कि–हे क्रोष्टुकि! छायासंज्ञा के पुत्र जो सावर्णि हुए जिन का वृत्तांत मैं ऊपर कहचुका हूँ वह वैव-

स्वत मनु के समान हैं वही आठवें मनु होंगे, उससमय में राम, व्यास, गालव, दीप्तिमान, कृप, शृंगी ऋषि और अश्वत्थामा यह सप्तर्षि होंगे. सुतप, अमिताभा और सुख्या इन तीन देवताओंके त्रिगुणविंशक गण कहावेंगे; तप, तपस्वी, शक्र, द्युति, ज्योति, प्रभाकर, प्रभास, दयित, धर्म, तेज, रश्मि, क्रतु और सुतपा आदि देवताओं के एकविंशक गण होंगे. प्रभु, विभु और विभास आदि दूसरे विंशकगण होंगे दम, दान्त, ऋत, सोम और चिन्ता आदि यह अमित नामक तीसरे विंशकगण होंगे उस मन्वंतर के मुख्य स्वामी यही देवता होंगे, यह सब देवता कश्यप प्रजापति के पुत्र हैं. हे मुनि! उस सावर्णि मन्वंतर में देवताओं के स्वामी राजा बलि इन्द्र होंगे यह राजा बलि अपनी प्रतिज्ञा पालने के लिये अबतक पाताल में विद्यमान है और विरजा, अर्व्ववीर, निर्मोह, सत्य वाक् कृति और विष्णु आदि सावर्णिमनु के पुत्र राजा होंगे.

इति अस्सीवां अध्याय समाप्त ॥

इक्यासीवाँ अध्याय

अथ दुर्गासप्तशती

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रोष्टुकि! सावर्णिनाम जो सूर्य के पुत्र अष्टम मनु होंगे उनकी उत्पत्ति की कथा विस्तार पूर्वक मैं कहताहूं सुनो ॥ अर्थात् जिस तरह महामाया के प्रभाव से मन्वन्तर के स्वामी यह सावर्णि नाम से विख्यात हुए उसका हाल सुनो ॥ कि पहिले स्वारोचिष मन्वन्तर में स्वारोचिष मनु के पुत्र जो राजा चैत्र के वंश में सुरथ नाम पृथ्वीमण्डल के राजा हुए ॥ वे राजा अपनी प्रजाको पुत्र की तरह पालन करते थे उसी समय कोलाविध्वंसी राजालोग उन के शत्रु होकर उन के राज्यपर चढ आये ॥ तब महाराज सुरथ और उन कोलाविध्वंसी राजाओं में महायुद्ध हुआ यद्यपि राजा सुरथ सब तरह से बली थे परन्तु प्रारब्ध के प्रतिकूल होने से इन के शत्रु कोलाविध्वंसी लोगों ने इनका राज्य छीनकर अपने वंश में करलिया कोला एक दूसरे स्थान का नाम है जो दूसरी राजधानी सुरथ की थी उसको कई एक आदमियों ने लेकर बिगाड दिया और अपने प्रबन्ध में करलिया इस सबब से उन लोगों का नाम कोलाविध्वंसी हुआ ॥ तब सुरथ पराजित होकर वहां से चलकर अपनी राजधानी में आकर अपने देश भरही का राज्य करने लगे परन्तु वहां भी उन लोगों ने चैन न लेने दिया किन्तु प्रबल होकर महाराज सुरथ को घेरलिया ॥ तब इनके मंत्री और अफसरों ने इन को कमजोर और बेकाबू

समझकर उन दुरात्मालोगों ने इनका खजाना और फौज सब अपने अख्तियार में करलिया ॥ तब इन के मंत्री और नौकरों ने इनका खजाना लेकर हुक्म भी इनका उठादिया तब महाराज सुरथ लज्जित होकर शिकार के बहाने से घोड़ेपर सवार होकर अकेले दुर्गम वन में चलेगये ॥ उस रमणीक वन में जो पशु और पक्षी और मुनि और उन के शिष्यों से शोभायमान था मेधा नाम द्विजोत्तम के आश्रम को देखा ॥ और उस आश्रमपर वह राजा सुरथ जाकर टहलने फिरने लगा मुनिने राजा को देखकर उसकी बड़ी खातिरदारी की मुनिकी खातिरदारी करने से राजा कुछ दिन वहीं ठहरगया ॥ एक दिन राजा अपने नगर और प्रजा को ममता की राहसे याद करके शोचने लगा कि मैं तो अपने नगरको जो मेरे पुरुषों का बसाया हुआ था छोड़कर चलाआया अब नहीं मालूम कि मेरे नौकर चाकर जो अधर्मी हैं मेरी प्रजा का पालन न्यायपूर्व्वक करते हैं या नहीं ॥ और यह भी नहीं जानता कि मेरे मत्तहाथी को महावत और दारोगा दाना पानी देते हैं या नहीं क्योंकि–अब वह सब मेरे शत्रु हैं और शत्रु के वश में हैं यदि भूंखों मरते हों तो कुछ आश्चर्य नहीं ॥ और जो लोग रोज़ रोज़ मेरे पास आकर मेरी प्रसन्नता चाहते थे और धन भोजनादि मुझसे पाते थे वे लोग अब अपनी जीविका के वास्ते दूसरे राजाओं की सेवा करते होंगे ॥ और जिस खजाने को मैंने बड़े परिश्रम से जमा किया था उस खज़ाने को मेरे नौकर चाकर लोगों ने निरर्थक और अनावश्यक कामों में खर्च करके सब बरबाद करदिया होगा ॥ इन्हीं सब बातों को राजा शोचरहा था कि इतने में उसी मुनि के आश्रम के पास एक बनिये को देखा ॥ और उससे पूंछा कि तुम कौन हो और किस वास्ते आये हो और क्यों उदास हो ॥ यह बात राजा की सुनकर वह वैश्य बड़ी अधीनता से राजा को प्रणाम करके बोला ॥ कि मेरा नाम समाधि है जाति का वैश्य हूं धनी का पुत्र हूं और मेरे स्त्री पुत्रोंने मेरे धनपर लोभ करके मुझको घरसे निकालदिया ॥ जोकि मेरी स्त्री और पुत्रने मुझे निर्द्धन करके निकाल दिया है इस सबब से मैं दुःखी होकर इस जंगल में चलाआया भाई बन्धुने भी न्याय करके मेरे स्त्री और पुत्रको नहीं समझाया और उन सबने भी मुझे त्याग दिया ॥ अब मैं तो इस वनमें हूं और मुझको अपने स्त्री पुत्र भाई बन्धु के कुशल अकुशल की कुछ खबर नहीं है ॥ कि वे लोग अपने घरमें कुशल क्षेम से हैं या नहीं और यह भी नहीं जानता कि

मेरे लड़कों का कारबार अच्छीतरह चलता है या बिगड़गया और वे लोग अच्छा काम करते हैं या नहीं ॥ यह बात समाधि से सुनकर राजा सुरथ बोला कि जब तेरी स्त्री और पुत्रादि लालची इन्होंने तेरा सब धन लेकर तुझे घर से निकाल दिया तब फिर उनलोगों की ममता अपने जीमें क्यों रखता है ॥ वैश्यने कहा कि हे महाराज ! आप का कहना सब सत्य है परन्तु मैं क्याकरूं मेरा जी मेरे वश में नहीं है इसी सबब से उन लोगों की ममता मुझ से छोड़ी नहीं जाती है। यद्यपि मेरी स्त्री और पुत्र और भाई बन्धु ने धन के लालच से मेरी ममता छोड़कर मुझे घरसे निकाल दिया पर तौभी मेरे जीमें उन लोगोंकी ममता भरी हुई है ॥ हे महामते ! यह कैसी बातहै कि मैं जानकर अनजान होता हूं कि जिन भाई बन्धु ने शत्रुता करके मुझ को घरसे निकाल दियाहै उनकी ममता से मेरा जी अलग नहीं होता है ॥ और उन लोगों के देखे बिना शोच से लम्बी श्वासें निकलती हैं और जीमें उदासी छाई रहती है हे महाराज ! मैं क्याकरूं कि जिस में मेरा चित्त इन लोगों की प्रीति छोड़कर निष्ठुर होजाय॥ मार्कंडेय जी कहते हैं कि हे द्विजोत्तम ! बाद इस के वह समाधि वैश्य और राजा सुरथ मेधाऋषि के पास गये॥ और वहां जाकर मुनि को न्यायपूर्वक प्रणाम करके स्तुति कीया मुनिने भी दोनों मनुष्यों को आशीर्वाद देकर बैठने की आज्ञादी तब राजा और वैश्यने वहां बैठकर कुछ कथा वार्ता कहना आरम्भ किया॥ यहां तक कि महाराज सुरथने ऋषिसे कहा कि हे भगवन् ! आप से एक बात सन्देह की पूंछताहूं ! कहिये मुनिने कहा कि जो चाहो पूंछो राजा ने कहा कि मेरा चित्त मेरे वश में नहीं है इस वास्ते मुझको मन से दुःख होता है॥ और वह यह है कि मुझको अपने राज्य और नौकर चाकर हाथी, घोड़ा, असबाब, ख़जाना आदि में बहुत ममता रहती है यद्यपि मैं जानता हूं कि अब मैं इन सब से अलग होगयाहूं अब इन सब में प्रीति रखने से दुःख होगा परन्तु तौभी अज्ञानीके समान इन सब में मेरा जी फंसा रहता है॥ और यह जो मेरे साथ वैश्य है इस को भी इस के बेटे और स्त्री और नौकर चाकर भाई बन्धु ने इसका धन लेकर घरसे निकालदिया परन्तु इसका चित्त उन्होंकी प्रीतिसे अलग नहींहोता।मैं और वैश्य दोनों मनुष्य इस बात में बहुत दुःखी होरहे हैं कि यद्यपि उन लोगों की खुटाई को जानते हैं तौ भी उन सबकी ममता हम लोगों के जीसे नहीं जातीहै। हे महाभाग ! आप बतलाइये कि किस सबबसे हमलोगोंका जी अपने वशमें नहीं

है जो जानबूझकर अंधोंकी तरह उन सब की प्रीतिमें अज्ञान होरहे हैं और यह अज्ञानता तो उनको होना चाहिये जिनको ज्ञान नहीं है। यह प्रश्न महाराज सुरथका सुनकर मेधाऋषि बोले कि हे महाराज! इस संसार के विषय समझनेमें सब किसी को ज्ञान है और यह विषयभी सब किसी का अलग अलग है, क्योंकि–कितने जानवर दिनमें अन्धे हैं और कितने रात्रि में अन्धे हैं और कितनोंको दिनरात्रि बराबर सूझता है और कितनों को कुछ नहीं सूझता, केवल मनुष्यही को ज्ञान नहीं है किन्तु पशु और पक्षीको भी ज्ञान होता है जो ज्ञान पशु पक्षीको है वह ज्ञान मनुष्य को भी है, इस सबब से दोनों बराबर हैं, देखो पक्षी सब भूखसे पीड़ित रहते हैं और जानते हैं कि बच्चोंके खानेसे हमारी भूख नहीं जायगी तौ भी ममता के वश होकर अपना आहार बच्चोंके मुखमें देदेते हैं आप भूखे रहजाते हैं॥ हे महाराज! मनुष्यलोग भी अपने उपकार की आशापर अपने लड़कों को पालते हैं क्या तुम नहीं देखते हो जो सब मनुष्योंको ज्ञान है पर तौ भी संसारके पालनेवाले परमेश्वरकी जो महामाया है उसके प्रभाव से मनुष्यलोग घिरकर मोहके कुएमें गिरपड़ते हैं अथवा गिरायेजाते हैं॥ महामाया के ऐसे प्रभाव में सन्देह न करना चाहिये क्योंकि–यह योगनिद्रा महामाया जगत्पति श्रीविष्णु भगवान्‌की है जिनकी माया में जगत् मोहित है॥ और यह महामाया भगवती देवी ज्ञानियोंके चित्तको खींचकर भी मोह में फँसादेतीहै और वही भगवती इस चराचर जगत् को उत्पन्न करती है और वही भगवती प्रसन्न होकर और वरदान देकर मनुष्योंको मुक्ति भी देती है। और वह भगवती परमविद्या का स्वरूप और मुक्ति का कारण और सनातनी है और वही भगवती संसार के बन्धन का कारण और सम्पूर्ण ईश्वरों की ईश्वरी है॥ यह सुनकर राजासुरथ बोला कि हे भगवन्! वह देवी कौन है, जिनको आप महामाया कहते हैं और किसतरह उनकी उत्पत्ति है? और क्या उनका चरित्र है॥ मैं उनका स्वरूप और स्वभाव आपसे सुना चाहता हूं विस्तार पूर्वक कह सुनाइये ऋषि बोले कि वह भगवती नित्या और जगन्मूर्त्ति है यह सम्पूर्ण जगत् उन्हीं का बनाया हुआ है और उनकी उत्पत्ति और चरित्र बहुत तरह के हैं संक्षेप में कहता हूं सुनो॥ कि जब देवतालोग अपना कार्य्य सिद्ध होने के वास्ते उनकी स्तुति करते हैं तब वह उनलोगों का कार्य्य सिद्ध करने के वास्ते लोकमें उत्पन्न होती हैं परन्तु तौ भी वे नित्या कहलाती हैं कल्प के अन्त में जगत् एकार्णव होजानेपर जब विष्णुभगवान् शेष शय्या के ऊपर योगनिद्रा

में प्राप्त हुये यानी सोगये ॥ तब उनके कानके मैलसे दो असुर महाघोर मधु और कैटभ नाम उत्पन्न होकर ब्रह्मा के मारने के वास्ते मुस्तैद हुये ॥ तब ब्रह्माने जो विष्णुभगवान की कमलनाभि में स्थित थे उन दोनों उग्र असुरों को देखा और जनार्दन विष्णुभगवान् को सोया हुआ देखकर ॥ उनके जगाने के वास्ते विष्णुभगवान् के नेत्र मे जो योगनिद्रा वास किये हुये थीं, उन्हीं की स्तुति जी लगाकर करने लगे ॥ अर्थात् जो भगवती योगनिद्रा विश्वेश्वरी संसारकी स्थिति और संहार करने वाली और अतुल तेज भगवान् विष्णु की शक्ति हैं ॥ उनकी स्तुति इसतरहसे ब्रह्माजी करने लगे कि हे भगवती ! स्वाहा और स्वधा और वषट्कार स्वरूपिणी आपही हैं और स्वर स्वरूपिणी और स्वधा आप ही हैं और नित्य अक्षरों में तीन तरह से मात्रास्वरूपिणी होकर आप विराजमान हैं ॥ और अर्द्धमात्रारूपिणी होकर आप स्थित रहती हैं और आप नित्या हैं जिनको विशेष पूर्वक कोई उच्चारण नहीं करसकता है वे आपही हैं और सावित्री और हे देवि ! सब की परमजननी आपही हैं ॥ सब जगत् की धारणा और सृष्टि और पालन करनेवाली और अन्त में सब का नाश करेनवाली भी आपही हैं ॥ और हे जगन्मये ! आप संसार की सृष्टिरूपा और पालन में स्थितिरूपा और फिर इसीतरह नाश करने में संहाररूपा हैं ॥ और महाविद्या और महामाया और महामेधा और महास्मृति और महामोहा और भगवती और महादेवी और महासुरी आपही हैं ॥ फिर सब किसी की त्रिगुणमयी प्रकृति और दारुणा अर्थात् भयावनी कालरात्रि और मोहरात्रि आपही हैं ॥ और श्री और ईश्वरी और ह्रीं अर्थात् लज्जा वीर्य और बुद्धि और बोध और लक्षणा और लज्जा यानी लाज और तुष्टि और पुष्टि और क्षान्ति भी आपही हैं ॥ खड्गिनी, शूलिनी और घोरा अर्थात् एक हाथमें मुण्ड धारण किये भयंकरी हो । गदिनी, चक्रिणी, शंखिनी, चापिनी और बाण, भुशुण्डी, परिघ यह सब आयुध महाकालीरूप धारण करके दशों भुजों में आप रखती हैं । आप सौम्या हैं, सौम्यतरा हैं और सब सौम्यों से अतीव सुन्दरी हैं । सब से परे, परमा और परमेश्वरी हैं इस से आप परमेश्वरी कहलाती हैं ॥ हे अखिलात्मिके ! जहांपर जो कुछ सत् या असत् वस्तु है उनमें जो शक्ति है वह आपही हैं तो फिर आपकी स्तुति कहाँ तक कीजाय, जिस महामायाशक्ति से विष्णुभगवान् जगत् की उत्पत्ति, पालन और नाश करते हैं वह भी इससमय

निद्राके वशमें हैं तब तुम्हारी स्तुति कौन करसक्ता है क्योंकि विष्णु, हम और महादेव आपही की आज्ञासे शरीरधारण करते हैं तो आपकी स्तुति करनेकी किस को सामर्थ्य है, और हे देवि ! आपका इसतरह उदार प्रभाव जो असाधारण माहात्म्य है उसी माहात्म्य से आपकी स्तुति होती है, हे महामाये ! आप इन दोनों दुराधर्ष मधुकैटभ असुरों को मोह में प्राप्त करदीजिये और आप जल्दीसे जगत्स्वामी अच्युत भगवान् विष्णु को जगाकर इन महाअसुरों को मारने के वास्ते मुस्तैद कीजिये ऋषि कहते हैं कि हे महाराज सुरथ ! इस तरह उससमय विष्णुभगवान् के जगाने और मधुकैटभ असुर के मारने के वास्ते ब्रह्माजीने जब तामसी महाकाली की स्तुति की तब वह महामाया विष्णुभगवान्के नेत्र, नासिका बाहु, हृदय और छाती से निकलकर ब्रह्माजी को दर्शन देने के वास्ते बाहर खड़ी होगई योगनिद्रा महामाया के बाहर निकलने से विष्णुभगवान् शेषशय्या से उठबैठे और उस एकार्णव में उन दोनों असुरों को देखा और उन दोनों ने भी इनको देखा फिर वह दोनोंअसुर दुरात्मा महाबली पराक्रमी मधुकैटभ क्रोधसे आंखें लाल कियेहुए जब ब्रह्माजी को मारनेको तयार होगए तब भगवान् विष्णु उन दोनों असुरोंके साथ बाहुयुद्ध करनेलगे और वह बाहुयुद्ध पांच हजार वर्षतक होतारहा तब वह मधुकैटभ महामाया की माया में मोहितहोकर केशव भगवान् से बोले कि हम दोनों तुम्हारे इस युद्धसे बहुतप्रसन्न हुए अब तुम हम से वरमांगो जो मांगोगे हमदेंगे । विष्णु भगवान्ने कहा कि जो तुम दोनों प्रसन्न होकर मुझे वरदेना चाहतेहो तो मैं यही वरदान चाहता हूं कि तुम दोनों मेरेहाथ से मारेजावो ॥ मेधाऋषि कहते हैं कि-हे राजा सुरथ ! इसप्रकार मधुकैटभ विष्णुभगवान् के वाक्य फन्दमें आकर और सब जगत् को जलमय देखकर विष्णु भगवान् से बोले कि एवमस्तु पर जहां जल न हो वहांपर हमको मारो । ऋषि कहते हैं कि इसप्रकार मधुकैटभ के कहने पर उन शंख चक्र गदाधारी विष्णुभगवान्ने बहुत अच्छा कहकर अपनी जांघ को बिना पानीकी जगह समझकर उस का माथा उसी जांघपर रखकर सुदर्शन चक्र से काटडाला विष्णुभगवान् का शरीर पंचतत्त्व से नहींबना है शुद्ध माया कृत है, इसप्रकार वह दश भुजावाली महाकाली उत्पन्नहुई हैं जिनकी स्तुति ब्रह्माजीने की है, अब फिर वहीं त्रिगुण मयी महालक्ष्मीजी का अवतार हुई हैं, सो कहता हूं ॥ इति इक्यासीवां अध्याय समाप्त ॥

बयासीवाँ अध्याय

मेधाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ ! पूर्व काल में असुरोंका स्वामी महिषासुर था और देवताओं के स्वामी इन्द्र थे उस समय देवताओं और असुरों में सौ वर्ष तक युद्धहुआ, उस युद्ध में बड़े २ बली राक्षसोंने सम्पूर्णदेवताओंको जीतलिया तब महिषासुर आप इन्द्र हुआ ॥ तब देवतालोग पराजित होकर ब्रह्मा प्रजापति के पास गये और फिर ब्रह्माजी को आगेकर जहां विष्णुभगवान् और महादेवजी थे वहांगये ॥ और उन से युद्ध का सब वृत्तान्त जिस तरह महिषासुर विजयपाकर इन्द्रहुआ वह सब देवतोंने कह सुनाया ॥ और कहा कि हे भगवन् ! सूर्य और अग्नि इन्द्र और वायु और चन्द्रमा और यम और वरुणादि सब देवतोंका अधिकार महिषासुर आप कर रहा है ॥ और सब देवतों को उस ने वहां से निकालदिया अबदेवतालोग मनुष्यों की तरह पृथ्वी में मारे मारे फिरते हैं ॥ हे महाराज ! महिषासुर के उत्पात का हाल विस्तारपूर्वक आपको कहसुनाया और हमलोग आप की शरणागत हैं अब जिस में वह राक्षस माराजाय सो कीजिये ॥ देवतों का यह वचन सुनकर महादेव जी और विष्णुभगवान् बड़ेकोप को प्राप्तहुये कि जिस से भृकुटी और मुख तमतमा गया ॥ तत्पश्चात् उसी कोप की व्यवस्था में भगवान् विष्णुके मुख से एक महातेज निकला फिर उसीतरह ब्रह्मा जी और महादेव जी के मुखसे भी निकला ॥ फिर इन्द्रादि जितने जितने देवता लोग वहांपर थे उन सब के शरीर से भी जो तेज निकला वह सब इकट्ठा होगया ॥ फिर उस तेजको देवतालोग क्या देखते हैं कि वह तेज जलते हुए पहाड़ के समान होगया और ज्वाला उसकी सम्पूर्ण दिशाओं में छागई ॥ फिर वही अतुलतेज जो सम्पूर्ण देवतों के अंग से निकला था एक स्त्री का रूप बनगया जोकि उस ज्वाला में रजोगुण ब्रह्मा और सतोगुण विष्णु और तमोगुण महादेवजी का तेज भी इकट्ठा होगया था इस कारण से वह स्त्री त्रिगुणा अष्टादश भुजा से प्रकट होकर लोक में महालक्ष्मी कहलाई ॥ महादेवजी के तेजसे उन महालक्ष्मीजी का मुख श्वेत और यम के तेज से शिरके बाल श्यामरूप और विष्णुभगवान् के तेज से श्यामरंग उनकी अष्टादश भुजाहुईं ॥ और चन्द्रमा के तेज से दोनों स्तन गोरे और इन्द्र के तेज से शरीर का मध्यभाग रक्तवर्ण हुआ और वरुण के तेज से जंघा और ऊरु और पृथिवी के तेज से नितम्ब हुआ ॥ और ब्रह्मा के तेज से दोनों चरण लाल और सूर्य के तेज से चरणों की अंगुलियां हुईं और वसुओं के तेजसे दोनों

हाथों की अंगुलियां और कुबेर के तेज से उनकी नासिका हुई॥ और दक्षप्रजापति के तेज से सब दांत और अग्नि के तेजसे तीन आंख उनकी हुईं॥ और दोनों सन्ध्या के तेजसे उनकी दोनों भ्रुकुटी और वायु के तेजसे दोनों कान हुये तात्पर्य यह है कि इसी तरह सब देवतों के तेजसे वह महालक्ष्मी शिवा प्रकट हुई॥ तत्पश्चात् वे सब देवता लोग जो महिषासुर के त्रास से अत्यन्त पीड़ित होरहे थे उस तेजोराशिसे उत्पन्न महालक्ष्मी जी को देखकर अति हर्षित हुये॥ उस समय महादेवजी ने अपने शूल से एक दूसरा शूल और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने अपने चक्र से एक चक्र उत्पन्न करके उन को दिया॥ और वरुण ने एक शंख और अग्निने अपनी शक्ति और वायुने धनुष और तीरों से भरे हुये दो तर्कस उन को दिये॥ और देवताओं के पति इन्द्रने अपनेवज्र से एक वज्र और ऐरावत हाथीसे उतार कर घण्टा महालक्ष्मीजी को दिया, यमराज ने अपने कालदण्ड से एक दण्ड, वरुण ने फांस, दक्षप्रजापति ने अक्षमाला और ब्रह्माजी ने कमण्डलु दिया। सूर्य्य ने उनके सम्पूर्ण रोमकूपों में अपनी किरणें भरदीं और काल ने खड्ग और एक अमल ढाल दिया। क्षीरसमुद्र ने एक बहुतअच्छा हार और दिव्याम्बर, दिव्य चूड़ामणि अर्थात् शिरके भूषणके लिये रत्न दिया, दोनों कानोंके कुण्डल और पहुँची, अर्द्धचन्द्रमा के समान स्वच्छ ललाट के भूषण और अठारहों बाहु में बिजायठ, बाजूबन्द, दोनों चरणोंमें नूपुर, गलेका उत्तम कण्ठा और सब अंगुलियों में जड़ाऊ अंगूठी उनको विश्वकर्मा ने दी और निर्मल फरसा तथा और भी अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्रादि और अभेद्य दंशन अर्थात् किसी हथियार से नहीं काटनेयोग्य बख्तर भी दिया, शिर और गले में पहिरने के लिये निर्मल कमल की माला और हाथमें रखने के लिये अति शोभायमान कमल उनको जलधि नाम समुद्र ने दिया, हिमवान् पर्वत ने नानाप्रकार के रत्न और सवारी के लिये सिंह दिया, कुबेरने सुरा से भराहुआ पीनेका पात्र दिया और शेषजी जो सब नागोंके पति और पृथ्वी को शिरपर उठायेहुए हैं उन्होंने रत्नजटित नागहार दिया, इन महालक्ष्मी के अठारह भुजा तो विशेष मैंने वर्णन किये परन्तु हथियारों के धारण करने से हजार भी भुजा होती हैं इस में अष्टादश भुजा उनका विशेषरूप है. ब्राह्मी, वैष्णवी और शैवी यह त्रिगुणा महालक्ष्मी आदि शक्ति के अवतार हैं. यह सब विस्तारपूर्वक वैकृत रहस्य में लिखा है फिर वह देवी बहुत हथियारों और भूषणों से संयुक्त होकर

वारम्बार प्रसन्नता से बड़े उच्चस्वर से गर्जना संयुक्त हुईं उनके गर्जने से सम्पूर्ण लोक दहलगये॥ किन्तु उनके महाशब्द से आकाश गूँज गया॥ जिससे सब लोकों में हलचल पड़गया और सातों समुद्र कांपनेलगे॥ और सम्पूर्ण पृथ्वी हिलगई पर्व्वत सब डोलगये यह देखकर देवतालोग हर्ष-संयुक्त उस सिंहवाहिनी महालक्ष्मी से बोले कि हे देवि! आपकी जयहो हमारे शत्रुओं को भय दीजिये॥ इसी तरह मुनिलोग भी भक्तिपूर्वक देवीजी को प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे और यह दशा देखकर तीनों लोक और जितने राक्षस थे सब व्याकुल होगये॥ और सब राक्षस लोग अपने अपने अस्त्र शस्त्र लेलेकर युद्ध करनेकेवास्ते उपस्थित होगये और महिषासुर भी मारे क्रोध के आश्चर्य से घबड़ाकर॥ सब असुरों को साथ ले जिस तरफ से गर्जने की आवाज आती थी दौड़ा और वहां जाकर महालक्ष्मी को देखा कि उनकी ज्योति संपूर्ण लोकों में फैलरही है॥ और उनके चलने से पृथ्वी झुकगई है और उनके शिर के किरीट से सम्पूर्ण आकाश प्रकाशवान होरहा है और उनके धनुष के खींचने की आवाज से सम्पूर्ण लोक और पाताल डोलरहे हैं॥ और आप भगवती अपने हज़ारों भुजों से सब दिशाओं को व्याप्त करके विराजमान होरही हैं ऐसा रूप उनका देखकर राक्षस लोग उनसे युद्ध करनेलगे॥ उस युद्ध में सबतरहके हथियार चलने की चमकसे सब दिशा प्रकाशमान होरही थीं उस समय महिषासुर के सेनापति चिक्षुरनाम महाअसुर ने भगवती से बहुत युद्ध किया॥ और चमरनाम असुरभी बहुत से शूरवीर राक्षसों की चतुरंगिणी सेना साथ लेकर बहुतलड़ा और उदग्रनाम असुर साठहजार रथ अपने साथ लेकर युद्ध करने के वास्ते आया॥ और इनुनाम असुर करोड़सेना लेकर देवीकेसाथ लड़ा और असिलोमा नाम महा असुरने पांच करोड़ सेना लेकर युद्ध किया॥ और बाष्कलनाम असुर साठलाख असुर लेकर रणमें आया और युद्ध किया और बिडालनाम असुर कितने हजार हाथी, घोड़े और एक करोड़ रथ साथलेकर आया और युद्ध किया निदान जब सबसेना उसकी काम आई तो पांचलाख रथ अपने साथ लेकर उस संग्राम में आया और युद्ध किया और भी उस युद्धमें दश २ हजार रथ, हाथी और घोडे साथ में लियेहुए कितने असुरों ने देवीसे युद्धकिया तद-नन्तर कोटानुकोट सहस्रथ और हाथी घोड़े साथ लेकर उस रण में महिषासुर आया. तोमर, भिंदिपाल, शक्ति, मुशल, खड्ग, फरसा और किर्च इत्यादि हथि-

यारों से भगवती के साथ लड़नेलगा अर्थात् कोई असुर तो शक्ति और कोई फरसा इत्यादि चलाता था तथा और भी नामी असुरलोग देवी के ऊपर खड्ग इत्यादि चलाते थे परन्तु उस चण्डिका देवी ने उन असुरों के हथियारों को वे परवाही के साथ खेल की तरह अपने हथियारों से काटकर खण्ड खण्ड करडाला तब देवता और ऋषि स्तुति करनेलगे । देवीजी उन असुरोंके अस्त्र शस्त्रको काट कर उन लोगोंके ऊपर अपने हथियारों का वार करनेलगीं और उनका वाहन सिंहभी क्रोध से ॥ जिस तरह अग्नि चारोंतरफ फैलकर जंगलको जलाकर क्षारकर देताहै उसी तरह असुरों की सेना में वह सिंह विचरने लगा और असुरों को मारमार कर गिराने लगा और उस समय अम्बिका देवी की स्वास से ॥ लाखों गण उत्पन्न हुये और वे लोग फरसा और भिन्दिपाल और तलवार तेगा किर्च इत्यादि से असुरों के साथ युद्ध करने लगे ॥ और असुरों को मारने लगे देवी के प्रभाव से प्रसन्न होकर सब देवतालोग खुशी का नगारा बजाने लगे और कोई शंख और कोई॥ उस रण के महाउत्सव में मृदंग बजाते थे तब देवी ने त्रिशूल और गदा और बाणों की वृष्टि से ॥ और खड्ग इत्यादि से लाखों असुरों को मारडाला और कितनों को घण्ट के शब्द से मोहितकर पृथ्वी पर गिरादिया ॥ और कितनोंको पाश में बांधकर खींच खड्ग से काट डाला ॥ और कितने असुरों को गदा से मारडाला और कितने उस गदा की मार से पृथ्वी पर अचेत हो पड़े थे और कितने बारम्बार मुसल की मारसे रक्त वमन करते थे ॥ और कितने छाती में शूल के घाव लगने से और कितने बाणों के घाव लगने से उस रणाजिर में मरपड़े थे ॥ और जो असुरलोग उस रण में सेनाके आगे चलते थे वे लोग कितने तो बाणों के लगने से मरगये और कितनों की भुजा कटगई और कितनों का गला छिदगया ॥ और कितनों का शिर कटकर गिरपड़ा और कितने राक्षसलोग आधे धड़ से कटकर मरगये और कितने जांघ कट जाने से पृथ्वीपर गिरपड़े थे ॥ और किसी की एकही बांह कटकर गिरी पड़ी थी और किसी की आंख ही फूट गईथी और किसी का एकही पांव कटगया था और किसी को देवी ने काटकर दो आधाकर दिया था और कितने शिर कटजानेपर भी गिरकर फिर उठके ॥ कबन्ध हथियार लेकर देवी से युद्ध करते थे और उस युद्ध में कोई बाजे के स्वर की लय का आश्रयण कर नृत्य करते थे ॥ और कितने असुरों के शिर तो कटगये थे

परन्तु कवच और खड्ग और शक्त्यृष्टि जिस के दोनों तरफ धारहोती है हाथमें लिये हुये तिष्ठ तिष्ठ करते हुये भगवती से युद्ध करते थे॥ जिस स्थानपर देवी से युद्ध हुआथा वह स्थान हाथी घोड़ों और रथ और असुरों के कटेहुये शिरों से भरा हुआ था॥ हाथी और घोड़ों और असुरों के रुधिर से उस स्थानपर बड़ जोर शोर से एक दरिया वह निकला। और जिसतरह सूखेहुये तृण और काठके ढेरको अग्नि बहुत जल्द जलादेता है उसीतरह अम्बिका देवीने असुरोंकी सेना को एक क्षणमात्र में नाश करडाला और जब वह सिंह देवीका वाहन शिर उठाकर गर्जता तो ऐसा जानपड़ता कि मानो उस की गर्जन ने असुरों का प्राण निकाललिया और देवीके गणलोग जो असुरोंसे युद्ध करते थे उनके ऊपर देवतालोग प्रसन्न होकर सुमनवृष्टि करते थे। इति बयासी वां अध्याय समाप्त॥

तिरासीवाँ अध्याय।

मेधाऋषि बोले कि हे महाराज सुरथ! महिषासुर के सेनापति चिक्षुर नाम असुर ने जब सेना को नाश होतेहुए देखा तब बड़े क्रोधसे आप अम्बिका देवी के सन्मुख युद्ध करनेको आया और जैसे मेघ मेरु पर्वतके ऊपर जल बर्षाता है वैसे ही वह असुर देवी के ऊपर अपने बाणों की वृष्टि करनेलगा परन्तु देवी ने अपने बाणोंसे उसके बाणोंको खेलकी तरह काटडाला और उसके घोड़ेको भी कोचवान सहित मारडाला, उसके धनुष और रथके ध्वजाको भी काटडाला और फिर अपने बाणों से उसके सारे शरीर को छेदडाला, परन्तु वह असुर धनुष, रथ, घोड़ा और सारथि के कट जानेपर भी तलवार लेकर देवीके सामने दौड़ा और तीक्ष्ण खड्ग सिंहके शिरपर मारकर जल्दी से एक वार देवीकी बाईं भुजापर किया, ऋषि कहतेहैं कि हेसुरथ! वह खड्ग उसका देवीकी भुजापर पड़ने में खण्ड२ होकर पृथ्वीपर गिरपड़ा तब उस असुर ने क्रोधसे लाल नेत्र करके शूल को उठालिया और देवीपर चलाया तब वह शूल आकाश में जाकर फिर वहां से सूर्यसमान सम्पूर्ण दिशाओं को प्रकाशवान करताहुआ भद्रकाली के ऊपर चला तब भगवती ने उस शूल को अपनी तरफ आते हुये देखकर अपने शूल से उस शूल के सैकड़ों टुकड़े करडाले और उस असुर को भी मारडाला॥ उस सेनापति के मरने के बाद चामर नाम असुर हाथीपर सवार होकर देवी से युद्ध करने के वास्ते सम्मुख आया॥ और देवीके ऊपर शक्ति चलाई तब देवीने उस शक्ति के तेज को भी उसी समय हुंकारशब्द से हरण करके पृथ्वीपर गिरादिया॥ तब चामर ने अपनी

लोग गानेलगे और अप्सरायें नृत्य करने लगीं, इति तिरासीवां अध्याय समाप्त ॥

चौरासीवाँ अध्याय

मेधाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ ! जब देवी ने उस अत्यन्त पराक्रमी दुरात्मा महिषासुर को और उसकी सेना को मारडाला तब इन्द्रादि सब देवता शिर और कन्धा झुकाय अतिहर्ष से सुन्दर रोमांचित शरीरहो वचन करके देवी की स्तुति इस तरहपर करनेलगे ॥ कि हम सब लोग भक्तिपूर्वक उस अम्बिकादेवी को प्रणाम करते हैं जो सब देवतों के तेज से उत्पन्न हैं और वह अपनी शक्ति से इस सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करके सब ठौर व्याप्त रहती हैं और जिनको बड़ेबड़े ऋषिलोग पूजते हैं वह देवी हम लोगों का कल्याण करैं ॥ और वह देवी कैसी हैं कि जिनका अतुल प्रभाव वर्णन करने में ब्रह्मा विष्णु और महादेव थकित हैं वह चण्डिका भगवती जगत्का पालन करैं और पाप करके जो भय उत्पन्न होता है उसके नाश करने में सदा चित्त रक्खैं ॥ हे देवि ! आप सुकृती लोगों के घर में लक्ष्मी होकर और पापियों के घरमें दरिद्रबनकर और निर्मल चित्तवालों के चित्त में बुद्धि होकर और सतवालों के हृदयमें श्रद्धा और कुलीनों के हृदय में लज्जा होकर स्थित रहती हैं आप को हम लोग प्रणाम करते हैं हे देवि ! इस पृथ्वी का आप पालन कीजिये ॥ हे देवि ! आपके इस अचिन्त्यरूप, असुरों को क्षय करनेवाले पराक्रम और समर में आपके चरित्र का हम सभों से किस प्रकार वर्णन होसक्ता है ॥ आप अचिन्त्य हैं और सब जगत् की कारण सतोगुण रजोगुण तमोगुण संयुक्त हैं तो फिर राग इत्यादि से आप को कौन जानसक्ता है विष्णु और महादेव भी आप की अपार महिमाको नहीं जानसक्ते क्योंकि सब जगत् आप के आश्रय और आप के अंश से पैदा है और आप सब विकारों से रहित हैं और परम आदि प्रकृति हैं ॥ हे देवि ! यज्ञादि में आपही के नाम लेने से देवतालोग और पितृकर्म में पितरलोग तृप्तहोते हैं आपही का नाम स्वाहा और स्वधा है इसी लिये देवकर्म में स्वाहा और पितृकर्म में स्वधा उच्चारण करते हैं ॥ हे देवि ! जोकि आप मुक्ति की कारण अचिन्त्य हैं और दया सत्य ब्रह्मचर्य्य इत्यादि आप का साधन है और सम्पूर्ण दोषों को भंजन करनेवाली ब्रह्मज्ञानस्वरूप विद्या आपही हैं इस लिये मोक्ष चाहनेवाले जितेन्द्रिय मुनि लोग राग इत्यादि को छोड़कर और साक्षात् ब्रह्म आपही को जानकर सदा ध्यान कियाकरते हैं ॥ हे देवि ! दोषों

से रहित ऋचावाली यजुर्वेद पठित मन्त्रों का कारणयुक्त सुन्दर पदपाठवाली सामवेदपठित मन्त्रों का शब्दस्वरूपिणी तीनों वेदमयी आपही हैं और सब जगत् का संकट हरनेवाली और प्राणियों के जीवन के वास्ते कृषी और वाणिज्य पशुपाल इत्यादि कर्म और वार्त्ता भी आपही हैं ॥ हे देवि! मेधा और सरस्वती सब शास्त्रों की जाननेवाली और दुर्गम संसारसागर से ज्ञानरूपी अभंग नौका होकर पार करनेवाली दुर्गा आपही हैं क्योंकि गोकुल नौका में खेनेवाले इत्यादि का संग रहता है और विष्णु के हृदय में रहनेवाली लक्ष्मी और महादेव जी के अर्द्धांग में रहनेवाली गौरी आपही हैं॥ हे देवी! बड़े आश्चर्य कीबात है कि आप के मुसकरातेहुये मुखको जो पूर्णमासी के निर्मल चन्द्रमा और उत्तम सुवर्ण की ज्योतिसमान है देखने पर भी महिषासुर का चित्त समर में आसक्त न हुआ और उसका क्रोध न शांतहुआ वह महिषासुर बड़ा क्रूर था जो आपके ऐसे मुखको जो सम्पूर्ण जगत् को मोहने वाला है देखकर मोहित न हुआ॥ हे देवि! आपकी क्रोध संयुक्त तिरछी भौंहैं और करालरूप उदयकालके लाल चन्द्रमासमान मुख आपका देखकर महिषासुर शीघ्रही वहीं न मरगया यह और भी आश्चर्य की बात है क्योंकि क्रोधयुक्त कृतान्तको देखकर कौन जीसकाहै? हे देवि! हमलोगों पर आप दयालु रहिये आप सदा दयावती हैं जब जब हम लोगोंपर कष्ट पड़ता है तब तब आप हमारे दुष्टों को नाश करदेती हैं यह सब बातें हम यथोचित जानते हैं क्योंकि—महिषासुर को सहित उसकी प्रबल सेना के इसी समय आपने नाश करदिया है॥ हे देवि! जिन लोगोंपर आप सदा दयालु और प्रसन्न रहती हैं वहीलोग धन्य हैं और उन्हींको महात्मालोग बड़ा समझते हैं और उन्हींलोगों को हमेशा धन और यश और अर्थ और धर्म और काम और मोक्ष प्राप्त होता है और उन्हीं के स्त्री और पुत्र और नौकर चाकर सदा पुष्ट रहते हैं॥ हे देवि! जिन पुण्यात्मा लोगोंपर आप दयालु रहती हैं वहीलोग आपकी दया से सदा श्रद्धायुक्त होकर नित्य नैमित्तिक आदि धर्मकर्म किया करते हैं आपहीकी दया से वे लोग धर्म कर्म करके स्वर्ग को प्राप्त होते हैं आप ही की दया से लोग ज्ञान पाकर मोक्ष पाते हैं और तीनों लोक में फलदाता आप ही हैं॥ हे देवि! जो कोई संकट में आपका स्मरण करता है उसका संकट निवारण करदेती हैं और जो लोग आपका ध्यान करते हैं उनको आप अविचल ज्ञान देती हैं दारिद्र्य और दुःख और भय की नाश

करनेवाली आपकी समान सर्व्वोपकारक और दयावान् चित्त दूसरा कोई नहीं है॥ हे देवि ! आपने इन्हीं दो बातों के वास्ते दैत्यों को मारा है एक तो संसार को सुखहो दूसरे दैत्यलोग पापी नारकी हैं संग्राम में मारेजाने से उनको स्वर्ग प्राप्त हो ॥ और हे देवि ! दैत्यलोग इस संग्राम में आपकी कोपदृष्टि से भस्म होसक्ते थे शस्त्र चलाने की कुछ आवश्यकता न थी परन्तु इस हेतु से उन लोगोंपर आपने शस्त्र चलाया कि आपका शस्त्र लगकर मरने से वे लोग निष्पाप होकर स्वर्गमें जावें इस से ज्ञात होता है कि दुष्टोंपर भी आपकी दया रहती है तो आपके भक्तों के भाग्यका वर्णन कहांतक किया जाय और हे देवि ! असुरों की आँखें जो आपके शूल और खड्गकी चमक से न फूटीं इसका यही कारण है कि आपके ललाट को वे लोग देखतेरहे जिसमें अमृत किरणयुक्तअर्द्धचन्द्रमा विराजमान है ॥ और हे देवि ! आपका स्वभाव सिद्ध गुण है जिससे पापियों का भी पाप नाश होता है और आपका अचिन्त्यरूप उपमा रहित है और आपने जो अपना पराक्रमदेवतों के सतानेवाले राक्षसों को दिखाकर मारा है तो इससे आपकी दयालुता प्रकट होती है ॥ और हे देवि ! आपका यह पराक्रम और दुष्टों को भय देनेवाला और उनको नाश करनेवालारूप और दुष्टों के ऊपर चित्त में तो दया और प्रकट में समर विषय उन लोगों के साथ कठोरता यह सब बातें तीनोंलोक में सिवाय आप के और किसमें हैं कि जिसके साथ आपकी उपमा दीजाय और हे देवि ! आपने समर में दुष्टोंका नाश करके जो तीनों लोक की रक्षाकरी है और उन शत्रुओं को स्वर्ग में प्राप्त किया है और हम सब का भय दूर किया है इन सब बातों के गुणानुवाद में सिवाय प्रणाम करने के और क्या हम सबसे होसक्ता है, हे अम्बिके देवि आप अपने शूल से और घंटा बजाने और धनुष चढ़ाने की आवाज से हम लोगोंकी रक्षा कीजिये । हे चण्डिके आप अपने शूल को घुमाकर पूर्व पश्चिम, दक्षिण और उत्तरदिशा में तथा इसीप्रकार चारों कोणोंमें भी हे ईश्वरी रक्षा कीजिये, आपका तीनों लोक में सृष्टि पालन करनेवाला और नाश करने वाला जो मंगल और भयानकरूप है ऐसे रूपसे हम सबकी और पृथ्वी की रक्षा कीजिये, हे अम्बिके ! आपके कर पल्लव में खड्ग, शूल और गदा इत्यादि जो सब अस्त्र विद्यमान हैं उन अस्त्रों से हम सबकी सर्वत्र रक्षा कीजिये । मेधा ऋषि कहतेहैं कि हे सुरथ जब इसप्रकार सब देवताओं ने नन्दनवन के दिव्य फूलों और गन्ध चन्दन इत्यादि से पूजन

और स्तुति जगद्धात्री भगवती की की और सम्पूर्ण देवताओं ने भक्तिपूर्वक दिव्य धूप के धूपसे जब भगवतीको प्रसन्न किया तब भगवती कृपा करके उन देवताओं की तरफ सन्मुख होकर बोलीं देवी ने कहा कि हे देवताओं जो तुम्हारी इच्छा हो वह मुझसे मांगो मैं दूंगी देवतों ने कहा कि हे भगवती आप हम लोगों की सब इच्छा पूर्ण करचुकीं अब कुछ बाकी नहीं है, क्योंकि—हम लोगों का शत्रु जो महिषासुर था उसको आपने मारा परन्तु हे महेश्वरी जो आप हमसबको वर देनाही चाहतीं हैं तो हम लोगों ने भी आपका बहुत ध्यान किया है एक तो हम सबकी परम विपत्तिको आप सदा प्रसन्न होकर नाश किया कीजिये और हे अमलानने इस स्तोत्रसे जोमनुष्य आपकी स्तुतिकर उसके ज्ञान और ऐश्वर्य्य संयुक्त धन और स्त्री औरपुत्र इत्यादि की वृद्धि के वास्ते हे अम्बिके सब दिन आप उसपर सहाय रहिये ॥ मेधाऋषि कहते हैं कि हे राजन्! इसतरह देवतालोगों ने अपने और दूसरोंके वास्ते भगवती की प्रार्थना की तब वह भद्रकाली प्रसन्न होकर एवमस्तु कहकर अन्तर्द्धान होगईं॥

हे राजन्! देवतों के शरीर से तीनोंलोक के उपकार के वास्ते जिसतरह देवी उत्पन्न हुई उसका वृत्तान्त तो सब तुमसे वर्णन किया॥ फिर जिसतरह दुष्ट दैत्यों और शुम्भ और निशुम्भ के मारने के वास्ते गौरी के शरीर से देवी जी प्रकट हुईं ॥ और सब लोकों की रक्षा और देवतों का उपकार किया उसका वृत्तान्त भी विस्तार पूर्वक वर्णन करता हूं सुनो॥इति चौरासीवाँ अध्याय

पिचासीवाँ अध्याय ।

ऋषि कहते हैं कि हे सुरथ! पूर्वकाल में शुम्भ और निशुम्भ दोनों असुरों ने अपने बल के अहंकार से इन्द्रका राज्य और सम्पूर्ण देवतों का यज्ञभाग हरण करके तीनों लोक को अपने वशमें कर लिया ॥ और सूर्य्य और चन्द्रमा और कुवेर और यम और वरुण का भी अधिकार छीनकर आपही करनेलगा ॥ इसीतरह पवन और अग्नि का अधिकार भी आपही करता था तब देवतालोग उसके डरसे कांपकर और पराजित होकर अपने राज्य से अलग होगये ॥ तौ भी उन दोनों असुरों ने देवताओं को चैन न लेने दिया सबको स्वर्गसे निकालदिया तबदेवताओंने अपराजिता देवीका ध्यान किया ॥ और शोचा कि भगवती ने हम सबको पूर्व ही वरदान दिया है कि जब तुम लोग विपत्ति में मेरा ध्यान करोगे तब मैं उसी समय तुम्हारी विपत्ति छुड़ादूंगी ॥ तात्पर्य यह है कि देवतालोग यह बात अपने जी में शोचकर हिमवन्त नाम गिरिराजपर गये और वहां जाकर विष्णु

माया भगवती की इसतरह स्तुति करने लगे ॥ कि उस देवीको हम लोग हित चित्त से प्रणाम करते हैं जो ब्रह्मादिकों से स्वर्ग इत्यादि का व्यवहार कराती है और कल्याण कराती है और सब की उत्पत्ति और पालन करनेवाली है ॥ और उसी देवी को हम सब हरसमय प्रणाम करते हैं जो सबका नाश करने वाली और आप अविनाशी है और गौरी है और सम्पूर्ण जगत् को धारण करनेवाली ज्योतिस्स्वरूपिणी परमानन्द रूपा है ॥ और प्रणतजनों का कल्याण करनेवाली और वृद्धि और सिद्धिदेने वाली भगवती जो पर्वतों की लक्ष्मी और शिवशक्ति और शर्वाणी हैं उनको हमलोग बारम्बार प्रणाम करते हैं ॥ संसारसागर से पार करनेवाली दुर्गा और सब जगत् का कार्य्य करनेवाली और परकीर्ति पुरुष में भेद ज्ञानरूपिणी और कृष्णा अर्थात् काली और धूम्रा अर्थात् जिनका रूप धुआं सा है उनको हमारा प्रणाम है ॥ और उस भगवती को हमारा बारंबार प्रणाम है जो संसार को स्थिर करनेवाली और अत्यन्त दयावान् और संसार में प्रवृत्ति करनेवाली अति रौद्रा है और सम्पूर्ण जगत् का कारण और देवशक्ति और क्रियारूप है ॥ जो देवी सब प्राणियों में विष्णुमाया मूल-विद्या कहलाती हैं उनको मन वचन कर्म से हमलोग प्रणाम करते हैं ॥ और जो देवी सब प्राणियों में चैतन्यरूप होकर विराजती हैं उनको हमलोग प्रणाम करते हैं ॥ और जो देवी सब प्राणियों में बुद्धि रूप होकर विराजती हैं उनको हम सबका प्रणाम है॥ और जो देवी सब प्राणियों में निद्रारूप होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है ॥ और जो देवी सब प्राणियों में क्षुधारूपहोकर रहती हैं उनको हमारा प्रणाम है और जो देवी सब प्राणियोंमें छायारूप होकर रहती हैं उनको प्रणाम है और जो देवी सब प्राणियों में शक्तिरूप होकर रहती हैं उनको हमारा प्रणाम है और जोदेवी सबजीवोंमें तृष्णा रूप होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है और जो देवी सब किसीमें क्षमा रूप होकर रहती हैं उनको हमारा प्रणाम है ॥ और जो देवी सब प्राणियों में जातिरूप होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है ॥ और जो देवी सब प्राणियों में लज्जारूप होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है ॥ और जो देवी सब प्राणियों में शान्तिरूप होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है ॥ और जो देवी सब प्राणियों में श्रद्धारूप होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है ॥ और जो देवी सब जीवों में कान्ति अर्थात् तेजरूप होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है ॥ और जो देवी सब

प्राणियों में लक्ष्मीरूप होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है ॥ और जो देवी सब जीवों में जीविकारूप होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है ॥ और जो देवी सब प्राणियों में स्मृति अर्थात् अनुभवरूप होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है और जो देवी सब प्राणियों में दयारूप होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है ॥ और जो देवी प्राणियों में तुष्टि अर्थात् सन्तोषरूप होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है ॥ और जो देवी सब प्राणियों में माता रूप होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है ॥ और जो देवी सब प्राणियों में भ्रांतिरूप होकर विराजती हैं उनको हमारा प्रणाम है । जो देवी सब प्राणियों में इन्द्रियोंकी मालिक और सबमें व्याप्त हैं उनको हम सबका प्रणाम है । फिर वह देवी जो चैतन्यशक्तिरूप होकर सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त हैं उनको मन वचन कर्मसे हमलोग प्रणाम करते हैं और जिस देवी ईश्वरी भगवतीकल्याणकी कारण की ब्रह्मा आदि देवताओंने पहिले स्तुति की है और महिषासुर के वध होनेपर अपना वाञ्छित मनोरथ सिद्ध होने से इन्द्र ने जिनकी सेवाकी है वह देवी हम लोगोंकी विपत्ति को नाश करके अत्यंत कल्याण करैं । वह देवी हमलोगों की सम्पूर्ण विपत्तिको हरण करैं, जिनकी स्तुति इससमय प्रबल दैत्यों से पीड़ित होकर हमलोग करते हैं और जो देवी हमलोगों के स्मरण करनेपर शीघ्रही सम्पूर्ण विपत्तिका नाश करती हैं ॥

मेधाऋषि कहते हैं कि हे राजा सुरथ इसप्रकार देवताओं के स्तुति करने से प्रसन्न होकर श्रीपार्वतीजी शिवशक्तिरूप से गंगास्नान करनेके बहानेसे देवताओं के सामने प्रकट हुई और उनलोगों से कहनेलगीं कि तुमलोग किसकी स्तुति करते हो तत्पश्चात् उनके शरीरसे सात्त्विकरूप सरस्वती शिवा प्रकट होकर देवताओं से कहनेलगीं कि तुम देवता लोग समर में शुम्भ और निशुम्भ असुरोंसे पराजित होकर फिर यहां इकट्ठा होकर हमारी स्तुति करते हो ॥ मेधा ऋषि कहते हैं कि हे सुरथ ! जोकि वह देवी श्रीपार्वतीजीके शरीरकोशसे प्रकट हुई इससे कौशिकी कहलाती हैं ॥ वह देवी उसी हिमाचल पर्वतपर रहने लगीं इनके प्रकट होने से अर्थात् निकलजाने से श्रीपार्वतीजी कृष्णा अर्थात् काली होगईं इसी से कालिका कहलानेलगीं ॥ दैवयोगसे उस अम्बिका देवी के मनोहर रूपको शुम्भ निशुम्भ के नौकरोंने जिन का नाम चण्ड मुण्डथा देखा ॥ वे दोनों अपने स्वामी शुम्भ के पास जाकरबोले कि हे महाराज ! एक स्त्री मनहरण अपने प्रकाश से सम्पूर्ण हिमाचल पर्वत

को प्रकाशमान किये हुये हैं ॥ ऐसा उत्तमरूप किसीका मैंने कभी नहीं देखा है निश्चय होता है कि वह कोई देवी है हे असुरेश्वर इस देवी को आप ग्रहण कीजिये॥क्योंकि वह स्त्री अत्यन्तसुन्दरी सब स्त्रियों में रत्न है हिमाचल पर्व्वतपर अपने शरीर के प्रकाश से दशों दिशा को प्रकाशित कररही है आपके देखने योग्य है उसको देखिये ॥ क्योंकि जितने रत्न और मणि और हाथी घोड़े त्रिलोक में रत्न हैं वे सब इस समय आपके घर में वर्त्तमान हैं ॥ जिसप्रकार ऐरावतगज रत्न को इन्द्र से छीनकर आपलाये और पारिजातवृक्षरत्न को घोड़ों में रत्न उच्चैःश्रवा घोड़े को लाये ॥ ब्रह्माका हंसयुक्त विमानरत्न भी आपने अपने बल से लाकर घर में रक्खा है जो अबतक वर्त्तमान है और महापद्मनामक निधि जो सब निधियों में रत्न है उसको भी आप कुबेर से छीनकर लेआये और अमल कंज की किंजल्किनी नाम माला समुद्र ने आपको डरकर देदी और वरुण का छाता जो सुवर्ण वर्षण करता है वह भी आपके घर में मौजूद है इसीप्रकार उत्तम स्यन्दन अर्थात् रथभी जो पहिले प्रजापति के पास था आपके घर में मौजूद है और मृत्युउत्क्रांतिदा नाम अर्थात् मौत देनेवाली मृत्युशक्ति भी आप छीन कर लेआये हैं और वरुणका पाश छीन कर आपके भाई निशुम्भ अपने हाथ में रक्खेहुए हैं और जोर रत्न समुद्र से उत्पन्न हैं वह सब निशुम्भ के हाथ में सर्व्व काल रहते हैं और अग्निने मारे डरके आपके पहिरने के लिये सुन्दर वस्त्र का आभरण देदिया है, हे दैत्येन्द्र इसीतरह जितने रत्न हैं वह सब आपने हरणकरके अपने पास रक्खे हैं तो यह कल्याणी स्त्रीरत्नको आप क्यों नहीं ग्रहण करते हैं॥ मेधाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ यह वचन चंड मुण्ड का सुनकर शुम्भने सुग्रीव नाम दूत को देवी के पास भेजा ॥ और उससे कहदिया कि मेरा यह हुक्म उसको सुनावो और जिसतरह वह राजी होकर आवै उसी तरह लेआवो ॥ तब वह दूत शुम्भ की आज्ञा पाकर उस पर्व्वतपर जहां देवीजी रहतीथीं जाकर कोमल शब्द से कहनेलगा ॥ कि हे देवि शुंभ नाम दैत्यों का राजा जो तीनों लोक का ईश्वर है उसका भेजा हुआ मैं आपके पास आया हूं ॥उसका हुक्म देवतालोग मानते हैं और वह सब देवताओं का भी ईश्वर है उसने जो संदेशा आपसे कहने को मुझ से कहा है वह मैं कहता हूं सुनिये॥ अर्थात् उसने कहा है कि यह त्रैलोक्य हमारा है और सब देवतालोग हमारे वश में हैं और सब यज्ञों का भाग पृथक् २ मैं ही लेता हूं ॥ और तीनों लोक में जो अच्छे अच्छे रत्न हैं वे सब मेरे पास हैं

जैसा कि हाथियों में रत्न ऐरावत हाथी मैंने इन्द्र से छीनलिया है ॥ और समुद्र मथन में जो उच्चैश्रवा घोड़ा रत्न निकला था उसकोभी देवतालोग हाथजोड़कर मुझे देगये ॥ और देवगण और गन्धर्वगण और नागगण के पास जो जो रत्न थे वे सबके सब मेरे पास मौजूद हैं ॥ और इस लोक में मैं तुमको रत्न समझता हूं इससे तुम मेरे पास चली आवो क्योंकि इससमय रत्नभोक्ता मैंही हूं ॥ मेरे पास अथवा मेरे छोटे भाई निशुम्भ के पास जहां तुम्हारी इच्छाहो आकर रहो और सेवा करो क्योंकि तुम रत्नरूप हो ॥ मेरी सेवा करने से तुमको अतुलधन प्राप्त होगा इन बातों का विचार करके मेरी स्त्री होकर रहो ॥ मेधाऋषि कहते हैं कि हे राजन् ! इसतरह जब असुरके दूतने देवीसे कहा तब वह दुर्गा भगवती जो जगत्केकल्याण के वास्ते शरीर धारण करती हैं मुसकराकर बहुतगंभीर शब्दसेबोलीं कि तुमने जो कहा वह सब सत्य है किञ्चित् मिथ्या नहीं है शुम्भ और निशुम्भ तीनोंलोक के मालिक हैं परन्तु स्वामी करनेके लिये जो मैंने प्रतिज्ञाकी है उसको किसप्रकार मिथ्या करूं प्रतिज्ञा छोड़ना बड़ा दोषहै मैंने मूर्खता से जो प्रतिज्ञा पहिलेकी है वह सुनो प्रतिज्ञा मेरी यहहै कि जो कोई समर में मुझको जीतले या जो मेरे अहंकारको किसीतरह तोड़दे अथवा जिस को मेरेबराबर बलहो वही मेरा पतिहोगा ऐसी सामर्थ्य जो शुम्भमें हो अथवा निशुम्भमें हो तो यहां आकर मुझको समर में जीतकर इसीसमय विवाहलें यह बात सुनकर दूत बोला कि हे देवि ! इस तरह घमण्ड की बात हमारे आगे मत बोलो तीनोंलोकमें ऐसा कौन पुरुष समर्थ है जो शुम्भ निशुम्भ के आगे खड़ारहै तुम तो स्त्रीहो और जो उनके दूसरे दैत्य लोग हैं उनके सामने भी कोई देवता समर में नहीं खड़ेहोसक्के तुम तो स्त्री और अकेली हो किसप्रकार समर में सामना उनका करसकोगी और जिन शुम्भ इत्यादि असुरों के आगे इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता मिलकर समरमें नहीं खड़े होसके हैं उन लोगोंके साथ तुम स्त्रीहोकर किसतरह रण चाहती हो, मेरा कहामानो तुम शुम्भ निशुम्भ के पास चलो नहीं तो कोई दूसरा दुष्ट दैत्य उनका आवैगा तो वो तुम्हारा सब घमण्ड तोड़कर और तुम्हारे शिरके बाल पकड़कर लेजायगा दूत की यह बात सुनकर देवी बोलीं कि सत्य है शुम्भ और निशुम्भ ऐसे ही बली और पराक्रमी हैं परन्तु क्याकरूँ मैं पहिले बिना विचारे ऐसी प्रतिज्ञा करचुकी हूं, अब दूसरी बात नहीं होसक्ती, अब तुम जावो और जो कुछ मैंने तुमसे कहा है वह सब न्यूनाधिक बिना, असुरों के स्वामी शुम्भ से जाकर कहो फिर इस बात में

जो यत्न वह सोचेंगे करेंगे । इति पिचासी वाँ अध्याय समाप्त ॥

छियासीवाँ अध्याय ।

मेधाऋषि कहते हैं कि—हे सुरथ ! इतनी बातें देवीजी की सुनकर वह दूत ईर्षासंयुक्त हो दैत्यराज अर्थात् शुम्भ के पासगया और देवी की सब बातें विस्तारपूर्वक कहसुनाईं ॥ दूतकी बात सुन तेही वह असुरराज शुम्भ क्रोधित होकर अपने सेनापति धूम्रलोचन से कहनेलगा कि हे धूम्रलोचन ! तुम अपनी सेनाको साथ लेकर शीघ्र वहां जावो और उस दुष्टाको केश पकड़कर विह्वल करके जबरदस्ती यहां लेआवो ॥ जो उसका कोई रक्षक सामनाकरै चाहै वह देवता हो चाहै यक्ष चाहै गन्धर्व्व कोई हो उस को तुम मारडालना ॥ ऋषि कहते हैं कि इतनी आज्ञा शुम्भकी पाकर शीघ्र ही वह धूम्रलोचन साठहजार असुर साथ लेकर चला ॥ वहां जाकर उस हिमाचलपर्व्वतपर देवी को विराजमान देख कर बड़े शब्दसे बोला कि तुम शुम्भ निशुम्भ के पास चलो ॥ यदि प्रीति संयुक्त मेरे स्वामी के पास नहीं चलोगी तो तुम्हारा झोंटा पकड़कर विह्वल करके बरजोरी लेजाऊँगा ॥ देवीने कहा कि तुम दैत्यराजकी आज्ञासे सेना साथ लेकर आयेहौ बलवान् हो यदि बरजोरी मुझे लेजावोगे तो मैं क्या करसकूगी ॥ मेधाऋषि कहते हैं कि इतना कहनेपर वह असुर धूम्रलोचन क्रोधकरके देवीपर दौड़ा तब अम्बिका देवीने हुंकार शब्द करके उसको भस्म करडाला ॥ तत्पश्चात् असुरोंकी सेना महाक्रोध करके लड़ने के वास्ते उपस्थित हुई और देवीजी भी क्रोधसंयुक्त होकर अच्छे २ बाणों और शक्ति और परशुकी वर्षा करने लगीं ॥ तब देवीजी के वाहन अर्थात् सिंहने अपने मनमें विचार किया कि बिना सेनापति के समरमें देवी को परिश्रम करना उचित नहीं इस से अपनी पूंछ हिलाकर गर्ज्जताहुआ असुरों की सेना में कूदकर पहुंचा ॥ और किसीको हाथ के प्रहार से किसी को मुखसे किसी को अपने भ्रमण के जोर के धक्के से किसीको अपने ओठ से मारडाला किसी का उस सिंह ने नख से पेटही फाड़ डाला और किसीको हाथही से मारकर शिर तोड़डाला, कितनों का उस सिंहने बाहु और शिर काटडाला और कितनों का पेट फाड़कर रुधिर पान करलिया । इसीतरह उस देवी के वाहन सिंहने अत्यन्त कोप करके क्षणमात्र में उस असुर दल को मारडाला, जब देवीके हाथ से धूम्रलोचन का मरना और उनके वाहन सिंह करके संपूर्ण सेना का नाश होना शुम्भ ने सुना तब दैत्यों का अधिपति शुम्भ अत्यन्त क्रोधित हुआ और मारे

क्रोधके ओर कंपानेलगा तब चण्ड और मुण्डादि असुरों से कहा कि-हे चण्ड हे मुण्ड तुमलोग बहुतसी सेना लेकर वहां जाओ और उस देवीको जल्द लेआओ केश पकड़कर अथवा बांधकर लेआना यदि यहभी न होसकै तो सब कोई मिल कर अस्त्रों से रगरकर मारही डालना और उस दुष्टा के मारेजानेपर उस के वाहन सिंहको भी मारडालना और जल्द आवो शक्तिभर उस अम्बिकाको बांध ही कर लेआना । इति छियासीवां अध्याय समाप्त ॥

सत्तासीवाँ अध्याय ।

मेधाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ ! इस प्रकार शुम्भ की आज्ञा पाकर चण्ड और मुण्ड इत्यादि सब दैत्य अस्त्रशस्त्र संयुक्त चतुरंगिणी सेना लेकर देवीजी को लाने के वास्ते गए, तब उन असुरोंने हिमाचल पर्वत के शृंगपर सिंहपर चढ़ीहुई मन्द २ मुसकरातीहुई भगवतीको देखा यह देख कर राक्षसोंमें से कोई तो अपना धनुष चढ़ाकर कोई खड्ग लेकर समीप जाकर देवीजी को पकड़नेपर नियुक्तहुआ तब अंबिका देवी ने उन शत्रुओंपर ऐसा क्रोध किया कि मारे क्रोधके भगवतीका शरीर उस समय कज्जल के सदृश काला होगया ॥ और उसकोप से भगवती के भ्रुकुटी कुटिलसंयुक्त ललाट से शीघ्रही हाथों में खड्ग और पास धारण किये हुये भयानक मुखवाली श्रीकालीजी प्रकट हुईं ॥ और वह विचित्रखट्वाङ्गधरा अर्थात् मुरदेका पांजर अथवा खटियाका अंग लिये हुये और मुण्डमाल पहिने हुये और बाघकी खाल ओढेहुये अत्यन्तभयावनी बिना मांसका शरीर ॥ और मुख से बड़ीभारी जीभ काढ़े हिलाती हुई और भयानक कुवां के समान गहिरे तीन नेत्र धारण किये हुये और अपने गर्जनशब्द से दशों दिशाको पूरित करती हुई ॥ वह काली बड़े वेगसे उस असुरदल में पहुंचकर उन महा असुरों को मारनेलगीं यहांतक कि सम्पूर्ण राक्षसदलको भक्षण करगई ॥ और एकही हाथ से लटा मारकर सहित महावत और सवार और घण्टा इत्यादिक हाथियोंको पकड़कर अपने मुखमें डाललिया ॥ इसी तरह घोड़ों कोभी सहित उन के सवारों के और रथोंको भी सहित उनके कोचवानोंके मुख में डालकर दांतों से चबा डाला और किसीको केश पकड़कर किसी को छाती का धक्का मारकर किसी का गला दबाकर किसीको पांवतले दबाकर मारडाला, जो असुर महाअस्त्र और शस्त्र चलाते थे उन सबको क्रोधसंयुक्त मुख में डालकर दांतोंसे पीसडाला और बड़े२ बली महाअसुरों को हथियारों से मार डाला और कितनों को खागई, कितने

तो तलवारकी मार से और कितने ख-ट्वांग की मार से और कितने दन्ताग्र अर्थात् दांतोंकी नोककी मारसे मरगए इसीप्रकार असुरों की सब सेना नाशको प्राप्त होगई तात्पर्य यह है कि एकही क्षण मात्र में जब देवीजी ने सम्पूर्ण सेना को नाश करदिया तब वह चण्ड और मुण्ड आप श्रीकालीजी की तरफ दौड़ा और महाभयंकर बाणोंकी वर्षा करके और ह-जारों चक्रभी फेंककर कालीजीको छाय लिया यह सब चक्र कालीजीके मुखपरसट सटकर ऐसे मालूम होते थे कि जैसे मेघमें बहुत से सूर्यों की किरण शोभायमान हों उससमय बड़े भयङ्कर मुख और दांत दिखलाकर कालीजी महागर्जसंयुक्त हँसीं और महाखड्ग उठाकर बड़े क्रोध संयुक्त (हं) ऐसा शब्द उच्चारण करके चण्डकी तरफ दौड़ीं और केश पकड़कर शिर उसका काटलिया, जब चण्ड मारा गया तब मुण्ड देखकर दौड़ा तो उसको भी कालीजी ने मारकर पृथ्वीपर गिरा दिया फिर तो उनदोनों चण्ड और मुण्ड के मारेजानेपर बाकी सेना असुरों की डर डरकर जहां तहां भागगई तब काली जी चण्ड और मुण्डका शिर धड़सहित लेकर बड़े जोरसे हँसतीहुई चण्डिकादेवी के पास जिनके ललाट से निकली थीं आकर बोलीं कि हे देवि ! इस समरके यज्ञ में मैंने तुम्हारे वास्ते इन दोनों महा पशु चण्ड और मुण्ड को बलिदान दिया है इसी बलिसे तृप्त होकर तुम अपनेहाथ से शुम्भ और निशुम्भ को मारोगी ॥

मेधाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ ! उस महाअसुर चण्ड और मुण्ड के मृतकशरीर को देखकर चण्डिका देवी कालीजी से कहनेलगीं कि जो कि तुम चण्ड मुण्डको मारकर मेरे सामने लाई हो इसवास्ते हे देवि ! तुम चामुण्डा नाम से जगत् में विख्यात होगी । इति सत्तासीवां अध्याय समाप्त ॥

अट्ठासीवां अध्याय ।

फिर मेधाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ जब कालीजीने चण्ड और मुण्ड इत्यादि दैत्यों को मारडाला और बाकी सेना को घायल किया तब असुरों के मालिक महाप्रतापी शुम्भ ने कोप से व्याकुल हो कर दैत्यों की सेनाको देवी से लड़ने के लिये तैयार होनेका हुक्म दिया कि इस समय जो उदायुध नाम छियासीबलवान् दैत्य हैं और कम्बूनाम जो चौरासी दैत्य हैं वह सबलोग अपनीर सेना लेकर देवी से लड़ने को चलें, कोटिवीर्य नाम जो पचास दैत्य हैं और धूम्रवंशके जो सौ असुर हैं वह सबकोई तैयार होकर लड़ने के वास्ते चलें, कालका नाम जो असुर हैं और दुर्हृद नाम असुरके जो बेटे हैं और मौर्यनाम करके जो असुर हैं और कालका के बेटे सब के सब

युद्धका सामान लेकर रणभूमि में जायँ इसप्रकार की प्रबल आज्ञादेकर वह शुम्भ असुरोंका मालिक हजारों फौज अपने साथ लेकर लड़ने के लिये निकला इस प्रकार की भयानक सेना बहुतसी देखकर चण्डिकादेवीने अपने धनुष को चढ़ाया कि जिसके चढ़ानेका शब्द आकाश और पाताल में पहुँचा तत्पश्चात् वह सिंह देवीका वाहन भी गर्ज्जा और उस के गर्जने का शब्द चण्डिकाके घंटे के शब्द से मिलकर और भी बढ़गया इसप्रकार सिंह, धनुष और घंटेकी आवाजसे दशों दिशा गूँजउठीं और अम्बिका देवी के धनुष के भयानक शब्दके आगे कालीकी गर्ज्जे नीचे पड़गई, ऐसा शब्द सुनकर दैत्योंकी सेनाने क्रोध करके काली और सिंहको चारोंतरफ से घेरलिया उससमय उन असुरों के नाश और देवताओं के कल्याण होने के वास्ते बड़े २ वीरोंको साथ लेकर ब्रह्मा, महादेव, विष्णु, इन्द्र और अन्य देवताओंगों की शक्तियां उन्हीं देवताओंका रूप धारण करके चण्डिका देवीके पास पहुँचीं और जिन२ देवताओं का जैसा जैसारूप और जैसी सवारी और जैसी पोशाक थी वैसी ही उन देवताओंकी शक्तियां भी धारण करके असुरोंसे युद्ध करनेके लिये आईं अर्थात् हंसयुक्त विमानपर बैठकर हाथ में माला और कमण्डलु लियेहुए ब्रह्माजी की शक्ति जो ब्रह्माणी कहलातीहैं और एक बड़ा त्रिशूल हाथ में लियेहुए महा तक्षक सर्प बाहुमें लपेटे चन्द्रकला भूषण शरीर में पहिने महादेवकी शक्ति माहेश्वरी आईं, इसीप्रकार हाथमें सांगलिये मोर के ऊपर सवार युद्ध करने के लिये कार्त्तवीर्य की शक्ति कौमारी आईं, इसीप्रकार चक्र गदा शंख धनुष हाथों में लियेहुए चतुर्भुजी विष्णुकी शक्ति लक्ष्मी जी गरुड़पर सवार होकर आईं, और अतुलयज्ञ वाराहरूप धारण करनेवाली जो विष्णुकी शक्ति हैं वहभी वाराहीरूप बनाकर आईं, और नृसिंहजी की शक्ति नारसिंहीका रूप बनाकर रणभूमिमें आईं, जो अपना झंडा आकाश में फहराकर नक्षत्रोंको अलग२ करती थीं इसीप्रकार हाथमें वज्रलिये ऐरावत हाथीपर सवार सहस्रलोचन इन्द्रकी शक्ति भी उस रण भूमिमें पहुँची इसकेबाद उन देवशक्तियों के साथ महादेवजी भी वहां आकर चण्डिकासे बोले कि इन असुरोंको शीघ्र मारकर मुझे तृप्त करो, इसी अन्तर में चण्डिकादेवी के शरीरसे प्रकट होकर बहुत भयानक स्वभाववाली हजारों सियारिनी बोलतीहुई साथ लेकर वहां अपराजिता धूम्रवर्णा जटाधारी आकर महादेवजी से बोलीं कि—हे भगवन्! आप मेरी ओरसे दूत होकर शुम्भ और निशुम्भ के पास जाइये और उस घमंडी

दैत्य से और दूसरे असुर लोगोंसे भी जो लड़ाई करनेके लिये आये हों उन सब से कहिये कि अब इन्द्र अपना त्रिलोक का राज्य करेंगे और देवतालोग अपना यज्ञभाग लेंगे इस से तुम लोगोंकी भलाई और जिन्दगी इसीमें है कि—तुमलोग पाताल में चलेजाओ और जो तुमलोग बल के अहङ्कार से युद्ध करना चाहते हो तो आतेजाओ कि तुमलोगों का मांस मेरी सियारिनी खा खाकर तृप्त होजायँ जो कि उससमय देवी ने साक्षात् महादेवजी को अपना दूत बनाया था इस लिये वह भगवती शिवदूती कहलाती हैं तात्पर्य यह है कि देवीकी आज्ञानुसार महादेवजी ने असुरों से जाकर कहा तब यह असुरलोग इस देवीकी बातको बुरा मानकर जहांपर वह देवी विराजमान थी वहांपर सब असुर गए और भगवती के सामने जाते ही मतवालों की तरह उन पर बाणों और शक्तियोंका मेह वर्षाने लगे परन्तु देवीजी ने उनके चलायेहुए बाणों, शूल, शक्ति और फरसा इत्यादि को अपने धनुषबाण से काटडाला इसी प्रकार देवीजीके चलायेहुए हथियारोंको भी उन असुरों ने अपने बाणोंसे काटडाला तब कालीजी जो देवीजी के ललाट से निकली थीं अपने शूल और खट्वांग से असुरों को मारतीहुई उस रण में विचरनेलगीं और ब्रह्माणी की शक्ति उस रणमें घूमघूमकर अपने कमण्डलु का पानी छिड़कर कर उन असुरों का बल और तेज हरण करती थीं इसी प्रकार माहेश्वरी क्रोधयुक्त अपने त्रिशूल से और वैष्णवी अपने चक्र से और कौमारी अपनी शक्ति से दैत्यों को मारती थीं ॥ और ऐन्द्रीके वज्रपात से हजारों दैत्य और दानव कटेहुये रुधिर प्रवाह करतेहुये पृथ्वीपर गिरेपड़ेथे॥ और वाराही के तुण्डके प्रहार से विध्वस्त और उनके दन्ताग्र से छाती फट फटकर और चक्र की मारसे टुकड़े टुकड़े होहोकर पृथ्वीपर गिरेपड़े थे ॥ और कितने असुरों को नारसिंही अपने नखों से फाड़ फाड़कर खातीथीं और उस रणभूमि में टहल टहलकर अपने गर्जनका शब्द दशोंदिशा में पहुंचातीथीं ॥ और कितने असुर महाप्रचण्ड अट्टहास से डरकर और उन शिवदूती के शूल से कटकटे कर पृथिवी के ऊपर गिरजाते थे और उन को वह खाजातीं ॥ इसीतरह उन महाअसुरों को तरह तरह के उपायों से शक्तियों ने मारडाला और जो कुछसेना असुरोंकी बाकी रहगई वह शक्तियों का कोप देखकर भागगई ॥ उन शक्तियों से पीडित होकर भागतेहुये दैत्योंकी सेनाको देखकर बड़े कोपके साथ रक्तबीज नाम असुर उस संग्राम में लड़ने के वास्ते उपस्थित हुआ ॥ और उस-

भाव उसका यह था कि घावलगने से जितने बूंद रुधिर के उस के शरीर से पृथ्वीपरगिरैं उतनेही असुर उसके सामने उत्पन्न होजायँ ॥ तात्पर्य यह है कि वह रक्तबीज महाअसुर हाथ में गदा लेकर इन्द्रकी शक्ति से लड़ने लगा तथाच इन्द्र की शक्तिने अपने वज्रसे रक्तबीजको मारा ॥ उस वज्रके घाव लगने से जितने बूंद रुधिर के उसके शरीर से पृथ्वीपर गिरे उतनेही असुर रक्तबीज के समान उसी समय प्रकट होगये ॥ अर्थात् जितने रक्तबिन्दु उसके शरीर से निकलते थे उतने असुर पराक्रमी रक्तबीज के समान उत्पन्न होतेथे ॥ और वे सब असुर उन शक्तियों के साथ लड़तेथे ॥ जब इन्द्रकी शक्तिने अपने वज्रसे रक्तबीज का शिरकाटडाला तब उसके शरीर से बहुतसा रुधिर पृथ्वीपर गिरा और उस रुधिर से हजारों असुर उसके समान उत्पन्न हुये ॥ और वे सब इन्द्रकी शक्ति के सामने से भागकर जब वैष्णवी के सामने गये तो वैष्णवी ने अपने चक्र और गदासे उसको मारा ॥ उस वज्रका घाव लगने से जितना रुधिर उसके शरीर से गिरा उससे भी हजारों रक्तबीज उत्पन्नहुये और सम्पूर्णलोक उन रक्तबीजों से भरगया ॥ फिर उन रक्तबीज महाअसुरों को कौमारी ने अपनी शक्ति से और वाराहीने अपने खड्गसे और माहेश्वरीने अपने त्रिशूलसे मारना शुरू किया ॥ और उधर से उन रक्तबीज महासुरोंने भी उन शक्तियों को अलग अलग करके मारना शुरू किया ॥ निदान सांग और शूल आदि से जितने शरीर उन रक्तबीज असुरों के घायल हुये उतने ही उनके रुधिर से रक्तबीज सब उत्पन्न हुये ॥ यहांतक कि उन रक्तबीज असुरों से सम्पूर्ण पृथ्वी भरगई यह दशा देखकर देवताओं को भय उत्पन्न हुआ ॥ तब चण्डिका देवी देवताओं को त्रसित देखकर काली से कहनेलगीं कि कि तुम अपना मुख फैलाओ ॥ मेरे शस्त्र का घाव लगने और रुधिर गिरने से जितने असुर लोग उत्पन्न हों उन सब को खाजायाकरो और फिर उनका रुधिर पृथ्वीपर गिरने न पावै चाटजायाकरो ॥ और जितने महाअसुर रुधिर से उत्पन्न हुये हैं उन सबको घूमघूमकर खाजायाकरो इसतरह से वे दैत्य क्षय हो जायँगे॥ और फिर और असुर पैदा न होंगे यह सब बातें कालीजी को समझाकर देवीजी ने रक्तबीज को शूल से मारा ॥ और जो रुधिर उस के शरीर से निकला उसको कालीजीने मुख में लेलिया पृथ्वी के ऊपर गिरने न दिया तब रक्तबीज ने कोप करके देवीजी के ऊपर गदा चलायी परन्तु उस गदा ने देवीजीके ऊपर कुछ

असर न किया और देवीजीके वार करने से जो रुधिर उसके शरीर से निकलता था ॥ उस रुधिर को चामुण्डादेवी मुख में लेलेती थीं और उस से जो असुर चामुण्डादेवी के मुखमें उत्पन्न होते थे ॥ उनको चबाजाती थीं इसतरह से जो असुर रुधिरसे उत्पन्न हुये थे वे सब समाप्त होगए तब भगवती ने अमल रक्तबीज को शूल,वज्र, बाण, खड्ग और ऋष्टिसे मारा इसप्रकार जब चामुण्डा देवीने उस का रुधिर पीलिया और देवीजी ने उसको शस्त्रोंसे मारा तब वह रक्तबीज नीरक्त होकर पृथ्वीके ऊपर मरकर गिरपड़ा । मेधाऋषि कहते हैं कि-हे सुरथ ! जब रक्तबीज मरगया तब देवतालोग अतुल हर्षकोप्राप्तहुए,सबशक्तियां रुधिर पीपीकर उस समरभूमि में उनसे उत्पन्न होकर नृत्य करनेलगीं । इति अट्ठासीवां अध्याय समाप्त ॥

नवासीवां अध्याय ।

राजा सुरथ ने कहा कि-हे भगवन् ! देवीजी के चरित्र, प्रभाव और रक्तबीज की लड़ाई और उसके बध होनेकी आश्चर्य कथा तो आपने मुझसे वर्णन की अब रक्तबीज के मरनेपर क्रोधसंयुक्त शुम्भ और निशुम्भ ने जो काम कियाहो वह मैं सुना चाहता हूँ वर्णन कीजिये ॥

मेधाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ ! जब उस लड़ाईमें रक्तबीज और अन्य असुर सब मारेगए तब शुम्भ और निशुम्भ कोपसंयुक्त अपनी सेनाके बड़े२ वीरोंको मराहुआ देखकर क्रोधमें आकर अपनी मुख्य सेना साथ लेकर देवीसे लड़ने के वास्ते दौड़े अर्थात् निशुम्भ और उसके साथ चारोंतरफ से बड़े२ असुरलोग दांत पीसकर देवीजी के मारने के वास्ते चले इसीप्रकार शुम्भभी अपनी सेना साथ लेकर रणभूमि में चण्डिकादेवी के मारने के वास्ते आया और देवीजी के साथ दोनों ने बड़ायुद्ध किया दोनों ओरसे बाणोंका मेह बरसता था शुम्भ और नि-शुम्भ के चलायेहुए बाणोंको चण्डिका देवी ने अपने बाणोंसे काटकर अपना बाण उन सबपर मारा तब निशुम्भ ने भी एक हाथ में ढाल और दूसरे हाथमें तलवार तेज लेकर पहिले देवीजीके वाहन सिंहपर मारा ॥ देवीजीने सिंह को उस घाव से पीड़ित देखकर शीघ्र ही अपने बाण से निशुम्भ की तलवार को और उस की ढाल को भी जिसमें रत्नोंके आठ चन्द्रमा बनेहुये थे काटडाला॥तब निशुम्भ ने शक्ति चलायी देवीजीने उस शक्ति को भी अपने चक्रसे टुकड़े२करडाला॥तब नि-शुम्भने क्रोधकरके देवीजीपर शूल चलाया देवीजीने उस शूल को भी अपने मुक्के से चूर चूर करडाला ॥ फिर उसने चण्डिकापर गदा चलायी उस गदा को

भी देवीने त्रिशूल से काटडाला ॥ तब यह दैत्य हाथ में फरसा लेकर दौड़ा फिर तो देवीजीने उसको बाणों से मारकर पृथ्वीपर गिरादिया ॥ उस शूरवीर निशुम्भ को पृथ्वीपर गिराहुआ देखकर उसका बड़ा भाई शुम्भ अत्यन्त क्रोधयुक्त होकर अम्बिका देवी से लड़ने के वास्ते आया ॥ अर्थात् वह शुम्भ बहुत ऊँचे रथपर सवार होकर बड़े बड़े आठों भुजाओं में अस्त्र और शस्त्रादि धारण किये हुये और उससे सम्पूर्ण आकाश को प्रकाशित करताहुआ रण-भूमि में पहुँचा ॥ उसको आते हुये देख कर देवीजी ने शंख बजाया और अपने धनुषको चढाया जिससे बड़े गर्ज्ज का शब्द हुआ ॥ और फिर उन के घण्टेका शब्द दशोंदिशा में फैलगया जिस से सबको मालूम हुआ कि अब देवीजी दैत्यों की सेनाको मारेंगी ॥ तत्पश्चात् सिंह गर्ज्जा उसके गर्ज्जने से आकाश और पाताल किन्तु दशोंदिशा गूंज उठीं॥ फिर कालीजीने ऊपरको उछलकर दोनों हाथ पृथिवीपर ऐसे मारे कि जिसका शब्द पहिले की गर्ज्जनसे भी बढ़गया॥तदनन्तर शिवदूती ऐसे भयंकर शब्दसे गर्ज्जी कि असुरों की सेना डरगई और शुम्भ को बड़ा क्रोध हुआ ॥ फिर जिस समय अम्बिकादेवी ने शुम्भ से कहा कि-हे दुरात्मन्! खड़ारहु उससमय देवतालोग आकाश से जय२ मनानेलगे ॥ तब शुम्भ ने आकर बड़ा भारी सांग देवीजी के ऊपर चलाया उस सांग को अग्नि के ढेर समान आतेहुये देखकर महोल्का नाम गदा से देवीजीने काटडाला ॥ मेधा ऋषि कहते हैं कि हे सुरथ! उससमय शुम्भ ऐसा गर्जा कि उसके गर्ज के शब्द से तीनों लोक थर्रागये ॥ फिर उससमय शुम्भ के चलायेहुये हजारों बाणों को देवीजी ने अपने बाणोंसे काटडाला और इसीतरह शुम्भने भी देवीजी के चलाये हुये बाणों को काटडाला ॥ तत्पश्चात् चण्डिकादेवी ने क्रोधयुक्त शूल से शुम्भको मारा कि जिससे वह घायल होकर पृथ्वीपर गिरपड़ा ॥ तबतक उधरसे निशुम्भने चेत में आकर और हाथमें धनुष लेकर कालीजीको और उनके वाहन सिंहको बाणों से मारना शुरूकिया॥ फिर दशहजारबाहु धारण करके और उन सब हाथोंमें चक्र लेकर चण्डिकादेवीजीको आच्छादित कर दिया ॥ तब उस भगवती दुर्गा दुर्गति की नाशकरने वाली ने क्रोधसे उसचक्र को और उसके हाथके धनुष को अपने बाणों से काटडाला ॥ तत्पश्चात् निशुम्भ जल्दीसे दैत्योंकी सेना साथ लेकर हाथों में गदा लियेहुये चण्डिका के मारने के वास्ते दौड़ा॥उसके आते ही उसकी गदा को चण्डिका ने अपनी तीव्र खड्ग से काट डाला तब उसने शूल उठालियाहा ॥

शूल हाथमें लेकर जब निशुम्भ सामने आया तब चण्डिका ने तत्काल ही उसकी छाती में अपना शूल मारा ॥ उस शूल के लगने से उसकी छाती से एक दूसरा महापराक्रमी दैत्य प्रकट होकर खड़ीरहु२ कहताहुआ निकला ॥ उसके प्रकट होने पर देवीजी बहुत हँसीं और उसका शिर खड्ग से काटकर पृथ्वीपर गिरादिया॥ तब सिंह और काली और शिवदूती उन असुरों के कटेहुये शिर और लोथ को खा गईं ॥ कितने महाअसुर तो कौमारी की शक्ति से कटगये और कितने असुर ब्रह्माणी के मन्त्रितजल फेंकने से भस्म हो गये ॥ इसीतरह कितने असुर माहेश्वरी के त्रिशूल से कटकर गिरपड़े और कितने वाराही के तुण्ड से चूरचूर होकर मरगये और कितने दानव वैष्णवी के चक्र से टुकड़े२ होगए और कितने असुर इंद्राणी के हाथके वज्र की चोट खाकर मरगए। इसप्रकार बहुत असुर मारेगए और बहुतेरे रणसे भागगए, कितनों को काली और शिवदूती तथा सिंह ने खालिया। इति नवासीवां अध्याय समाप्त ॥

नब्बेवां अध्याय ।

इतनी कथा कहकर मेधाऋषि कहने लगे कि—हे सुरथ ! शुम्भ अपने भाई निशुम्भ को सेनासहित मराहुआ देख कर क्रोधसंयुक्त होकर भगवती से कहने लगा कि हे दुर्गे ! तुम अपने बलका घमंड मतकरो, शक्तियों के बलसे लड़ती हो और अपने को महाबली समझती हो। देवीजी ने कहा कि हे दुष्ट ! इस जगत् में मैं अकेली हूं कोई शक्ति मुझसे अलग नहीं है यह सब शक्तियां मेरे विभवसे हैं इन सबको मेरा ही शरीर समझ इतनी बात कहनेपर ब्रह्माणी इत्यादि सब शक्तियां अम्बिका देवीजी के शरीरमें मिल गईं उससमय अम्बिका देवी अकेली रह गईं और कहनेलगीं कि मैं जो इस रण में बहुत रूप धारण कियेहुए थी अब उनसब रूपों को मैंने अपने शरीर में मिलालिया आदेख अब मैं अकेली खड़ी हूं, तू भी खड़ारहु, मेधाऋषि कहतेहैं कि हे सुरथ ! देवता और असुर सब अलग से देखते रहे, देवीजी और शुम्भ से बड़ायुद्ध होने लगा, कठिन २ बाणों और दूसरे अस्त्र शस्त्रोंकी ऐसी बौछाड़ पड़नेलगी कि सम्पूर्णलोक भयभीत होगए, अम्बिकादेवी ने जो सैकड़ों अस्त्र चलाये उन सबको दैत्योंके मालिक शुम्भने अपने अस्त्रोंसेकाट डाला इसीतरह उसकेभी चलायेहुये अस्त्रों को परमेश्वरी ने हुंकार शब्द उच्चारण करके खेलकी तरह काटडाले ॥ तब उस असुरने सैकड़ों बाणोंसे देवीजी को ढांक लिया परन्तु देवीजीने कोप करके उन सब बाणों को काटकर उसके हाथ के धनुष को भी काटडाला ॥ धनुष के कट

जानेपर शुम्भने शक्तिकोउठालिया। परन्तु वह शक्तिको चलाने भी न पाया कि देवीजीने उसको भी चक्रसे काटडाला॥ तब शुम्भ खड्ग और शतचन्द्र ढाल जिसमें सौ चन्द्रमा सूर्य सामान लगेथे हाथ में लेकर देवीजी की तरफ दौडा॥ उस के पहुंचतेही देवीजी ने अपने बाणों से उसकी ढाल और तलवार को काट डाला और उसके घोडे और रथ और रथवान् इत्यादिको भी काटडाला॥ इन सबके कटजाने पर शुम्भने अम्बिका देवी के मारने के वास्ते बड़ाभारी मुद्गर उठालिया॥ जब वह असुर मुद्गर लेकर चला तब देवीजी ने उसको भी अपने बाणों से काटडाला तब वह शीघ्रतासे मुक्का तानकर दौड़ा॥ औरजातेही देवीजी की छातीपर जोरसे मारा तब देवीजीने भी उसकी छातीपर एक तमाचा इस जोर से मारा॥ कि वह असुर चक्कर खाकर पृथ्वी के ऊपर गिरपडा परन्तु फिर सँभलकर खड़ाहोगया॥ और देवीजीको पकड़कर आकाश में लेगया परन्तु वहांभी चण्डिका देवी बिना सहारे रथ इत्यादि के उस दैत्य से लड़नेलगीं॥ अर्थात् आकाश में चण्डिका देवी और उस दैत्य से ऐसा बाहुयुद्ध होनेलगा कि जिससे सिद्ध और मुनिलोग डरगये॥ फिरतो अम्बिका देवी ने उस शुम्भ दैत्य को गेंदकी तरह ऊपर फेंकदिया और रोककर उसका पांव पकड़कर जोरसे घुमाकर पृथ्वी के ऊपर पटक दिया॥ फिर वह दुष्टात्मापृथ्वीपरसे संभलकर उठा और जल्दी से देवीजी को मुक्का मारने के वास्ते दौड़ा तब देवीजी ने उस दैत्येश्वर अर्थात् शुम्भ की छाती में शूल मारकर पृथ्वीपर गिरादिया तब वह दैत्य देवीजी के शूलका घाव खाकर पृथ्वीपर गिरते ही मरगया उसके गिरने की धमक से समुद्र, द्वीप और पर्वत इत्यादि किंतु संपूर्ण पृथ्वी डोलगई और पहिले जो आकाश से लूक इत्यादि गिरता था वह मिटगया इसीप्रकार जितनी नदियां उल्टी बहती थीं वह सब सीधी बहनेलगीं अर्थात् सब उत्पात मिटगए और उस दुरात्मा के मरने उपरान्त संपूर्णजगत् प्रसन्न होकर स्थिर होगया और आकाश भी निर्मल होगया, उसके मरने से देवतालोग भी प्रसन्न होगए और गन्धर्वलोग गीत गाने लगे, कोई बाजा बजानेलगे और अप्सरा नृत्य करनेलगीं और मन्द सुगन्ध वायु चलनेलगी और सूर्यका प्रकाश बढगया और अग्नि की ज्वाला जो अत्यन्त शीतल होरही थी वह भी प्रज्वलित हो गई। इति नब्बेवां अध्याय समाप्त॥

इक्यानवेवाँ अध्याय।

इतना कहकर फिर मेधाऋषि कहने लगे कि—उस शुम्भ के मारेजानेपर इन्द्र

के साथ अग्नि आदि देवतालोग आनंदसे सब दिशाओंको प्रकाशित करतेहुए देवीजी की इसप्रकार स्तुति करनेलगे कि हे देवि! आप अपने भक्तोंके दुःख दूर करनेवाली और सब जगत् की माता और सब की ईश्वरी हैं सब कोई आपके वशमें हैं आप प्रसन्न होकर इस संसारकी रक्षा कीजिये सम्पूर्ण जगत्की आपही आधार हैं और आपही पृथ्वी होकर सबका भार अपने ऊपर उठायेहुए हैं और आपही जल होकर सम्पूर्ण संसारको आनंद करतीहैं आपका पराक्रम अत्यन्त बलवान् है फिर अत्यन्त पराक्रमी वैष्णवीशक्ति होकर इस जगत् का पालन आपही करती हैं और संसार की कारण परममाया अविद्या आपही हैं कि जिस करके यह सब जीव मोहित रहते हैं और आपही की प्रसन्नता मुक्ति की जड़ है ॥ और हे देवि ! संसार में जितनी विद्या हैं वह सब आपही हैं और जितनी पतिव्रता स्त्रियां हैं वह सब आपही की अंश हैं और एक आपही हैं जो इस संसार के भीतर और बाहर सम्पूर्ण व्यापित हैं कोई वस्तु आपसे अलग नहीं है हे देवि! सिवाय इसके और कौनसी स्तुति आपकी हमलोग करसक्ते हैं ॥ जो कोई आपकी स्तुति करता है उसको आप स्वर्ग और मुक्ति देती हैं और सब प्राणियों में आप विराजमान रहतीहैं इसलिये आपकीस्तुति के वास्ते बहुत कहना उचित नहीं है ॥ आप सब जीवों के हृदय में बुद्धिरूप होकर विराजमान रहती हैं इसकारण से से जीवों को स्वर्ग और मुक्ति देनेवाली आपही हैं नारायण विष्णुभगवान् की आप शक्ति हैं आपको हमलोग प्रणाम करतेहैं॥और कला और काष्ठा अर्थात् घड़ी और पल इत्यादि जो काल है उसका रूप धारणकरके जिन्दगी को आखिरतक पहुं-चानेवाली आपहीहैं और संसार के नाश करने में भी आप समर्थ हैं हे नारायणि ! आपको प्रणाम है॥और सब मंगलों का रूप आपही हैं और कल्याण और सम्पूर्ण अर्थों की सिद्ध करनेवाली और शरण देनेवाली त्रिनयनी गौरी आपही हैं और हे नारायणि ! आपको हमलोग प्रणाम करते हैं ॥ ब्रह्मा और विष्णु और महेश इनतीनोंदेवतों में उत्पत्ति और पालन और प्रलय करनेवाली शक्ति होकर आपही विराजमान रहती हैं और आप नित्या हैं और महदादि गुणों की आप आधार हैं और तीनों गुणों से आप संयुक्त हैं हे नारायणि ! आपको हम सबका प्रणाम है॥और जो दुःखीलोग आपकी शरण में आते हैं उनकी आप रक्षा करती हैं आप सब जगत् की पीड़ा हरण करने-वाली हैं हे नारायणिदेवि ! आपको नमस्कार है॥ हंसयुक्त विमानपर बैठकर ब्रह्माणीरूप धारण किये हुये कमण्डलु

का जल छिड़कनेवाली नारायणी को हम लोगों का प्रणाम है ॥ और माहेश्वरी रूप त्रिशूल और चन्द्रमा और नागराज शेष को धारण किये हुये बैल पर सवार जो नारायणी हैं उनको हम सब नमस्कार करते हैं ॥ कौमारी शक्तिरूप को धारण करके मोरपर चढ़ीहुई पापरहित महाशक्ति धारण करनेवाली नारायणी को प्रणाम है ॥ और शंख चक्र गदा पद्म अस्त्रों को धारण किये हुये वैष्णवी शक्तिरूप धारण करनेवाली नारायणी को प्रणाम है हे नारायणि ! हम सबोंपर प्रसन्न हूजिये ॥ और वाराहरूप धारण कियेहुये महाचक्र हाथमें लेकर दांतों से पृथ्वी को उठानेवाली और कल्याण देनेवाली नारायणी के रूपको हम सब प्रणाम करते हैं ॥ और दैत्यों के मारने और तीनोंलोक की रक्षा करने के वास्ते जो आपने नृसिंहरूप धारण कियाथा आपके रूप को हे नारायणि ! नमस्कार है ॥ और किरीट धारण करके महावज्र हाथमें लेकर हजारों आंखों से प्रकाशमान होकर वृत्रासुर के प्राण हरण करनेवाली इन्द्र की शक्तिरूप आपको हे नारायणि नमस्कार है ॥ और शिवदूतीस्वरूप धारण करके दैत्यों का बल नाश करनेवाली भयानकरूप होकर भयानक शब्द करनेवाली नारायणी को प्रणाम है॥ और बड़े २ दांत निकले हुये भयावनी सूरत मुण्डमाला पहिनेहुये चण्ड मुण्ड को मारनेवाली चामुण्डारूप आपको हे नारायणि नमस्कार है ॥ और लक्ष्मी और लज्जा और महाविद्या और श्रद्धा और पुष्टि और स्वधा और सबके मोहित करने में समर्थ महामायारूप को आपके हे नारायणि नमस्कार है ॥ और धारण करनेवाली बुद्धि और सरस्वती और उत्तम ऐश्वर्य और रजोगुणयुक्त और तमोगुक्त और मूलशक्ति जो आप समर्थ हैं हे नारायणि ! प्रसन्न हूजिये आपको नमस्कार है ॥ और सब लोगों में समानरूप और सब से समर्थ और सब शक्तियों से युक्त जो आप दुर्गादेवी हैं प्रसन्न हूजिये और हमलोगों का भय छुड़ादीजिये आपको नमस्कार है ॥ और हे कात्यायनि तीन नेत्रों से जो आपका परमशोभित मुख है वह हमलोगों की रक्षा सम्पूर्ण संसारी विकारों से करे आपको हम सब प्रणाम करते हैं ॥ और हे भद्रकालि ! आपको प्रणाम है आपका त्रिशूल जो ज्वाला करके भयङ्कर अत्यन्त उग्र असुरों का मारनेवाला है वह हमलोगों की रक्षाकरै ॥ हे देवी ! आपका घण्टा जिस का शब्द सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त होकर दैत्यों के तेजोंको नाश करता है वह हम सबों की पुत्रोंके समान रक्षा करै ॥ हे चण्डिके ! आपका उज्ज्वलहाथ जो असुरों के मांस

और रुधिर से भराहुआ है उस हाथ से सदा हमलोगोंका कल्याणहो हमलोग आपको प्रणाम करते हैं ॥ हे देवि ! जिस पर आप प्रसन्न होती हैं उसके रोगोंको दूर करदेती हैं और जिसपर आप अप्रसन्न होती हैं उसकी सब कामना नाश होजाती हैं और जो कोई आपकी शरण में हैं उन लोगों को कभी दुःख नहीं होता और जो लोग आपकी शरण में रहते हैं उनलोगों की शरण पकड़ने से दूसरे लोगभी सुखी होजाते हैं ॥ और हे अम्बिके देवि ! आपने अनेकरूप धारण करके धर्मद्रोही असुरों को जो नाश किया है सिवाय आप के दूसरा कौन ऐसा करनेवाला है ॥ ज्ञान और शास्त्र और उपनिषद् और कर्मकाण्डके बतानेवाले जो वेद के वचन हैं इन सब के होतेहुये भी इस संसार के ममतारूपी अँधेरे कूप में गिरानेवाली सिवाय आप के दूसरा कोई नहीं है ॥ और जहांपर राक्षस और महाविष और सांप और शत्रु चोर जिस जगह चारोंतरफसे आग में घिरकर या समुद्र की लहरमें पड़कर कोई व्याकुलहो इन इन जगहोंपर जो कोई आपका स्मरण करता है वहांपर पहुँचकर आप उसकी रक्षा करती हैं ॥ आप संसारकी रक्षा करने से विश्वेश्वरी और संसारके धारण करने से विश्वात्मिका कहलाती हैं और आपको विश्व के ईश इन्द्रादि देवता इसीतरह संसारके आश्रित लोग भक्तिपूर्वक नम्र होकर आपकी वन्दना करते हैं ॥ हे देवि ! जिसतरह आपने इस समय असुरों को मारकर हमलोगों की रक्षा की है इसी तरह सर्वकाल हमलोगों की रक्षा कीजिये और सब जगत् के पापों को क्षय करके उत्पात करनेवाले महा विघ्नों को भी शमन कीजिये ॥ और हे देवि संसार की पीड़ाहरण करनेवाली हैं और तीनों लोक के रहनेवाले आपकी स्तुति करते हैं आपके चरणारविन्द में हमलोग प्रणत हैं अब आप प्रसन्न होकर हमलोगों को वरदान दीजिये ॥ इतनी स्तुति देवताओं के मुखसे सुनकर देवीने कहा कि हे देवताओ तुम लोगोंको जोवरमांगना हो मांगो मैं वरदानदूँगी कि जिससे तुमलोगों का और सम्पूर्ण जगत्का उपकार होगा तब देवतालोग बोले कि हे अखिलेश्वरि ! शुम्भ इत्यादि असुरों के मारेजाने से सकल लोकका दुःख नाश होगया फिर इसीप्रकार जब कभी हमलोगों को दुःख देनेवाला दुष्ट असुर प्रकटहो तो उन सब को भी नाशकिया कीजिये यह सुनकर देवीजी ने कहा कि अट्ठाईसवें चतुर्युग में वैवस्वत मन्वन्तरके प्रकटहोनेपर जबदूसरा शुम्भ निशुम्भ महाअसुर उत्पन्न होगा। उससमय मैं नन्दगोप के घरमें यशोदाके गर्भ से उत्पन्न होकर उन शुम्भ निशुम्भ

महाअसुरों को नाश करूंगी और विन्ध्याचल पर्वतपर निवास करूंगी, फिर पृथिवीतल में अत्यन्त भयंकररूप धारण करके विप्रचित्ती सन्तान के दैत्यों को मारूंगी और उस विप्रचित्ती सन्तान के महाअसुरों को मारकर खाने से मेरे सब दांत रुधिर से अनार के फूलकी तरह लाल होजायँगे तब मुझको देवतालोग और मनुष्य, स्वर्गलोक और मृत्युलोक में हरसमय मेरी स्तुति करतेहुए रक्तदंतिका नाम करके कहेंगे, फिर जब सौवर्ष तक पृथ्वीपर वर्षा नहींहोगी और कुवां आदि में कहीं पानी न रहैगा, उससमय मुनि लोग वर्षा होने के वास्ते मेरी स्तुतिकरेंगे तब मैं पृथ्वी में पार्वतीके समान अयोनिजा (अर्थात् आपसे आप) उत्पन्न हूंगी, उससमय सौ नेत्र धारण करके उन सब नेत्रों से मुनियों को देखूंगी। इसकारण से मनुष्य मेरा नाम शताक्षी रक्खेंगे ॥ हे देवताओं! तब मैं अपने शरीर से शाक उत्पन्न करके उसीसे सब लोगों का पालन करूँगी ॥ तब पृथ्वी में मेरा नाम शाकम्भरी विख्यात होगा फिर उसी शाकम्भरी अवतार में दुर्गम नाम असुर को बध करूँगी ॥तब मेरा नाम दुर्गादेवी प्रसिद्ध होगा फिर मैं हिमाचल पर्वतपर भयङ्कर रूप से प्रकट होकर॥ मुनिलोगों की रक्षा के वास्ते राक्षसों को भक्षण करूँगी तब मुनिलोग शिरझुकाकर मेरी स्तुति करेंगे॥ तब मेरा नाम भीमादेवी विख्यात होगा फिर जब तीनोंलोक में अरुण नाम असुर महाबाधक उत्पन्न होगा ॥ तबमैं भ्रामरी रूप जिसमें असंख्य भौंरे मेरे चरण में लिपटे होंगे धारण करके तीनों लोक के उपकार के वास्ते अरुणदैत्य को मारूँगी ॥ उस समय मेरा नाम भ्रामरी प्रचलित होगा और सब जगह सब लोग मेरी स्तुति करेंगे इसीतरह जब जब दैत्यों से तुमलोगों को दुःख पहुँचेगा॥ तब तब मैं इस पृथ्वी में उत्पन्न होकर तुमलोगों के शत्रुओं का नाश करूँगी इति इक्यानवेवाँ अध्याय समाप्त,

बानवेवाँ अध्याय

इतना वरदान देकर देवीजी बोलीं कि हे देवताओं! इस स्तोत्र से जोकोई चित्त स्थिर करके नित्य मेरी स्तुति करेगा उसका दुःख मैं निस्सन्देह नाश करदूंगी ॥ और जो कोई मधुकैटभ का नाश और महिषासुर का बध और शुम्भ निशुम्भ के मरण की कथा पढ़ैगा ॥ और अष्टमी और नवमी और चतुर्दशी को को एकचित्त होकर मेरे इस उत्तम माहात्म्य को सुनैगा ॥ उसको किसीप्रकार का पाप और विघ्न और दरिद्रता न होगा उसको इष्ट और मित्र से कभी वियोग न होगा ॥ और

उसको शत्रुओं और चोरों और राजाओं और हथियारों और अग्नि और जलसे किसी तरह का भय न होगा॥ इसवास्ते मेरे महात्म्यको पढना और सुनना चाहिये क्योंकि—यह माहात्म्य कल्याणकारक मार्ग है॥ महामारी से उत्पन्न उपसर्गोंको और इसीप्रकार दैहिक दैविक भौतिक तीनों तरह के उत्पातों को मेरा माहात्म्य शान्त करता है॥ जिस घरमें मेरा यह माहात्म्य नित्य पढाजायगा उस घर में हमेशा मैं रहूँगी कभी उस से अलग न हूँगी॥ बलिदान और पूजा और होम और पुत्र के जन्म और विवाहादि मंगलों में इस मेरे चरित्र को पढना और सुनना चाहिये॥ और ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी जो कोई बलिप्रदान और पूजा और होमकरै उसको भी मैं प्रीतियुक्त मानती हूँ॥ और शरद् कालमें मेरी पूजा जो प्रतिवर्ष कीजाती है उसमें इस मेरे माहात्म्यको श्रद्धा के साथ जो कोई सुनैगा॥ वह सब दुःखों से छूटकर अन्न और धन पुत्र इत्यादि मनुष्य मेरे प्रसाद से पावैंगे इस में कुछ किसी तरह का संदेह न करना चाहिये॥ मेरे इस माहात्म्य और उत्पत्ति और मेरे पराक्रमको सुन कर मनुष्यलोग निर्भय होजायँगे॥ जो पुरुष मेरे इस माहात्म्य को जी लगाकर सुनैंगे उन लोगों के शत्रुलोग क्षय होजायँगे और उस सुननेवाले का कल्याण होगा और उसके कुल की बढती होगी॥ शान्तिकर्मों में और दुःस्वप्नों में और ग्रहपीडा में इस मेरे माहात्म्य को सुनना चाहिये॥ इस के सुनने से महामारी से उत्पन्न सब उपसर्ग और भयंकर ग्रहपीडा सब सुगम होजाती हैं और दुःस्वप्न का दोष भी मिटजाता है॥ और पूतना इत्यादि बालग्रहों से ग्रसित बालकों के वास्ते यह मेरा माहात्म्य शान्तिकारक है और जो मनुष्यों के आपस में बिगाड़ होगया हो तो इस मेरे माहात्म्य के पढनेसे मिलाप होजाता है और फिर यह मेरा माहात्म्य बाघ आदि दुष्ट जानवरोंका बल नाश करदेता है. राक्षस, भूत और पिशाचोंका भी नाश इसके पढने से होजाता है, यह संपूर्ण मेरा माहात्म्य सन्निधि करनेवाला है और बलिदान, पुष्पाञ्जलि, अर्घ्य, गंध, दीप और ब्राह्मणों को भोजन कराने और होम तथा रातदिन पञ्चामृत से स्नान कराने और उनको वस्त्राभूषण देने से जितना मनुष्योंपर मैं प्रसन्न होती हूं। उतना जो एकदिन मेरेचरित्र को सुनता है उसपर मैं प्रसन्न होती हूं जिससमय मेरे चरित्र को कोई सुनता है उसीसमय उसके पापका नाश होजाता है और उस के शरीर का दुःख छूटजाता है, मेरेजन्म के चरित्र सुनने से मनुष्योंको भूत और पिशाचादि से रक्षा होती है और दैत्यों

के नाश करनेके वास्ते मैंने जो२ चरित्र किये हैं उनके सुनने से मनुष्यों को शत्रुओं से भय नहींहोता फिर हे देवताओं! आप और ऋषिलोगोंने जो मेरी स्तुति की है और ब्राह्मणोंने जो मेरी स्तुतिकी है उनके सुनने और पढने से मनुष्योंको उत्तमज्ञान होता है फिर उस वन में जहां मनुष्य चारोंओर से अग्नि से घिरगया हो या कहीं भयावनी जगह में अकेले पडगया हो या चारोंओरसे डाकुओं ने घेरलिया हो या किसी जङ्गल में बाघ, सिंह या जङ्गली हाथीकी चपेटमें आगया हो या राजा ने मारनेका हुक्म दियाहो या कैदमें पडगया हो या नावपर चढकर हवामें पडकर महाजलार्णव में घूमता हो या कहीं नावफँसकर न छूटती हो या कहीं लड़ाई में उसपर हथियारोंका मेह बरसता हो या कैसे ही घोर उपद्रव में पड़ा हो।। तो इस मेरे चरित्र के स्मरण करने से उन सब दुःख और उपद्रवों से छूटजायगा और मेरे प्रभाव से सिंह और चौरादि सब दुष्ट।। दूर ही से भागजांयगे मेधाऋषि कहते हैं कि हे सुरथ भगवती यह सब बातैं देवताओं से कहकर।।देखते ही देखते देवताओं की दृष्टि से अन्तर्द्धान होगई और देवतालोग निर्भय होकर पहिले की तरह अपना २ अधिकार वर्त्तने लगे।। और निस्सन्देह यज्ञभाग अपना २ लेनेलगे अर्थात् जब देवी ने शुम्भ को मारडाला।। और अतुल पराक्रमी जगत् के विध्वंस करनेवाले निशुम्भको भी मार लिया तब बाकी जो दैत्यलोग रहगये थे वह भागकर पाताल कोचलेगये हे सुरथ देवी नित्या हैं जब जब देवताओं के ऊपर दुःख पडताहै तब तब अवतार लेकर जगत्की रक्षा करती हैं और वही भगवती सम्पूर्ण संसार को मोहलेती हैं और वही सबको पैदाकरती हैं फिर वही देवी निष्काम भक्तिपूर्वक पूजनकरने से मुक्ति और आत्मतत्वज्ञान देती हैं और फलप्राप्ति के निमित्त पूजा करने से प्रसन्न होकर ऐश्वर्य देती हैं।

मेधाऋषि कहते हैं कि—हे राजन्! महाप्रलय में महामारी स्वरूपसे जो महाकाली रहती हैं उन्हीं में यह सब ब्रह्मांड मिलजाता है। वही महाकाली प्रलय काल में संहारशक्ति, सृष्टिकाल में सृष्टिशक्ति और स्थितिकाल में सनातनी शक्ति होकर पालन करती हैं, फिर वही भगवती ऐश्वर्यवाले मनुष्यों के घर में लक्ष्मी होकर रहती हैं और फिर वही भगवती मनुष्योंके धनको नाश करने के लिये दरिद्ररूप होजाती हैं। फिर वही महाकाली स्तुति और पूजा करने, फल चढाने, और धूप देनेसे प्रसन्न होकर धन और पुत्रदेती हैं, और धर्म करने से अच्छी बुद्धि देती हैं।। इति बानवेवां अध्याय समाप्त।।

तिरानवेवाँ अध्याय

इतना कहकर मेधाऋषि बोले कि हे सुरथ ! जिस देवीका प्रभाव और इसप्र माहात्म्य कह आये वही सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करनेवाली, पालनेवाली और नाश करनेवाली है, वही भगवती भगवान् विष्णुकी माया है, वही भगवती साधन तत्त्वज्ञानको भी देती है, हे सुरथ उसी देवीसे आप और यह वैश्य तथा इसीतरह वेद और शास्त्रके जाननेवाले भी मोहित हुए हैं, मोहित रहते हैं और रहेंगे हे सुरथ आप उसी जगन्मोहिनी महामाया परमेश्वरी की शरण पकड़के आराधना करने से वही देवी मनुष्योंको भोग, स्वर्ग और मुक्ति देती है ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रोष्टुकि इतनी बातें मेधाऋषि की सुनकर राजा सुरथ ममत्व और राज्य छिनजाने के दुःख से व्याकुल होकर महाभाग और महाव्रत मेधाऋषि को साष्टांग प्रणाम करके उस वैश्यसमेत तपस्या करने के लिये वहां से चले और एकजगह नदी के किनारेपर देवीजी के दर्शन होने के अर्थ बैठगए और देवीजी का परमसूक्त जपतेहुए तपस्या करनेलगे अर्थात् देवी का स्वरूप मिट्टीसे बनाकर पहिले फूल और उसका हार बनाकर एकचित्त हो कर देवीजीमें मनलगाकर धूप दीप होम इत्यादि से पूजन किया फिर महाराज सुरथ और वैश्यने अपनाश शरीर काट कर रुधिर निकाल देवीजी को बलिदान दिया जब इसतरह सब इन्द्रियों को साध कर तीन वर्षतक पूजन किया तब वह जगत् की माता चण्डिकादेवी प्रसन्न हो कर प्रकट हो और दर्शन देकर बोलीं कि हे महाराज सुरथ और हे कुलनन्दन वैश्य तुमलोग जो वर चाहते हो वह सब हमसे तुमलोग पावोगे और हम प्रसन्न होकर तुमलोगों को देंगी ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रोष्टुकि इतनी आज्ञा देवीजी की पाकर सुरथने दूसरे जन्ममें बहुतदिनोंतक राज्य रहने का वरदान देवीजी से मांगा और इस जन्ममें भी अपने बलसे शत्रुओं को मार कर अपना राज्य अपने वशमें लाने का वरदान देवीजी से मांगलिया तदनन्तर उस वैश्यने भी संसार से विरक्तचित्त होकर देवीजी से तत्त्वज्ञान का वरदान मांगलिया कि जिससे यह मेरा और मैं ऐसा संग सब छूटजाय सुरथ और वैश्य के वरदान मांगनेपर देवीजीने कहा कि सुरथ थोड़ेही दिनमें तुम अपना राज्य पावोगे और तुम्हारे सब शत्रुओंकानाश हो कर राज्य में एक तुम्हारा ही हुक्म चलैगा और दूसरे जन्ममें तुम विवस्वान् के पुत्र होकर सावर्णिक नाम मनु पृथ्वीमें होगे और हे वैश्य तुम जो वरदान चाहते हो सो वरदान मैं दूँगी संसिद्धि अर्थात् मुक्ति के लिये तेरा ज्ञान होगा ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं सुरथ वैश्य दोनों करके भक्तिसे स्तुति कीहुई देवी भगवती यथाभिलषित वरदान को देकर शीघ्रही अन्तर्द्धान होगई । इसप्रकार देवीसे वर दान को पाकर क्षत्रियों में श्रेष्ठ सुरथ सूर्य से उत्पन्न होकर सावर्णि नाम का मनु होगा । इति तिरानवेवां अध्याय ।

इतिदुर्गासप्तशतीसमाप्त.

—०—

चौरानवेंवा अध्याय ।

मार्कण्डेयजीबोले कि—हे क्रौष्टुकि ! यह सावर्णिक मन्वन्तर, जिस में महिषा सुरका वध और देवीजी का माहात्म्य विस्तारपूर्वक आपसे कहा, देवीजी की उत्पत्ति और असुरों के संग्राम में शक्तियों का प्रकट होना तथा महालक्ष्मी, सरस्वती पार्वती और चामुण्डा का उत्पन्न होना शिवदूती माहात्म्य और शुम्भ निशुम्भ रक्त बीज असुर जिसप्रकार मरण को प्राप्त हुए वह सब आप से कहा हे मुनि श्रेष्ठ ! फिर दूसरे सावर्णिक मन्वंतर में दक्षके पुत्र सावर्णि जो नवें मनु होंगे उन का वृत्तान्त सुनो, उस मन्वन्तर में जो देवता, मुनि और राजा होंगे वह भी सुनो, पार, मरीच, भर्ग और सुधर्मा नाम देवता होंगे, यह लोग तीन प्रकार के होंगे प्रत्येक में बारह २ गण होंगे, इन सब के महापराक्रमी सहस्राक्ष इन्द्र होंगे, इस समय जो स्वामिकार्त्तिकेय वन्हिके पुत्र हैं वही उस मन्वन्तर में अद्भुतनामक इन्द्र होंगे, मेधातिथि, वसु, सत्य, ज्योतिष्मान, द्युतिमान् और हव्य वाहन तथा सबल उस मन्वन्तर में सप्तर्षि होंगे, धृष्टकेतु बर्हकेतु, पंचहस्त, निरामय पृथुश्रवा, अर्चिष्मान्, भूरिद्युम्न और बृहद्भय यह उस मन्वन्तर में दक्ष के पोते राजा होंगे, हे द्विज ! अब दशवें मनु के मन्वन्तर को सुनो, ब्रह्मा के पुत्र धीमान दशवें मनु होंगे, उनके मन्वन्तर में सुखा सीन और निरुद्धनामक तीन प्रकार के देवता होंगे, शान्ति नामक इन्द्र होंगे, आपोमूर्त्ति, हविष्मान्, सुकृती, सत्य, नाभाग, अप्रतिम और वाशिष्ठ यह सप्तर्षि होंगे, सुक्षेत्र, उत्तमौजा, भूमि- सेन, शतानीक, वृषभ, अनमित्र, जयद्रथ, भूरिद्युम्न और सुपर्वा यह मनुके पुत्र उस मन्वन्तर में राजा होंगे, तदनन्तर ग्यारहवें मनु धर्म के पुत्र जो सावर्णि होंगे, उनका वृत्तान्त सुनो, विहंगम, कामग और निर्माण यह तीन प्रकार के देवता उस मन्वन्तर में होंगे, और एक२ प्रकार के देवता के साथ तीस २ गण होंगे, मास, ऋतु और दिन यह सब निर्माण रति कहावेंगे. तथा सब रात्रियें विहंगम कहावेंगी और सब मुहूर्त्त का- मग गण कहावेंगे, सब मनुष्यों में परा- क्रमी वृषनामक इन्द्र होंगे, हविष्मान,

वसिष्ठ तथा अरुण के पुत्र ऋष्टि, निश्चर अनघ, दिष्टि और अग्निदेव इस मन्वन्तर में सप्तऋषि होंगे, सर्वत्रग, सुशर्मा, देवानीक, पुरूद्वह, हेमधन्वा और दृढायु यह सब मनु के पुत्र राजा होंगे, बारहवें मनु रुद्रके पुत्र जो सावर्ण नामक होंगे, उनका वृत्तान्त सुनो सुधर्मा, सुमनस, हरित, रोहित और सुवर्णनामवाले यह पांचों उस मन्वन्तर में देवता होंगे, और पांचों में दश २ गण होंगे इन सब के स्वामी ऋतधामा नामक इन्द्र होंगे, द्युति, तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्ति, तपोनिधि, तपोरति और तपोधृति यह सात सप्तर्षि होंगे देववान्, उपदेव, देवश्रेष्ठ, विदूरथ, मित्रवान् और मित्रविंद यह सब उस मनुके पुत्र राजा होंगे, और तेरहवें रौच्य नामक मनुके मन्वन्तर में जो २ देवता सप्तर्षि और उनके पुत्र राजा होंगे वह सुनो, सुधर्मा, सुकर्मा और सुशर्मा यह देवता होंगे, इन सब के स्वामी महाबली दिवस्पति नामक इन्द्र होंगे, धृतिमान्, अव्यय, तत्वदर्शी, निरुत्सुक, निर्मोह, सुतपा और सातवें निष्प्रकम्प यह सप्तर्षि होंगे, चित्रसेन, विचित्र, नयति, निर्भय, दृढ, सुनेत्र, क्षत्रबुद्धि और सुव्रत यह उस मनुके पुत्र राजा होंगे ।

इति चौरानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥

पिचानबेवां अध्याय ।

मार्कण्डेयजी बोले कि—हे क्रोष्टुकि ! पूर्वकाल में रुचिनामक प्रजापति थे उन्हें किसीप्रकार की ममता और अहंकार नहीं था वह सदा पृथ्वीपर भ्रमण करते थे और बहुतकम सोते थे, उनको बिना अग्नि, बिना गृह, एकबार भोजन करते और बिना आश्रय तथा संगरहित मुनियों के वेषमें देखकर उनके पितर प्रकट होकर उनसे बोले कि—हे वत्स ! तुमने विवाह क्यों नहीं किया जिसके करनेसे पुण्य, स्वर्ग और मुक्ति होती है, बिना विवाह के यह जीव सदा बन्धन में रहता है, गृहस्थलोग विवाह करनेसे और देवता, पितर, ऋषि तथा अभ्यागतों का पूजन करने से उत्तम लोक को प्राप्तहोते हैं अर्थात् स्वाहा कहकर देवताओं को स्वधा कहकर पितरों को और भाग लगाकर भूतोंको तथा अभ्यागतों कोतृप्त करते हैं, तुम विवाह न करने से, गृह को त्यागने से देवताओं के और हमलोगोंके मनुष्यों के तथा भूतों के ऋणसे प्रतिदिन इस संसारके बंधन में बँधतेजाते हो, बिना पुत्र उत्पन्न करे, बिना पितरोंके तर्पणकरे बिना देवताओं के पूजन करे और बिना अभ्यागतों को भोजन दिये हे मूढ़ ! किस प्रकार उत्तमगति पाओगे, हे पुत्र ! तुम्हारे विवाह न करने से हमलोगों को और इस संसारमें तुमको क्लेश होगा, तथा मरने पर नरक और फिर दूसरे जन्ममें भी क्लेश होगा. यह सुन रुचिने कहा कि—

हे पितरों ! मनुष्योंका विवाह करने से बहुत पाप और दुःख होता है तथा उसी पापके कारण नरक होता है, इसलिए मैंने विवाह नहींकरा है, तथा मुनियोंका वेप धारण करके जो इस आत्मा का संयम करता हूँ वह मुक्तिका कारण है और विवाह करने से यह संयम नहींहोसक्ता, यह आत्मा जो विवाह और ममतारूपी कीच से सनाहुआ है वह कीच विरक्त रूपी चित्त से धुलती है, इस कारण विवाह का न करना अच्छा है, इस लिये ज्ञानीजन इन्द्रियों का संयम करके जन्म जन्मांतर के कर्मरूप कीच से सनेहुए आत्मा को सत्संगरूपी जल से धोडालते हैं,यह सुन पितरों ने कहा कि–हे पुत्र ! इन्द्रियों को वश में करके आत्मा को स्वच्छ रखना चाहिये यही मुक्ति का मार्ग है, जिसपर तुम प्रवृत्त हो, परन्तु पाँच ऋण जो हैं उनको निबटाने से पाप का क्षय होता है और पूर्वजन्म के करे हुए अच्छे वा बुरे प्रारब्ध कर्म का भोग करते हुए निष्काम कर्म करना चाहिये क्यों कि–जिस कर्म में फलकी इच्छा नहीं होती है उस कर्म के करने से आत्मा को बन्धन नहीं होता है, हे वत्स ! पूर्वजन्म का कराहुआ जो कर्म है वह दूसरे जन्म में भोगने से निबटता है, इस लिये ज्ञानीजन अपनी आत्मा को धोकर शुद्ध करते हैं और बन्धन से बचते हैं, इस प्रकार करने से अज्ञान और पापरूपी कीच आत्मा में नहीं लगती है, रुचि ने कहा कि-हे पितरों ! कर्म का मार्ग जो वेद ने कहा है उसके करने से अज्ञानता होती है तो फिर आपलोग मुझे उस मार्ग पर चलने को क्यों कहते हैं, पितरों ने कहा कि--हे पुत्र ! सत्य है, कर्मगार्ग में अविद्या होती है यह बात मिथ्या नहीं है, परन्तु निष्काम कर्म के करने से भी निःसंदेह विद्या प्राप्त होती है, जो पुरुष वेद के अनुसार कर्म नहीं करते हैं केवल आत्मा का संयम करते हैं उनकी उस से मुक्ति नहीं होती है किन्तु अन्त को नरक होता है, हे वत्स ! तुम यह समझते हो कि--मैं आत्मा को प्रक्षालित करता हूँ सो यह बात नहीं है किन्तु विहितकर्म के त्यागने का जो पाप है उस पाप से से तुम दग्ध होते हो, विहित कर्म के करने से अविद्या भी मनुष्यों को मुक्ति देती है जिसप्रकार विष को शोधकर खाने से वह विष अमृत का फल देता है और विहित कर्मको छोड़देने से विद्या भी आत्मा को बन्धन में डालदेती है हे पुत्र ! तुम विधिपूर्वक विवाह करो, जिस से लौकिक व्यवहार छोड़ने के कारण तुम्हारा जन्म निष्फल न हो, रुचि ने कहा कि–हे पितरों ! मैं अब वृद्ध होगया हूँ, वृद्ध को कौन कन्या देगा और दरिद्रता में स्त्री करने से बड़े २ दुःख

भोगने पड़ते हैं, पितरोंने कहा कि हे वत्स जो तुम हमारा कहना न मानोगे तो हम सबों को नरक में गिरना पड़ैगा और तुम भी नरक में गिरोगे, मार्कण्डेयजी बोले कि-हे मुनिसत्तम ! पितर तो यह कहकर रुचि की दृष्टि से इसप्रकार अलोप होगए जैसे वायु के लगने से दीपक अलोप होजाता है. इति पिचानवेवाँ अध्याय समाप्त

छियानवेवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रौष्टुकि वह रुचि पितरों के कहने से घबड़ाकर विवाह करनेकी इच्छा से पृथ्वीपर घूमने लगे परंतु जब उनको कहीं स्त्री न मिली तब वह पितरों की वाक्य की अग्नि से दग्ध होकर चिंताग्रस्त हो उदास होगए शोचनेलगे कि--क्या करूँ ? कहां जाऊँ ? किसप्रकार से मुझे स्त्री मिले कि--जिसके ग्रहण करने से मेरे पितरोंका उद्धार हो इसप्रकार रुचि को चिंता करते २ यह सूझी कि—ब्रह्माजी की तपस्या करके स्त्रीके लिये आराधना करूँ, यहबात अपने चित्तमें ठानकर ब्रह्माजी की आराधना के लिये बहुत नियमके साथ देवतों के सौ वर्षतक तपस्या करी, तब ब्रह्माजी प्रकट होकर रुचि से बोले कि--मैं तुमसे बहुतप्रसन्न हूं, तुमको जिस बातकी इच्छा हो मुझसे कहो, तब ब्रह्माजी को प्रणाम करके पितरोंकी आज्ञानुसार स्त्री करनेकी इच्छा को प्रकट करा, यह सुन ब्रह्माजी ने कहा कि- तुम प्रजापति होगे और प्रजाओं को उत्पन्न करोगे तथा पुत्र उत्पन्न करके सब विहित कर्मोंको करके कृतों के अधिकारी होगे तब हे वत्स ! तुम सिद्ध होजाओगे इसलिए तुमको उचित है कि तुम पितरों की आज्ञानुसार स्त्री ग्रहण करो अर्थात् स्त्री की इच्छा करके पितरों का पूजन करो वही पितर प्रसन्न होकर तुम्हारी इच्छानुसार स्त्री और फिर पुत्र भी देंगे, क्योंकि—पितर संतुष्ट होकर क्या नहीं देसकते ? ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि--हे क्रौष्टुकि ! यह सुनकर रुचिने नदीके तटपर जाकर पितरों का तर्पण करा और एकाग्रचित्त से भक्तिके साथ प्रणाम करके इसप्रकार पितरों की स्तुति करनेलगे—जो देवता होकर आवाहन करनेसे श्राद्धमें आकर निवास करते हैं और जिनको श्राद्ध में स्वधा कहकर देवता भी तृप्त करते हैं उन पितरों को नमस्कार है. जिनको महर्षि लोग भी स्वर्ग में भुक्ति और मुक्तिकी इच्छा करके भक्तिपूर्वक मनोमय श्राद्ध से तृप्त करते हैं उन पितरोंको नमस्कार है. जिनको स्वर्गमें सिद्ध लोग उत्तम २ वस्तुओं से श्राद्ध करके संतुष्ट करते हैं, उन पितरों को नमस्कार है. जिनको गुह्यकलोग ऋद्धि की इच्छासे भक्तिपूर्वक पूजते हैं उन पितरों को नमस्कार है । जिनको पृथ्वीपर मनुष्यलोग श्राद्धों में

अभीष्टलोक प्राप्त होनेकी इच्छासे पूजते हैं उन पितरोंको नमस्कार है। जिनको पृथ्वीपर ब्राह्मणलोग ब्रह्मलोक प्राप्त होने की इच्छासे पूजते हैं उन पितरोंको नमस्कार है। जिनको वनवासी निष्पापी मिताहारी लोग श्राद्ध में वन के पुष्पों से तृप्त करते हैं उन पितरोंको नमस्कार है. जिनको नैष्ठिक व्रतधारी निवृत्तचित्त ब्राह्मणलोग समाधि से सदा तृप्त करते हैं उन पितरोंको नमस्कार है। अब उन पितरों को प्रणाम करता हूं, जिनको क्षत्रियलोग त्रिलोकी का राज्य प्राप्त होने की इच्छासे बहुतसे पदार्थों से तृप्त करते हैं. जिनको वैश्यलोग अपने कर्ममें प्रवृत्त होकर पुष्प, धूप, अन्न और जलसे सदा पूजते हैं उन पितरोंको नमस्कार है. जो इस संसार में सुकाली नामसे प्रसिद्ध हैं और जिनको शूद्रलोग भक्तिसे श्राद्धमें तृप्त करते हैं उन पितरोको नमस्कार है जिनको पाताल में महाअसुर लोग अधिनता से स्वधा कहकर श्राद्ध से तृप्त करते हैं उन पितरोंको नमस्कार है, जिनको रसातल में नागलोग कामना प्राप्त होने के लिये नानाप्रकार के भोगों से विधिपूर्वकपूजते हैं उनपितरोंको नमस्कार है। जिन को सर्प लोग विधिपूर्वक श्राद्ध करके तृप्त करते हैं उन पितरों को नमस्कार है, और उन पितरों को नमस्कार है जिनको देवलोक, आकाश और पृथ्वी में देव मनुष्यादि पूजते हैं, वही पितर मेरा दिया हुआ जल ग्रहण करें, जो विमानपर चढ़कर आकाश में निवास करते हैं और जिनको योगीजन अपना क्लेश दूर करने के लिये शुद्ध चित्त से पूजन करते हैं उन पितरों को मैं नमस्कार करता हूँ, जो कामना की इच्छा करने वाले की कामना पूरी करते हैं और निष्कामनावालेको मुक्तिदेते हैं उन पितरों को मैं नमस्कार करता हूँ, जो इच्छा करनेवाले को प्रसन्न होकर देवत्व, इंद्रत्व, और ब्रह्मत्व आदि तथा पुत्र, पशु, बल और गृह देतेहैं। जो पितरलोग सूर्य चन्द्रमा की ज्योति में और श्वेत विमानपर सदा निवास करते हैं, वहलोग इस जगह हमारे दियेहुए अन्न जल और गन्ध इत्यादि से तृप्त होकर तुष्ट हों। जो पितरलोग अग्नि में हविष्य हवनकरने से तृप्त होते हैं, जो पितरलोग ब्राह्मण के शरीरमें रहकर भोजन करते हैं और जो पितरलोग पिण्डदान करने से प्रसन्न होते हैं वह इसजगह मेरे दियेहुए अन्न और जल से तृप्त हों। जो पितरलोग गैंडे के मांससे, काले तिलसे और पुण्यकाल में महाऋषियों के दियेहुए सागसे तृप्त होतेहैं वह पितर इसजगह मुझपर प्रसन्न हों। जो पितरलोग देवताओं से पूजित होकर उनलोगों के दियेहुए कव्य को अभीष्ट मानते हैं वह पितरलोग इसजगह

मेरा दियाहुआ फूल, गन्ध और अन्न इत्यादि ग्रहण करें। जो पितरलोग पृथ्वी में अर्घ्य ग्रहण करते हैं और मासान्त, वत्सरान्त अर्थात् महीने और साल के अन्त में तथा अभ्युदयकाल में पूजित होते हैं, वह पितरलोग इस जगहपर तृप्त हों। जो पितरलोग चन्द्रमा के समान प्रकाशमान होकर ब्राह्मणों से पूजित हैं और प्रातःकाल के सूर्यसमान ज्योतिमान होकर क्षत्रियों से पूजित हैं तथा जो पितरलोग सुवर्ण कीसमान प्रकाशमान होकर वैश्यों से पूजित हैं और जो पितरलोग श्यामवर्ण होकर शूद्रों से पूजित हैं वह पितरलोग मेरे दियेहुए पुष्प, धूप, गन्ध, अन्न और जल आदि तथा होमसे तृप्त हों मैं सदा उनलोगों को प्रणाम करता हूं और मैं उन पितरों को प्रणाम करताहूं जो अग्निमें देवताओं के लिये हविष्य होमनेपर, पितरोंकी तृप्ति के लिये जो कव्य होता है उसको, खाकर तृप्त हो ऐश्वर्य देते हैं वह पितर इस समय तृप्त हों जो पितर राक्षस, भूत और प्रचण्ड असुरों को नाश करते हैं तथा इन्द्रादि से पूजित हैं वह पितर इससमय तृप्त हों और उनको नमस्कार है। जो पितर अग्निष्वात्ता, बर्हिषद्, आज्यपा और सोमपा हैं वह इस श्राद्ध में मुझसे पूजित होकर तृप्त हों, अग्निष्वात्ता पितर पूर्वदिशा में मेरी रक्षा करें बर्हिषद् पितर दक्षिणदिशा में आज्यपा पितर पश्चिम दिशा में और सोमपा पितर उत्तरदिशा में राक्षस, भूत, पिशाच, असुर तथा अनेकप्रकार के दुःखों से मेरी रक्षा करें सब पितरों के स्वामी जो यम हैं वह मेरी रक्षा करें विश्व, विश्वभुग, आराध्य, धर्म, धन्य, शुभानन, भूतिद, भूतिकृत् और भूति यह पितरों के नौगण, कल्याण, कल्पना कर्त्ता, कल्प, कल्पतराश्रय, कल्पनाहेतु और अनघ यह छः गण; वर, वरेण, वरद, पुष्टिद, तुष्टिद, विश्वपाता, और धाता यह सातों गण महान्, महात्मा, महित, महिमावान् और महाबल, यह पाँचों गण, सुखद, धनद, धर्मद, और भूतिद यह चारोंगण जो सब मिलकर इकतीस पितरगणहैं जोसब संसारमेंव्याप्त हैं वहलोग तृप्त होकर सदामेरा कल्याण करें। इति छियानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥

सत्तानवेवाँ अध्याय ॥

मार्कण्डेयजीबोले कि—हे क्रोष्टुकि! इस प्रकार रुचि ब्राह्मण के स्तुति करने से एक तेज समूह उस जगह प्रकटहोकर शीघ्रही आकाश तक व्याप्त होगया, यह देखकर रुचि ब्राह्मण दोनों घुटनों से पृथ्वीपर झुककर प्रणाम करके यह स्तुति करने लगा, कि—अमूर्त्ति नामक जो दीप्ततेज और दिव्य चक्षु पितर हैं उन को मैं नमस्कार करता हूँ, मैं उन कामद नामक पितरगणों को

नमस्कार करता हूं जो इन्द्र, दक्ष, मरीचि और सप्त ऋषि आदि देवताओं से मिला देते हैं, मनु आदि मुनीन्द्रों और सूर्यचन्द्रा से मिलादेनेवाले पितरों को तथा समुद्र आदि जल के रहनेवाले पितरों को मैं नमस्कार करता हूं, और हाथ जोड़कर उन पितरों को नमस्कार करता हूं जिनकी कृपा से मनुष्यों को नक्षत्र, ग्रह, वायु, अग्नि, आकाश, पृथ्वी और स्वर्ग प्राप्त होता है, जो पितर देवर्षियों के पिता हैं, जिनको सब लोग प्रणाम करते हैं, और जो अक्षय फल देते हैं उन पितरों को मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूं, और प्रजापति, कश्यप, चन्द्रमा, वरुण तथा योगीश्वरों को हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूं, सातोंलोक के सातगणों को और स्वायम्भुव तथा योगदृष्टि ब्रह्माजी को प्रणाम करता हूं, सोमाधार, योगमूर्त्ति धारण करनेवाले पितरगण और सब जगत् के पितर चन्द्रमा को प्रणाम करता हूं जो पितर तेजमय विराजमान् हैं, चन्द्रमा, सूर्य और अग्निस्वरूप हैं किन्तु जगत् स्वरूपी और ब्रह्मस्वरूपी हैं. उन सब स्वधा भोजन करनेवाले योगी पितरोंको मैं प्रणाम करता हूं, वह सब मुझपर प्रसन्न हों ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि—हे क्रौष्टुकि ! इसप्रकार रुचि की स्तुति करनेपर उस तेजपुञ्जमें से पितरलोग अपनी ज्योति से दशों दिशाओंको प्रकाशित करतेहुए निकले. और जो कुछ रुचि ब्राह्मण का चढ़ायाहुआ गन्ध, चंदन और पुष्पादिक था उस सबको ग्रहणकरके रुचिके सामने खड़े होगए, तब रुचिब्राह्मण उन पितरों को देखकर और हाथ जोड़कर भक्ति पूर्वक सब पितरोंको प्रणाम करके उनसब की पृथक्२ स्तुति करनेलगे, हे क्रौष्टुकि! तब वह पितरलोग प्रसन्न होकर रुचिसे बोले कि—हे पुत्र ! जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो कहो, तब रुचि ने प्रणाम करके कहा कि--हे पितरो ! इससमय सृष्टि रचने के लिये ब्रह्माजी ने मुझे आज्ञा दी है, इस लिये प्रजावती सुन्दरी पतिव्रता स्त्री मैं चाहता हूं; पितरों ने कहा कि--इसीसमय अत्यन्त सुन्दरी स्त्री तुमको मिलैगी, उसी से तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होगा जो मनुहोगा और वह मन्वन्तरोंका स्वामी बहुत बुद्धिमान् होगा, तथा तुम्हारे नाम से उसका भी रौच्य नाम प्रसिद्ध होगा और उसके भी बड़े २ पराक्रमी महात्मा पृथ्वीपालक पुत्र उत्पन्न होंगे; तुम भी प्रजापति होकर चारप्रकार की प्रजाको उत्पन्न करके जब उस अधिकार से पृथक् होगे तब तुम सिद्ध होजाओगे. जिस स्तोत्र से तुमने हम सबोंकी स्तुति करी है उस स्तोत्र को पढ़कर जो कोई हम सबोंकी स्तुति करैगा उसपर हम सब प्रसन्न होकर उसको भोग, उत्तम ज्ञान, शरीरकी आरोग्यता,

अर्थ और पुत्र पौत्रादिक देंगे अर्थात् जिन मनुष्यों को इन पदार्थों की इच्छा हो वह मनुष्य इसी स्तोत्र से हमारी स्तुति करें, जो कोई इस प्रीतिकारक स्तोत्र को हमारे श्राद्ध में भोजन करते हुए ब्राह्मणों के आगे खड़ा होकर भक्तिपूर्वक पढ़ेगा इस स्तोत्र के सुनने से वहाँपर हमलोग वर्त्तमान् रहेंगे और वह श्राद्ध अक्षय होगा, इसमें संदेह नहीं है, जिस श्राद्ध में पण्डित ब्राह्मण नहीं हो और उसमें किसीप्रकार का उपहत भी होजाय, अन्याय उपार्जित धन से श्राद्ध भी कराजाय, अविहित तथा किसीप्रकार से जूठा होगया हो वा छुवागया हो उस से जो श्राद्ध कियाजाय अथवा अकाल वा परदेश में विधिहीन हुआ हो, विना श्रद्धा के पाखण्डीपुरुष से श्राद्ध कराजाय तौ भी उस श्राद्ध में इस स्तोत्र के पढ़ने से हमलोग तृप्त होजायँगे, जिस श्राद्ध में हमलोगों का सुख देनेवाला यह स्तोत्र पढ़ाजायगा उस श्राद्ध से हम लोग बारह वर्ष तक तृप्त रहेंगे, हेमन्तऋतु में श्राद्ध करके जो यह स्तोत्र पढ़े तौ भी बारह वर्ष तक और शिशिर ऋतु में श्राद्ध करके इस स्तोत्र के पढ़नेसे चौबीस वर्षतक हमलोग तृप्त रहेंगे, वसन्तऋतु में श्राद्ध करके इस स्तोत्र के पढ़ने से सोलह वर्ष तक और ग्रीष्मऋतु में श्राद्ध करके पढ़ने से भी सोलहवर्ष तक तृप्त रहेंगे, हे रुचि ! वर्षाकाल में श्राद्धकर्त्ता व्याकुल होजाय तो भी इस स्तोत्र के उस जगह पाठ करने से हमलोगोंकी अक्षयतृप्ति होगी, शरद् काल में श्राद्ध करके यह स्तोत्र पढे तो पन्द्रह वर्ष तक हमलोग तृप्त रहेंगे, जिस घर में यह स्तोत्र लिखकर रक्खाजाय उस स्थान में श्राद्ध करने से हमलोग सदा उसके समीप बनेरहेंगे, इसलिये हे महाभाग ! श्राद्ध में ब्राह्मणों के भोजन करते समय यह स्तोत्र उन लोगों के आगे खड़े होकर सुनाया करो, जिससे हमलोगों को पुष्टि होवे, इति सत्तानवेंवाँ अध्याय समाप्त ॥

अट्ठानवेंवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजीबोले कि—हे क्रोष्टुकि ! तदनन्तर उसी नदी में से अत्यन्त सुंदरी अतीव मनोरमा प्रम्लोचा नामक अप्सरा निकलकर रुचि ब्राह्मण के सम्मुख खड़ी होगई और उस रुचि ब्राह्मण को प्रणाम करके मधुर वचन बोली कि—हे तपस्वी ! एक मेरी कन्या अत्यन्त सुंदरी वरुण के पुत्र महात्मा पुष्कर से उत्पन्न हुई है, वह कन्या मैं आपको देती हूँ, आप ग्रहण करके उससे विवाह करलीजिये, उसी से अत्यन्त बुद्धिमान मनु आपका पुत्र उत्पन्न होगा ॥

मार्कण्डेयजीबोले कि—हे क्रोष्टुकि ! प्रम्लोचा के इसप्रकार कहनेपर रुचि ने कहा कि—बहुत अच्छा, उस कन्या को

दीजाये मैं उससे विवाह करूँगा, तब उस अप्सराने उस जल से मालिनी नामक अपनी सुन्दरी कन्या को निकाला, तब रुचि ब्राह्मणने बहुत से मुनियों को बुलाकर उसी नदी के किनारे विधिपूर्वक उस कन्या के साथ अपना विवाह करलिया, उसी स्त्री से उस रुचि ब्राह्मण के बुद्धिमान् और पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम पिता के नामपर रौच्य पृथ्वीपर प्रसिद्ध हुआ, उन के मन्वंतर में जो देवता, सप्तर्षि और उस के पुत्र जो राजा होंगे उन सबका वृत्तान्त मैं पहिले कहचुका हूँ, हे क्रोष्टुकि ! इस मन्वंतर की कथा सुननें से धर्म की वृद्धि होती है, शरीर में कोई दुःख नहीं होता है, धनधान्य और पुत्र मनुष्योंको निःसंदेह मिलता है, इसीप्रकार हे महामुनि ! पितरों की स्तुति और पितरगणों की कथा सुनने से तथा उन लोगों के प्रसाद से सम्पूर्ण कामना प्राप्त होती हैं।

इति अट्ठानवेंवाँ अध्याय समाप्त ।

निन्नानवेंवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रोष्टुकि ! अब भौत्य मनु की उत्पत्ति और उन के मन्वंतर में जो देवता, सप्तर्षि तथा उन के पुत्र राजा होंगे वह मैं कहता हूँ सुनो, अङ्गिरा ऋषि के शिष्य भूति नामक बड़े क्रोधी और कटुवादी थे, उन के आश्रमपर उन के डरसे वायु अधिक नहीं बहता था, सूर्य अपना तेज बहुत नहीं करते थे और मेघ भी उन के भय से इतना नहीं वर्षता था कि—जिससे उन के आश्रमपर कीच हो, पूर्णमासी का चन्द्रमा उन के भय से अधिक शरदी अपनी किरणों से नहीं पड़नेदेता था, सब ऋतु भी अपना २ कर्म छोड़कर उन के आश्रम के आसपास के वृक्षों में फल और फूल सदा देतेथे, और उन महात्मा के भय से उन के आश्रम के समीप उन के कमण्डलु में भी सदा जल भरा रहता था, हे क्रोष्टुकि ! वह भूति किसी प्रकार का क्लेश नहीं उठाते थे और उन के चित्त में सदा क्रोध भरा रहता था, उस महाभागने पुत्र न होने के कारण तपस्या करने का विचारकरा अर्थात् पुत्र होने के लिये फलाहार करना और शरदी, गर्मी तथा अग्नि इत्यादि का क्लेश अपने ऊपर उठाना चित्त में ठानकर तपस्या करने लगे, तपस्या करने के समय भी उन के भय से चन्द्रमा अत्यन्त शीतलता और सूर्य अत्यंत उष्णता न करतेथे, वायु भी बहुत उत्पातकारक नहीं बहते थे, हे मुनिसत्तम ! न भूतिने क्लेश से पीड़ित होकर तपस्या करी परंतु उन की अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई तब उन्होंने तपस्या करना छोड़दिया, तदनंतर भूति मुनि के भाई सुवर्चाने अपने

यज्ञ में आने के लिये अपने भाई भूतिको निमंत्रण भेजा तब भूति मुनि अपने भाई सुवर्चा के यज्ञ में जाने की इच्छा से अपने शिष्य महामुनि शान्ति से बोले; वह शांति भी सतोगुणी, सुन्दर नीतिमान्, गुरुका भक्त और उत्तम क्रियावाला तथा उदार था, भूति ने उससे कहा कि—हे शान्ति! मैं अपने भाई के यज्ञ में जाऊँगा, तुमको यहां छोड़े जाता हूं, तुम यहां रहकर जो मैं कहता हूं वह करना, अर्थात् मेरे आश्रम में अग्नि का ऐसा संयम करना कि बुझने न पावै।

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि—हे क्रौष्टुकि! गुरुकी आज्ञा सुनकर शान्ति ने कहा कि बहुत अच्छा आपकी आज्ञानुसार करूँगा, तब भूति अपने भाईके यज्ञ में चले गए, तदनन्तर शान्ति वनमें से फल-फूल और ईंधन आदि लाकर गुरुकी आज्ञानुसार कार्य करनेलगा, और गुरुकी भक्तिके वश्य होकर गुरु का जो दूसरा काम था वह भी करनेलगा तब गुरु का यत्न कराहुआ अग्नि बुझगया, अग्नि को बुझाहुआ देखकर शान्तिमुनि अत्यन्त दुःखितहुए और भूतिमुनि के भय से अत्यन्त चिन्ता करनेलगे, शोचनेलगे कि—क्या करूँ? गुरु के आनेपर क्या उत्तर दूंगा, कौनसा यत्न करूँ जिससे मेरा भला हो, जिससमय मेरे गुरु अग्नि को आश्रम में बुझाहुआ देखेंगे उससमय बड़ा क्रोध करेंगे और उनके क्रोधसे मुझ को बड़ा क्लेश होगा, जो इस स्थान में दूसरी अग्नि लाकर जलाता हूं तो मेरे गुरु सर्वदर्शी हैं दूसरी अग्नि समझकर अवश्य मुझे भस्म करडालेंगे, निश्चय मैं बड़ा पापी हूं जो गुरुके कोप होने की बातको न शोचा और ऐसा अपराध मुझसे हुआ, जिसप्रकार अग्नि क्रोध करके सब वस्तुओं को भस्म करदेता है उसीप्रकार मेरे गुरु भी अग्नि को बुझा हुआ देखकर मुझे भस्म करडालेंगे। क्योंकि--उनके प्रभाव से देवतालोग भी आज्ञामें रहते हैं, अब गुरु मुझे अपराधी समझेंगे तो मैं कौनसा यत्न करूं कि—जिससे गुरु मुझको शाप न दें॥

मार्कण्डेयजी बोले कि—हे क्रौष्टुकि! इसप्रकार चिन्ता में प्राप्त होकर बुद्धिमान् शान्ति ने गुरु के भय से अग्नि की शरण पकड़ी अर्थात् एकाग्र चित्त होकर इसप्रकार अग्नि की स्तुति हाथ जोड़कर करनेलगा कि—सब भूतों के कर्मसाधक और महात्मा एक द्विपञ्चस्थानी तथा राजसूययज्ञ में महात्मा जो अग्नि है उसको मैं प्रणाम करता हूँ, सब देवताओं के जीवनदायक और सुकान्ति तथा शुक्ररूप अग्नि को जो सब जगत् की स्थिति करनेवाले हैं मैं प्रणाम करता हूं हे अग्नि! आप सब देवताओं का मुख हैं आपके हविष्य भोजन करने से भगवान्

विष्णु सब देवताओं को तृप्त कराते हैं इसलिये सब देवताओं के आप प्राण हैं हवन कराहुआ हविष्य जो आपको प्राप्त होता है वह अन्त में जलरूप होजाता है, हे अनलपार्थी! उसी जल से सब भोजन की वस्तुएँ और औषधि आदि उत्पन्न होती हैं जिनसे सब जीव सुखपूर्वक रहते हैं, हे अग्नि! फिर उन्हीं औषधियों से मनुष्य यज्ञ करते हैं और उस यज्ञ से देवता, दैत्य तथा राक्षस इत्यादि सब तृप्त होते हैं, हे हुताशन! उन सब यज्ञों के आपही आधार हैं इस लिये आप सबके आदि और सर्वमय हैं देव, दानव, यक्ष, दैत्य, गन्धर्व, राक्षस, मनुष्य, पशु, वृक्ष, मृग पक्षी और सर्प इत्यादि सब जीवों को आप तृप्त करते हैं, आपही उत्पन्न करते हैं और आपही पालन करते हैं फिर अन्त को सब जीव आपही में मिलजाते हैं, आपही जलको उत्पन्न करते हैं और फिर आपही उस को पीजाते हैं तथा आपके ही कारण से यह जल सब जीवों को पुष्ट करता है, देवताओं में तेजरूप होकर, सिद्धों में कान्तिरूप होकर नागों में, विषरूप होकर, पक्षियों में वायुरूप होकर, मनुष्यों में क्रोधरूप होकर, मृगादि में मोहरूप होकर, वृक्षों में अवष्टम्भरूप होकर, पृथ्वी में कठोररूप होकर, जलमेंद्रव अर्थात् कोमलतारूप, वायु में वेगरूप और आकाश में व्यापित्वरूप होकर आप व्यवस्थित आत्मा रहते हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूं, हे अग्नि! आप सब का पालन करते हुए सब जीवों के हृदय में विराजमान् रहते हैं, आप एक हैं परंतु कवि लोग आपको तीनप्रकार का कहते हैं, ऋषीश्वर लोग यज्ञादिक में आपको आठ प्रकारका कल्पित करतेहैं और कहते हैं कि—यह संसार आपसे ही उत्पन्नहै, हे हुताशन! आपके मरजाने से सब जगत् नष्ट होजाता है, आपकी पूजा और स्तुति करके अपने विहित कर्म को ब्राह्मणलोग स्वधा और स्वाहा उच्चारण करके हव्य कव्य आदि से प्राप्त होते हैं और सब द्विजों का आत्मा वीर्य आपका ही है, हे जातवेद! हे महाद्युति! आपसे ही ज्वाला निकलकर सब प्राणियों को जलाती है और यह संसार आपका ही उत्पन्न कराहुआ है, सम्पूर्ण वैदिक कर्म और सब जगत् आपका ही उत्पन्न करा हुआ है हे पिंगाक्ष! मैं आपके चरण में बारम्बार प्रणाम करता हूँ।

हे आदिपावक! हे हव्यवाहन! मैं आप को प्रणाम करता हूं, आपही भोजन करीहुई वस्तुओं को पचाते हैं इसलिये आप विश्वपाचक हैं, सब अनाजों को पाचनकर्त्ता और सब जगत् के पोषण करनेवाले आपही हैं, चन्द्रमा और वायु आपही हैं, सब अनाजोंका वीर्य आपही

हैं, सब प्राणियोंके पालन और कल्याण करने के लिये आपकी उत्पत्ति है, सब प्राणियों में आपका ही तेज है और मूर्त्ति भी आपही हैं, रातदिन और दोनों संध्या भी आपही हैं, हे अग्नि ! सुवर्ण उत्पन्न होनेके स्थान हिरण्यदेवता भी आपही हैं, सुवर्ण की समान कांतिमान् हिरण्यगर्भ आपही हैं. मुहूर्त्त, क्षण, त्रुटि और लव आपही हैं. हे जगत्प्रभु ! कला, काष्ठा और निमेष इत्यादि रूपसे सम्पूर्ण जगत् में आप व्याप्त रहते हैं, और अन्तकाल भी आपही हैं । हे प्रभु ! आपकी जो काली जिह्वा है वह कालनिष्ठा करनेवाली है उसी जिव्हासे हम सबकी पापोंसे और संसारके भयसे रक्षा करिये, और कराली नामक जो आपकी जिव्हा है वह महाप्रलय करनेवाली है,उस जिव्हासे भी हम सबकी पापोंसे और संसारभयसे रक्षा करिये. मनोजवा नामक जो आपकी जिव्हा है वह लघिमागुण का कारण है, उससे हम सबकी पापों से और संसार भय से रक्षा करिये, जगत् की कामना देनेवाली जो आपकी सुलोहिता जिव्हा है उससे हम लोगों की पापों से और संसार के महाभय से रक्षा करिये, सब संसार के मनको चंचलकरनेवाली जो आपकी स्फुलिङ्गिनी नामक जिव्हा है उससे हम लोगों की पापों से और संसार के महाभय से रक्षा करिये सब प्राणियों को रोग देनेवाली जो आपकी सधूम्रवर्णा नामक जिव्हा है उससे हमलोगों की पापोंसे और संसार के महाभय से रक्षा करिये, प्राणियों को कल्याण देनेवाली जो आपकी विश्वासदा नामक जिव्हा है उससे हम लोगोंकी पापों से और संसारके महाभय से रक्षा करिये. हे पिंगाक्ष ! हे लोहितकण्ठ ! हे कृष्णवर्ण ! हे हुताशन ! मुझे सब दोषों से रहित करके इस संसार से मेरा उद्धार करिये. आप वह्नि, सप्तार्ची, कृशानु, हव्यवाहन, अग्नि, पावक और शुक्र इत्यादि आठ नामों से पुकारेजाते हैं, मुझपर प्रसन्न हूजिये, हे अग्नि ! आप सब जीवों से पहिले उत्पन्नहुए हैं हे हव्यवाहन ! हे अभीष्टुत ! हे अव्यय ! प्रसन्न हूजिये. आप अक्षय वन्हि, अचिंत्यरूप, समृद्धिमान, दुष्प्रसह, अति तीव्र, अव्यय, भीम और सम्पूर्णलोकोंके नाशकर्त्ता हैं अतः अत्यन्त पराक्रमी हैं, आप उत्तम हैं, सब जीवों के हृदयकमल में विराजमान रहते हैं, अनंत हैं, स्तुति करनेयोग्य हैं और सब संसार में व्याप्त हैं, हे हुताशन ! आप एक हैं परन्तु बहुत प्रकार से संसार में वर्त्तमान रहते हैं, आप अक्षयहैं, पर्वत, वन, पृथ्वी, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य, दिन और रात सब आप ही हैं आप परमविभूति हाथ में लेकर विराजमान रहते हैं, यज्ञ में महर्षि लोग आपके हुताशनरूपको सदा पूजतेहैं, और

स्तुति करने से यज्ञ में सोमपान तथा वषट् उच्चारण करके हविष्य भोजन करते हैं, ब्राह्मणलोग फल मिलने के लिये सदा आपकी स्तुति करते हैं और सब वेदों में आपको गाते हैं तथा आप के निमित्त ब्राह्मणलोग यज्ञपरायण होकर सब काल में वेदाङ्गों को पढ़ते हैं, यज्ञपरायण ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, अर्य्यमा, वरुण, सूर्य, चन्द्रमा, सब देवता और असुर, हविष्यों से आपको सन्तुष्ट करके सुन्दर फल पाते हैं, कैसे ही उपघात से कोई दुःखित हो तौ भी आपकी ज्वाला के स्पर्श से पवित्र होजाता है और सन्ध्याकाल में मुनिलोग स्नान करके आपकी पवित्र भस्म को शरीर शुद्ध होने के लिये लगाते हैं हे वन्हि ! हे शुचिनामधेय ! हे वायु ! हे विमलातिदीप्ति ! हे पावक ! हे देवत ! हे आद्य हे ! हव्याशन ! प्रसन्नहूजिये और हमारी रक्षा करिये, हे वन्हि ! आपका कल्याणरूप जो है और जो सातों ज्वाला हैं वह इस प्रकार हमारी रक्षा करें कि–जिसप्रकार पिता पुत्र की रक्षा करता है.

इति निन्नानवेवां अध्याय समाप्त.

सौवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजीबोले कि—हे क्रौष्टुकि ! इसप्रकार शान्ति के स्तुति करने के उपरान्त हव्यवाहन भगवान् बहुत ज्वालाओं से युक्त होकर उन के सामने खडे होगए अग्नि ने कहा कि—हे ब्राह्मण ! भक्तिपूर्वक जो तुमने मेरी स्तुति करी है इस से मैं बहुत प्रसन्नहूँ तुम जो वरदान मांगो वह मैं तुमको दूँगा, शान्ति मुनिने कहा कि–हे अग्नि ! आपके दर्शन से मैं कृतकृत्य होगया परन्तु तौ भी भक्तियुक्त कहता हूं सुनिये, हे देव ! मेरे गुरु अपने भाई के यज्ञ में गए हैं सो आप ऐसा करिये कि जिस में वहां से आकर गुरूजी आपको वैसा ही प्रज्वलित देखें जैसा कि—छोड गए थे, हे विभावसु ! मेरा अपराध जो आप के बुझजाने से हुआ है वह उनको मालूम नहो किन्तु आपको पूर्ववत् प्रज्वलित देखें, हे अग्नि ! जो हमारे ऊपर आप प्रसन्न हैं तो मैं यह वरदान चाहता हूं कि—मेरे गुरु अपुत्र हैं उनके उत्तम पुत्र उत्पन्न हो और उस पुत्र के साथ बहुत प्रीति रक्खें तथा वैसी ही प्रीति सब जीवों के साथ उनको रहै, हे अव्यय ! जो आप मेरे स्तुति करने से प्रसन्न हैं तो इसी स्तोत्र से मेरे गुरुपर भी प्रसन्नहोकर उनकी कामना पूर्ण करिये।

मार्कण्डेयजीबोले कि–हे क्रौष्टुकि ! शान्ति का वचन और स्तोत्र सुनकर तथा गुरुके साथ उनकी भक्ति देखकर अग्नि बोले कि—हे महामुनि ! तुमने अपने गुरु के लिये दो वरदान माँगे और अपने लिये कुछ न माँगा इस कारण मैं तुमपर और भी प्रसन्न हूं, गुरु के लिये

जो तुमने दो वरदान मांगे हैं वह प्राप्त होंगे अर्थात् तुम्हारे गुरु को सब के साथ प्रीति होगी और उनके पुत्र भी उत्पन्न होगा, वह पुत्र उन का मन्वन्तर का स्वामी भौत्य नाम से विख्यात होगा और महाबली तथा पण्डित होगा, हे ब्रह्मन् ! जो कोई इस स्तोत्र से मेरी स्तुति करेगा उसकी सब अभिलाषा पूर्ण होगी और पुण्य होगा, यज्ञ में, पर्व में, तीर्थ में और होम में धर्म के लिये इस स्तोत्र के पढने से मुझे परमपुष्टि प्राप्त होगी, हे ब्रह्मन्! जो कोई इस मेरे पुष्टिकारक स्तोत्र को एक वार भी सुनैगा उसका एक दिन और एकरात का कराहुआ पाप निःसन्देह छूटजायगा, सम्यक् प्रकार इस स्तोत्र के सुनने से होम न करने का, कालका, यज्ञ का और अयोग्य कर्म करने का सब दोष नाश होजायगा, पूर्णमासी और अमावस्या, इत्यादि पर्वों में जो कोई मेरे इस स्तोत्र को सुनैगा उस के सब पाप नाश होजायंगे ।

मार्कण्डेयजी बोले कि–हे क्रोष्टुकि ! इतना कहकर अग्निभगवान् तो शान्ति मुनि की दृष्टि से अन्तर्धान होगये तदनंतर शान्तिमुनि तुष्टचित्त और पुलकित शरीर होकर अपने गुरुके आश्रमपर गये तथा उस आश्रम में अग्नि को पहिलेकी समान प्रज्वलित देखकर बहुत प्रसन्नहुए तदनंतर शान्तिमुनि के गुरु जो अपने भाईके यज्ञमें गए थे अपने आश्रमपर आगए; शान्ति मुनिने गुरुके आगे जाकर और उनका पूजन करके उनके चरणों को प्रणाम किया, तब उनके गुरु उनसे बोले कि -हे वत्स ! तुझ से और अन्य लोगोंसे जितनी प्रीति मुझको प्रथम थी अब उससे अधिक प्रीति मुझ को तुम लोगों से मालूम होती है इसका क्या कारण है, जो तुम्हें मालूम हो तो कहो. गुरु की आज्ञापाकर शान्तिमुनि ने अग्निके बुझजानेपर अग्निकी स्तुतिकरना और उस स्तोत्रसे उनका प्रकट होकर वरदान देना यह सब हाल कहसुनाया, यह सुन गुरुने प्रीतसंयुक्त शांतिको अपने हृदय से लगाया, फिर सांगोपाङ्ग से चारों वेद शांतिको पढ़ादिये, तदनन्तर अग्निके आशीर्वादसे भूति मुनिके भौत्य नामक पुत्र उत्पन्नहुआ, उसके मन्वंतर में जो देवता, इंद्र, ऋषि और राजा होंगे वह मैं कहता हूँ सुनो. चाक्षुष, कनिष्ठ, पवित्र, भ्राजिर और धरावृक यह जो पांच देवगण हैं यही उस मन्वंतर में देवता होंगे. देवताओंके स्वामी महाबली शुचि नामक इंद्र होंगे. अग्नीध्र, अग्निबाहु, शुचि, मुक्त, माधव, शुक्र और अजित यह सातों उस मन्वंतर में सप्तऋषि कहावेंगे. गुरु, गभीर, ब्रध्न, भरत, अनुमानी, प्रवीर, विष्णु, संक्रन्दन, तेजस्वी और सुबल यह भौत्य मनुके पुत्र राजा होंगे ॥

मार्कण्डेयजीने कहा कि--हे क्रोष्टुकि ! इन चौदह मन्वंतरों का वृत्तांत जो मैंने वर्णन किया इन मन्वंतरोंको जो मनुष्य सुनेंगे वह पुण्य और सन्तति को प्राप्त होंगे प्रथम मन्वंतर की कथा सुनने से मनुष्य को धर्म प्राप्त होता है, स्वारोचिष मन्वंतर की कथा सुनने से कामना पूर्ण होती है, औत्तम मन्वंतर की कथा सुनने से धर्म, तामस मन्वंतर की कथा सुनने से ज्ञान, रैवत मन्वंतर की कथा सुनने से बुद्धि और सुन्दर स्त्री मिलती है, चाक्षुष मन्वंतर की कथा सुनने से आरोग्य रहता है, वैवस्वत मन्वंतर की कथा सुननेसे बल, सूर्य सावर्णिक मन्वंतर की कथा सुननेसे गुणवान् पुत्र और पौत्र मिलता है, ब्रह्म सावर्णिक मन्वंतर की कथा सुनने से मनुष्यका माहात्म्य बढ़ता है, धर्मसावर्णिक मन्वंतर की कथा सुनने से कल्याण, शुभ मति और जय प्राप्त होतीहै, रुद्रसावर्णिक मन्वंतर की कथा सुनने से जय मिलती है, दक्षसावर्णिक मन्वंतरकी कथा सुनने से मनुष्य अपनी जाति में उत्तम और गुणवान् होता है, रौच्य मन्वंतरकी कथा सुनने से उसके शत्रुओं का नाश होता है और भौत्य मन्वंतर की कथा सुनने से देवताओं की प्रसन्नता, अग्निहोत्र का फल तथा गुणवान् पुत्र प्राप्त होता है। हे मुनिसत्तम ! क्रमसे मन्वंतरों को जो लोग सुनते हैं उनको जो फल प्राप्त होता है वहभी मैं कहता हूँ सुनो. उन मन्वंतरों में जो देवता, इंद्र, ऋषि और मनुओं के पुत्र राजाओं की तथा उनके वंशकी कथा जो मनुष्य सुनेंगे वह पापोंसे छूटजाएँगे. देवता, ऋषि, राजा और मन्वंतरों के स्वामी उस सुननेवाले मनुष्यपर प्रसन्न होकर ज्ञान देते हैं, तब शुभमति पाकर और शुभकर्म करके अच्छी गतिको प्राप्त होते हैं जबतक चौदह इंद्र बीतते हैं, जो मनुष्य क्रमसे सब मन्वंतरों की कथा सुनते हैं उसपर सब ऋतु शुभऋतु होजाते हैं और सब ग्रह शुभग्रह होजाते हैं, इस में संशय नहीं है ॥ इति सौवाँ अध्याय समाप्त ॥

एकसौ एकवाँ अध्याय।

क्रोष्टुकि ने कहा कि--हे भगवन् ! मन्वंतरों का स्थित होना क्रम से विस्तार पूर्वक आपने वर्णन किया अब हे द्विजोत्तम ! सब राजाओं के वंशका वृत्तांत जिसके आदि ब्रह्मा हैं विस्तारपूर्वक सुना चाहता हूं, कहिये. यह प्रश्न क्रोष्टुकिका सुनकर मार्कण्डेयजी बोले कि हे वत्स सब राजाओंकी उत्पत्ति और उनके चरित्र जिन के आदि जगत्मूल ब्रह्मा हैं कहताहूँ सुनो यह वंश बहुत यज्ञकरनेवाले और संग्रामविजयी तथा धर्म के जानने वाले हजारों राजाओं से शोभायमान है, महात्मा राजाओंकी उत्पत्ति और उनके चरित्र सुन कर मनुष्य पाप से छूट-

जातेहैं, जिसमें मनु, इक्ष्वाकु, अनरण्य और भगीरथ आदिसहस्रों राजा हुए हैं जिन्होंने सब प्रकार से पृथ्वी का पालन किया वह लोग धर्म के जानने वाले यज्ञ करनेवाले शूर वीर और सब प्रकार से वेदके जाननेवाले हुए जिनके वंशका वृत्तांत सुनने से मनुष्यपापों से छूट जाता है, जिसवंश से सहस्रों राजाओं का वंश हुआ है जिस प्रकार एक बड़ के वृक्षसे सहस्रों शाखा निकलती हैं, उस वंशका वृतान्त मैं कहता हूँ, सुनो वाये अगूठें से जगत्के उत्पत्तिकारक विभुभगवान् ब्रह्मा ने दक्ष की स्त्री को उत्पन्न करा कि-जिससे दक्ष के अदिति नामक कन्या उत्पन्न हुई उसका विवाह कश्यप से हुआ फिर उस अदिति से कश्यप के मार्त्तण्डनाम सूर्यदेवता उत्पन्न हुए, फिर ब्रह्माजी ने उत्पत्ति पालन और प्रलय कर्म करने के लिये आदि, अन्त और मध्य में रहनेवाले सब जगत् के वरदायक स्वरूप को निर्माण किया, जिससे हे ब्राह्मण! यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न और स्थित है, जिसके स्वरूप देवता, असुर और मनुष्यादि हैं, जो सर्वजीव, सर्वात्मा और सनातन परमात्मा हैं वह भास्वान सूर्य अदिति से उत्पन्न हुए वह अदिति पहिले से ही उनकी आराधना कियेहुये थी, यह सुनकर क्रोष्टुकि बोले कि-हेभगवन्! विवस्वान् सूर्य का जो स्वरूप है वह और देव, जगत् के कारण कश्यप के पुत्र हुए वह सब सुना चाहता हूँ, जिसप्रकार अदिति और कश्यप ने उनकी आराधना करी तथा आराधना करने से जिसप्रकार भास्वान् देव ने अदिति और कश्यप को वरदान दिया, हे मुनिसत्तम! उनके अवतार का प्रभाव भी जो आप संक्षेप से कहचुके हैं उसको विस्तार पूर्वक सुनाइये, यह प्रश्न क्रोष्टुकि का सुनकर मार्कण्डेयजी बोले कि--स्पष्ट परम विद्या, ज्योति, शाश्वती, प्रकाशित दीप्त,कैवल्य ज्ञान, प्रकट होना, प्राकाम्य संविद्, बोध, अवगति, स्मृति और विज्ञान यह सब भास्वान् सूर्य के रूप हैं, हे महाभाग! सूर्य देवता का प्रगट होना जो तुमने पूँछा है सो जिसप्रकार से प्रगट हुए हैं वह विस्तारपूर्वक कहता हूं सुनो, एक समय जब इस जगत् से प्रभा जाती रही और सब अन्धकार होगया तब एक बहुत बड़ा अण्डा उत्पन्न हुआ तदनंतर वह अण्डा फटा और उसमें से भगवान् पितामह पद्मयोनि जगत् के सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी उत्पन्न हुए और ब्रह्माजी के मुख से महान् प्रणव शब्द उत्पन्न हुआ भू शब्द, भुवर् शब्द और उसी से स्वर शब्द उत्पन्न हुआ यह तीनों व्याहृति विवस्वान् सूर्य का स्वरूप है और प्रणव स्वरूप से सूर्य का सूक्ष्म स्वरूप उत्पन्न हुआ, उस सूक्ष्म स्वरूप से स्थूल महान्

शब्द उत्पन्न हुआ फिर उस स्थूल से बड़ा स्थूल जलशब्द उत्पन्न हुआ उससे तपशब्द और उससे सत्य शब्द उत्पन्न हुआ यही सात प्रकार के सूर्य देवता के रूप स्थित हैं कि—जिन का ध्यान करने से सम्पूर्ण जगत् निर्भयपद को प्राप्त होता है, जो सब जगत् के आदि और अन्त परम सूक्ष्म तथा अरूप हैं, हे विप्र ! वही प्रणव कहेजाते हैं और उन्हीं को परब्रह्मरूप भी कहते हैं ॥

इति एक सौ एक वाँ अध्याय समाप्त

एक सौ दोवाँ अध्याय

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि–हे क्रोष्टुकि ! उस अण्डे के फटने और उस के भीतर से ब्रह्माजी के निकलनेपर उन के पूर्व मुखसे ऋचासहित ऋग्वेद उत्पन्न हुआ वह सब गुड़हल के फूल की समान पृथक् २ रजोगुणीरूप को धारण करे हुए थे, तत्पश्चात् ब्रह्माजी के दक्षिण मुख से सुवर्ण की समान स्वरूपवाले यजुर्वेद के सब मन्त्र उत्पन्न हुए, पश्चिम मुखसे सामवेद के सब मंत्र और सब छन्द प्रकट हुए और ब्रह्माजी के उत्तर मुखसे अंजन के पुंजकी समान श्याम वर्ण घोर स्वरूप जो अभिचारिक और शान्तिक क्रियाओं को बतलाते हैं ऐसे अथर्वण वेद के सब मंत्र उत्पन्न हुए, वह सब सत्वगुण और तमोगुण संयुक्त तथा सौम्य और असौम्य स्वरूप थे, ऋग्वेद मन्त्र सब रजोगुणी हैं, यजुर्वेद मंत्र सब सत्वगुणी हैं. सामवेद मंत्र सब तमोगुणी हैं, और अथर्वण वेद मंत्र सत्वगुणी तथा तमोगुणी संयुक्त हैं, यह सब अमित तेज से प्रकाशमान पृथक् २ पहिले की समान प्रकट हुए, तदनंतर जो पहिला तेज था सो प्रणव शब्द के साथ मिल कर स्थित होगया, फिर वह तेज, यजुर्मय जो तेज था, उस में मिलकर हे महामुनि ! फिर साममय तेज के साथ मिलकर एक होगया. तब शान्तिक, पौष्टिक और आभिचारिक यह तीनों तेज ऋग्, यजु और साम में मिलगए, तब अन्धकार के नाश होजाने से यह विश्व शीघ्र ही निर्मल होगया, हे विप्रर्षि ! इसी प्रकार तिर्यग्, ऊर्ध्व, अधः और नीच, ऊँच को समझना, तदनन्तर वह वेदों का उत्तम तेज जो एक दूसरे तेज के साथ मिलकर एक मण्डल होगया था और उन सब तेजों के इकट्ठा होनेपर जो तेज निकला उसी का नाम आदित्य हुआ हे मुनि ! वही आदित्य नामक तेज इस विश्व का अव्ययात्मक कारण है, यही ऋग्, यजु और साममय तीनों का तेज प्रातःकाल मध्यान्हकाल तथा अपरान्ह काल में तपित करता है, हे मुनि ! ऋङ्मय तेज प्रातःकाल में, यजुर्वेद मंत्र का तेज मध्यान्हकाल में और साममय तेज अपरान्हकाल में तपित करता है,

शान्तिक कर्म ऋग्मय तेज के समय तक प्रातःकाल में, पौष्टिक कर्म यजुर्तेज के समय मध्यान्ह में और आभिचारिक कर्म सामप्रय तेज के समय अपरान्ह में कियाजाता है, अभिचारिक कर्म मध्यान्ह, अपरान्ह और पूर्वान्ह में भी कराजाता है परन्तु पितरों का कर्म साम मंत्र से अपरान्हकाल में करा जाता है, सृष्टि-काल में ब्रह्माजी रजोगुण ऋग्मय तेज में स्थित होकर सृष्टि करते हैं, सत्वगुण यजुर्मय तेज में विष्णु स्थित होकर जगत् का पालन करते हैं और साममय तेज में तमो गुणी रुद्र स्थित होकर प्रलय काल में जगत् का नाश करते हैं इसी कारण साम वेद का शब्द अपवित्र है, इस प्रकार वह भगवान् भास्वान् वेदात्मा वेदसंस्थित और वेदविद्यात्मक सब से परे पुरुष कहाते हैं, वही उत्पत्ति, पालन और प्रलय के कारण हैं, वही सत्व, रज और तम आदि गुणों के साथ ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहाते हैं, सब देवताओं से वन्दित रूप और कुरूप के आदि कारण वेद मूर्ति, विश्वके आधार, ज्योतिरूप, अवेद्य धर्मा और वेदान्तगम्य वह भगवान् सूर्य से परे परे हैं ।

इति एक सौ दोवाँ अध्याय समाप्त ॥

एकसौ तीनवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रोष्टुकि ! उन सूर्य भगवान् के तेज से ऊपर और नीच सब जगत् जब संतप्त होकर जलने लगा, तब सृष्टिकी इच्छा संयुक्त पद्मयोनि ब्रह्माजी चिन्ता करनेलगे कि–यह मेरी रचना करीहुई सम्पूर्ण सृष्टि इस महा तेज से नाश होजावगी और सब प्राणी प्राणहीन होजायँगे, इस तेजसे सबजल सूखजायगा तो फिर बिना जल के सृष्टि नहीं होसकैगी इसप्रकार चिंता करके लोकपितामह ब्रह्माजी ने मन लगाकर सूर्यभगवान् की स्तुति करना आरम्भ की, मैं उन सूर्यभगवान् को प्रणाम करता हूँ जिनमें यह सब संसार व्याप्त रहता है और आप भी इस संसार में व्याप्त रहते हैं, विश्वमूर्त्ति हैं, परमज्योति स्वरूप हैं जिस परमज्योति का योगीजन ध्यान करते हैं, जो ऋग्, यजु और साम मय हैं जो अचिंत्यशक्ति हैं, जो त्रयीमयी स्थूल और अर्द्धमात्रासंयुक्त परस्वरूप हैं तथा अपारगुण हैं, मैं उन सूर्यनारायण को नमस्कार करता हूँ जो सब के कारण हैं, स्तुति करनेयोग्य और आदि में परमज्योतिस्वरूप हैं, अग्निरूप से भिन्न हैं और सब देवताओं में व्याप्त हैं स्थूलरूप हैं, ब्रह्मादिकोंके आदि हैं और प्रकाशमानस्वरूप हैं, हे भगवन् ! आप की जो आद्याशक्ति है उसीसे प्रेरित हो कर जल, पृथ्वी, पवन और अग्निके जो देवता हैं तथा प्रणव आदि संयुक्त इस सृष्टिको मैं रचता हूँ इसीप्रकार पालन,

संहार भी मेरी इच्छासे नहीं होता है, किंतु यह काम करनेवाली आपकी ही शक्ति है, आपही अग्नि होकर जलको सुखाते हैं और संसारको दग्ध करते हैं तब हम फिर पृथ्वी को रचते हैं, हे भगवन्! आकाशरूप होकर भी आपही सब में व्याप्त रहते हैं और पांच स्वरूप होकर आपही इस त्रिभुवनकी रक्षा करते हैं और परम आत्मज्ञानी मुनिगन यत्न करके आपका ही पूजन करते हैं. हे विवस्वन्! यतिलोग मुक्ति की इच्छा से सर्वेश्वर विष्णुस्वरूप सकल संसारमय समझकर एकाग्रचित्त होकर आपका ही ध्यान करते हैं. आपके देवरूप, यज्ञरूप, पर ब्रह्मरूप और योगियोंसे चिन्त्यमानरूप को मैं प्रणाम करता हूं. हे विभो! मैं इससमय सृष्टि करने में प्रवृत्त हूं परन्तु सब सृष्टि मेरे करनेपर भी आपके महा तेजसे नष्ट होजायगी, इसलिये मैं आप की प्रार्थना करता हूं कि--अपना तेज शमन करलीजिये ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि–हे क्रौष्टुकि! इसप्रकार सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी की स्तुति करनेपर भास्वान् सूर्य भगवान ने अपने महा तेज को शमन करके थोड़ा तेज धारण करलिया, तब कमलोद्भव ब्रह्माजी ने उसी प्रकार जगत् की सृष्टि करी जिस प्रकार पहिले कल्प में करी थी, मार्कण्डेयजी ने कहा कि–हे मुनि! ब्रह्माजी ने देवता, असुर, मनुष्य, पशु, वृक्ष, लता और नरक आदि को पहिले की समान रचा ॥

इति एक सौ तीनवाँ अध्याय समाप्त ॥

एकसौ चारवाँ अध्याय

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि–हे क्रौष्टुकि! ब्रह्माजी ने इस जगत् को सृष्टि करके जिस जातिका जो धर्म है उसको बना कर और समुद्र, पर्वत तथा द्वीप आदि का पहिले की समान विभाग करदिया, देवता, दैत्य और सर्प आदिके रूप तथा स्थान भी निर्माण करदिये फिर ब्रह्माजी के पुत्र मरीचि हुए, मरीचिके पुत्र कश्यप हुए, कश्यपजी के तेरह स्त्रियें थीं और वह सब दक्षकी कन्या थीं उन स्त्रियों से कश्यपके देवता, दैत्य और सर्प आदि बहुत सन्तान उत्पन्न हुई अर्थात् अदिति से देवतालोग, दितिसे दैत्यलोग और दनु से दानवलोग उत्पन्नहुए, विनतासे गरुड़ और अरुण, खसा से यक्ष और रक्षगणों का जन्महुआ, कद्रुसे सब नाग और मुनि से गन्धर्वलोग उत्पन्न हुए, क्रोधासे सब कुल्याहुए, रिष्टासे अप्सरायें और इरासे ऐरावत आदि हाथियों का जन्महुआ. हे ब्रह्मन्! ताम्रासे श्येनी इत्यादि कन्याओं का जन्महुआ जिन कन्याओं से श्येनभास और शुक आदि पक्षियों का जन्महुआ, इलासे सब वृक्ष और प्रधा से तालाब आदि उत्पन्न एहु,

अदिति से जो संतति कश्यप के हुई उनके पुत्र पौत्र आदि॰से और अन्य २ स्त्रियों की संतति से यह सब संसार भरगया. हे मुने ! कश्यपकी संततिमें से देवतालोग प्रधानहुए वह लोग राजस, तामस और सात्विक गुणोंसे संयुक्त हैं, प्रजापति ब्रह्माजी ने देवताओं को त्रिभुवन का स्वामी और यज्ञभाग का भोग कर्त्ता बनाया, फिर इन देवताओंके साथ दैत्य, दानव और राक्षस सब मिलकर शत्रुता करनेलगे और देवताओंको कष्ट देने लगे, फिर तो उनलोगोंसे और देवताओंसे बड़ा युद्ध होनेलगा, वह युद्ध देवताओं के सहस्रवर्षतक होतारहा अन्त को देवताओं की पराजय और दानव, दैत्य तथा राक्षसों की विजय हुई, हे मुनिसत्तम ! अदिति अपने पुत्रों को दैत्य और दानवों से पीड़ित तथा त्रिभुवन के अधिकार से रहित और यज्ञभाग उनका छिनगया देखकर चिन्ता में मग्न होकर सूर्यभगवान् की आराधना करनेलगी अर्थात् उस समय एकाग्रचित्त होकर निराहार बहुत नियम के साथ सूर्यभगवान् की इसप्रकार स्तुति करनेलगी कि--हे इस स्थानवालों के स्थान और ब्रह्मलोक आदि स्थानों के आधार आपही हैं तथा सौवर्णि परमसूक्ष्म शरीर को आप धारण करेहुए हैं, मैं आपको प्रणाम करती हूँ, आप सब जगत् के उपकार के लिये तेजरूप धारण करके अपनी किरणों से जलको ग्रहण करते हैं, आपके ऐसे रूपको प्रणाम करती हूँ. आठ महीने जल आदि रस ग्रहण करने के लिये जो यह तेजरूप आप धारण करते हैं आपके उस रूपको मैं प्रणाम करती हूं. हे भास्वन् ! उन्हीं सब रसोंको आप आप्यायक मेघरूप धारण करके जो चार महीने वर्षा करते हैं आपके उस मेघरूप को मैं प्रणाम करती हूं । फिर उस वर्षेहुए जल को भास्कररूप धारण करके अपनी किरणों से पचाकर सब औषधियों को उत्पन्न करते हैं ऐसे आपके भास्कररूप को मैं प्रणाम करती हूं, शीतकाल में औषधियों के पोषण करने के लिये अत्यंत शीतलरूप आप धारण करते हैं उस आपके शीतलरूप को मैं प्रणाम करती हूं. वसंत ऋतुमें न बहुत उष्ण न शीतल ऐसे सुंदररूप धारण करनेवाले सूर्यनारायणको मैं प्रणाम करती हूं. सब देवता और पितरों को तृप्त करनेवाले तथा औषधियों को पकानेवाले आपके रूपको मैं प्रणाम करती हूं. सब प्राणियों के, देवताओं के और पितरोंके पीने के लिये अमृतात्मक सोमरूप जो आप धारण करते हैं उस आपके सोमरूप को मैं प्रणाम करती हूं; अग्नि और चंद्रमा के साथ विश्वमय जो रूप आपका है उस आपके गुणात्मकरूप को मैं प्रणाम करती हूं. ऋग, यजु और साम

यह सब इकट्ठा होनेसे त्रयीसंज्ञक रूप जो आपका इस संसार को तप्त करता है हे विभावसु ! आपके उस रूपको मैं प्रणाम करती हूं. उससे परे जो प्रणवसंयुक्त सूक्ष्म और अनंत तथा अमलरूप आप का है उस आपके सदात्मरूप को मैं प्रणाम करती हूं ॥

मार्कण्डेजीबोले कि—हे मुनि ! इस प्रकार अदिति देवी विवस्वान् सूर्य का आराधन करके नियम संयुक्त निराहार होकर रातदिन स्तुति करनेलगी तदनंतर सूर्यनारायण ने अदिति को आकाश में प्रकट होकर दर्शन दिया, उस समय, सूर्यभगवान को प्रकाशमान किरणों के साथ जिन की ज्योति पृथ्वी से आकाश तक व्याप्त थी और जिसपर आँख नहीं ठहरती थी उनको देखकर परम कष्ट में प्राप्त होकर बोली कि--हे गोपते ! हे सूर्य ! मुझपर प्रसन्नहूजिये मैं आपके रूपको नहीं देखसक्तीहूँ, जिस प्रकार पहिले मैं आपको आकाशमें देखती थी उसप्रकार अब इस तप्त ज्योति संयुक्त आपको नहीं देखसक्तीहूँ क्योंकि—मैं निराहार हूँ, हे विभु भक्तानुकम्प ! जैसा तेजका समूह आपका आकाश में था वैसाही दुर्दृश पृथ्वी में भी है, मैं आपकी सेवा करनेवाली हूं, मुझपर प्रसन्न होकर अपनेरूप का दर्शन दीजिये और मेरे पुत्रोंकी रक्षा करिये, आप ब्रह्मा होकर संसारकी उत्पत्ति करते हैं, विष्णु होकर पालन करते हैं और रुद्ररूप होकर संहार करते हैं, अन्तकाल में सब तत्व आप में ही मिलजाते हैं, आप सब प्राणियों में वास करते हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, कुबेर, पितरपति, वरुण, वायु, चन्द्रमा, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, पर्वत और समुद्र आपही हैं, आपकी स्तुति कहांतक करूं सम्पूर्ण आत्माकारूप धन आपही हैं. हे जगत् के ईश ! आप को सब दिन अपने कर्मों में प्रवृत्त होकर ब्राह्मणलोग नाना प्रकारके स्तोत्र से स्तुतिकर पूजन करते हैं और योगीजन एकाग्रचित्त होकर आपके योगस्वरूप का ध्यान करके परम पदको प्राप्त होते हैं, आपही संसार को तप्त करते हैं, पकाते हैं, रक्षा करते हैं, भस्म करते हैं, किरणों से प्रकट करते हैं, अम्बुगर्भ नामक किरण से हर्षित करते हैं और आपही ब्रह्मा होकर सृष्टि, विष्णु होकर पालन तथा रुद्ररूप होकर युगान्त में संहार भी करते हैं, सब देवता, असुर और मनुष्य आप को प्रणाम करते हैं, पापियों को आप अगम्य हैं ॥

इति एक सौ चारवाँ अध्याय समाप्त ॥

एक सौ पांचवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजीबोले कि—हे क्रोष्टुकि ! यह सुनकर सूर्यभगवान ने अपनारूप

सहस्र तांबे की समान धारण करके अदि-तिको दर्शन दिया, उन को देखकर अदिति देवी ने प्रणाम करा तब सूर्य भगवान् बोले कि—जो तुम्हारी इच्छा हो कहो, तब अदिति देवी ने अपनी दोनों जानु पृथ्वीपर टेककर और शिर झुकाकर कहा कि—हे देव ! प्रसन्न हूजिये, बड़े बलवान् दैत्य दानवों ने, मेरे पुत्रों की त्रिलोकी और यज्ञ के भाग छीनलिये हैं। हे सूर्यदेव ! तुम मेरे ऊपर अनुग्रह करो, और अपने अंश से उन के भ्राता बनकर अर्थात् मेरे उदर से जन्म लेकर अपने भ्राताओं (मेरे पुत्रों) के शत्रुओं का नाश करो । हे प्रभो ! जिससे मेरे पुत्र फिर यज्ञ का भाग पावें और त्रिलोकी के अधिपति बनें। परम प्रसन्न होकर तुम मेरे पुत्रों के ऊपर ऐसी कृपा करो, क्योंकि—आप शरणागतों का दुःख हरनेवाले और सब का पालन करनेवाले कहलाते हो। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि—हे क्रौष्टुकि ! तदनन्तर प्रसन्न होने के कारण सुन्दर मुखवाले भगवान् सूर्यदेव उस प्रणाम करनेवाली अदिति से कहनेलगे ! हे अदिते ! मैं तुम्हारे गर्भ में सहस्र अंश से प्रवेश करके और जन्म लेकर बहुत ही शीघ्र तुम्हारे पुत्रों के शत्रुओं का नाश करूँगा, ऐसा कहकर सूर्यभगवान् अन्तर्ध्यान होगए और अदिति ने भी अपनी इच्छा नुसार पूर्ण मनोरथ होकर तपस्या बंद करदिया। तदनन्तर हे विप्र ! सूर्यभगवान् की किरणों के सहस्रांश ने देवमाता के गर्भ में प्रवेश करके अवतार धारण किया। हे विप्र ! बड़ी सावधानीके साथ पवित्र रहकर कृच्छ्र चान्द्रायण आदि करके दिव्यगर्भ धारण किया। यह देखकर कश्यपजी कुछएक कोपभरे अक्षरों में अदिति से कहनेलगे कि--अरी ! नित्य निराहार व्रत करके इस गर्भ के अण्डे को क्यों मारडालती है।

यह सुन अदिति ने कहा कि—आप इस गर्भ को मराहुआ न देखोगे किन्तु यह अपने शत्रुओं को मारैगा। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-कश्यपजी के ऐसा कहने से कोप में भरीहुई अदिति ने उनसे ऐसा कहकर तेजों के पुञ्ज देवताओं के रक्षक गर्भ को छोड़दिया। कश्यपजी सूर्य की समान तेजस्वी उस गर्भ को देखकर नम्र हो परम पुरातन ऋग्वेद के मंत्रों से उस की बड़े आदर के साथ स्तुति करनेलगे। स्तुति कियेहुए उस गर्भ के अण्डे में से तब कमल के पत्ते की समान रक्तवर्ण, अपने तेज से दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ एक बालक प्रकट हुआ। उससमय वर्षाकाल के जलभरे मेघमण्डल के गर्जने की समान आकाशवाणी मुनिश्रेष्ठ कश्यप जी से कहनेलगी। हे मुने ! तुमने अदिति से यह कहा था कि--इस गर्भाण्ड को क्यों

मार्तण्डनी है इसकारण तुम्हारे इस पुत्र का मार्त्तण्ड नाम होगा। यह समर्थ होकर सूर्य के अधिकार का कार्य करेगा और यज्ञ का भाग हरनेवाले शत्रुओं को भी मारैगा। इस वचन को सुनकर देवता आकाश से उतरे और परम हर्ष को प्राप्त हुए तथा दैत्य तेजोबलहीन होगये।

सब देवतोंने युद्ध करने के लिये ललकारकर पुकारा फिर तो दानवगण देवताओं के साथ युद्ध करने के लिये चारोंतरफ से आगए तब देवता और असुरोंसे बड़ायुद्ध हुआ, अस्त्र और शस्त्रों के प्रकाश से सब पृथ्वी प्रकाशमान हो गई, उस युद्धमें भगवान मार्त्तण्डको तेज युक्त देखने से सब असुर जलकर भस्म होगए, उससमय देवतागण बहुतप्रसन्न हुए, देवतालोगों ने पूर्ववत् अपना अधिकार और यज्ञभाग पाया तथा मार्त्तण्ड ने भी अपना अधिकार किया. कदम्ब के पुष्पकी समान नीचे और ऊपर प्रकाशवान् तथा गोल अग्निपिण्ड कीसमान उनका शरीर हुआ, अत्यंत प्रकट शरीर को धारण नहीं करा। इति एकसौ पांचवाँ अध्याय समाप्त॥

एकसौ छःवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि—हे क्रोष्टुकि तदनंतर विश्वकर्मा प्रजापति ने अपनी पुत्री संज्ञाका विवस्वान् भगवान्के साथ विवाह करदिया, उसी कन्यासे विवस्वान् के वैवस्वतमनु पुत्र उत्पन्नहुए, जिसका स्वरूप विस्तारपूर्वक पहिले ही कहचुका हूं अर्थात् उस संज्ञासे भगवान् मार्त्तण्ड के तीनबालक उत्पन्नहुए उन तीनोंमें दो पुत्र और तीसरी यमुनानामक कन्या थी, उनमें बड़े वैवस्वतमनु श्राद्ध देव प्रजापति हुए, उनसे छोटे एकपुत्र और एककन्या साथ उत्पन्नहुई थी पुत्र का नाम यम और कन्याका नाम यमुना था परन्तु विवस्वान् भगवान्का जो अत्यन्त तेज था उससे तीनोंलोक तप्त होगए वह गोलाकार विवस्वान् का रूप देख कर और अतिदुःसह समझकर अपनी छायासे संज्ञा बोली कि—हे शुभे! मैं अपने पिता के घर जाऊँगी तू मेरी आज्ञा से निर्भय होकर इस स्थान में रहु, तेरा कल्याण होगा. यह दोनों पुत्र और तीसरीकन्या इस स्थानमें हैं इन सबकी रक्षा करना और यह बात भगवान् मार्त्तण्ड से न कहना. छायाने कहा कि—हे संज्ञा! जबतक मेरे शिरके बाल पकड़कर शाप न देंगे तबतक मैं न कहूंगी. परन्तु जिस समय मेरे केश पकड़कर शाप देने को तयार होंगे तब मैं कहदूंगी, इस प्रणपर तुम्हारी जहां इच्छाहो जाओ यह सुन कर संज्ञा अपने पिताके घर चलीगई और रहनेलगी, एकदिन संज्ञा के पिता ने कहा कि-तुम अपने स्वामीके घरजाओ इसप्रकार वारम्बार अपने पिताके कहने

से संज्ञा घोड़ीका रूप धारण करके उत्तर की तरफ कुरुदेश में चलीगई ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि-हे क्रोष्टुकि ! अब उधरका हाल सुनो कि-इधर तो संज्ञा पिताके घर चलीगई और उधर संज्ञाकी जगहपर छाया निराहार होकर तप करनेलगी तथा संज्ञाका रूप धारण करके भास्कर भगवान् की सेवा आदि भी करनेलगी. सूर्यभगवान् ने भी उस को संज्ञा समझकर उसमें दो पुत्र और एक कन्या उत्पन्न करी, उन तीनोंमें जो बड़ापुत्र था वह वैवस्वत मनुके तुल्य सावर्णि नामसे प्रसिद्ध हुआ. हे द्विजोत्तम ! उन दो बालकोंमें जो पुत्र था वह शनैश्चर नामक ग्रह हुआ और छोटीकन्या को महाराज संवर्ण विवाह करनेके लिये लेगए जिसका नाम तपती था. जैसा प्यार अपने बालकों को छाया करती थी वैसा संज्ञा के बालकों का नहीं करतीथी छायाका यह अपराध वैवस्वत मनु तो सहगए परन्तु यमराजसे नहीं सहागया, तब यमराज ने क्रोध करके छाया को मारने के लिये अपना पांव उठाया, तब छाया ने भी क्रोध करके यमको शाप दिया कि-मैं तुम्हारे पिताकी भार्या हूं, तुम जो मेरे चरण मारते हो तो तुम्हारा यह पांव निःसंदेह गिरजायगा, हे मुनि सत्तम ! यम ने छायाके शापसे दुःखित होकर अपने पितासे इसप्रकार कहा कि हे देव ! हमारी माता, माता की समान हम सबोंका पालन नहीं करती है, मेरे बड़े भाई और मुझको छोड़कर, मेरे दोनों छोटे भाइयों को अधिक प्यार करती है इसलिये मैंने क्रोध करके उसे मारने को पांव उठाया, बालकपन के कारण यह अपराध मुझसे हुआ है आप क्षमा करिये, माता होकर उन्होंने मुझे शापदिया है इसलिये मैं उनको माता नहीं समझूंगा क्योंकि--पुत्र यदि कोई अपराध भी करे तो भी माता उसका बदला नहीं लेती है, यदि यह मेरीमाता होती तो मुझे पांव गिरनेका शाप नहीं देती, हे गोपते ! अब जिसमें माता के शापसे मेरा पांव न गिरे सो उपाय करिये, यह सुन मार्त्तण्डजी बोले कि- हे पुत्र ! तुमसे धर्मात्मा सत्य वादीको जो क्रोध हुआ है तो इसमें कुछ भेद है और किसीका शाप दियाहुआ तो निवृत्त भी होजाता है परन्तु माता का शाप दियाहुआ निवृत्त नहीं होसक्ता, तुम्हें माता के वचन मिथ्या करने की सामर्थ्य नहीं है परन्तु तुम्हारे लिये मैं कुछ अनुग्रह करूंगा, जब कीड़े तब मांस लेकर पृथ्वीमें जायँगे तब उसका वचन सत्य होगा और तुम्हारी भी रक्षा होगी।

मार्कण्डेयजी बोले कि-हे क्रोष्टुकि ! आदित्य भगवान् इतनी बात यम से कह कर संज्ञारूपी छाया से बोले कि--तुम क्यों एक पुत्र के साथ बहुत प्रीति करती हो

और दूसर के साथ कम, तुम्हारी प्रीति तो सबके साथ समान होनी चाहिये, इस से मालूम होता है कि--तुम इन सबकी माता नहीं हो, इनकीमाता संज्ञा कहीं चली गई है तुम कोई दूसरी संज्ञा बनकर यहाँ रहती हो क्योंकि--माता अवगुणी पुत्रको भी शाप नहीं देती है, छाया ने यह सुन कर इस बात का वृत्तान्त ठीक२ नहीं बताया परन्तु मार्त्तण्डजी ने ध्यान करके उस का सब वृत्तांत जान लिया, जब क्रोध कर के शाप देनेलगे तो संज्ञारूपी छाया भय से कंपित होगई और सब वृत्तांत अपना ठीक २ विवस्वान से कहदिया विवस्वान् भगवान् सब वृत्तांत छाया के मुखाग्र सुन कर अपने श्वसुर के पास गए और अपने क्रोध से उनको जलादेने की इच्छा करी परन्तु उनके श्वसुर विश्वकर्मा ने न्याय पूर्वक अर्घ इत्यादि देकर उनका क्रोध शांत करा और कहा कि--हे दिवाकर! आपका यह रूप अत्यंत तेजसे भराहुआ है जो सहा नहीं जाता, इस तेजवान् रूप की ज्योति संज्ञा से नहीं सहीगई इसकारण वह वनमें जाकर तप कररही है, आप उस वनमें जाकर अपनी भार्या को देखिये, आपका रूप शान्त और सहने योग्य होने के लिये वह तपस्या करती है हे सूर्य! मुझको ब्रह्माजी का कहाहुआ याद है, यदि आपको अच्छा समझपड़े तो इस दुःसह रूपको निवृत्त कीजिये, यह बात सुनकर सूर्यभगवान् विश्वकर्मा से बोले कि-जो आप कहते हैं वही होगा, फिर विश्वकर्मा ने विवस्वान् भगवान् की आज्ञा पाकर और शाकद्वीप में जाकर तथा जगत् को घुमाकर तेजसमूह को पृथक् २ करने का यत्न करा अर्थात् अपनी नाभि में सूर्य को रखकर घुमाने लगे, सूर्य के घूमने से संपूर्ण जगत्, समुद्र, पर्वत और वनोंसहित घूमतीहुई पृथ्वी आकाश में चलीगई, आकाश, चंद्रमा, ग्रह और तारागण नीचे व्याकुल होरहे थे, फिर सबके सब नीचे आकर जल में गिरपड़े और अग्नि तथा सूर्य का तेज भी उस जल में गिरकर ठंढा होगया और बड़े २ सब पर्वत फटगए हे मुनिसत्तम! जिन स्थानो के ध्रुव आधार हैं वह सब स्थान सहस्रों बंधनों के टूटजाने से नीचे गिरपड़े।

पृथ्वी के शीघ्र घूमने के कारण वायु के जोर से सब मेघ छिटक २ कर भयानक शब्द से गर्जनेलगे अर्थात् सूर्यभगवान् के घूमने से पृथिवी, आकाश और पाताल इत्यादि सब घूमनेलगे, हे ब्राह्मण! उस समय सब लोकों को घूमते हुए देखकर ब्रह्माजी सब देवताओं को साथ लेकर सूर्यभगवान् की स्तुति करनेलगे. हे मार्त्तण्ड! इस आप के स्वरूप से ज्ञात होता है कि—आप आदिदेव हैं, सृष्टि, स्थिति और अन्तकाल में तीन प्रकार से आप विराजमान रहते हैं, हे जगन्नाथ!

हे दिवाकर ! हे धर्म ! हे वर्षा ! हे हिमाकर ! अब आप इन सब लोकों को शान्त कीजिये, फिर उस समय सब देवताओं के साथ इन्द्रने आकर और मार्त्तण्ड की मूर्ति बनाकर इस प्रकार उनकी स्तुति करनेलगे कि– हे देव जगद्व्यापी ! हे जगत् के स्वामी ! आप की जय हो, फिर सप्तर्षि लोग और वशिष्ठ, अत्रि आदि मुनिलोग नाना प्रकार के श्लोकों से स्वस्ति २ कहकर स्तुति करनेलगे, इसी प्रकार वालखिल्य लोग भी वेद की कहीहुई ऋचाओं से सूर्यभगवान की स्तुति करने लगे कि– हे नाथ ! आप मोक्ष की इच्छा करने वालों को मोक्ष देते हैं और ध्यान करने वाले योगियों के ध्यान करने योग्य हैं तथा कर्मकाण्ड करनेवाले लोगों को आप गति देते हैं, हे देवताओं के ईश ! प्रजाओंका हमलोगों का, हमारे भृत्यों का और हमारे बालकों का कल्याण करिये तदनन्तर विद्याधर, यक्ष, राक्षस और पन्नग गणों ने शिर झुका २ कर सूर्य भगवान् को प्रणाम करा तथा मन और श्रवण को सुख देनेवाले शब्दों से स्तुति करके बोले कि—हे भूतभावन ? आप का यह तेज सब के सहनेयोग्य होजाय ऐसा करलीजिये, फिर हाहा हूहू नामक गन्धर्व और नारद तथा तुम्बुरु आए, यह सब लोग गानविद्या में निपुण थे इसलिये यह सब सूर्यभगवान् के चरित्र गानेलगे. षड्ज, मध्यम और गांधार, तीन ग्राम तथा मूर्च्छना इत्यादि के साथ और संपूर्ण प्रयोग एवं सब तालों के साथ सुखदायक नृत्य करनेलगे, हे क्रोष्टुकि ! उस स्थान में विश्वाची, घृताची, उर्वशी, तिलोत्तमा, मेनका, सहजन्या और रम्भा यह सब अप्सरागण सूर्यकी लिखी हुई मूर्त्ति के पास हाव भाव के साथ नानाप्रकार के विलास करके नृत्य करने लगीं, वहाँपर वीण, वेणु, पणव और मृदंग आदि बाजा बजानेवाले लोग बाजा बजानेलगे, देवता लोग दुंदुभी और सहस्रों शंख बजानेलगे, गन्धर्व गानेलगे और अप्सरा नृत्य करने लगीं, इस सब के गाने और नृत्य करने से सब संसार में कोलाहल मचगया तब हाथ जोड़कर और साष्टांग दण्डवत करके भक्तिपूर्वक सूर्यकी मूर्त्ति को सब देवताओं ने प्रणाम करा, उसी समय विश्वकर्मा ने सूर्य के महातेज को धीरे २ शमन करदिया; हे मुनि ! हिम, जल उष्णता के कारण जो सूर्य हैं, जिनकी ब्रह्मा, विष्णु और महेश इत्यादि देवताओं ने मूर्त्ति बनाकर स्तुति करी है उनकी इस कथा को जो मनुष्य सुनते हैं वह अन्त काल में सूर्यलोक को प्राप्त होते हैं.

इति एकसौ छःवाँ अध्याय समाप्त ।

एकसौ सातवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी बोले कि–हे क्रौष्टुकि ! प्रजापति विश्वकर्मा सूर्यभगवान् के महातेज को शमन करके उनकी बनीहुई मूर्ति की आनन्दयुक्त होकर इसप्रकार स्तुति करने लगे कि-हे कमलवन के प्रकाशक ! हे तेजवान् सप्तकिरण ! हे प्रणतपाल ! हे सब के हितकारी ! हे अन्धकारनाशक ! हे विवस्वान् मैं आप को प्रणाम करता हूँ, पुण्यकर्मों के प्रकाशक, अग्निकिरणधारी और सब लोगों के हितकारी मार्तण्ड को प्रणाम करता हूँ, अतिकृपालु त्रैलोक्यकारक, अज, भूतात्मा और सब के नेत्रों में निवास करनेवाले सूर्यभगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ, जगत् हितकारी, सबके नेत्र, स्वायम्भुव, उत्तम देवता, अमित तेज और ज्ञानात्मा विवस्वान् को मैं प्रणाम करता हूँ, हे मार्तण्ड ! आप उदयाचल पर्वतपर उदय होकर संसार के अन्धकार को अपनी सहस्रों किरणों से दूर करते हुए जगत् के हितके लिये प्रकाशवान् होते हैं, संसार के अन्धकाररूपी मदिरा के पान करने से आपका शरीर लाल है और आप त्रिभुवन को अपनी किरणों से प्रकाशित करते हुए अपनी इच्छा से घूमते हैं. हे भगवन् ! आप अपने रथ में घोड़ों को जोतकर और उस में आरूढ़ होकर अपने सुन्दर शरीर का कँपातेहुए संसार के हित के लिये सब दिन घूमते हैं, हे शत्रुओं के नाश करनेवाले मार्तण्ड ! आप अमृतयुक्त रस से देवता और पितरों को तृप्त करते हैं, आपको प्रणाम करके आपके ही प्रसाद से जगत् के हितके लिये आपकी प्रतिमा बनाई गई है, आपके घोड़ों की प्रतिमा नोतकी समान एरे रंगकी बनाई गई है. हे भगवन् ! आपकी चरणरजसे हम सब पवित्र हैं, हम आपके चरणोंको प्रणामकरते हैं हमारी रक्षा करिये, हे जगत् के उत्पत्ति स्थान ! आप त्रिभुवन के पवित्रधाम हैं और सब संसारके अंधकारको दूर करने के लिये दीपक हैं. हे सूर्यदेव ! आप संसार को बनानेवाले हैं आपको मैं प्रणाम करता हूँ । इति एकसौ सातवां अध्याय समाप्त ॥

एकसौ आठवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी बोले कि–हे क्रौष्टुकि ! इसप्रकार विश्वकर्मा ने सूर्यभगवान् की स्तुति करके उनके तेजका सोलहवांभाग रहनेदिया और पन्द्रहभाग तेज निकाल कर पृथक् २ करदिया तब सूर्यभगवान् का शरीर सुन्दर कांतिमान् होगया. पन्द्रहभाग तेज जो सूर्यभगवान् का निकालागया उससे विष्णु का सुदर्शनचक्र, महादेवजीका त्रिशूल, कुबेर की पालकी, यमराज का दण्ड और अन्य देवताओं के शस्त्र भी असुरोंके मारने के लिये वि-

विश्वकर्मा ने बनाये. पश्चात् बाकी तेज निकल जाने से सूर्यभगवान् के हाथ पांव इत्यादि अंग भी दीखनेलगे, तदनन्तर सूर्यभगवान् ने ध्यान करके अपनी स्त्रीको घोड़ी के रूपमें देखा कि–उत्तरदिशा कुरुदेश में, बहुत नियमके साथ तपस्या करती है, तब सूर्यभगवान् भी घोड़ेका रूप धारण करके वहाँ पहुँचे, उससमय वह घोड़ीरूप संज्ञा सूर्यभगवान् को घोड़ारूप देखकर और परपुरुष समझकर रतिके भय से पिछले अंग की रक्षाके हेतु घूमकर सम्मुख होगई, तब उस घोड़ी और घोड़ेकी नाक मिलजाने से सूर्यभगवान् का तेज दोनों नासिका के मार्गसे घोड़ीरूप संज्ञाके शरीर में प्रवेश करगया. उसी तेजसे संज्ञा के गर्भ रहगया फिर उस गर्भसे दो पुत्र उत्पन्नहुए जो देवताओंके वैद्य अश्विनीकुमार नामक हुए, जिनका नाम नासत्य और दस्र विख्यात हुआ यह दोनों अश्विनीके मुखसे हुए, अश्वरूपधारी मार्तण्डभगवान् के यह दोनों पुत्र उत्पन्न होने के अनन्तर जो वीर्य उनका पतन हुआ उससे ढाल तरवार और धनुष हाथमें लिये कवच पहिने तथा बाणतर्कश लिये घोड़ेपर सवार रेवन्त नामक उत्पन्न हुए फिर सूर्यभगवान् अपने पहिले रूपसे प्रकट होगए, तब संज्ञा सूर्यभगवान् का शान्तरूप देखकर बहुत हर्षित हुई फिर सूर्यभगवान् संज्ञा को अपने घर लेआए। उससमय से संज्ञा को सूर्यभगवान् के साथ बहुत प्रीति रहने लगी और संज्ञा के बड़े पुत्र वैवस्वत मनु हुए और दूसरे पुत्र उनके यम, यद्यपि छाया के शाप से पीड़ित थे परन्तु सूर्यभगवान् के अनुग्रह से धर्मदृष्टि हुए, जो कि–धर्म में रुचि उनकी अधिक थी इसकारण धर्मराज नाम से विख्यात हुए, जब छाया ने उनको शाप दिया था कि–तुम्हारा पाँव गिरजायगा तब उनके पिताने उनसे कहा था कि–तुम्हारे पाँव का सब माँस कीड़े लेजायँगे और तुम धर्मात्मा होगे, यह कहकर उनके शापको निवृत्त किया उस दिन से यम, शत्रु और मित्रपर समान दृष्टि रखनेलगे- और बड़े धर्मात्मा हुए. तदनंतर मार्तण्ड भगवान् ने यम को दक्षिणदिशा में लेजाकर लोकपाल होने की आज्ञा दी और प्रसन्न होकर उनको पितरों का स्वामी बनाया, फिर यमुना नामक अपनी कन्या को कलिन्द पर्वत में यमुना नदी होकर बहने की आज्ञा दी, नासत्य और दस्र, जो घोड़ीकारूप धारणके समय उत्पन्न हुए थे उनको देवताओं का वैद्य बनाया और वीर्यपतन होने से जो रेवन्त उत्पन्न हुये थे उनको सूर्यभगवान्ने गुह्यकों का स्वामी बनाया और उनको यह भी वरदान दिया कि- तुम लोक में पूज्य होगे, जिस वनमें आपही आप अग्नि उत्पन्न होती है, जहाँ शत्रुओं का भय हो अथवा चोरों का भय

हो उसजगह जो मनुष्य तुम्हारा स्मरण करेंगे उनको किसीप्रकार का दुःख नहीं पहुँचेगा, जो मनुष्य तुम्हारी पूजा करेंगे उनका तुम कल्याण करोगे और उस पूजा करनेवाले को बुद्धि, सुख, राज्य और आरोग्यता होगी तथा कीर्त्तिमान करोगे छाया के पुत्र सावर्णि जो हुए वह आठवें सावर्णिमनु होंगे, इससमय वह मेरुपर्वत पर तपस्या करते हैं और उनके छोटेभाई जो शनैश्चर थे वह सूर्यभगवान् की आज्ञा से ग्रह हुए, हे द्विजोत्तम ! आदित्यभगवान् की छोटी कन्या जो यमुना नदीहुई वह सब नदियों में श्रेष्ठ है, यह विवस्वान् के पुत्रोंका जन्म और सूर्यका माहात्म्य जो मनुष्य सुनते और पढ़तेहैं वह सब दुःखोंसे छूटकर, बहुत पुण्य पातेहैं, यह आदि देव महात्मा मार्त्तण्ड का माहात्म्य सुनने से एक रातदिनका कराहुआ पापनाश होजाता है, एकसौ आठवाँ अध्याय समाप्त ॥

एकसौ नववाँ अध्याय ।

क्रोष्टुकि बोले कि--हे भगवन् ! आदिदेव सूर्यभगवान् की संततिकी उत्पत्ति का वृत्तांत विस्तारसे और संक्षेप माहात्म्य तथा उनके स्वरूप का वृत्तांत तो आपने कहा परन्तु अब विस्तारसे उन का माहात्म्य सुना चाहता हूं, कृपाकर सुनाइये ॥

मार्कण्डेयजीबोले कि--हे क्रोष्टुकि ! सूर्यभगवान् ने पूर्वकाल में मनुष्यों के आराधना करनेपर जो २ चरित्र करेहैं उनका माहात्म्य तुमसे कहता हूँ सुनो, पहिले एक दम नामक राजा था जिस का पुत्र राजवर्द्धन नाम से विख्यात था उसने सबप्रकार से इस पृथ्वी का पालन करा, उसके धर्मपूर्वक राज्यपालन करने से उस राज्य में प्रतिदिन धन और प्रजाकी वृद्धि होनेलगी, उस के समय में सब मनुष्य नगर और देशके रहने वाले हर्षित और पुष्ट थे, उस राजा के प्रताप से उस के राज्य में उपसर्ग, व्याधि सर्पों का भय और अवर्षण कभी नहीं हुआ, उस राजा ने बहुत यज्ञ करे और याचकों को मुँहमांगा दान दिया तथा धर्मपूर्वक नानाप्रकार के विषय भोग किये. इस तरह सम्यक् प्रकार प्रजापालन करतेहुए सातहजार वर्ष एक दिन की समान व्यतीत होगए, दक्षिण देश के राजा विदूरथ की मानिनी नामक कन्या के साथ राजवर्द्धन का विवाह हुआ था, एक दिन वह सुन्दरी राजवर्द्धन के साथ सोरही थी उस समय राजा के शिरका एक श्वेत बाल पकाहुआ देखकर रोने लगी, जब उसके आँसूकी बूंद महाराज के शरीरपर गिरी तब वह चौंककर उठ बैठे और उसके नेत्रों में से आंसू गिरते हुए देखकर कहनेलगे कि--हे मानिनी ! तुम मनही मन में रोरोकर इसप्रकार क्यों आंसू बहाती हो, मानिनी ने कहा

कि—इस का कारण कुछ नहीं है बिना कारण ही मेरे नेत्रों में ये आंसू गिरते हैं, महाराज ने कहा कि—सच बताओ बिना कारण इस प्रकार आंसू नहीं गिरते हैं, जब महाराज ने बहुत हठकरी तब उस सुमध्यमा मानिनी ने उन के केशों में पकाहुआ बाल दिखाया और कहने लगी कि—हे महाराज ! मैं बड़ी अभागिनी हूं देखिये आपके केश में यह क्या है, इसी से मैं विकल होकर रोती हूं, तब राजा उस के केश को देखकर हंसे, जितने राजा लोग उस पुरमें आये थे और पहिले से थे उन सब को बुलाकर और उन सबके सामने उस मानिनी से हंसकर कहने लगे कि—हे सुन्दरी ! वृथा शोच करके तू रोतीहै, जन्म लेने पर प्राणियों को ऐश्वर्य के अन्त में अवश्य विकार प्राप्त होताहै, इस लिये तुम इस का कुछ शोच मतकरो क्योंकि—मैंने सम्पूर्ण वेद पढ़लिये, सहस्रों यज्ञ करलिये, ब्राह्मणों को दान भी दिये हैं, पुत्र भी बहुत उत्पन्न होचुके हैं, तुम्हारे साथ भोग भी बहुत किया जो भोग मनुष्यों को दुर्लभ है, पृथ्वी का पालन भी किया, संग्रामों में धर्मपूर्वक विजय भी प्राप्त करी, मित्रों के साथ हंसा भी और वृन्दान्तरों में जाकर बहुत प्रकार से शिकार और विहार भी करा, हे कल्याणि ! अब हमें कुछ करना शेष नहीं है, तुम केश पकने से क्यों डरती हो, हे मानिनी ! यदि मेरे सब केश पकजावें और देह भी शिथिल होजाय तौ भी मुझे कुछ शोच नहीं क्योंकि—मैं कृत कृत्य हूं अर्थात् जन्म लेनेका सब फल पाचुका हूं, हे कल्याणी ! अब जो तुम मेरे शिरका बाल पकाहुआ दिखातीहो इसकी औषध यही है कि—अब मैं वन में जाकर तपस्या करूं, मनुष्यों को बाल अवस्था में बालक्रिया, कुमार अवस्था में कुमार क्रिया, युवावस्था में युवाक्रिया करना चाहिये और वृद्धावस्था में वनवास करके तपस्या करना चाहिये हे कल्याणी ! तीन अवस्था का जो कर्म है वह तो मैं करचुका अब वृद्धावस्था आगई मेरा पकाहुआ केश देखकर तुम व्यर्थ रोतीहो, हे कल्याणी ! अब तुम्हारा शोच करना और बिना प्रयोजन रोना वृथा है, इस पकेहुए केशको देखने से मेरा उदय नहीं होसक्ता अर्थात् अब फिर तरुण नहीं होसक्ता हूं।

मार्कण्डेयजी बोले कि—हे क्रोष्टुकि ! यह बातें राजा राज्यवर्द्धन की सुनकर राजालोग और पुरवासीलोग जो समीप बैठे थे राजा को प्रणाम करके शान्ति वचन बोले कि—हे महाराज ! जिसमें आपकी रानी और हमलोग एवं सब प्रजा न रोवें सो उपाय कीजिये. हे नाथ! 'वन में जायँगे' आपका यह वचन सुनकर

आपके पालन करेहुए हमलोगोंका प्राण चलाजाता है, हे महाराज ! जब आप वन में जाइयेगा तो आपके साथ हमलोग भी जायँगे, तब पृथ्वी में सबलोगों की सब क्रिया नष्ट होजायगी इस में कुछ संदेह नहीं है. हे नाथ ! इस पापिनीको छोड़कर जब आप वनवास करेंगे तो इसका भी धर्म स्थिर नहीं रहैगा, हे महाराज ! सातसहस्र वर्षतक पृथ्वीपालन करनेका जो पुण्य आपको प्राप्तहुआ है उसको देखिये, वन में बसकर जो तप करियेगा वह धर्म पृथ्वीपालन के सोलहवें भागकी समान भी नहीं होगा, यह सुनकर महाराज राजवर्द्धन बोले कि सातसहस्र वर्ष मैं इस पृथ्वीका पालन कर चुका परन्तु अब मेरा वनवास करनेका समय आगया है, मेरे पुत्र भी बहुत उत्पन्न होचुके हैं और उन पुत्रोंके भी पुत्र उत्पन्न होचुके हैं यह देखकर थोड़े ही काल में यमराज इस लोक में मेरा रहना नहीं सहसकेंगे, मेरे शिरमें जो यह पका हुआ केश है उसको तुमलोग दुष्ट मृत्यु का दूत समझो, इसलिये पुत्रोंको राज्यगद्दी देकर और विषयभोग को छोड़कर जबतक यमराज की सेना न आवै तबतक वन में जाकर तप करूं ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि–हे क्रौष्टुकि! तदनन्तर वनको जानेकी इच्छा करनेवाले उस राजा ने ज्योतिषियों को बुलाकर पुत्रों को राज्याभिषेक देनेकी शुभलग्न बूझी। इसप्रकार राजा के वचन को सुनकर उन ज्योतिषियों के चित्त व्याकुल होगए और पूरे२ शास्त्रके जानकार होने पर भी लग्न और होरा आदि सब भूल गए और नेत्रों में आंसू लाकर वह ज्योतिषी गद्गद वाणीमें कहनेलगे कि--आपका यह वचन सुनकर हमलोगोंका सबज्ञान नष्ट होगया, तब महाराज राजवर्द्धन ने दूसरे नगर और राज्य से ज्योतिषियोंको बुलाकर बूझा तब वह लोगभी राजाका वनवास करना सुनकर शिर कँपाकर कहनेलगे कि--महाराज ! आप प्रसन्न हूजिये और हमलोगों को जिसप्रकार से पहिले पालन किया है उसीप्रकार फिर पालन कीजिये, क्योंकि--आपके वन में जाने से सबको कष्ट होगा, हे महाराज ! जिसमें जगत्को पीड़ा न हो वह कीजिये, अब हमलोगोंकी आयुभी थोड़ीही है, इसगद्दी को आपसे शून्य नहीं देखना चाहते हैं ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि--हे क्रौष्टुकि ! इसप्रकार ब्राह्मण, पुरवासी, भूप, भृत्य और मंत्रीलोगों ने महाराज राजवर्द्धन से प्रार्थना करी परन्तु महाराज वनगमन से निवृत्त नहीं हुए और सबको यही उत्तर दिया कि--यद्यपि तुमलोग ऐसा कहतेहो परन्तु यमराज हमारा रहना नहीं सहसकेंगे, तदनन्तर मंत्री, भृत्य, पुरवासी, वृद्ध और ब्राह्मणलोगों ने परस्पर विचारकरा

कि-अब क्या करना चाहिये. हे क्रौष्टुकि! उन ब्राह्मणोंको उस धर्मात्मा राजा से बहुत अनुराग था, इसलिये उन लोगों ने आपस में विचारकर यह सिद्धान्त ठहराया कि—हमलोग एकाग्र चित्त से सम्यक्‌प्रकार ध्यान करके और तपस्या करके सूर्यभगवान् को प्रसन्नकर राजा के आयुर्बल की आधिक्यता मांगें. उस समय यहनिश्चयकरके कोईतो सम्यक्‌प्रकार अर्घ्यो-पचारउपहारोंसे सूर्यभगवानकी पूजाकरने लगे कोई मौन होकर, कोई यजुर्वेद और सामवेद के मंत्र पाठ करके सूर्यभगवान् को सन्तुष्ट करनेलगे, कितने ब्राह्मणलोग निराहार होकर और नदी के तटपर श-यन करके सूर्यभगवान् की आराधना के लिये यत्नपूर्वक तपस्या करनेलगे, कितने अग्निहोत्री ब्राह्मणलोग सूर्यभगवान् का सूक्त जपनेलगे और कितनेलोग सूर्यभ-गवान् के सामने दृष्टि लगाकर खड़े हो गये. इसप्रकार उन लोगों ने सूर्यभगवान् की आराधना के लिये जिस उपासनामें जो विधान था वह सब अनेक प्रकारसे करा. इसप्रकार वह लोग सूर्यभगवान् की आराधना करने के लिये यत्न कर रहे थे उसीसमय सुदामा नामक गन्धर्व उन लोगों के निकट आकर बोला कि हे ब्राह्मणलोगो! जो तुमको सूर्यभगवान् का आराधन करने की इच्छा है तो तुम लोग यहदान करो, इसके करने से सूर्य भगवान् शीघ्र प्रसन्न होंगे, कामरूप जो पर्वत है और उसपर गुरुविशाल नामक वन सिद्धों से सेवित है, वहां तुमलोग शीघ्र जाओ और वहां जाकर एकाग्रचित्त से सूर्यभगवान् की आराधना करो, वह सिद्धक्षेत्र है वहां तुमलोगोंके सब मनोरथ सिद्ध होजायँगे ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि-हे ब्रह्मन्! इसप्रकार सुदामा के कहने से वह ब्राह्मण लोग शीघ्र ही उस वन में गए और वहाँ जाकर पुण्यवान् एक सूर्यभगवान् का मन्दिर देखा, हे द्विज वह ब्राह्मण आदि सब वर्ण, धूप और पुष्प आदि उपहारों से सूर्यभगवान् की पूजा करने लगे, पुष्प, चन्दन, धूप और गन्ध आदि से पूजन कर एकाग्रचित्त हो जप आदि करके फिर इसप्रकार स्तुति करनेलगे कि-देव, दानव, यक्ष, ग्रह, ज्योति और तेज इन सबसे परे जो सूर्यभगवान् हैं उन की शरण में हमलोग प्राप्त हैं. आकाश में रहकर चारोंतरफ जो प्रकाश करते हैं और जो पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष में अपनी किरणों से व्यापरहे हैं उन सूर्य देवता की शरण में हम लोग प्राप्त हैं, आदित्य, भास्कर, भानु, दिवाकर, पूषा, अर्यमा औरदीप्तदीधिति जो सूर्यभगवान् हैं उनकी शरण में हम लोग प्राप्त हैं, चतुर्युग के अन्त होनेपर कालाग्नि, दुर्दर्श, प्रलयान्तक, योगीश्वर, अनन्त, रक्त, पीत, सितासित और जो ऋषियों

के अग्निहोत्र में तथा यज्ञ देवों में विराजमान रहते हैं, जो अक्षर और परब्रह्म उत्तम मोक्षद्वार हैं, जो छन्दरूप विहंगमों से युक्त होकर उदय और अस्त होने में तथा मेरु की प्रदक्षिणा करने में सदा प्रवृत्त रहते हैं, जो मिथ्या, सत्य और पुण्यतीर्थ पृथक्२ होकर विश्व में स्थित हैं, उन प्रभाकर सूर्यभगवान् की शरण में हम लोग प्राप्त हैं, जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश, प्रजापति, वायु, आकाश, जल, पृथ्वी, पर्वत, समुद्र, ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रमा, वृक्ष और औषधि आदि सब व्यक्ताव्यक्त प्राणियों में धर्माधर्म के आप प्रवर्त्तक हैं और जो ब्राह्मी, माहेश्वरी तथा वैष्णवी तीन प्रकार का आपका स्वरूप है ऐसे सूर्यभगवान् हमपर प्रसन्न हों, जिन जगत्पति सूर्यभगवान् का यह सब संसार अंग है और जो सबके जीवन हैं वह सूर्यभगवान् हम सबों के ऊपर प्रसन्न हों, जिनका एक रूप प्रभामण्डल में दुर्दृश्य है और दूसरा चन्द्रमारूप शान्त है वह सूर्यभगवान् हम सबों के ऊपर प्रसन्न हों, जिन के इन दोनों रूपों से यह विश्व बना है और जिनका रूप अग्निमय तथा चन्द्रमामय है वह सूर्यदेवता हम लोगोंपर कृपा करें ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि—हे द्विजोत्तम ! इस प्रकार उस समय भक्तिपूर्वक स्तुति और पूजन करनेसे तीन मास के अनन्तर सूर्यभगवान् प्रसन्न हुए और अपने मण्डल से बाहर निकल कर दुर्दृश्य सूर्यभगवान् ने प्रत्यक्ष होकर उन लोगोंको दर्शन दिया, तब उन ब्राह्मणों ने स्पष्टरूप भगवान् सूर्य को देखकर बड़े हर्षसे भक्तिपूर्वक नम्र होकर प्रणाम करा और कहनेलगे कि हे सहस्रांशो ! आप सब जगत् के हेतु, जगत् के पताका और सकल जगत् के रक्षक हैं. सबके स्तुति करनेयोग्य, सकल यज्ञोंके भाग और आप योगियोंके ध्यान करनेयोग्य हैं, हमलोग आपको वारंवार प्रणाम करते हैं, प्रसन्न हूजिये । इति एक सौ नववाँ अध्याय समाप्त ॥

एकसौ दशवाँ अध्याय

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि—हे क्रोष्टुकि ! इसप्रकार स्तुति करने से उन सर्वोपर सूर्यभगवान् प्रसन्न होकर बोले कि—हे ब्राह्मणो ! जो वरदान मुझसे तुम चाहते हो माँगो, सूर्यभगवान को शान्तिरूप और अपने २ आगे खड़े देखकर तथा उनके वचन सुनकर ब्राह्मणलोग बोले कि—हे भगवन् ! यदि आप हमसबों की भक्ति से प्रसन्न हुए हैं तो हम सब यही वरदान माँगते हैं कि—हमारे राजा राजवर्द्धन निरामय, सुकेश, शत्रुजीत और स्थिरयौवन होकर दश सहस्र वर्ष और जियें ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि—हे क्रोष्टुकि— ! यह बात ब्राह्मणों से सुनकर सूर्यभगवान्

बोले कि—अच्छा, राजा राजवर्द्धन दश सहस्र वर्षतक और जीते रहेंगे यह कहकर आप अन्तर्धान होगए और वह लोग हर्ष सहित राजा के पास आये, और सब वृत्तान्त राजा राजवर्द्धन से कहा, इस वृत्तांत को सुनकर राजा की भार्या बहुत प्रसन्न हुई और राजा सुनकर सोच मे होगए, किसी से कुछ नहीं कहा, उससमय मानिनी अपने राजा से प्रसन्न हो कर बोली कि—हे महाराज ! बड़े भाग्य से आयुर्बल मिला है इससे भी अधिक आपकी आयुर्बल होय, मानिनी की यह बात प्रसन्न होकर कहना सुनकर राजा और भी चिन्ता से जड़चित्त होगए और कुछ नहीं बोले, तब मानिनी अपने स्वामी को चिन्ता में देखकर और शिर झुकाकर बोली कि--हे महाराज ! आप अपनी आयुर्बल की अधिकता पाकर क्यों नहीं प्रसन्न होते हैं ? अबसे दशसहस्र वर्षतक निरुज और स्थिरयौवन होकर आप रहेंगे तो फिर आप क्यों नहीं प्रसन्न होते हैं हे महाराज ! ऐसे प्रसन्नता के समय में आपको चिन्तायुक्त देखती हूँ इसका क्या कारण है, कृपाकर कहिये, राजा ने कहा कि--हे भद्रे ! किसप्रकार मेरे आयुर्बल की वृद्धिहुई और मुझको क्या हर्षित करती हो, यदि मैं दशहजार वर्षतक जीता भी रहा तो इस जीने से मुझ को क्या फल मिलैगा ? मैं तो दशहजार वर्षतक सूर्य के वरदान से जीऊँगा परन्तु तुमतो नहीं जियोगी तो फिर तुम्हारा मरण देखकर क्या मुझको दुःख नहीं होगा ? मेरे जीतेजी मेरे पुत्रपौत्र, परपोते और इष्टमित्र तथा बांधवलोग सब मरजायँगे और मैं देखता रहूँगा, सोचो तो इन बातों से क्या मुझको थोड़ा दुःख होगा ? किंतु अत्यन्त भक्तिमान् दासवर्ग और मित्रवर्ग हमारे सामने मरजायँगे उनलोगों का मरण देखकर मुझको बड़ा कष्ट होगा जिनके लिये मैंने कष्ट उठाकर तपस्या करी है वह लोग मेरे सामने मरजायँगे तो ऐसे जीने और भोग करने को मेरे धिक्कार है । हे मानिनी ! इस दशहजार वर्ष जीने का मुझको कुछ हर्ष नहीं है किन्तु इतने दिन मेरे विपत्ति में बीतेंगे क्या तू नहीं समझती है जो यह बात हर्षित होकर मुझको सुनाती है । मानिनी बोली कि—हे महाराज ! जो आप कहते हैं वह सब सत्य है इसमें कुछ संदेह नहीं, यह सब अपराध मेरा और नगरनिवासियों का कियाहुआ है, आपका इसमें कुछ दोष नहीं है । परन्तु यह बात तो होचुकी अब यहाँपर क्या करना चाहिये सो विचारिये सूर्यभगवान् का कहाहुआ तो मिथ्या नहीं होसक्ता ॥

यह सुनकर राजा राजवर्द्धन ने कहा कि—हे मानिनी ! हमारे नौकर चाकर और नगरनिवासियोंने तो हमारे उपकार

के लिये यहबात करी परन्तु जब यहही लोग मरजायँगे तो हम किसप्रकार राज्य भोग करेंगे, इसलिये मैं अभीसे पर्वतपर जाकर निराहार और एकचित्त होकर सूर्यभगवान् की आराधना के लिये तपस्या करूँगा और सूर्यभगवान से कहूंगा जब कि–आपके प्रसाद से स्थिरयौवन और नीरोग होकर दशहजार वर्षतक मैं जीतारहूंगा तो इसीप्रकार मेरी सबप्रजा, नौकर चाकर और बेटेपोते तथा बांधव लोग भी जीतेरहें ऐसा वरदान जो सूर्य भगवान् मुझको देंगे तो अवश्य ही खुशी के साथ राज्य करूंगा. हे मानिनी! यदि सूर्यभगवान् प्रसन्न होकर इस बात का वरदान नहीं देंगे तो मैं उसी पर्वतपर निराहार होकर उग्रतर तप करूंगा ॥

मार्कण्डेयजीने कहा कि–हे क्रोष्टुकि! जब राजा राजवर्द्धन ने यहबात कही तब मानिनीने भी राजा को तप करनेके लिये आज्ञादी तब राजा तप करने को पर्वतपर गया और मानिनी भी उसके साथ गई हे क्रोष्टुकि! राजा राजवर्द्धन ने मानिनी सहित सूर्यभगवान् के मन्दिर में जाकर उनकी बहुत आराधना करी, जिसप्रकार राजा निराहार होकर तप करता था उसीप्रकार मानिनी भी निराहार होकर तप करनेलगी और कृशशरीर होकर सरदी गरमीका कष्ट सहनेलगी, जब इस प्रकार तप करतेहुए एकवर्ष बीतगया तब सूर्यभगवान् प्रसन्नहुए और राजा की इच्छानुसार उनके पुत्रपौत्र तथा नौकर चाकर और नगरनिवासियों की आयुर्बल दशहजार वर्षकी करदी, फिर तो सूर्यभगवान से अपनी इच्छानुसार वर दान पाकर राजा राजवर्द्धन धर्मपूर्वक प्रजापालन संयुक्त राज्य करनेलगा, फिर बहुत यज्ञादिक करे और ब्राह्मणों को भी दानदिये तथा सबप्रकार मानिनीके साथ भोगविलास करनेलगा और पुत्र पौत्रादि के साथ दशहजार वर्षतक स्थिर यौवन अर्थात् तरुण रहा. राजा का यह वृत्तांत देखकर भृगुवंशी प्रमति नाम ब्राह्मण ने विस्मित होकर यह गीतगाया. कि–सूर्यभगवान् की भक्तिका माहात्म्य बड़े आश्चर्यका है कि–जिसके प्रतापसे राजा राजवर्द्धन ने सहित पुत्रपौत्रादि के और नौकर चाकरों के दशहजार वर्ष की आयुर्बल पाई है ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि–हे ब्रह्मन्! आदिदेव सूर्यभगवान् का माहात्म्य जो आपने बूझा वह मैंने वर्णन करा इस माहात्म्य को जो मनुष्य ब्राह्मण के मुख से सुनेंगे। या आप पढ़ेंगे तो सात रात्रि में पाप से छूटजायँगे, जो ज्ञानी पुरुष इस माहात्म्य को सदा धारण करेंगे वह आरोग्य और धनवान् होंगे तथा मरने पर ज्ञानी के वंशमें जन्म पावेंगे, हे मुनिसत्तम! इस माहात्म्य में सूर्यभगवान्

के जो सब मंत्र मैंने कहे हैं इन मंत्रों में से एक २ मंत्र को तीनों काल में जपने से पापों का नाश होजाता है, जिस घर में सूर्यभगवान् का यह माहात्म्य पढ़ा जाता है उस घरमें सदा सूर्यभगवान् रहकर रक्षा करते हैं, हे ब्राह्मण ! अब आप इस माहात्म्य को धारण करिये आपको महापुण्य प्राप्त होगा, जो फल सुवर्ण से दुधारी गऊ के सींग मढ़कर गोदान करने से होता है वही फल इस माहात्म्य को तीन दिन सुनने से होता है. इति एकसौ दशवाँ अध्याय समाप्त ।

एकसौ ग्यारहवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि–हे क्रौष्टुकि ! ऐसे प्रभाववाले आदिदेव सूर्यभगवान् हैं जिनका माहात्म्य तुमने भक्तिपूर्वक मुझ से बूझा, वह परमात्मा हैं, योगियों के चित्त के लयस्थान और क्षेत्रज्ञ हैं, यज्ञ करनेवालों के यज्ञेश्वर हैं. ब्रह्मा, विष्णु और महादेव इन सबके अधिकार प्राप्त करनेवाले हैं उन्हीं के पुत्र सावर्णिनाम मनुहुए जिन्होंने सब संशय त्याग करके ज्ञान प्राप्त किया और मन्वन्तरों के स्वामी हुए । हे विप्र ! उनके मन्वन्तर में सात राजा बड़े बली और पराक्रमी हुए, प्रथम महाराज इक्ष्वाकु दूसरे नाभाग तीसरे दिष्ट चौथे नारिष्यन्त पाँचवें नाभाग छठे पृषध्र और सातवें धृष्ट यह राजालोग पृथक्२ राज्यपालक हुए और सब राजा विख्यात कीर्ति, शस्त्र और अस्त्रविद्या में अति निपुण थे जब मनुको इससे अधिक संतान होने की इच्छा हुई तब उन्होंने मित्रावरुण का यज्ञकरा जिस यज्ञमें होम करनेके समय होता के उपचार से उनके घर में इला नामक सुन्दरी कन्या उत्पन्नहुई, मनु ने उसको देखकर मित्रावरुणकी स्तुतिकरके उनकोसन्तुष्टकरा औरकहा कि आपलोगों के प्रसाद से मेरे श्रेष्ठ पुत्र हो किन्तु यदि आपलोग मुझपर प्रसन्न हो तो इस यज्ञ में जो कन्या उत्पन्न हुई है वही कन्या अतिगुणी पुत्र होजाय, यह सुनकर मित्र और वरुण दोनों देवताओं ने कहा कि–बहुत अच्छा यही कन्या पुत्र होजायगी, और वह इला उसी समय पुत्र होगई जिसका नाम सुद्युम्न विख्यात हुआ फिर वही सुद्युम्न एक वन में शिकार खेलने के समय ईश्वरमहादेव के कोप से स्त्री होगया जिससे पुरूरवा नाम चक्रवर्ती महाबली पुत्र को चन्द्रमा के बेटे बुध ने उत्पन्न करा जब पुरूरवा उत्पन्न होचुके तब स्त्रीरूप सुद्युम्न महाराज ने अश्वमेध यज्ञ करके अपने को फिर पुरुष बना लिया, फिर महाराज सुद्युम्न के उत्कल, विनय और गय तीन पुत्र उत्पन्न हुए, यह तीनों पुत्र उनके महापराक्रमी, यज्ञ करनेवाले और बड़े यशस्वी हुए, वह तीनों स्वस्थचित्त होकर पृथ्वी

का राज्य करनेलगे और राजा सुद्युम्न से जो पुत्र स्त्री होने के समय में पुरूरवा नाम उत्पन्न हुआ था उसको राज्य में से कुछ भाग नहीं मिला क्योंकि- वह बुध का पुत्र था परन्तु गुरु वशिष्ठमुनि के कहने से महाराज सुद्युम्न ने उसको प्रतिष्ठान नामक एक उत्तम नगर देदिया- उसी का वह राजा हुआ. इति एकसौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त.

एकसौ बारहवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी बोले कि--हे क्रोष्टुकि! पृपध्र नाम जो सावर्णि मनु के पुत्र थे वह एक समय शिकार खेलने के लिये निर्जन वन में गए और बहुत दूरतक निकलगये परन्तु उनको एक भी शिकार नहीं मिला और सूर्यकी गरमी तथा भूख प्यास से बहुत व्याकुल हुए कि--एकाएक एक मनोहर धेनु देखपड़ी, यह धेनु एक अग्निहोत्री ब्राह्मणकी थी, उस होमकी धेनु को पृपध्र ने नीलगाय समझकर बाण मारा कि--जिसके लगने से उस धेनु का हृदय फटगया, उस अग्निहोत्री के पुत्र तपस्वी ब्रह्मचारी ने अपने पिता की होमधेनु को पृथ्वीपर गिरी हुई देखकर शाप दिया, हे मुनि! उस ब्रह्मचारी का नाम बाभ्रव्य था उसको उसके पिता अग्निहोत्री ने उस धेनु को चराने के लिये उस वन में भेजा था, जब होमधेनु को पृपध्रने अनजाने बाण से मारा तब यह देखकर कष्ट से व्याकुलचित्त होगए और उसकोप के कारण उनके सब शरीर में पसीना आगया तथा नेत्र चंचल होगए इसप्रकार कोपसंयुक्त बाभ्रव्य ब्रह्मचारी को देखकर महाराज पृपध्र उस मुनिकुमार से बोले कि--हे मुनिकुमार! प्रसन्न हूजिये, शूद्र के समान क्यों कोप करते हो, क्षत्री और वैश्य के ऊपर ब्राह्मण होकर जैसा कोप आपने किया है वैसा किसी ने नहीं किया॥

मार्कण्डेयजी बोले कि--हे क्रोष्टुकि! इस प्रकार महाराजपृपध्र ने मौलिनाम अग्निहोत्री के पुत्र को जब धमकाया तब अग्निहोत्री कुमारने पुरात्मा पृपध्र कोशाप दिया कि--तू मुझको शूद्र कहता है इसलिये मैं शाप देता हूँ कि-तूही शूद्र होगा और जो तुमने मेरे पिता की होमधेनु को मारा है इसलिये तुमने जो गुरु से वेद पढ़ा है वह सब नष्ट होजायगा, यह शाप मुनिकुमार का सुनकर महाराज पृपध्र ने क्रोधसे पीड़ित होकर मुनिकुमार को शाप देने के लिये हाथ में जल उठाया तब फिर अग्निहोत्री कुमार ने भी राजा को नाश करने केलिये कोप किया उसीसमय उसके पिता अग्निहोत्री वहाँपर पहुँचगए और अपने पुत्र को मनाकिया और कहा कि--हे पुत्र? इतना क्रोध तुम वृथा करते हो बहुत क्रोध ब्रह्मकर्म का शत्रु है इसलोक और परलोक में शान्त रहना ही ब्राह्मण का मित्र है,

क्रोधसे तप का नाश होता है और आयु-र्बल की हानि होती है, ज्ञान भ्रष्ट होता है और धनका नाश होता है, क्रोधी का धर्म नहीं रहता, धनभी प्राप्त नहीं होता! और कामना मिलनेपर भी क्रोधियों को सुख नहीं होता, यदि महाराज पृषध्र ने अज्ञानता से इस धेनु को मारदिया है, तो ऐसे समय में उनके ऊपर दया करना चाहिये क्योंकि--इन्होंने जान बूझकर शत्रुता से हमारी होमधेनु को नहीं मारा है तो फिर किसलिये उनको शाप देते हो महाराज पृषध्र को शापदेना उचित नहीं है जो कोई अपनी भलाई के लिये दूसरे को दुःख देता है उसको दण्ड देना चाहिये और जो किसीने अज्ञानता से किसी को दुःख दियाहो तो उसके ऊपर दयावान् को दया करना चाहिये, यदि कोईमनुष्य अज्ञानता से किसीका अपराध करै और ज्ञानीमनुष्य उसको दण्डदे तो ऐसे ज्ञानी से उस अज्ञानी को मैं श्रेष्ठ समझता हूं । हे वत्स ! महाराजको तुम शाप न दो क्यों-कि--यह गौ अपनी चाल और आयुर्बल पूरी होजाने से मरगई है इस में महाराज का कुछ दोष नहीं है ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि—हे क्रोष्टुकि ! अग्निहोत्री की यहबात सुनकर महाराज पृषध्रने क्रोध छोड़कर उस मुनिकुमार को दण्डवत् प्रणाम करी और प्रसन्नता पूर्वक कहनेलगे कि-हे महाराज ! आप प्रसन्न हूजिये, मैंने अज्ञानता से इस धेनुको मारा है. हे मुनि ! आपकी होमधेनु को नील गाय समझकर मैंने बाण से मारा है, यदि मैं गौ जानता तो न मारता क्योंकि गौ अवध्या है अब आप मुझपर दयाकर हूजिये, यहबात महाराज पृषध्र की सुन कर मुनिपुत्र बोले कि हे महाराज ! जन्म से आजतक मैंने कभी झूठ नहीं बोला इससे मेरा शाप तो मिथ्या नहीं होसकता परन्तु अब जो शाप देना चाहता था वह नहीं दूंगा, इस के अनन्तर अग्निहोत्री ब्राह्मण अपने पुत्रको अपने साथ लेकर वहां से अपने आश्रम को चलेआये और महाराज पृषध्र उस मुनिकुमार के शाप से शूद्र होगए । इति एकसौ बार-हवां अध्याय समाप्त ॥

एकसौ तेरहवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी बोले कि--हे क्रोष्टुकि ! करूषके सातसौ पुत्र कारूष क्षत्री उत्पन्न हुए और उनकी संतान से हजारों क्षत्री उत्पन्न हुए और उन में से महाराज दिष्ट के पुत्र नाभाग नाम थे जिन्होंने प्रथम यौवन में एक बहुत सुन्दरी वैश्य की कन्या को देखा उसको देखते ही कामासक्त होकर उसकी प्रीति में ठण्डी श्वासें भरनेलगे फिर नाभाग उसकन्या के पिताके पासगए और उससे उसकन्या को मांगा, वैश्य ने इनको कामासक्तचित्त देखकर नाभाग के पिताके भयसे विनय

युक्त हाथ जोड़कर राजपुत्र नाभाग से कहा कि-हे राजपुत्र! आप राजा हैं, हम सब आपके सेवक और कर देनेवाले हैं आप हमऐसे नीचकुलवालों से किस प्रकार सम्बन्ध किया चाहते हैं, क्योंकि-विवाह का सम्बन्ध बराबर वाले के साथ करना चाहिये, यह सुनकर राजपुत्र ने कहा कि--हे वैश्य! मनुष्य का शरीर काम और मोहादि से बना है क्योंकि काम इत्यादि सब मनुष्य के शरीर में हैं और वह काम समय पाकर प्रबल होजाता है इसीप्रकार कालपाकर काम इत्यादि मनुष्यों के शरीर का उपकार करते हैं, अलगर जाति में एक शरीरका काम दूसरे शरीरसे प्राप्त होता है, यदि वह दूसरा मनुष्य अयोग्य भी होता है तो काल पाकर योग्य होजाता है और योग्य मनुष्य समयपाकर अयोग्य होजाता है, क्योंकि-योग्य और अयोग्य दोनों काल के वशमें हैं। इच्छानुसार भोजन इत्यादि मिलने से जो शरीर बढ़ता है उसीशरीर को समय पाकर दूसरा कोई खाजाता है तो उससमय योग्य और अयोग्य का कुछ विचार नहींरहता, इसीप्रकार समय का वृत्तांत लक्षित है इसलिये तुम्हारी कन्याको मैं चाहता हूँ यदि तुम मुझको देदो तो अच्छा है नहीं तो मैं मरजाऊँगा इतनी बात राजपुत्रकी सुनकर वैश्य बोला कि-हमलोग आपके पिता महाराज दिष्ट के वशमें हैं और आपभी उन्हींके वशमें हैं यदि महाराज दिष्ट आज्ञादेवें तो मैं निःसंदेह आपको अपनी कन्या देदूँ। इतनी बात सुनकर राजपुत्र फिर बोला कि-हे वैश्य! दूसरे २ कामोंमें गुरुजन से अवश्य पूछना चाहिये, परन्तु ऐसे २ कामों में बूझना कुछ आवश्यक नहीं है, कहां तो कामकी कथा वार्त्ता और कहां गुरुजनों के वाक्य और विचार सुनना यह दोनों बातें परस्पर विरुद्ध हैं मनुष्यों को अन्य२ कामोंमें गुरुजनों से पूछना चाहिये. वैश्य ने कहा कि-हे राजपुत्र! आप सत्य कहते हैं आपको कामकी वार्त्ता करना है मत बूझिये परन्तु मुझ को तो कामकी कथा नहीं अलापना है मैं पूछूँगा॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रोष्टुकि! यह बात वैश्यकी सुनकर राजपुत्र मौन होगया और उस वैश्य ने इनके पिता महाराज दिष्टके पास जाकर इनकी इच्छा को वर्णन करा. महाराज दिष्टने यहकथा सुनकर रिचीक आदि ब्राह्मणोंको और राजकुमार को बुलवाकर बैठाया और जो वृत्तांत वैश्य के मुखसे सुना था वह सब वर्णनकरा और कहा कि इस विषय में जैसा आपलोग विचारैं वैसा किया जाय, तब ऋषिलोग सब वृत्तांत सुनकर और राजपुत्र की ओर देखकर बोले कि जो इस वैश्यकी कन्यापर आपको

प्रीति हुई है तो कुछ चिंता नहीं है परन्तु न्याय कर्मके साथ विवाह कीजिये तो आपका धर्म नष्ट नहीं होगा, पहिले आप क्षत्रीकी कन्याके साथ विवाह करलीजिये जिसके उपरान्त इस वैश्य की कन्याके साथ विधिपूर्वक विवाह कीजिये इसप्रकार वैश्य की कन्याके साथ भोग करने से आपको दोष नहीं होगा, न्यायके विपरीत कर्म करने से दोष होगा क्योंकि—आप क्षत्री हैं बड़े होकर किसी की कन्याहरण नहीं करना चाहिये ॥

मार्कण्डेयजीबोले कि—हे क्रौष्टुकि! इस प्रकार ऋषिलोगों के कहने के पश्चात् वह राजपुत्र नाभाग उन महात्माओं की बातों का निरादर करके वहां से निकल खड़ाहुआ और उस वैश्य की कन्या को जाकर पकड़लिया फिर हाथ में खड्ग लेकर बोला कि—राक्षसी विवाह करके मैंने इस कन्या को हरण करलिया अब जिसको सामर्थ्य हो वह मुझ से यह कन्या छीनले. हे ब्रह्मन्! तत्पश्चात् वह वैश्य अपनी कन्या को पकड़ी हुई देखकर शीघ्रता से महाराज दिष्ट की शरण में जाकर त्राहि २ पुकारने लगा, तब महाराज ने क्रोधित होकर अपनी सेनाको आज्ञादी कि—इस अधर्मी नाभाग को अभी मारडालो, महाराज की आज्ञा पाकर सेना राजपुत्र को मारने के लिये उस स्थानपर पहुँचगई और राजपुत्र से युद्ध होनेलगा अन्त को उस युद्ध में अनेकप्रकार के अस्त्र शस्त्रों से राजकुमार ने सब सेना को काटडाला उस सेना को कटी हुई देखकर दूसरी सेना साथ लेकर महाराज आप युद्ध करने के लिये वहां पहुँचे और अपने पुत्र के साथ युद्ध करनेलगे उस युद्ध में भी राजपुत्र ने अपने अस्त्र और शस्त्रों से अपने पिता को बहुत दुखी करदिया।

इसी अन्तर में आकाशमार्ग से परिव्राट नामक मुनि उस स्थानपर पहुंचकर महाराज से बोले कि आप युद्ध न कीजिये, आपके पुत्र का धर्म नष्ट होगया अर्थात् अब वह वैश्य होगया और वैश्य के साथ क्षत्रीको युद्ध करना उचित नहीं है, ब्राह्मण पहिले ब्राह्मणी से विवाह करके तत्पश्चात् अन्य २ जातिकी कन्याओं से विवाह करै तो कुछ दोष नहीं है. इसीप्रकार क्षत्री भी पहिले क्षत्री की कन्या से विवाह करले तब फिर वैश्य और शूद्र की कन्या के साथ विवाह करै तो कुछ दोष नहीं है. इसी प्रकार वैश्य भी पहिले अपनी जाति की कन्या के साथ विवाह करले तत्पश्चात् शूद्र की कन्या के साथ विवाह करै तो कुछ दोष नहीं है; यही न्याय का कर्म है जो मैंने कहा, हे महाराज! जो ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य पहिले अपनी जाति की कन्या से विवाह किये विना दूसरी जाति की

कन्या के साथ विवाह करता है वह पतित होजाता है अर्थात् जो लोग अपनी जाति को छोड़कर पहिले छोटी जाति की कन्या से विवाह करते हैं वही पतित होजाते हैं, हे महाराज ! आपका यह पुत्र वैश्य होगया और आप क्षत्री हैं इससे आपको उस वैश्य के साथ युद्ध करना उचित नहीं है और हे नृपनन्दन ! हमलोग इस का कारण नहीं जानते हैं किसकारण से उससे यह बात हुई परन्तु हम आपको मना करते हैं कि--आप उस से न लड़िये ॥

इति एक सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त।

एकसौ चौदहवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रोष्टुकि! परिव्राट मुनि के मना करने से दिष्ट महाराज ने युद्ध करना छोड़दिया और उसका पुत्र वैश्य की कन्या से विवाह करके वैश्य होगया तत्पश्चात् महाराज के पास जाकर कहनेलगा कि-अब जिस कर्म के करने की आज्ञा दीजिये वह मैं करूँ, महाराज ने कहा कि—बाभ्रव्य इत्यादि तपस्वी लोग जो धर्म के बताने वाले हैं उन के पास जाकर बूझो जो वह लोग कहैं उस के अनुसार कर्म करो।

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि--हे क्रोष्टुकि। तब उस राजकुमार नाभागने उन तपस्वी लोगों से जाकर बूझा कि अब हम किस धर्म का कर्म करैं तब तपस्वी लोगोंने पशुपाल, कृषि और वाणिज्य यही तीनों कर्म का परमधर्म उसको बतादिया, तब वह राजकुमार अपनी क्षत्रिय धर्म छूट-जानेपर उन लोगों के उपदेश के अनु-सार कर्म करनेलगा, तत्पश्चात् उसके पुत्र उत्पन्नहुआ जिसका नाम भनन्दन विख्यात हुआ उस पुत्र से उसकी माता ने कहा कि—हे पुत्र ! तुम गोपाल होउ अर्थात् वैश्य का कर्म अंगीकार करो, इस प्रकार माता की आज्ञा पाकर वह भनन्दन माता को प्रणाम करके हिमा-लया पर्वत पर राजऋषि के पास गया और उन के चरण पकड़कर और हाथ जोड़कर बोला कि—हे राजऋषि ! मुझको मेरी माताने गोपाल ने की आज्ञा दी है और मुझको तो पृथिवीपालन करना चाहिये मैं गोपाल कहलाकर गौ का पालन किसप्रकार करूँगा, मुझको तो दोनों गोपालन करना चाहिये एक वह गौ जिसको मेरी माता ने कहा है दू-सरे पृथ्वी जिसको मेरे भाई बन्धुओं ने जबरदस्ती छीनलिया है. हे प्रभु ! मुझ को कोई ऐसा यत्न बतलाइये कि—जिस में आपके प्रसाद से वह पृथ्वी फिर मुझ को प्राप्त हो, मैं आपकी शरणमें आयाहूँ.

मार्कण्डेयजीने कहा कि--हे क्रोष्टुकि! भनन्दन की यह बात सुनकर उस राज ऋषि ने उसको सम्पूर्ण अस्त्रविद्या सि-

खलादी, तब भनंदन अस्त्रविद्या सीख कर और महात्मा राजर्षि की आज्ञा ले कर वसुरात इत्यादि अपने चचेरे भाइयों के पास गया और उन लोगों के पिता पितामहका जो राज्य था उसमें से आधा भाग अपना मांगा तब उन्होंने कहा कि तुम वैश्य हो किसप्रकार पृथ्वीका भोग करोगे, अन्तमें भनंदनको वसुरात इत्यादि भाइयों से युद्ध करनापड़ा और उन ने भनंदनके ऊपर अस्त्र शस्त्रोंका प्रहारकरा उस धर्मयुद्ध में अपने अस्त्र और शस्त्रोंसे उनलोगोंकी सब सेना मारकर तथा सब बंधुओंको जीतकर उन लोगोंसे भनंदन ने पृथ्वी लेली और उनसे लेकर अपने पिताको देनेलगा परन्तु भनंदन के पिता ने अङ्गीकार नहीं करा किं उससमय अपनी स्त्रीके सामने कहनेलगे कि—हे भनंदन ! पिता और पितामहका उत्पन्न कियाहुआ राज्य तुम्हारा ही है अब तुम भोग करो और कहा कि—मैंने पहिले भी राज्य नहींकरा है क्योंकि-मुझको सामर्थ्य नहीं थी अब तो मैं वैश्य होगया हूं जो मेरे पिता ने आज्ञादी है उसीके अनुसार करता हूँ, मैं वैश्यकी कन्या ग्रहणकरके उन के विरुद्ध होगया हूं और उनके क्रोध से मुझको पुण्यलोक नहीं मिलेगा जबतक वह मुझको न बुलावैं और मुझपर प्रसन्न न होवैं. हे पुत्र ! अब जो मैं पिताकी आज्ञा के विपरीत पृथ्वीका पालन करता हूँ तो मैं कल्पतक भी मेरी मुक्ति नहीं होगी और तुम्हारे बाहुबल का जीताहुआ राज्य मैं भोग नहीं करसकता क्योंकि—मुझमें अब सामर्थ्य नहीं है, तुम अपना राज्य आपकरो चाहैं अपने भाई बन्धुओं को देदो, मेरा कहना करो तो तुम आप राज्य करो या छोड़दो परन्तु मैं नहीं करूँगा ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि—हे क्रौष्टुकि ! इस के उपरांत सुप्रभा नाम उनकी स्त्री हाथ जोड़कर बोली कि—हे महाराज ! आप राज्य ग्रहण करिये, आप वैश्य नहीं हैं क्षत्री हैं और मैं भी वैश्यकुल में उत्पन्न नहीं हूं किन्तु क्षत्रीकी कन्या हूं, पूर्वकाल में महाराज सुदेव नाम विख्यात् राजा थे और राजा धूम्राश्व के पुत्र नल नाम उन के मित्र थे, एकदिन महाराज सुदेवनल नाम अपने मित्रके साथ वैशाखमास में स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करनेके लिये आम्र बाग में गए, उस बगीचेमें पहुँचकर अपने मित्र और उन स्त्रियोंके साथमें पहिले तो नानाप्रकारका भोजन और पान करा, तत्पश्चात् पुष्करणी नदीके तटपर एक राजाकी कन्याको जो च्यवनके पुत्र की स्त्री और अत्यन्त सुन्दरी थी उसको देखा उससमय उनके मित्र दुर्मति नल ने मदान्ध होकर उस सुंदरी को पकड़ लिया, यद्यपि वह राजाकी ओर देख कर त्राहि २ करतीरही

उसके रोने का शब्द सुनकर उसका पति प्रमति क्या हुआ क्या हुआ कहता हुआ शीघ्रतासे वहां आपहुंचा और उस जगह खड़ा होकर महाराज सुदेव को देखा तथा अपनी स्त्री को नल के हाथ में पकड़ी हुई देखकर प्रमति महाराज सुदेव से बोले कि—हे महाराज! यह नल दुष्ट है और आप दुष्टों को दण्ड देनेवाले वर्त्तमान हैं आप इस को दण्ड दीजिये. हे ब्रह्मन्! प्रमति के ऐसे आर्त्त वचन सुनकर महाराज सुदेव नल का पक्षपात करके बोले कि—मैं वैश्य हूँ आप दूसरे किसी क्षत्रिय के पास जाकर कहिये वह आपकी स्त्री की रक्षा करेगा, तब प्रमति क्रोध करके बोले कि—तुमने जो कहा हम वैश्य हैं सच है क्योंकि—जो किसी की रक्षा करता है वही क्षत्रिय है, शस्त्रधारी क्षत्रिय लोग किसी की विपत्ति नहीं सुनते हैं तुम क्षत्रिय नहीं हो, निःसंदेह तुम कुलाधम वैश्य हो।

इति एक सौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।

एकसौ पन्द्रहवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे द्विजोत्तम! महाराज सुदेव को भृगुवंशी प्रमति ने शाप दिया और अपने कोपकी अग्निसे तीनों लोक को दग्ध करते हुए नलसे कहने लगे, जो कि—तुमने उन्मत्त होकर मेरी स्त्री को पकड़लिया इससे तुम अभी भस्म होजाओ इसमें कुछ विलम्ब नहो, यह वचन प्रमति के मुखसे निकलते ही नलके शरीरसे अग्निउत्पन्नहुई और उसी अग्नि में नल जलकर भस्म होगया, यह प्रभावाते का देखकर महाराजसुदेव मद्यपान करना छोड़कर प्रमति को प्रणाम करके बारम्बार यही कहनेलगे कि—मेरा अपराध क्षमा कीजिये, मैंने मदिरा के आवेश में आपकी बात का कुछ ध्यान नहीं करा कि—जिसके कारण आप ने मुझको शापदिया अब प्रसन्न होकर दयालु हूजिये और जिस में यह शाप मुझपर न पड़े सो उपाय कीजिये. महाराजा सुदेव के इस प्रकार कहने और नल के भस्म होजाने से प्रमति अपना कोप छोड़ कर और निर्मल चित्त होकर महाराज सुदेव से बोले कि—जो बात मेरे मुख से निकल गई वह तो मिथ्या नहीं होसकती किन्तु तौभी तुम्हारे ऊपर मैं दया करूँगा, तुम वैश्य तो अवश्य होगे इस में कुछ संदेह नहीं है परन्तु फिर उसी जन्म में तुम वैश्य से क्षत्रिय होजाओगे अर्थात् जब तुम्हारी कन्या को बलात्कार से क्षत्रि लेजायगा तब तुम वैश्य से क्षत्री होजाओगे, हे महाराज! वही सुदेव मेरे पिता प्रमति के शाप से वैश्य होगए थे, और मेरा वृत्तान्त इस प्रकार है कि-पूर्वकाल में सुरथ नाम राजर्षिने मनुष्यों का संग छोड़कर और निराहार

होकर गन्धमादन पर्वतपर रहना स्वीकार किया, वहांपर एकदिन शारिका पक्षीको बाजके पंजेसे छूटकर पृथ्वीपर गिरतेहुए देखकर महाराज सुरथ को पश्चात्तापहुआ और उसके मुखमें जल छोड़ कर उसकी मूर्च्छा छुड़ाई, महाराज के कृपा करने और मूर्च्छा छुड़ाने से वह शारिका कन्या होगई और वही कन्या मैं हूं तब महाराज सुरथ कृपा करके मुझको अपने आश्रमपर लेआये और लोगों से कहनेलगे कि—मेरे कृपायुक्त होनेसे यह कन्या मेरे शरीरसे उत्पन्न हुई इसलिये यह कृपावती नाम से विख्यात् होगी। हे महाराज ! फिर तो मैं महाराज सुरथ के आश्रम में रहकर प्रतिदिन बढ़नेलगी और अपनी सखियोंके साथ वन में विहार किया करती थी, एकदिन अगस्त्य मुनि उस वनमें वनके फलोंको ढूंढ़तेहुए पहुँचे और मेरी सहेलियोंका कुछ अपराध देखकर हम सबको शाप दिया तब मैंने उन से कहा कि—हे द्विजोत्तम ! मैंने आप का कुछ अपराध नहीं कराहै सखियों के अपराधपर मुझको क्यों शापदेतेहो, यह बात मेरी सुनकर अगस्त्य ऋषि बोले कि दुष्ट की संगति में अदुष्ट भी दुष्ट होजाता है जैसे एक बूँद मदिरा के मिलाने से घड़ाभर पञ्चगव्य अशुद्ध होजाता है इसी विचार से तुम्हारी सखियों के साथ तुमको भी मैंने शाप दिया, परन्तु अब जो तुम मेरी शरण में आकर अपनी क्षमा मांगती हो, इस लिये तुम्हारे ऊपर यह अनुग्रह करता हूँ, कि—जब तुम वैश्य जाति में प्राप्त होकर अपने पुत्र को राज्य करने के लिये समझाओगी तब उस समय तुमको अपनी जाति का स्मरण होगा और क्षत्री होकर अपने पति के साथ उत्तम उत्तम भोगों को भोग करोगी और तुमको कुछ भय नहीं होगा ॥ हे राजेन्द्र ! अगस्त्य महाऋषि ने मुझ को शाप दिया था और मेरे पिता को प्रमति ने शाप दिया था कि—जिस कारण से हमलोग वैश्य कहलाये. इसलिये न तुम वैश्य हो, न मेरे पिता वैश्य हैं और न तुमको मेरे साथ विवाह करने से कुछदोष हुआ क्योंकि—मेरे पिता वास्तव में क्षत्रिय हैं जिनकी मैं कन्या हूं आपभी क्षत्रिय हैं। इति एकसौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥

एकसौ सोलहवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि—हे क्रौष्टुकि ! यह सब बातें महाराज अपनी स्त्री कृपावती से सुनकर अपने पुत्र से बोले कि—पिताकी आज्ञासे जो राज्य मैंने छोड़दिया है उसको फिर किसप्रकार ग्रहण करूं, तुमलोग वृथा कहकर मेरी आत्मा को खेंचकर राज्य करने में प्रवृत्त कराते हो, मैं वैश्यधर्म में रहकर तुमको कर दिया

करूँगा तुम अपना राज्य भाग करो या अपनी खुशी से छोड़दो, यह बात अपने पिता नाभाग से सुनकर राजपुत्र भनन्दन धर्म पूर्वक विवाह करके राज्य करनेलगे, हे द्विज ! महाराज भनन्दन पृथ्वी के चक्रवर्त्ती राजा हुए और उनका चित्त अधर्म की ओर कभी नहीं जाता था, और सब राजा लोग उनके आधीन थे, महाराज भनन्दन ने विधिपूर्वक यज्ञ करा और सबप्रकार से पृथ्वी का पालन करा सम्पूर्ण पृथ्वी में यही एक स्वाधिकारी राजा न्याय के साथ दण्ड करनेवाले हुए, इस राजा के वत्सप्रीनाम पुत्र हुआ जिसका गुण पिता से भी बढ़ा हुआ था विरथ की कन्या सो नन्दा नाम उनकी भार्या थी उस पतिव्रता सुन्दरी को राजकुमार वत्सप्री इन्द्र के शत्रु कुजृम्भ नाम असुर को मारकर लाये थे. इतनी कथा सुनकर क्रोष्टुकि बोले कि--हे मुने ! राजकुमार वत्सप्री कुजृम्भ को मारकर जिसप्रकार सौनन्दा को लाये सो कथा प्रसन्न होकर मुझको सुनाइये॥

मार्कण्डेयजी बोले कि--हेक्रोष्टुकि ! विदूरथ नाम एक राजा बहुत विख्यात कीर्त्ति होगया है उसके दो पुत्र थे एक का नाम सुनीति दूसरे का नाम सुमतिथा, एकदिन राजा विदूरथ बन में शिकार खेलनेको गये, उस वन में जैसे पृथ्वीका मुख हो ऐसा एक बहुत बड़ा गढ़हा दीख पड़ा उसको देखकर चिन्ता करनेलगे कि--यह क्या है यदि इसे पातालका छिद्र कहूँ तौ भी नहीं है क्योंकि-यह तो पृथ्वी के भीतर बहुत दूरतक और बहुत दिनों का जानपड़ता है इसी चिन्ता में राजा विदूरथ थे कि-सुव्रत नाम तपस्वीब्राह्मण को अपने पास आतेहुए देखा, उन से पूछा कि-हे ब्राह्मण ! पृथ्वीके भीतर यह अन्धा भयानक गढ़हा कैसा है तब सुव्रत ब्राह्मण ने कहा कि--आप हमारे रक्षक हैं क्या आप नहीं जानते हैं पृथिवी में जितनी वस्तु हैं वह सब महाराजों को जानना चाहिये, इतना कहकर सुव्रत ब्राह्मण कहनेलगे कि--महापराक्रमी दानव पाताल में रहता है और वह पृथ्वी को जृम्भी करता है इसकारण उसका नाम कुजृम्भ है उसने पृथ्वीपर और स्वर्ग में जो कुछ करा है और करता है वह आप क्यों नहीं जानते, वृत्तांत यह है कि पूर्वकाल में विश्वकर्माने सुनन्दा नाम एक मूशल बनाया था उसी मूशल को उस दुष्टात्मा कुजृम्भ ने उनसे लेलिया सो अब उसी मूशल से वह दैत्य लड़ाई में अपने शत्रुओं को मारता है और पाताल में जाकर उसी मूशल से पृथ्वी को फाड़ता है अर्थात् पाताल में असुरों के आने जाने के लिये उसी मूशल से द्वार बनाता है इसीप्रकार यहाँ भी उसी मूशलसे उसने पृथ्वीको फाड़ा है कि जो

इसप्रकार का भयानक गढ़हा दीखपड़ता है, हे महाराज ! उस दैत्यको बिना मारे किसप्रकार इस पृथ्वी का राज्य भोग कीजियेगा, वहदानव यज्ञोंको नष्टकरताहै और देवताओं को पकड़ पकड़कर दुःख देता है तथा उसी मूशल के द्वारा बड़े २ बली दैत्यों का पालन करता है हे महाराज ! यदि आप पाताल में जाकर उस शत्रु का वध कीजियेगा तो निश्चय सब पृथ्वी के पति परमेश्वर आपही होंगे, उस बली कुजृम्भ के मूशल को सबलोग सौनन्द कहते हैं और उसी मूशल को बलाबल भी कहते हैं हे महाराज जिसदिन वह मूशल स्त्री के हाथ से छू जाता है उस दिन वह निर्बल होजाता है फिर दूसरे दिन ज्यों का त्यों बली होजाता है और उसका यह प्रभाव कुजृम्भ नहीं जानता है कि–स्त्री के हाथ लगने से मूशल का प्रभाव जाता रहता है, यह कहकर ब्राह्मण ने फिर कहा कि–हे महाराज ! उस दुरात्मा दानव का वृत्तांत और मूशल का प्रभाव मैंने आपसे कहा अब जो मैंने पहिले आपसे कहदिया है वही कीजिये, हे महाराज ! आपके नगर के समीप ही उसने उस मूशल से पृथ्वी में छिद्र किया है आपको उससे निश्चिन्त रहना नहीं चाहिये, यह सब वृत्तांत सुन कर और सुव्रत ब्राह्मण के चलेजाने पर महाराज भी अपने नगर में चलेआये और बुद्धिमान् मंत्रियों को सम्मति के लिये बुलाया, उसका और मूशल का जो कुछ वृत्तांत सुव्रत ब्राह्मण के मुख से सुना था वह सब अपने मंत्रियों से कह दिया, जिससमय महाराज मंत्रियों से स-म्मति कररहे थे उससमय उनके पास मुदा-वती नाम कन्या बैठीहुई सब वृत्तांत सुन रही थी, कुछदिनों के पीछे एकदिन वही मुदावती अपनी सखियों के साथ वाटिका में पुष्प लेने के लिये गई कि–अकस्मात् वही कुजृम्भ दैत्य वहाँ से उसको हरण करके लेगया, उस कन्या का हरण सुन कर महाराज विदूरथ ने क्रोध से व्याकुल नेत्र होकर अपने दोनो पुत्र, सुनीति और सुमति को जो शिकार खेलने में बड़े प्र-वीण थे उनसे कहा कि–तुमलोग शीघ्र जाओ, निर्विन्ध्या नदी के तटपर एक बड़ा भारी कुआँ है उसी कुए के भीतर से रसातल का मार्ग है उसी मार्ग से तुमलोग रसातल में जाकर कुजृम्भ दैत्य को जो मुदावती को लेगया है मारो ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि–हे क्रौष्टुकि ! जब महाराज विदूरथ ने अपने पुत्रों को यह आज्ञादी तब वह दोनों पुत्र सेनाको साथ लेकर क्रोध में भरेहुए उस कुयेंपर पहुँचकर उसी मार्गसे रसातल में जाकर कुजृम्भ से युद्ध करनेलगे, बहुत दिनोंतक परिघ, शक्ति, शूल और बाण इत्यादि अस्त्र शस्त्रों से उस दैत्यके साथ युद्ध होता

रहा, फिर माया से कुजृम्भ दैत्य ने उन राजकुमारों की सब सेना को मारकर उनको बांधलिया. हे मुनिसत्तम ! महाराज विदूरथ अपने पुत्रोंकी पराजय सुन कर और बहुत दुखी होकर अपनी सेना के लोगों से कहनेलगे कि—जो कोई कुजृम्भ दैत्यको मारकर मेरी कन्या और पुत्रों को छुटालावैगा उसको मैं बहुत सुन्दरी कन्या दूंगा. हे मुनि ! इसप्रकार महाराज ने उससमय कन्या और पुत्रों के छूटनेसे निराश होकर अपने नगर में ढिंढोरा पिटवादिया, अंत में यह समाचार भनंदनके पुत्र वत्सप्री ने सुना और वत्सप्री अस्त्रविद्या में बड़े निपुण और बड़े बलवान् थे, फिर वत्सप्री यह समाचार सुनकर महाराज विदूरथके नगर में आये और अपने पिताके मित्र विदूरथ को प्रणाम करके विनययुक्त बोले कि—हे महाराज ! मुझको शीघ्र आज्ञा दीजिये कि—मैं जाकर आपके प्रतापसे उस दैत्य को मारूं और राजकुमारों को बन्धन से छुटालाऊं. यह बात महाराज विदूरथ अपने मित्रके पुत्र वत्सप्री की सुनकर और उसको कण्ठ से लगाकर बोले कि शीघ्र जाओ क्योंकि—मेरी कन्या वहां पर भयसे व्याकुल होरही होगी. हे राज कुमार ! जो तुम श्रद्धा रखते हो तो जिस प्रकार गौ का बच्चा कूदकर अपनीमाता से अलग होजाता है और फिर कूदकर अपनी माता के पास चलाजाता है उसी प्रकार तुम शीघ्र यहांसे जाओ और उस दैत्यको मारकर मेरी कन्या को छुटालाओ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रौष्टुकि ! यह आज्ञा महाराज विदूरथ से पाकर वत्सप्री खड्ग और बाण लेकर तथा कवच धारण करके उस कुएपर जाकर उसी मार्गसे पाताल में गए, वहां जाकर राजकुमार ने अपने धनुषको खैंचा उस धनुष के खैंचनेका ऐसा शब्दहुआ कि सम्पूर्ण पाताल गूँजगया, उस धनुष के खैंचने का शब्द सुनकर कुजृम्भ दैत्य अपनी सेना लेकर शीघ्रता से राजकुमार वत्सप्री से युद्ध करने को आया, फिर राजकुमार और कुजृम्भ दैत्य से युद्ध होनेलगा जब युद्ध करते२ तीनदिन बीत गए तब वह दैत्य मूशल लेनेको अपनेघर दौड़ाहुआ गया, वह मूशल विश्वकर्माका बनायाहुआ गन्धमाल और धूप दीप इत्यादि से पूजित होकर उसके घर में रक्खाहुआ था, उस मूशल का प्रभाव मुदावती कन्या भलीप्रकार से जानती थी जिससमय वह दैत्य मूशल लेनेको आया उसीसमय मुदावती ने शिर झुकाकर उस मूशल को हाथ से स्पर्श करदिया, फिर जब वह दैत्य मूशल उठानेलगा तब मुदावती ने स्तुति के बहाने से कईबार अपना हाथ उस मूशल से लगादिया,

जब वह असुर मूशल को उस रण में युद्ध करने के लिये लाया और अपने शत्रुपर उस मूशल का वार किया परन्तु उस मूशल का प्रभाव घटजाने से उसका कराहुआ वार व्यर्थ होगया हे मुनि ! जब उस सौनन्द मूशलपरमअस्त्र में दैत्य ने कुछ प्रभाव नहीं देखा तब दूसरा शस्त्र सँभालकर राजकुमार से युद्ध करनेलगा जब वह असुर राजकुमारपर सब अस्त्र चलाकर थकगया तब फिर मूषल चलानेलगा, पन्तु फिर भी उसका चलाना व्यर्थ होगया, तब तो राजकुमार ने उस दानव के सब शस्त्रों को और रथ को अपने शस्त्रों से काटडाला तब वह पैदल होकर और हाथ में ढाल तलवार लेकर राजकुमार पर दौड़ा क्रोध में भरा हुआ और गाली देताहुआ जब राज-कुमार के समीप पहुँचा तब राजकुमार ने अग्निशस्त्र से उसको मारा, सो वह शस्त्र उसके हृदय में लगा और वह चिल्लाकर मरगया उसके मरने से सर्व लोग रसातल में बहुत आनन्दित हुए, आकाश में पुष्पों की वर्षा हुई, गन्धर्व लोग गानेलगे और देवताओं ने बाजे बजाये,राजकुमारने उस कुजृम्भ दैत्य को मारकर राजा विदूरथके दोनों पुत्रों और मुदावती कन्या को बन्धन से छुड़ाया, कुजृम्भ दैत्य के मूशल को सर्पों के राजा शेषजी ने ग्रहण करलिया और नागेश्वर शेषजी मुदावती कन्या पर बहुत प्रसन्न हुए क्यों कि-इसने मूशल के प्रभाव को जानकर अपने हाथके स्पर्शसे इसका बल घटादिया इस लिये नागराज ने प्रसन्न होकर कन्या का सौनन्दा नाम रखदिया फिर राजकुमार वत्सप्री मुदावती कन्या और दोनों पुत्रों सहित महाराज विदूरथ के पास आये और प्रणाम करके बोले हे तात ! आपके पुत्रों को तो मैं लेआया इसके सिवाय और जो कुछ काम मेरे करने का हो उसकी आज्ञा दीजिये ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रौष्टुकि! वत्सप्री की यह बात सुनकर महाराज विदूरथ उनपर प्रसन्न होकर ऊँचे स्वर से कहनेलगे कि-हे वत्स ! तुम ने बहुत अच्छा कामकरा, मैं देवताओंमें भी तीन कारण से विख्यात हुआ प्रथम तो यह कि-तुम मेरे जामाताहुए दूसरे कुजृम्भ दैत्य मारागया तीसरे मेरे पुत्र कुजृम्भ दैत्य के हाथसे बचकर जीतेहुए अपने घर आये अब तुम अच्छे दिन और शुभ लग्न में मेरी प्रतिज्ञानुसार मेरी कन्या मुदावती का पाणिग्रहण करलीजिये अर्थात् हे राजपुत्र ! तुम इस सुन्दरी मु-दावती से विवाह करलो जिससे मेरीभी प्रतिज्ञा पूरी होजाय. यह बात वत्सप्री राजा विदूरथ से सुनकर बोले कि-आप की आज्ञा मुझको मानना अवश्य है, जो कुछ आप कहिये वह मैं करूँ आप

की आज्ञा मुझे स्वीकार है ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि—हे क्रोष्टुकि! वत्सप्री के इसप्रकार कहनेपर महाराज विदूरथ ने मुदावती कन्याके विवाह का जो कर्म है वह भनन्दन के पुत्र वत्सप्रीके साथ किया, तब वह नवयौवन वत्सप्री मुदावती से विवाह करके उसके साथ उत्तमर देश और स्थानोंमें रहकर विहार करनेलगा कुछ समयके अनन्तर जब व-त्सप्री के पिता भनन्दन वृद्ध होकर तप करनेके लिये वन में चलेगए तब वत्सप्री राजा हुए, अपने राज्य के समय वत्सप्री ने भी बहुत यज्ञकरे और धर्मपूर्वक प्र-जाओं को पुत्रसमान पालन करा, उन के राज्य में समयपर जल वर्षता था, कभी किसी के वर्णसंकर पुत्र उत्पन्न नहींहुआ और चोर, सांप तथा दुर्वृत्ति इत्यादि से सबलोग निर्भय रहे, किसी को उपसर्गका भी भय नहींहुआ. इति एकसौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥

एक सौ सत्तरहवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी कहतेहैं कि—हे क्रोष्टुकि! महाराज वत्सप्री के विदूरथ की पुत्री सौनन्दा से बारह पुत्र उत्पन्न हुए उन के नाम—प्रांशु, प्रवीर, सूर, सुचक्र, विक्रम, क्रम, बली, बालक, चण्ड, प्रचण्ड, सुविक्रम और स्वरूप यह बारह पुत्र महाभाग और संग्राम के जीतनेवाले हुए, सबसे बड़े प्रांशु महाराज हुए जो महापराक्रमी थे और ग्यारहों भाई सेवकों की भांति इनकी आज्ञा में रहते थे इन के यज्ञ में ब्राह्मणों के छोड़ हुए बहुत द्रव्य से और नौकर चाकरों के छोडे हुए द्रव्य से सम्पूर्ण पृथ्वी भरगई जिस से इस पृथ्वी का नाम वसुन्धरा विख्यात हुआ, प्रजाओंको पुत्र की समान पालन किया करते थे, द्रव्य का जो कोष था, उससे सहस्रों और लक्षों यज्ञ करे कि-जिनकी कुछ संख्या नहीं होसक्ती फिर महाराज प्रांशु के पुत्र प्रजापति हुए जिन के यज्ञ में इन्द्रने सब देवताओं के साथ आनन्दित होकर निन्यानवे महापराक्रमी दानव और उनकी सेना को मारा तथा असुरसत्तम जम्भ का वधकरा और अन्य २ महापराक्रमी असुरों को भी मारा. हे मुनि! प्रजाति के पांच पुत्र हुए उन में बड़े खनित्र राजाहुए जो अपने पराक्रम से बहुत विख्यात हुए, वह खनित्र सत्यवादी और शान्त थे, सब प्राणियों और देवताओं के साथ बहुत प्रीति रखते थे, अपने धर्मपूर्वक वृद्धों की सेवा करते थे, शास्त्र पुराण के ज्ञाता और वक्ता थे, विनययुक्त थे, और अस्त्रविद्या में निपुण थे परन्तु अपने मुखसे अपनी बड़ाई नहीं करते थे, सब लोक के प्रिय और सब किसी की भलाई प्रतिदिन चाहते थे किन्तु

जो लोग वन में रहते थे उनकी भी प्रसन्नता चाहते थे और कहते थे कि-सब लोगों का कल्याण हो, सब कोई निर्भय रहें और किसी को व्याध न हो, सब का परस्पर मेल रहे, सब पुष्ट रहें, ब्राह्मणों का कल्याण और उन में परस्पर प्रीति रहै, चारों वर्णों की वृद्धि हो, कर्मों की सिद्धि हो, सब लोगों को सब लोक प्राप्तहों, और सब काल में सब लोगों की शुभमति हो, सब लोग जिस प्रकार अपनी आत्मा से प्रीति रखते हैं उसी प्रकार अपने पुत्र और सब लोगों से प्रीति रक्खें सब एक ही हैं किसी को किसी का अपराध नहीं करना चाहिये जो किसी का अपराध करता है वह मूढ है उस मूढ का करा हुआ थोड़ा भी अपराध बहुत होकर दुःख देता है जिस के करने का फल करनेवालों को प्राप्त होता है इसलिये सब प्राणियों को सब लोगों में हित बुद्धि रखना चाहिये और सब मनुष्यों को ज्ञान हो जिस से लौकिक पाप नहों, जो मनुष्य मेरेसाथ प्रीति करते हैं उन का पृथ्वी में कल्याणहो और जो प्रीति नहीं करते हैं उनका भी कल्याण हो ॥

हे क्रोष्टुकि ! महाराज प्रजापति के ऐसे महात्मा खनित्र पुत्र हुए जिनका वर्णन ऊपर कर आया हूं वह खनित्र सब गुणों से परिपूर्ण और शुभलक्षणहुए फिर महाराज खनित्रने अपने भाइयों को प्रीतिसंयुक्त अलग २ राज्य देकर स्थापित किया और आप समुद्र के मध्य का राज्य भोगा अर्थात् पूर्व दिशा का राज्य शौरि को दिया, दक्षिणदिशा का उदावसु को, पश्चिम दिशाका सुनय को और उत्तर दिशाका राज्य महारथ को दिया महाराज खनित्र के और उन के भाइयों के अलग २ गोत्र के अलग२ पुरोहित हुए अर्थात् शौरि के पुरोहित अत्रिकुल में उत्पन्न सुहोत्र नाम ब्राह्मण हुए, उदावसु के पुरोहित गौतम वंश में उत्पन्न कुशावर्त्त नाम ब्राह्मण हुए, सुनय के प्रोहित कश्यप वंश में उत्पन्न प्रमति नाम ब्राह्मण हुए और महारथ के पुरोहित वशिष्ठ मुनि हुए जिन की उत्पत्ति वशिष्ठकुल में थी यह चारों भाई यद्यपि अपना अलग २ राज्य करते थे परन्तु उन सब के अधिपति महाराज खनित्र ही थे और सब प्रजाओं को पुत्र की समान पालन करते थे एक समय विश्ववेदि नाम मन्त्री ने शौरि से कहा कि—हे पृथ्वीपाल ! इस समय में आप से यह प्रार्थना करता हूं कि—जिसके अधिकार में यह सब पृथ्वी है और जिस के आधीन सब राजालोग हैं वही महाराज है और उसी के पुत्र पौत्र को राज्य मिलैगा, यह जो उनके भाई थोड़े २ राज्य के स्वामीहुए हैं उनके पुत्रपौत्र

और भी थोड़े राज्यके राजा होंगे तत्पश्चात् उनके कुलके लोग उनमें भी थोड़े राज्यके स्वामी होंगे अर्थात् जितना ही समय व्यतीत होगा उतना ही परम्परा के अनुसार उनके वंशको थोड़ा राज्य होताजायगा. हे महाराज ! अन्तमें उन की संतान खेती करके जीवेंगी इसलिये मैं कहता हूं कि--भाई भाईके साथ प्रीति युक्त उसकी भलाई नहीं करता है. हे महाराज! जिसप्रकार भाई भाईके पुत्रपर प्रीति रखता है वैसी चचेरे भाईके पुत्रपर नहीं रखता है तो फिर चचेरे भाईके पौत्र पर किसप्रकार वैसी प्रीति रखसकैगा, यदि यहबात आप नहींमानें और कहें कि महाराज अपनेकुलके सबलोगोंपर समान प्रीतिरखते हैं तो मैं आपसे यह कहता हूँ कि-राजालोग किसलिये मंत्रियोंको सम्मतिलेने के लिये रखते हैं मैं आपका मंत्री हूँ मेरी यही सम्मति है कि--आपको सब राज्यभोग करने को मिलें जो राजा राज्य में संतोष रक्खैगा तो उसको सुख कहां होसकता है, सब कामों को सिद्ध करनेवाला तो राज्य है परन्तु वह राज्य विना उपायके प्राप्त नहीं होता है. हे महाराज ! आपको राज्य मिलैगा और आपका कार्य सिद्ध होगा, आप उसके कर्त्ता होंगे मैं उसका साधक हूँगा, आप को पिता और पितामहका उत्पन्न किया हुआ राज्य मैं दिलाऊंगा आप राज्य कीजिये हम मंत्रीलोग इसी दिनके लिये हैं परलोक के लिये नहीं हैं. यहबात विश्ववेदी मंत्रीकी सुनकर राजा शौरि बोले कि--हमारे बड़े भाई महाराज हैं, हमलोग छोटे हैं और उनके आज्ञाकारी हैं वह सब पृथ्वी के महाराज हैं और हम सब राजा हैं । हे महामति ! हम सब पांच भाई हैं और पृथ्वी एक है जो हम सब भाई इस पृथ्वी का भोग करना चाहैं तो यह एक पृथ्वी पाँच किसप्रकार होसकती है. विश्ववेदिमंत्री ने कहा कि--हे राजन्! जो आप कहते हैं सो सत्य है पृथ्वी एक ही है परन्तु इस पृथ्वी को आप ही अपने स्वाधीनरखिये आपके जो बड़ेभाई खनित्र हैं उनकी आज्ञा को रहने दीजिये, सब राज्य और कोश के स्वामी आप रहिये, मैं जिसप्रकार आपको उपाय बतलाता हूँ उसीप्रकार आपके भाइयों के मंत्री भी उनके राज्य प्राप्त होने के उपाय में रहते हैं यह सुन राजा शौरि ने कहा कि हमारे भाई हमलोगों को पुत्र के समान मानते हैं हम उनके राज्य पर कैसे चित्त को चलावैं विश्ववेदि ने कहा कि-हे महाराज! जिस समय आप समस्त राज्य को अपने आधीन करके राजगद्दी पर बैठेंगे तब राजाओं के योग्य वस्त्र और आभूषण इत्यादि से अपने भाई के सामन पूजित होंगे जिन लोगों को राज्य की इच्छा होती है उनको बड़े छोटे का विचार

नहीं होता ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि—हे मुनिसत्तम ! जब विश्ववेदी मन्त्री की सम्मति राजा शौरि के चित्तमें स्थित होगई तब विश्ववेदी ने उन के भाइयों को अपने वंश में करलिया और उन लोगों के पुरोहितों को भी शान्ति इत्यादि करने में तत्पर करदिया तत्पश्चात् महाराज खनित्र के ऊपर अभिचारक (प्रयोग) कर्म करने के लिये उनके पुरोहितों को भय दिखलाकर और उनका चित्त बिगाड़कर प्रवृत्त किया, और अपने दण्ड से कष्ट देनेका बहुत उपाय करा. जब प्रति दिन चारों पुरोहित महाराज खनित्र के नाश होने के लिये अभिचारक क्रिया करनेलगे उससे चार कृत्या उत्पन्न हुईं वह चारों कृत्या इकट्ठी होकर भयानक मुख और भयानक नेत्र करके महाशूल उठाकर अत्यन्त भयंकर रूपसे खड़ी होगई, उसीसमय जहां महाराज खनित्र थे वहां गई परन्तु विना अपराध महाराज खनित्र के पुण्यसमूह से विमुख होकर उन दुरात्मा चारों पुरोहितों और विश्ववेदी मंत्रीपर वह चारों कृत्या आकर गिरीं उन चारोंके गिरने से वह चारों पुरोहित और विश्ववेदी मंत्री भस्म होगए

इति एकसौ सत्तरहवाँ अध्याय समाप्त ।

एकसौ अठारहवाँ अध्याय

मार्कण्डेयजी बोले कि-हे क्रौष्टुकि ! उन पुरोहितों और विश्ववेदी मंत्रीके भस्म होकर मरजानेपर सबलोगों को आश्चर्य हुआ क्योंकि—वह लोग अलग अलग ग्राम में बसते थे परन्तु एकही काल में मरगए, भाइयों के पुरोहित और विश्ववेदी मंत्रीका भस्म होकर मरजाना सुन कर महाराज खनित्र को बहुत आश्चर्य हुआ और कहनेलगे कि--यह क्याहुआ क्योंकि—उनलोगों के भस्म होकर मर जाने का कारण महाराज खनित्रको मालूम नहीं था, उन्हीं दिनों महाराज के पास वशिष्ठमुनि आये उन से महाराज खनित्र ने अपने भाइयों के पुरोहितो और विश्ववेदी मन्त्री के मरनेका कारण बूझा कि--किसकारण से यह लोग एक ही कालमें भस्म होकर मरगए, वशिष्ठ मुनि ने विश्ववेदी मन्त्री की क्रूरता और उसका वार्त्तालाप तथा जो कुछ राजा शौरि ने उत्तर दिया था वह सब वृत्तान्त महाराज खनित्र को कह सुनाया, उस दुष्ट मंत्री ने भाइयों में शत्रुता कराने के लिये जो कुछ बुराई की थी और जो कुछ पुरोहितोंने कियाथा एवं जिसप्रकार महाराज खनित्रके साथ बुराई करनेसे वह पुरोहित लोग नष्ट होगए वह सब वृत्तांत विस्तारपूर्वक कह सुनाया महाराज खनित्र जो शत्रुओं पर भी दया रखते थे यह वृत्तांत सुनकर बोले कि—हाय मैं मरगया और फिर अपने को

बहुत धिक्कार किया, फिर कहने लगे कि-मैं पापी और अभागा हूँ मुझको धिक्कार है यह पाप मुझको हुआ जिस से सब लोक में मेरी निन्दा होगी क्योंकि--चार ब्राह्मण मेरे ही कारण से नाश को प्राप्त होगए मुझसे बढ़कर पापी इस पृथ्वी में दूसरा कौन होगा, जो मैं पापी नहीं होता तो मेरे भाइयों के पुरोहितलोग किसप्रकार भस्म होकर मरजाते, मेरे इस राज्य करने और जन्म लेनेपर धिक्कार है और मेरे कुल को धिक्कार है जिस कुल में जन्म लेकर ब्राह्मणों के नाश होने का कारण हुआ उन पुरोहितों ने तो अपने स्वामी के काम के लिये यह कर्म करा था और उनके स्वामी मेरे भाई हैं तो मानो मेरे काम के लिये यह सब मरगए मेरे भाई लोग दोषी नहीं हैं किन्तु मैं ही दोषी हूँ अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? मुझसा पापी दूसरा पृथ्वी में नहीं होगा क्यों कि—मेरे कारण से ब्राह्मणों का नाश हुआ, इन बातों के शोच में महाराज खनित्र ने व्याकुलचित्त होकर वनमें जाने की इच्छा करके अपने पुत्र को गद्दी पर बैठादिया अर्थात् क्षुप नामक अपने पुत्र को राजगद्दीपर बैठाकर आप अपनी तीन स्त्रियों सहित तप करने के लिये वन में चलेगए और उस वन में वानप्रस्थ के विधान से साढ़ेतीनसौ वर्ष तक तपस्या करी, हे द्विज ! तपस्या करने से महाराज बहुत दुर्बल होगए फिर सब तीर्थों का जल मँगाकर और उस जल में स्नान में करके उसी वन अपना प्राण त्याग करदिया महाराज के प्राण त्यागने पर पुण्य के प्रभाव से अक्षय लोक प्राप्त हुए जो जो लोक अश्वमेध इत्यादि करने से महाराजों को प्राप्त होता है, और उनकी तीनों स्त्रियें भी उन्हींके साथ अपनेर प्राणत्याग करके उसी पुण्यलोक में प्राप्त हुईं. हे महाभाग ! महाराज खनित्र का चरित्र पढ़ने और सुनने से पापों का नाश होता है, अब उनके पुत्र क्षुप के चरित्रको कहताहूं सुनो. इति एकसौअठारह वाँ अध्याय समाप्त ॥

एकसौ उन्नीसवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी बोले कि--हे क्रोष्टुकि ! महाराज खनित्र के पुत्र क्षुप राजगद्दीपर बैठकर अपने पिता की समान प्रजाओं को प्रसन्न रखकर उनका पालन करने लगे. बड़दानी, शीलवान् और यज्ञ करनेवाले हुए तथा व्यवहारादिक में शत्रु और मित्रपर समान दृष्टि रखते थे, एक समय महाराज क्षुप अपनी गद्दीपर बैठे हुए थे कि—उससमय पौराणिक ब्राह्मण कहनेलगे कि--हे महाराज ! जिसप्रकार पूर्वकाल में महाराज क्षुप होगए हैं उसी प्रकार आपको भी होना चाहिये अर्थात् पूर्वकाल में ब्रह्माजी के पुत्र महाराज क्षुप ने राजा होकर जैसे २ चरित्र किये हे

वैसे ही चरित्र आपको भी करना चाहिये यह बात उन पण्डितों से सुनकर महाराज खुप बोले कि—मैं उन महात्मा महाराज खुपका चरित्र सुनाचाहता हूँ आपलोग वर्णन करिये जो वैसी ही सामर्थ्य अपने में पाऊँगा तो मैं भी वैसा ही करूंगा । पण्डितों ने कहा कि—हे महाराज ! उन महात्मा खुपने पूर्वकाल में गौ और ब्राह्मणों को इतना भोजन और दान दिया कि—वह अयाचक होगए और प्रजाओं से छठा भाग लेकर बहुत २ यज्ञ करे, यह बातें पण्डितों की सुनकर महाराज बोले कि—ऐसे २ राजाओं का कराहुआ चरित्र मुझसमान राजा कहाँ करसकेगा ? तौ भी वैसे चरित्र करने का उपाय करूँगा, इस समय जो प्रतिज्ञा मैं करता हूँ उसको आप लोग सुनिये—महात्मा महाराज खुप के समान आचरण यज्ञादिक मैं करूंगा, जब कभी अकाल पड़ेगा तभी तब मैं इस पृथ्वी पर तीन यज्ञ करूँगा और जैसी गौ ब्राह्मण की रक्षा अन्य राजाओं ने करी है वैसी मैं भी करूँगा ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि—हे क्रोष्टुकि—जब कभी अकाल पड़ा तभी तब महाराज खुपने अपनी प्रतिज्ञानुसार तीन २ यज्ञ करे और जितना कर गौ ब्राह्मणों ने पूर्वकाल में राजाओं को दिया था उतनाही धन महाराज ने गौ ब्राह्मणों को दिया, फिर महाराज खुपके प्रमथा नाम भार्या से वीर नाम प्रशंसनीय पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने अपने प्रताप और वीरता से बड़े २ राजाओं को अपने अधीन करलिया. राजा विदर्भ की नन्दनी नाम कन्या उनकी भार्या हुई, उसीसे महाराज वीर के विवंश नाम पुत्र उत्पन्नहुआ जिस समय पराक्रमी विवंश ने पृथ्वी का राज्य करा तो उनके राज्य में सम्पूर्ण पृथ्वीके मनुष्य सुखीरहे, उस समय समयपर जल वर्षता था, खेतों में औषधि उत्पन्न होती थी, वृक्षों में फललगते और सब फल रसयुक्त होते थे वह रस पुष्टिकारक होता था, वह पुष्टता उन्मादकारक नहीं होती थी और बहुत धन होनेपर भी मनुष्यों को अहंकार नहीं होता था, महाराज विवंश के प्रताप से सब शत्रुलोग सदाभयभीत रहते थे, हे महामुनि ! उनके मित्रगण और पुरवासी लोग सदा हर्षित रहते थे, महाराज विवंशने अनेकों यज्ञ करके बड़ा यशपाया और संग्राम में सन्मुख मरण पाकर स्वर्ग लोक को प्राप्तहुए. एकसौ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

एकसौ बीसवाँ अध्याय

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि—हे क्रोष्टुकि ! महाराज विवंश के पुत्र खनीनेत्र नाम बड़े बलवान् और पराक्रमी हुए जिनके यज्ञों में गन्धर्वोंने विस्मित चित्त होकर यह गान

किया कि-महाराज खनीनेत्र की समान यज्ञ करनेवाला दूसरा इस पृथ्वीपर नहीं होगा जिन्होंने दश हजार यज्ञ समाप्त करके समुद्र सहित पृथ्वी ब्राह्मणों को दान करदी, फिर तपस्या से द्रव्य प्राप्त करके वही द्रव्य ब्राह्मणोंको देकर पृथ्वीको फिर लेलिया, महाराज खनीनेत्र से अतुल द्रव्य और पदार्थ पाकर ब्राह्मण लोग अयाचक होगए, महाराज खनीनेत्र ने तिहत्तर सहस्र सातसौ सरसठ यज्ञ करे और उन यज्ञोंमें बहुत दक्षिणायें ब्राह्मणों को दीं, फिर पुत्र उत्पन्न होनेके निमित्त पितृयज्ञ करनेके लिये मांस लेनेको मृगया (शिकार) खेलने की इच्छा करके घोड़ेपर सवार होकर और धनुष बाण तथा खड्ग लेकर बिना सेनाके अकेले आप ही महावन में गए, उस वन में शिकार के निमित्त चारोंओर घोड़ा दौड़ा रहे थे उसीसमय एक सघन वनमें से एक मृग निकलकर महाराज से बोला कि-मुझको शिकार करके अपना कार्य सिद्ध कीजिये, महाराज ने कहा कि--सब मृग तो मुझको देखकर भयसे भागते हैं और तू किसलिये प्राण देनेपर उपस्थित है, मृग ने कहा कि--मैं अपुत्र हूँ, मेरा जन्म वृथा है, इस संसार में मेरे जीनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रौष्टुकि! यह वार्त्ता मृग और राजा से होरही थी कि-इतने में एक दूसरा मृग आकर राजा से कहनेलगा कि—हे महाराज! आप इस मृगको न मारिये क्योंकि—इस से आपका कार्य सिद्ध नहीं होगा, मुझको मारिये और मेरे मांससे कर्म कीजिये कि-जिससे आपका कार्य सिद्ध हो और मेरा भी उपकार हो. हे महाराज! पुत्र के निमित्त आप अपने पितरोंको पूजना और तृप्त करना चाहते हैं तो इस अपुत्र मृग का मांस पितरों को देनेसे किसप्रकार आपका मनोरथ पूरा होगा, जैसा कर्म करना होता है वैसी ही वस्तु उस कर्ममें लगाना चाहिये क्योंकि—दुर्गन्धि से सुगन्धि प्राप्त नहीं होती, यहबात सुनकर राजा खनीनेत्र बोले कि--पहला मृग तो अपुत्र है इसलिये उसको वैराग्य उत्पन्न हुआ है परन्तु तुमकहो कि-तुमको अपने प्राण त्यागने में किसलिये वैराग्य उत्पन्न हुआ है, यहबात सुनकर मृग ने कहा कि—हे महाराज! मेरे पुत्रपौत्र बहुत हैं जिसकारण से मैं चिन्तारूपी अग्नि में सदा पड़ारहता हूँ. हे राजन्! हम मृगलोगों की जाति बहुतकादर और निर्बल होती है इसलिये बालबच्चों में मेरा ध्यान लगारहता है कि—उनको कोई मार न डाले. मनुष्य, सिंह और व्याघ्र इत्यादि से मैं बहुत डरता हूं क्यों कि-मेरे बालबच्चे कुत्तेसे भी निर्बल हैं, इसलिये मैं अपने बालबच्चों की रक्षाके निमित्त हरसमय यही चाहता रहता हूँ कि—वहलोग सम्पूर्ण पृथ्वी में मनुष्य

और सिंह इत्यादि से निर्भय रहैं, जिस प्रकार मृग सब तृण आदि चरते हैं उसी प्रकार गौ बकरी घोड़ा आदि भी तृण आदि चरते हैं इससे मैं यही चाहता हूँ कि—मनुष्यलोग इन्हीं पशुओंको मार मारकर खाया करैं मृगको न खाया करैं जब मेरे सब बालबच्चे अकेले चरने को निकलते हैं उससमय मुझको बहुत चिंता उत्पन्न होती है क्योंकि—प्रीति के कारण मेरा मन उनलोगों में लगारहता है कि कहीं मेरे सब बालक व्याधों के फन्द में न फँसजावैं अथवा ऐसे बन में न चले जावैं जहां सिंह आदि रहते हों इस बन में एक मैं हूं जिसकी तो यह दशा है और जिस महाबन में मेरे सब बच्चे चरने को जाते हैं वहां के समाचार नहीं मालूम कि—वहलोग किस दशामें हैं और सायं काल को जब मेरे सब बालक चरचर वहां से लौटकर आते हैं तब उनलोगों के देखनेपर भी सोने के समय थोड़ासा सोकर फिर उन सबों की कुशल चाहता रहता हूँ दिन रात्रि और सुबह शाम इसी सोच तथा चिन्ता में रहता हूँ कि—किस प्रकार उन सबों का कल्याण होगा, हे महाराज ! अपना सब वृत्तांत मैंने आप से कह सुनाया, अब प्रसन्न होकर मुझ को अपने बाण से मारिये और जिस लिये मैं दुःख उठाकर अपना प्राण त्याग करता हूँ उसका भी कारण सुनिये कि-असूर्य नामक लोक है उसमें आत्मघाती जीव जाते हैं, हे राजन् ! जो यज्ञमें मारेगए पशु हैं वो उत्तमगति को प्राप्त होते हैं. इसी लिये पूर्वकाल में अग्नि, वरुण और सूर्यभगवान् पशु हुए, और फिर यज्ञमें वध होकर उत्तमगति को प्राप्त हुए, अतः मैं चाहता हूं कि—हे महाराज ! आप कृपा करके मेरा वध कीजिये कि—जिससे मैं उत्तम गति को प्राप्त होऊँ और आपके भी पुत्र उत्पन्न हो, इसी अवसरमें पहिला मृग बोला कि—हे राजेन्द्र! इस मृग को न मारिये यह सुकृती है, इसके बहुत पुत्र हैं, मुझको मारिये मैं अपुत्र, हूँ यह सुनकर दूसरा मृग बोला कि-तुम धन्य हो, जो एक ही शरीर में तुम्हारे एक ही दुःख है और मैं तो बहुत शरीर सहित हूँ इसलिये दुःख भी बहुत हैं, पहिले जब मैं अकेला था तब मेरे शरीर में एक ही दुःख था, जब स्त्री हुई और मेरा मन स्त्री में लगा तब मुझको दो दुःख हुए, बाद उस स्त्री से मेरे सन्तान हुई तो जितनी सन्तान हुई उतना ही मेरे शरीर में दुःख बढ़गया इस लिये तुम्हीं अच्छे हो क्योंकि—तुमको इस संसार में जन्म लेकर बहुत दुःख नहीं है और मेरे जन्म लेने से मुझको इस लोक और परलोक दोनों में दुःख है. जो कि—मैं सदा अपने बालकों की रक्षा और पालना करने की चिन्ता में रहा

करता हूं इससे ईश्वर का ध्यान नहीं बनपड़ता है तो मुझको नरक में जरूर जानापड़ैगा यह बात दूसरे मृग से सुनकर महाराज खनीनेत्र बोले कि--हे मृग ! मुझको यह बात नहीं मालूम कि--पुत्र-वाला धन्य है अथवा अपुत्रवाला अब पुत्र होने के निमित्त पितृयज्ञ करने में मेरा चित्त स्थिर नहीं है, यह तुम्हारा कहना सत्य है कि-सन्तान वाले को इस लोक और परलोक दोनोंमें दुःख होता है परन्तु यह भी सुना है कि-बिना पुत्र के मनुष्य ऋणी होता है, इस लिये पुत्र होने के निमित्त जीव का वध करना छोड़कर वही यत्न करना चाहता हूं कि--जिसमें केवल तपस्या करने से पुत्र हो जैसा पूर्वकालमें महाराज लोग किया करते थे.

इति एकसौ बीसवाँ अध्याय समाप्त ।

एकसौ इक्कीसवाँ अध्याय

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि--हे क्रोष्टुकि! इस के पश्चात् महाराज खनीनेत्र पाप नाशिनी गोमती नदीके तटपर जाकर. एकाग्रचित्त हो इन्द्रकी स्तुति करनेलगे अर्थात् वहांपर महाराज खनीनेत्र तपस्या में अपने प्राण और शरीर लगाकर इन्द्र की स्तुति करनेलगे तब उन की स्तुति और भक्तिपूर्वक तपस्या करने से भगवान् इन्द्र प्रसन्न होकर खनीनेत्र से बोले कि--हे खनीनेत्र ! तुम्हारे भक्तिपूर्वक तप और स्तुति करने से मैं प्रसन्न हुआ, जो वरदान तुम मांगना चाहते हो मांगो. महाराज खनीनेत्र ने कहा कि--मैं अपुत्र हूं मेरे पुत्र उत्पन्नहो वह पुत्र शास्त्रधारी, श्रेष्ठ, सदा ऐश्वर्यवान् धर्मात्मा और ज्ञानी हो ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि--हे क्रोष्टुकि! इसप्रकार महाराज खनीनेत्र के वरदान मांगनेपर भगवान् इन्द्र ने प्रसन्न होकर वर दिया तब महाराज अपनी कामना पाकर प्रजापालन के लिये अपने नगर में चले आये । फिर यज्ञकरा और प्रजाओं का पालन करा, कुछदिनों के उपरान्त भगवान् इन्द्र के प्रसाद से महाराज खनीनेत्र के घर में पुत्र उत्पन्नहुआ, खनीनेत्र ने उसका नाम बलाश्व रक्खा और उसको सम्पूर्ण वेद पढाया, फिर हे विप्र ! महाराज खनीनेत्र के मरनेपर बलाश्व महाराज हुए और पृथ्वी के सब राजाओं को अपने अधीन करलिया, महाराज बलाश्व ने उन सब राजाओं से उत्तम २ वस्तुओं का कर लिया और प्रजाओं का पालन करा परन्तु थोड़े दिन के पीछे वह सब राजा और जो कर देनेवाले थे उन्होंने कर देना बन्द करदिया और अपने२राज्यपर संतोषन करके उन सबके सबोंने एक चित्त होकर महाराज का राज्य छीन लिया, परन्तु फिर महाराज बलाश्व ने वीरता करके अपना राज्य उन से फिर

लेलिया और राजाओं से विरोध करके अपने नगर में रहनेलगे फिर उन्हीं महापराक्रमी विरोधी राजाओं ने सेना साथ लेकर महाराज के नगर पर चढ़ाई करके उनको घेरलिया, महाराज बलाश्व नगर में घिरजाने से बहुत कोपित हुए, उनका कोष भी खाली होगया और वह सब-प्रकार से विवश होगए, जब महाराज और उनकी सेना को कोई सहारा नहीं मिला तब महाराज बलाश्व दोनों हाथ अपने मुखपर रखकर चिन्ता से लम्बीर श्वास लेनेलगे, उससमय महाराज के मुखकी श्वास से हाथ की अँगुलियों के गाबों से होकर बड़े २ योधा, रथ, हाथी और घोड़े सब निकलकर प्रकट होगए फिर तो क्षणमात्र में महाराज का नगर बड़े २ पराक्रमी वीरों की सेना से भर-गया, तब महाराज बलाश्व ने उस सब सेना को साथ लेकर अपने नगर से बाहर निकलकर उन राजाओं से युद्ध करा और उन सबको पराजित करदिया, हे महाभाग! महाराज बलाश्व ने उन सब राजाओं को जीतकर फिर अपने अधीन करलिया और जिसप्रकार पहिले उन लोगोंसे कर लेते थे उसी प्रकार फिर लेने लगे, क्योंकि-महाराज के काँपते हुए हाथों के गावों से वह वीर सेना निकली थी इस कारण महाराज बलाश्व करन्धम नाम से विख्यात हुए, महाराज करन्धम बड़े धर्मात्मा, सब के मित्र और तीनों लोक में विख्यात हुए. हे क्रौष्टुकि! महाराज के धर्म के प्रताप से ही अकस्मात् स्वयं सेना प्रकट होकर और अपने ऊपर कष्ट उठाकर महाराज के शत्रुओं को नाश करके फिर अपने महाराज के पास चलीगई ॥

इति एकसौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

एकसौ बाईसवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी कहतेहैं कि-हे क्रौष्टुकि! महाराज वीर्यचन्द्र की कन्या वीरा नाम जो अत्यन्त सुंदरी थी उसने अपने स्व-यम्वर में महाराज करन्धम को पसन्द करके अपना पति बनाया, तब महाराज करन्धमके वीरा स्त्रीसे एकपुत्र उत्पन्नहुआ जिसका नाम अवीक्षित हुआ, अवीक्षित नाम होनेका कारण यह है कि—उनके जन्म होनेपर महाराज करन्धम ने ज्यो-तिषियों को बुलाकर बूझा कि-मेरे पुत्र का जन्म प्रशस्त लग्न और प्रशस्त नक्षत्र तथा शुभग्रहोंसे दृष्ट है अथवा दुष्ट ग्रहोंसे दृष्ट है इसका वृत्तांत वर्णन कीजिये. यह सुनकर ज्योतिषियों ने कहा कि--हे महा-राज! आपकापुत्र प्रशस्तमुहूर्त्त, नक्षत्र और प्रशस्तही लग्न में उत्पन्नहुआ है. हे महा-राज! आपका यह पुत्र महापराक्रमी, म-हाभाग और महाराजा होगा. इस पुत्र के सप्तम बृहस्पति, शुक्र और चौथे च-न्द्रमा सब प्रकारसे रक्षक हैं, दशवें स्थान

में रहकर बुध भी उसकी रक्षा करते हैं और पापग्रह सूर्य, मंगल तथा शनैश्चर उसके जन्मस्थान को नहीं देखते हैं, हे महाराज! आपका यह पुत्र सकल कल्याण और सम्पत्ति से युक्त होगा ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि—हे क्रोष्टुकि! यह सब बातें ज्योतिषियों से सुनकर महाराज करन्धम प्रसन्नहुए, जो कि—इस पुत्र के जन्म स्थानपर बृहस्पति, शुक्र और बुध की दृष्टि है तथा सूर्य, शनैश्चर और मंगल की अदृष्टि है, ज्योतिषियों ने कहा इस लिये इसपुत्रका नाम अवीक्षित प्रसिद्ध होगा ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि—हे क्रोष्टुकि! महाराज करन्धम के पुत्र अवीक्षित वेद वेदाङ्ग में पारङ्गत हुए और कण्व मुनि के पुत्र से सम्पूर्ण अस्त्रविद्या सीखी, यह अवीक्षित अश्विनी कुमार के समान सुन्दर बृहस्पति के सदृश बुद्धिमान्, चन्द्रमा की समान कान्तिमान्, सूर्यकी समान तेजवान्, समुद्र की सदृश धैर्यवान् और पृथ्वी की समान क्षमावान् हुए फिर उनके समान शूरवीर इस पृथ्वीपर दूसरा कोई नहीं हुआ, जिनको स्वयम्वर में, हेमधर्म की कन्याने वरा.सुदेव की कन्या गौरी, बलि की कन्या सुभद्रा, वीरकी कन्यालीलावती, वीरभद्रकी कन्या निभा, भीमकी कन्या मान्यवती और दम्भकी कन्या कुमुद्वती इन सब कन्याओं ने स्वयम्वर में अवीक्षित को ग्रहण किया, और अवीक्षित ने भी उनको स्वीकार किया फिर सब राजाओं को और उन कन्याओं के पिता के कुटुम्बियों को जीतकर अपने बलसे उनकन्याओं को लेआये, एकसमय राजा विशाल की कन्या विशालिनी को अवीक्षित ने स्वयम्वर में देखा उस स्वयम्वर में बहुत राजालोग आये थे उन राजाओं में से जो राजा स्वरूपवान् था उसको उस कन्या ने ग्रहण किया और अवीक्षित की ओर नहीं देखा तब अवीक्षित ने बलात्कार से उस कन्या को पकड़लिया, यह देखकर सब राजा लोग लज्जित और क्रोधित होकर कहनेलगे कि-हम सब इतने राजालोग इस स्वयम्वर में आये हैं और एक राजकुमार हम सब के देखतेहुए इस कन्या को बलात्कार से लियेजाता है, ऐसी दशा में जो राजा क्षत्रिय होकर इस अन्याय को क्षमा करजायें उनको धिक्कार है, क्षत्रिय उसी को कहते हैं जो कोई दुष्ट किसी निर्बल को अन्यायसे दुःख देतो वह उस दुःखी की रक्षा करै, यदि ऐसा न करै तो वह क्षत्रिय नहीं है, जो हमलोगों ने इस अवीक्षित से अपनी रक्षा नहीं करी और इस दुष्ट को इसकी दुष्टता का दण्ड नहीं दिया तो हम लोगों के क्षत्रिय कुल में जन्म लेनेपर धिक्कार है तुमलोगों की मति कैसी नष्ट होगई है. हमलोगों की प्रशंसा और

स्तुति सब सूत मागध वन्दीजन करते हैं तो अब वह सब प्रशंसा हमलोगों की इस अवीक्षित को न मारने से नष्ट होजायगी हमलोग वीर कहलाते हैं और महात्माओं के कुल में उत्पन्नहुए हैं परन्तु इससमय यह सब बात वृथा होना चाहती है, इस संसार में कौन नहीं मरता है और युद्ध न करनेवाला कौन ऐसा है कि—जो अमर है इन बातोंको विचार करके क्षत्रियों को शूरता नहीं छोड़ना चाहिये, यह सब बातें सुनकर सब राजालोग क्रोधयुक्त होकर अस्त्र और शस्त्र लेलेकर खड़े होगए फिर तो उससमय कितने राजालोग रथपर सवार होकर, कितने हाथियोंपर, कितने घोड़ोंपर और कितने अमर्ष से मतवालों की समान पैदल ही राजकुमार अवीक्षित के समीप पहुँचे। इति एकसौ बाईसवाँ अध्याय समाप्त॥

एकसौ तेईसवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रौष्टुकि! वह सब राजा और राजकुमार लोग एकचित्त होकर राजकुमार अवीक्षित से संग्राम करने को सन्मुख आये फिर तो राजकुमार अवीक्षित और उन राजाओं तथा राजकुमारों से बड़ा युद्धहुआ, सब राजालोग क्रोध में भरेहुए शक्ति, गदा और बाण इत्यादि शस्त्र राजकुमार अवीक्षितपर चलाते थे और राजकुमार अवीक्षित भी उनसे युद्ध करते थे, राजकुमार अवीक्षित ने अपने सैंकड़ों उग्र बाणों से उन राजाओं को मारा और राजाओं ने अपने बाणोंसे अवीक्षित को मारा, राजकुमार अवीक्षित ने किसी की बाहु, किसीका शिर काटडाला, किसी का हृदय और किसीका वक्षस्थल छेद डाला, किसी के हाथी को मारडाला, किसी के घोड़ेका शिर काटडाला इसी प्रकार कितने राजाओं के रथ और सारथी को काटकर गिरादिया. उन शत्रुओं के बाणोंको अपने बाणोंसे दो२टुकड़े करदिये, किसीका धनुष और किसीका खड्ग काटडाला तथा शत्रुओंकी ओरके कितने राजकुमार लोग अवीक्षित के बाणों से मारेगए और कितने रणभूमि से भागगए तब राजालोग अति व्याकुल चित्त और मरनेपर उपस्थित होकर सातसौ राजालोग इकठे होकरउस रणभूमिमें आकर खड़े हुए, जब राजकुमार अवीक्षित ने शत्रुओं की सब सेनाको मारकर हटादिया तब यह सातसौ वीर अपनी वीरता और जाति की लज्जा विचारकर उस रण में धैर्य धारण करके युद्ध करनेलगे राजकुमार अवीक्षित उन राजाओं के साथ धर्मपूर्वक युद्ध करते थे, जब राजकुमार अवीक्षित उन लोगों के मारनेपर उपस्थित हुए तब वह लोग पीड़ित होकर धर्म छोड़कर अवीक्षित से युद्ध करनेलगे,

उस युद्ध के परिश्रम से उन सबोंका मुख पसीने से भरगया, किसीने तो अवीक्षित को बाणों से मारा, किसीने उनके हाथ का धनुष और किसीने रथ की ध्वजा काटकर पृथ्वी में गिरादिया, किसीने उनके घोड़े को, किसीने रथ को काट-दिया और किसीने गदा, किसीने बाण उनकी पीठ में मारा, तब राजकुमार अवीक्षित ने क्रोधित होकर अपनी ढाल और तलवार उठाली परन्तु उस ढाल तलवार को भी किसी शत्रु ने काटडाला तब राजकुमार अवीक्षित ने गदा उठाई उस गदा को भी किसीने काटडाला तब उन उन सब राजाओं ने धर्म छोड़ कर सहस्रों बाण एकही साथ राजकुमार अवीक्षित पर छोड़े, तब राजकुमार अवीक्षित उन अधर्मी राजाओं के मारने से अचेत होकर पृथ्वी पर गिरपड़े, तब उन राजाओंने शीघ्रतासे पहुँचकर उनको बांधलिया और उनको बांधकर सब राजालोग राजा विशाल के नगर में ले आये, उन सबों ने सन्तुष्ट और हर्षित होकर उनको बन्दीघर में रखकर विशालिनी कन्या को उन से छीनलिया, तब विशालिनी के पिता राजा विशाल ने और राजा के पुरोहितों ने बारम्बार उस विशालिनी कन्या से कहा कि-इन राजाओं में से जिसको तुम चाहो ग्रहण करो, परंतु विशालिनी ने उन राजाओं में से किसीको ग्रहण नहीं करा तब राजा विशाल ने उसके विवाह के लिये ज्यो-तिषियों से बूझा कि-आप इस कन्या के लिये कोई अच्छा दिन बतलाइये कि जिस में कोई विघ्न न हो क्यों कि-इस समय यह सब विघ्न उसी अशुभ मुहूर्त के प्रभाव से हुए हैं ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रोष्टुकि ! महाराज विशालके बूझनेपर परमार्थ के जाननेवाले ज्योतिषियों ने विचारकरके बहुत उदास होकर राजा विशाल से कहा कि-हे पृथ्वीपाल ! प्रशस्त लग्न से युक्त सुन्दर दिन थोड़े ही समय में आवेगा उस दिनके आनेपर प्रशस्त लग्न में इस का विवाह कीजियेगा, इससमय का निश्चित करना अच्छा नहीं है जिसमें कहीं महा विघ्न उत्पन्न न होजाय । इति एकसौ तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥

एकसौ चौबीसवाँ अध्याय

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रोष्टुकि ! राजकुमार अवीक्षित के बन्धन में होजाने का हाल जब राजा करन्धम और उनकी स्त्री वीरा तथा अन्य राजाओं ने सुना कि-राजकुमार अवीक्षित को राजाओं ने अधर्म करके बन्धन में करलिया है, तब महाराज करन्धम बहुत समय तक चिन्ता करतेरहे, कितने राजालोग महाराज करन्धम से आकर कहनेलगे कि-हे महाराज उन अधर्मी राजाओं को दण्ड देना चा-

हिये जिन्होंने अधर्म करके अवीक्षित को बाँधलिया है, आप बहुत शीघ्र सेना को तयार कीजिये यह निश्चिन्त बैठने का समय है चलकर उस दुष्ट विशाल को और उसके सहायक राजाओं को पकड़कर बाँधलीजिये उन राजाओं ने पहिले के अमर्ष से धर्म को छोड़ दिया और इस लिये कि स्वयम्बर में विशालिनी कन्या ने अवीक्षित को अंगीकार नहीं करा था, अवीक्षित ने बलात्कार से उस विशालिनी को पकड़ लिया था, सब स्वयम्वरों में भी राजकुमार अवीक्षित ने राजकन्याओं को अन्यायपूर्वक हरण करा है और राजाओं को अपने अधीन कर लिया है इस लिये अब सब राजाओं ने इकट्ठे होकर अवीक्षित को बांधकर अपने अधीन करा है॥

उन राजाओं से यह बात सुनकर महारानी वीरा हर्षित होकर अपने स्वामी और अन्य राजाओं से कहनेलगी कि-हे राजालोगो! मेरे पुत्र ने बहुत श्रेष्ठकाम किया है जो राजाओं को जीतकर अपने बल से कन्याओं को ग्रहण करा है, उन राजाओंसे युद्ध भी करा है, जो अन्याय पूर्वक कन्या को ग्रहणकरा यहबात मेरे पुत्र की उस संग्राम में अयोग्य नहीं है क्योंकि--क्षत्रिय लोगोंकी वीरता इसी में है कि--किसीप्रकार से संग्राम में शत्रुओं को जीतकर अपना कार्य सिद्ध करें, सिंह की समान मेरे पुत्र ने स्वयम्वर में आई हुई कन्याओं को अभिमानी राजाओं के सामने ग्रहण किया है मेरा पुत्र क्षत्रिय के कुल में जन्म लेकर हीनवृत्ति याचना किसप्रकार करसक्ता है? जो क्षत्रिय होते हैं वह बली राजाओं के सामने अन्याय से भी कन्याको ग्रहण करलेते हैं और क्षत्रियलोग लोहेकी शृंखलाओंसे बांधेजाने पर भी किसी के अधीन नहीं होते जो कायर हैं वह वश में होजाते हैं, धर्मात्मा राजालोग भी हठ से कन्याग्रहण करलेते हैं इस लिये इस बात की कुछ चिंता न करना चाहिये अवीक्षित का बन्धन (कैद) में होजाना अच्छा है, आप लोगों के अंग और मस्तकपर भी अस्त्र शस्त्र लगे हैं राजालोगों को पृथ्वी और धन इत्यादि हरण करने से ही प्राप्त होता है, स्त्री भी हरण करने से ही मिलती है जो २ वस्तु क्षत्रिय लोग चमत्कार से लाते हैं उस में उनकी बड़ाई होती है इसलिये आपलोग रणमें जाने के लिये शीघ्र रथपर सवार हूजिये और हाथी, घोड़े तथा महावत और सारथियों को भी तयार होने की आज्ञा दीजिये अभी आपलोगों को राजाओं के साथ युद्ध करना पड़ैगा, उस रणमें बहुत शूरवीर आवेंगे उनके साथ ऐसी वीरता करनी होगी कि-जिसमें वह लोगभी संतुष्ट होजायँ, जो क्षत्रिय लोग रण में शत्रुओं

का भय नहीं मानते हैं वह शूरवीर क्षत्रिय सब लोक में उदास होकर और सबको तेजोहीन करके प्रकाशवान् रहते हैं, जैसे सूर्य अन्धकार का नाश करके प्रकाशवान् रहते हैं ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रौष्टुकि! जब वीरा ने महाराज करन्धम से इस प्रकार ललकारकर कहा, तब महाराज करन्धम ने पुत्र के शत्रुओं को मारने के लिये अपनी सेना तयार करी और जब राजा विशालके नगरमें पहुँचे तब उन से और जो राजालोग राजकुमार अवीक्षित को बन्धन में डालेहुए थे उनसे युद्ध होनेलगा, वह युद्ध राजा विशाल के सहायक राजाओं के साथ तीनदिन तक बराबर होतारहा, जब सब राजाओं को महाराज करन्धम ने जीतलिया तब राजा विशाल हाथ में अर्घ्य लेकर महाराज करन्धमके पास आये और प्रीति पूर्वक महाराज करन्धम का पूजन करा, महाराज करन्धम ने अपने पुत्रको बंधन से छुटाकर उसी नगरमें उस रात्रिको निवास करा, फिर राजा विशाल उस कन्याको विवाह करने के लिये महाराज करन्धम के समीप लाये, उससमय अवीक्षित अपने पिता के सामने राजा विशाल से बोले कि—हे महाराज! अब मैं इस कन्याको अथवा किसी अन्य स्त्रीको ग्रहण नहीं करूँगा क्योंकि—इस स्त्रीके सामने राजाओं ने इस संग्राममें मुझको जीतलिया है इसलिये मैं कहता हूं कि इस कन्याका विवाह किसी अन्यके साथ करदीजिये, यह कन्याभी उसी पतिको ग्रहण करे कि--जिसका अखण्डित यश, पराक्रम हो और जिसका किसी ने अपमान न किया हो, मैं राजाओं से हार गया हूँ इसलिये यह कन्या मुझको ग्रहण करके पछतायगी क्योंकि--यह अबला है और मैं पुरुष हूं इसमें और मुझ में बहुत अन्तर है, पुरुषलोग स्वतंत्र हैं और अबला सदा परवश हैं, जब पुरुष भी परवश होजाय तो उसकी गणना पुरुषों में नहीं होसकती, मैं इस कन्याका मुख किसप्रकार देखूँगा और इसको अपना मुख दिखाऊँगा कि—जिसके सामने राजाओं ने मुझे मारकर पृथ्वी पर गिरादिया है ॥

इस प्रकार अवीक्षित के कहने पर राजा विशाल अपनी कन्या से बोले कि—हे पुत्री! जो कुछ अवीक्षित ने कहा वह तुम ने सुना अब तुम्हारा चित्त जिस पुरुष को चाहै उसको ग्रहण करो अथवा जिस को मैं बताऊँ उसको अपना पति बनाओ इन दो बातोंमें से एक करो यह बात अपने पितासे सुनकर विशालकी कन्या बोली कि--हे महाराज! बहुत राजाओंने मिल कर राजकुमार अवीक्षित को जीता है, इसप्रकार के संग्राम में इनके यश और

पराक्रम की हानि नहीं होसकती बहुतों ने मिलकर इनसे युद्ध किया है, उससमय यह अवीक्षित अकेले ही बहुतवीरों के साथ युद्ध करनेको रणमें खड़े होगए थे इससे इनकी वीरता उस समयमें प्रकट होगई है, उन राजाओं ने इनको नहीं जीता है किंतु इन्होंने भी उन राजाओं को कईबार जीता है इसलिये इनका पराक्रम प्रकाशवान् है, यदि ऐसे पराक्रमी को बहुत राजाओं ने मिलकर अधर्म युद्ध करके जीतभी लिया तो इसमें इन को क्या लज्जा है. हे पिता ! अब मैं इन के सिवाय अन्य को अपना पति नहीं बनाऊँगी, संग्राम में अवीक्षित की शूरता और धीरता देखकर मेरा मन इन्हीं में आसक्त होगया है, अब आप अवीक्षित से यही याचना करिये कि-जिस में यह मेरे पतिहों, कोई अन्य मेरा पति नहीं होसक्ता. यह बात अपनी कन्यासे सुनकर राजा विशाल अवीक्षित से बोले कि--हे राजपुत्र ! मेरी कन्या सत्य सत्य कहती है कि—आपके समान शूरवीर और पराक्रमी दूसरा कोई इस पृथ्वीपर नहीं है, आपकी वीरता और पराक्रम का वर्णन कोई नहीं करसक्ता है अब आप इस कन्याको ग्रहण करके मेरे कुल को पवित्र कीजिये, यह बात राजा विशाल से सुनकर अवीक्षित ने कहा कि हे राजन् ! अब मैं इस कन्याको अथवा किसी अन्य स्त्रीको ग्रहण नहीं करूँगा, क्योंकि —इससमय मैं भी स्त्रीके समान होरहा हूँ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि--हे क्रौष्टुकि! तदनन्तर महाराज करन्धम भी अवीक्षित से कहने लगे कि-हे पुत्र ! इस विशालिनी कन्या को तुम ग्रहण करो क्यों कि तुम्हारी प्रीति में यह दृढ है, यह आज्ञा महाराज करन्धम की सुनकर अवीक्षित बोले कि-हे पिता! अबतक कोई आज्ञा मैंने आपकी भंग नहीं करी है तो अब भी आप मुझ को वही आज्ञा दीजिये कि-जो भंग न हो। हे क्रौष्टुकि ! जब अवीक्षित ने उस कन्या को किसीप्रकार स्वीकार नहीं करा तब राजा विशाल व्याकुलचित्त होकर अपनी कन्या से कहने लगे कि-हे विशालिनी ! अब तू अपना मन इनकी ओर से हटाले अन्य किसी को स्वीकार करले इस जगत् में अनेकों राजकुमार हैं विशालिनीने कहा कि-हे पिता ! मैं इन्हीं को अपना पति बनाना चाहती हूँ यदि अवीक्षित मुझको ग्रहण नहीं करेंगे तो मैं तप करूँगी परंतु अवीक्षित के सिवाय दूसरा कोई मेरा पति इस जन्ममें नहीं होसकता है ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि—हे क्रौष्टुकि ! तदनंतर महाराज करन्धम राजा विशाल के साथ प्रीतिपूर्वक तीनदिन वहां रहकर अपने नगरमें चलेआए और अवीक्षित

को भी बहुत समझा बुझाकर अपने साथ लेते आये. वहां वह कन्या अपना परिवार त्यागकर और वन में जाकर वैराग्य में प्रवृत्त होकर निराहार तपस्या करनेलगी जब वह कन्या तीन मासतक कष्ट उठाकर निराहार तपस्या करतीरही तब उसका मांस सूखकर उसके शरीर में केवल अस्थिमात्र शेष रहगई, तदनंतर उसके शरीर का सब उत्साह जातारहा और अत्यंत दुर्बल होगई, तब उसने अपने शरीर को त्यागनेका विचार किया, जब वह शरीर त्यागनेपर उपस्थित हुई तब सब देवताओं के एकत्र होकर उसकन्या के पास देवदूत भेजा, तब वह दूत उस के समीप आकर कहनेलगा कि-हे राज कन्या! देवताओं ने मुझको तुम्हारे समीप भेजा है और तुम्हारे लिये कहा है कि-तुम इस दुर्लभ शरीरका त्यागन मतकरो तुम चक्रवर्त्ती महाराजकी माता होगी. हे भगवती! तुम्हारे पुत्र शत्रुओं को मारकर सातों द्वीपकी पृथ्वीका अखण्ड राज्य करेंगे और उनके साथ तुम भी पृथ्वीका भोग करोगी, तदनंतर तुम्हारा पुत्र देवताओं के सामने तरुजित् शत्रुको और अधःशंकु दुष्ट को मारैगा तथा प्रजाओं को धर्मपर स्थित करैगा, चारों वर्णोंको अपने २ धर्म में रखकर पालन करैगा और चोर तथा म्लेच्छादि दुष्टों को मारैगा, अनेक प्रकार के यज्ञ करैगा और उत्तम दक्षिणा देदेकर उन यज्ञोंको समाप्त करैगा. हे कल्याणि! वह तुम्हारा पुत्र अश्वमेधादि छः सहस्र यज्ञ करैगा ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रोष्टुकि! उस दूतको आकाश में, सुन्दर चन्दन और मालासे शोभित देखकर वह राज कन्या विशालिनी यह मृदुवचन बोली कि-जो आप कहतेहैं सत्यहै परंतु विनापति मेरे पुत्र किसप्रकार उत्पन्न होगा, मैंने अप ने पिता के समीप यह प्रतिज्ञा करी है कि-मैं इस जन्म में सिवाय राजकुमार अवीक्षित के अन्यको अपना पति नहीं बनाऊँगी और राजकुमार अवीक्षित को यह बात किसी प्रकार स्वीकार नहीं है, मेरे पिता और उनके पिता ने भी बहुत समझाया परन्तु उन्होंने मुझको स्वीकार नहीं किया. यह बात राजकन्या से सुनकर दूत बोला कि-हे महाभागवती! मैं सत्य कहता हूँ तुम्हारे पुत्र अवश्य उत्पन्न होगा, तुम अधर्म से अपना शरीर मत त्यागो, तुम इस वनमें निवास करो और अपने दुर्बल शरीर को पुष्ट करो, तपस्या के प्रभाव से मेरा वचन सब सत्य होगा, हे क्रोष्टुकि! वह दूत यह सब बातें विशालिनी कन्या से कहकर जहाँ से आया था वहाँको चला गया और वह सुन्दरी राजकन्या उसी वन में रहकर अपने शरीर का पोषण करने लगी,- इति एकसौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

एकसौ पंचीसवाँ अध्याय

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रोष्टुकि! तदनन्तर अवीक्षित की माता महारानी वीरा ने शुभदिन में राजकुमार अवीक्षित को समीप बुलाकर कहा कि-हे पुत्र ! मुझ को तुम्हारे पिता महात्मा ने एक व्रत कर ने की आज्ञा दी है और वह व्रत बहुत कठिन है उसका नाम किमिच्छक है उस में मैं उपवास करूँगी, वह व्रत तुम्हारे पिता का कहाहुआ है जिसमें यह व्रत सिद्ध हो वही तुमको करना चाहिये हे पुत्र ! तुमने जो प्रतिज्ञा करी है कि-मैं स्त्री ग्रहण नहीं करूँगा इसलिये मैं यत्न करती हूँ कि-जिससे तुम स्त्री ग्रहण करो, आधा द्रव्य मैं तुमको तुम्हारे पिता के कोष से दूँगी तुम्हारे पिता ने इसबात की आज्ञा मुझ कोदी है. वह व्रत कठिनता से सिद्ध होगा वह बहुत उत्तम है और उससे रक्षा होगी जो तुम्हारे पराक्रम से सिद्ध होसके तो करो, वह व्रत कठिन हो अथवा सहज परन्तु जो तुम कहो कि-हम उस व्रत को सिद्ध करादेंगे तौ मैं उस व्रतका प्रारम्भ करूँ अथवा इसमें और जो कुछ तुम्हारी सम्मति हो वह कहो, अवीक्षित बोले कि मेरे पिता का संचय कराहुआ धन मेरा ही है जहाँपर है वहीं रहने दो, मेरे शरीर से जो होने योग्य हो वह कहो मैं करूँगा. हे माता ! मेरे पिताने जो किमिच्छक व्रत करने की आज्ञादी है तो तुम उस को अवश्य करो ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रोष्टुकि ! इतनी बात अवीक्षित के कहनेपर महारानीने महाराज करन्धमकी आज्ञानुसार व्रत के दिन उपवास करके महाराज का, सम्पूर्ण निधियोंका और निधिपालेगणों का मन वचन कर्मसे भक्तिपूर्वक पूजन करा. एकसमय जब महाराज करन्धम राजसिंहासन पर बैठेहुए थे तब नीति और शास्त्र के जाननेवाले मंत्रीलोग कहनेलगे कि--हे राजन् ! पृथ्वीका राज्य करतेहुए आपकी अवस्था व्यतीत होगई आपके एक पुत्र अवीक्षित है सो उसने भी स्त्रीग्रहण करना छोड़दिया है, जब अपुत्र अवीक्षित राज्यपर बैठेंगे उससमय शत्रुलोग अवश्य राज्य छीनलेंगे और आपका वंश नाश होजायगा, पितरों को पिण्ड और जल देनेवाला कोई नहीं रहेगा, इन क्रियाओंके नष्ट होजाने से इस संसार में आपकी बड़ी निन्दा होगी इस लिये हे महाराज ! आपको वही यत्न करना चाहिये जिसमें कि--आपके पुत्र सुबुद्धि होकर स्त्री ग्रहण करें जिससे पितरों का उपकार हो ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रोष्टुकि ! उसीसमय में महाराज करन्धम ने अपनी वीरा स्त्रीके पुरोहित का यह शब्द सुना जो याचकों से कहरहे थे कि-महारानी वीरा किमिच्छक व्रत करती हैं जिसको जो कुछ मांगना हो मांगे उसको वह मिलैगा, और उसीसमय राजकुमार अवी-

क्षित भी पुरोहितों का शब्द सुनकर राज द्वारपर आकर याचकों से बोले कि-मेरी माता महारानी किमिच्छक व्रत करती हैं जिस याचकको जो कुछ मांगना हो मांगे वह मैं दूँगा यदि वह असाध्य भी होगा तो मैं उसको पूरा करूंगा, मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि--इस किमिच्छक व्रत के समय जो कोई जोकुछ मांगेगा वह मैं अवश्यदूँगा

मार्कण्डेयमुनि बोले कि-हे क्रोष्टुकि ! इतना वचन राजकुमार अवीक्षित का सुनकर महाराज करन्धम शीघ्रता से उनके समीप आकर बोले कि-हे पुत्र ! पहिले जो मैं माँगता हूँ वह दो अवीक्षित ने कहा कि--हे तात ! जो कुछ आप माँगियेगा वह मैं अवश्य दूँगा जो बात अपने से न होसकैगी वह भी करदूँगा महाराज बोले कि-हे पुत्र ! मैं यही चाहता हूँ कि-अपने पौत्र को गोद में बैठाकर उसका मुख देखूँ यह इच्छा मेरी पूरी करो अवीक्षित ने कहा कि-हे महाराज! आपका मैं ही एक पुत्र हूँ और मैं ब्रह्मचर्य धारण करेहुए हूँ मेरे पुत्र नहीं है तो फिर आपको पौत्र का मुख कहाँ से दिखाऊं ? महाराज करन्धम ने कहा कि—यह ब्रह्मचर्य जो तुम धारण करेहुए हो इस से तुम को पाप होगा, तुमको चाहिये कि-आत्मा का उद्धार करो और पुत्र उत्पन्न करके मुझको दिखाओ, अवीक्षित ने कहा कि-हे महाराज इसके अतिरिक्त और जो कुछ आज्ञा हो वह मैं करूं परन्तु स्त्रीसंभोग करने की मुझको आज्ञा न दीजिये, राजा बोले कि-हेपुत्र ! बहुत राजा लोगों के एकत्र होकर जीते जाने से जो तुमको वैराग्य उत्पन्न हुआ है सो तुम इस वैराग्य से ज्ञानी नहीं कहलाओगे किन्तु लोग तुम को मूर्ख कहेंगे और मैं कहांतक कहूं अब यही कहता हूं कि-तुम ब्रह्मचर्य को त्यागकर अपनी माता की आज्ञानुसार अपने पुत्र का मुख मुझको दिखाओ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि-हे क्रोष्टुकि ! यद्यपि अनेकप्रकार से अवीक्षित ने चाहा कि—उनके पिता इस इच्छा को त्यागदें परन्तु महाराज ने सिवाय पौत्रदर्शन होने के दूसरी कोई प्रार्थना नहीं करी तब अवीक्षित बोले कि—हे तात ! आप की इस इच्छा से मैं बड़े संकट में पड़गया क्यों कि—अब मुझको निर्लज्ज होकर स्त्री ग्रहण करना पड़ी, जिस स्त्री के सामने रण में गिरकर मूर्छित होगया था अब उसी स्त्री के पति होने में मुझको बड़ी ग्लानि है परन्तु क्या करूँ सत्यरूपी पाश में बँधा हूं जो आज्ञा हुई है वह करूंगा अब आप निश्चिन्त होकर राज्य कीजिये. इति एकसौ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

एकसौ छब्बीसवाँ अध्याय

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रोष्टुकि !

तदनंतर राजकुमार अवीक्षित एकदिन वनमें जाकर मृग,शूकर और बाघ इत्यादि का शिकार कररहे थे उससमय किसी स्त्री का त्राहि २ शब्द सुना जो भय के कारण ऊँचे स्वर से पुकाररही थी, राजकुमार अवीक्षित वह शब्द सुनकर धैर्य देतेहुए उसकी ओर को घोड़ा दौड़ाकर गए तो वहाँ एक कन्या को दनुका पुत्र दृढकेश नाम असुर पकड़ेहुए है जिससे वह कन्या त्राहि २ पुकाररही है कि मैं महाराज करन्धम के पुत्र राजकुमार अवीक्षित की स्त्री हूँ मुझको इस वनमें यह दुष्ट राक्षस दुःख देता है, जिन राजकुमार अवीक्षित के समान इस पृथ्वी के बड़े २ राजा लोग गंधर्व और गुह्यकगणों को खड़े होने की सामर्थ्य नहीं है उनकी मैं स्त्री हूँ, जिनका क्रोध मृत्यु के समान और पराक्रम इन्द्र के सदृश है उन राजकुमार अवीक्षित की मैं स्त्री होकर इस समय हरणहुईजाती हूँ।

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रोष्टुकि! महाराज करन्धम के पुत्र अवीक्षित हाथ में धनुषबाण लियेहुए चिन्ता करनेलगे कि-मेरी भार्या इस वन में कहाँ से आई मालूम होता है कि—यह किसी दुष्ट राक्षस की माया है परन्तु जब मैं इस वनमें आया हूँ तो इस माया का कारण भी जानलूँगा, हे क्रोष्टुकि! यह बात अवीक्षित अपने चित्त में विचारकर शीघ्रता से उस कन्या के समीप पहुँचे तो देखा कि-एक सुन्दर कन्या सब भूषणों से भूषित, दृढ केश असुर के हाथ में ग्रसित होकर त्राहि २ कर खड़ी रोरही है, अवीक्षित ने कहा कि—हे सुन्दरी! तुम मत डरो और दनु पुत्र से कहा कि—तुम मारे जाओगे क्यों कि महाराज करन्धम के राज्य में कोई दुष्ट नहीं रहसकता है, जिन महाराज करन्धम के प्रताप से पृथ्वी के सम्पूर्ण राजा लोग नम्र होकर रहते हैं उन्हीं महाराज का मैं पुत्र हूँ,मुझको धनुषबाण हाथ में लिये हुए देखकर यह सुन्दरी बारम्बार कहती है कि-मुझको यह असुर हरण करता है मेरी रक्षा कीजिये मैं महाराज करन्धम की पतोहू और अवी-क्षितकी भार्या हूँ मुझको इस वनमें अनाथ जानकर हरण करता है ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रोष्टुकि! राजकुमार अवीक्षित इतना कहकर उस कन्या की बातको अपने चित्तमें शोचने लगे कि—किसप्रकार यह कन्या मेरी भार्या और महाराज करन्धम की पतोहू हुई, फिर यह भी शोचा कि—यह सब कारण पीछे समझलूँगा परन्तु इसकन्या को दुष्ट से छुटालूँ तो अच्छा है क्योंकि आर्त्तजनों की रक्षा करने के लिये क्षत्रिय लोग शस्त्र धारण करते हैं यहबात अपने चित्त में विचारकर उस दुष्ट दानव से बोले कि--तू अपने प्राण बचाकर घर को भागजा इस कन्याको छोड़दे नहीं तो माराजायगा, यह बात अवीक्षित से सुन

फर दृढकेश दानव महादण्ड उठाकर राजकुमार की ओर दौड़ा तब अवीक्षित उस दानव के ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे, यद्यपि वह दानव बाणोंके पिंजर में घिरगया था परन्तु तो भी मतवाला होकर जिस दण्डमें उसके सैकड़ोंबाण लिपटेहुए थे उस दण्ड को राजकुमारपर चलाया अवीक्षित ने उस दण्डको अपने बाणों से काटडाला तब वह दानव उससमय एक वृक्ष उखाड़कर रणमें खड़ा होगया और उस वृक्षको अवीक्षित के मारा उस को भी अवीक्षितने काटकर टुकड़े२ कर दिया, तदनन्तर उस दानवने राजकुमार के ऊपर शिला उठाकर मारनाचाहा वह शिला भी उस दानवकी निर्बलता से वृथा होकर गिरपड़ी, इसीप्रकार और२ शस्त्र उस दानव ने कुपित होकर राज कुमार अवीक्षितपर चलाये उन सबशस्त्रों को अवीक्षित ने खेलकी समान काट डाले, जब दण्ड इत्यादि सब शस्त्र उसके कटगए तब वह दानव महाक्रोध करके मुष्टिका उठाकर राजकुमार की ओर दौड़ा, आते ही उस दानव का शिर राजकुमार अवीक्षित ने बेतके पत्रसे काट कर पृथ्वीपर गिरादिया, जब वह दुष्ट दानव मरगया तब सब देवताओं ने आकाश से अच्छाकिया २ ऐसा कहकर राजकुमार की बहुत प्रशंसा करी और कहा कि—हे राजकुमार ! वर माँगो तब राजकुमार ने महापराक्रमी पुत्र पिता की इच्छानुसार माँगा तब देवताओंने कहा कि-हे अनघ! जो कन्या तुम ने दानव से छुटाई है इसी कन्या से तुम्हारे महापराक्रमी चक्रवर्त्ती पुत्र उत्पन्न होगा यह सुनकर अवीक्षित बोले कि-संग्राम में बहुत से राजाओं से पराजित होकर मैंने स्त्रीग्रहण करना छोड़दिया है परन्तु पिताके सत्यपाश में बँधकर मैं आपसे पुत्र माँगता हूं, और राजा विशालकी कन्या मुझे अपना पति बनाना चाहती थी परन्तु रण में पराजित होने से लज्जित होकर मैंने उसे ग्रहण नहींकरा और उस कन्याने भी मुझे छोड़कर दूसरा पति नहींकरा अब मैं उस विशालकी कन्या को छोड़कर दूसरे किसी राजाकी स्त्रीको क्योंकर ग्रहण करूंगा. देवताओंने कहा कि--हे राजकुमार ! यही सुन्दरी राजा विशाल की कन्या तुम्हारी भार्या है, तुम्हारे ही निमित्त तप करती थी और जिसे तुम सदा चाहते थे, इसी कन्याके तुम्हारे संयोग से पुत्र उत्पन्न होगा, वह वीर पुत्र सातों द्वीपका राजा होगा और सहस्रों यज्ञ करैगा ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रोष्टुकि ! यह बात राजकुमार अवीक्षित से कहकर देवतालोग चलेगए तदनंतर राजकुमार अवीक्षित उस कन्यासे बोलेकि-हे सुन्दरी तुम क्यों डरती हो अपना वृत्तांत विस्तार

पूर्वक मुझसे कहो, कन्या बोली कि- ए राजपुत्र ! जब तुमने उससमय मुझको त्यागदिया था तब मैं अपने सब परिवार को त्यागकर इस वनमें चली आई, हे वीर ! जब इस वनमें तपस्या करने से मेरा शरीर दुर्बल होगया तब मैंने इस शरीर को त्यागना चाहा उससमय देवदूत ने मेरे समीप आकर मुझको समझाया कि-तुम अपना शरीर मत त्यागो, तुम्हारे एक पुत्र उत्पन्न होगा जो सब पृथ्वी का चक्रवर्ति राजा होगा और वह पुत्र असुरों को मारकर देवताओं का प्रसन्न करेगा, यह आज्ञा देवताओं की देवदूत सुनाकर चला गया और मैं अपना शरीर त्यागने से निवृत्त हुई तथा आपके मिलने की अभिलाषा मेरे चित्त में बनी रही फिर हे महाभाग ! एकदिन प्रातःकाल में स्नान करने के लिये गंगाकुण्ड पर गई जब उस कुण्ड में स्नान करनेलगी तो उस समय एक वृद्ध नाग मुझको पकड़कर रसातल में खैंचकर लेगया जहाँ नागों का नगर है फिर उस नगर में सहस्रों नाग, नागपत्नी और नागकुमार मेरे पास आकर मेरे स्तुति और पूजन करने लगे फिर उन नाग और नागपत्नियों ने मुझ से कहा कि-आप हम सबोंपर प्रसन्न हूजिये आपके जो पुत्र उत्पन्न होगा उस का अपराध नाग लोग करेंगे इस लिये हम लोग आपकी स्तुति करते हैं और कहते हैं कि— जब आपका पुत्र नागों को मारने के लिये उपस्थित हो तब उसको मारने से निवारण करदीजिये इसलिये हमलोग आपको यहां बुलाकर उस दिन की क्षमा के लिये आज प्रसन्न करते हैं, नागों की यह बात सुनकर मैंने कहा कि बहुत अच्छा मैं निवृत्त करदूंगी, मेरे इतना कहने पर नाग और नागपत्नियों ने उत्तम २ भूषणों और सुगन्धित पुष्पोंसे तथा उत्तम२ वस्त्रों से मुझको भूषित और सुशोभित कर दिया फिर नागलोग इस लोकमें मुझको पहुंचागए और मैं जैसी पहिले सुन्दरी और कांतिमान् थी वैसीही होगई उस समय मुझको सब प्रकार से शोभित देखकर इस दुर्मति दृढकेश ने हरण करनेकी इच्छासे मुझको पकड़लिया परंतु हे राजपुत्र ! उसने आपका बल और पराक्रम देखकर मुझको छोड़दिया. अब हे महाबाहु ! प्रसन्न होकर मुझको ग्रहण कीजिये, आपके तुल्य इसलोक में कोई दूसरा राजकुमार नहींहै मैं सत्य कहतीहूं इति एकसौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त.

एकसौ सत्ताईसवाँ अध्याय

मार्कण्डेयजी बोले कि—हे क्रौष्टुकि ! यह बात विशालिनी कन्याकी सुनकर और किमिच्छक व्रत की प्रतिज्ञामें अपने पिता का वचन स्मरण करके राजकुमार अवीक्षित अनुरागपूर्वक उस विशालिनी कन्या से, जो इनके लिये सम्पूर्ण भोग

विलास त्याग करेहुए थी बोले कि-हे सुंदरी जब मैं शत्रुओं से पराजित हो गया था तब तुझको त्यागकरा था और अब शत्रुओं को जीता है तो फिर तू मुझे प्राप्त हुई अब तुझे ग्रहण करूँगा. कन्या ने कहा कि-हे राजकुमार ! इसी रमणीक वन में आप मेरा पाणिग्रहण कीजिये. क्योंकि—सकामा स्त्रीको सकामपुरुषका प्रसंग ही बहुत गुणदायक है. अवीक्षित ने कहा कि-हे सुन्दरी ! ऐसा ही होगा जिसमें तू प्रसन्न रहै, मेरा तेरा मिलाप होना ब्रह्माका ही लेख है नहीं तो मैं यहां किसप्रकार आता ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रोष्टुकि ! उसीसमय बहुतसी अप्सराओं और गन्धर्वगणों के साथ तब नाम एक गन्धर्व वहां आया और बोला कि--हे राजपुत्र ! यह कन्या मानिनी नाम करके मेरी ही कन्या है परन्तु अगस्त्यजी के शाप देने से राजा विशालकी कन्याहुई है पूर्वकाल में एकसमय सखियोंके साथ वनमें क्रीडा करनेगई थी, इससे कुछ अपराध होजाने पर अगस्त्यमुनि नेशाप दिया था कि-तू मनुष्य की कन्याहोगी.तदनंतर हम लोगों ने वहांजाकर कहा कि--हे मुनि!यह बाला है और अविचारिणी है जो आपका अपराधकरा, अब आप इसका अपराध क्षमाकरके प्रसन्नहूजिये.तब अगस्त्यमुनि ने हम सबोंके स्तुति करनेपर प्रसन्न होकर इसपर कृपा करके कहा कि-बाला समझ कर इसको मैंने थोडाही शापदिया है यह मिथ्या नहीं होगा. हे राजकुमार ! अगस्त्यजी के इसी शापके कारण यह मानिनी नाम मेरी कन्या अत्यंत सुन्दरी राजा विशाल के घर में उत्पन्नहुई है, इसीलिये मैं यहांपर आया हूं कि--आप इस राजकन्या को ग्रहण कीजिये इसी कन्यासे आपको चक्रवर्ती पुत्र प्राप्तहोगा.

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रोष्टुकि! यह बात गंधर्वकी सुनकर राजकुमार अवीक्षित ने पाणिग्रहण स्वीकार करके विधिपूर्वक विशालिनी को विवाहलिया उस विवाह में वहांपर तुम्बुरु ने होमकरा देवता और गंधर्वोंने गीत गाया, अप्सराओंने नृत्य करा, मेघोंने पुष्पोंकी वृष्टि करी और देवताओं ने बाजा बजाया. जो कि-सम्पूर्ण पृथ्वीकी रक्षाके निमित्त इस राजकुमार और राजकन्याका विवाह हुआ है इसलिये यह सब मङ्गल उससमय होतेहुए.मार्कण्डेयजी बोलेकि हे मुनि!तदनंतर उसी महात्मागंधर्वके साथ यह कन्या और राजकुमार अवीक्षित अपने परिवार सहित गन्धर्वलोकमें चलेगए, वहाँ जाकर वह राजकुमार अवीक्षित उस मानिनी के साथ विहार करने लगे और वह कन्या भी अवीक्षित के साथ भोगसम्पत्ति युक्त होकर हर्षित हुई, वह राजकुमार अवीक्षित वहीं अत्यंत रमणीक वाटिका

ओं में और कभी पर्वतपर जाकर उस सुन्दरी के साथ क्रीड़ा करते थे, कभी हंस सारस संयुक्तशोभित नदी के तटपर, कभी घरमें कभी अट्टालिकाओं के ऊपर तथा अन्य २ रमणीय स्थानों में भी जाकर राजकन्या सहित क्रीड़ा करते थे. जिन२ स्थानों में यह जाते थे वहाँपर वस्त्र, चंदन और पान इत्यादि उत्तम २ भोगवस्तु सब मुनि, गंधर्व और किन्नर इनके लिये पहुँचाते थे, तदनंतर उसी भामिनी कन्या के साथ दुर्लभ गन्धर्वलोक में क्रीड़ा करतेहुए राजकुमार अवीक्षित के उसी भामिनी स्त्री के गर्भ से पुत्र उत्पन्न हुआ, उस महाबली पुत्रके उत्पन्न होनेहर गंधर्वलोंगो को अति आनन्द हुआ क्योंकि गंधर्व लोग उस सुपुत्र से अपना काम सिद्धकरना चाहते थे उनमें से किसीने गानकरा, किसी ने मृदंगबजाया औरकोई वेणु तथा कोई वीणा बजाते थे, अप्सराओंने नृत्यकरा और मेघोंने मधुर शब्द सेगरजकर पुष्पों की वर्षाकरी इस प्रकार उस उत्सव से आनन्द हुआ तदनन्तर नय नाम गंधर्वने तुम्बुरु मुनि को बुलाकर उस पुत्रका जातकर्म करवाया और इस महा उत्सव में देवता, ऋषिलोग, पाताल से नागेन्द्र शेष जी, वासुकी और तक्षक आये, हे द्विजोत्तम देवता, असुर, यक्ष और गुह्यक लोगों में जो प्रधान थे वह सब तथा वायु भी इस महाउत्सव में आये, उससमय देवता, दानव, नाग और मुनिलोगों के आने से सम्पूर्ण गंधर्वलोक भरगया तदनंतर तुम्बुरु मुनिने उस पुत्रका जातकर्म करके स्तुति पूर्वक स्वस्त्ययन किया और कहा कि—हे पुत्र ! तुम चक्रवर्त्ती, महापराक्रमी, महाबाहु और महाबली होकर बहुत कालतक सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य करोगे. हे पुत्र ! इन्द्र इत्यादि सब राजा और सप्तऋषि लोग तुम्हारा कल्याण करें तथा तुम्हारा पराक्रम शत्रुओं का नाश करनेवाला हो तुम्हारा कल्याण करने के लिये पूर्वकी वायु धूलिरहित वहा करै और तुम्हारे सदा हर्षित करनेके लिये दक्षिण की वायु विमल होकर वहै, पश्चिमकी वायु तुमको उत्तम वीर्य दे और उत्तरकी वायु वहकर तुमको बल पराक्रम देवै, इसप्रकार तुम्बुरु मुनिके आशीर्वाद देने के उपरान्त यह आकाशवाणी हुई कि—जो इस बालकको गुरू तुम्बुरुमुनि ने मरुत्त वचन कहा है इसलिये यह बालक मरुत्तनाम से पृथ्वीमें विख्यातहोगा और पृथ्वीके सम्पूर्णराजा लोग इस बालक के आज्ञावर्त्ती होंगे, फिर यह बालक सब राजाओं के मस्तकपर बैठनेयोग्य होगा और चक्रवर्त्ती महाराजा होगा, सातों द्वीपकी पृथ्वी को राजाओं से छीनकर अकण्टक राज्य भोग करैगा यज्ञ करनेवाले सब राजाओं में प्रधान होगा, सब राजाओं से इसकी वीरता और पराक्रम अधिक होगा. हे क्रोष्टुकि !

इसप्रकार आकाश के देवताओं में से किसी देवता के यह वचन सुनकर सब गंधर्वलोग और उस बालक के माता पिता बहुत हर्षित होतेहुए. इति एकसौ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥

एकसौ अट्ठाईसवाँ अध्याय

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रौष्टुकि ! तदनंतर वह राजकुमार अवीक्षित अपने प्रिय पुत्रको लेकर गंधर्वों के साथ अपने नगर में आए, फिर अपने पिताके स्थान में जाकर उनके चरणों को वन्दना करी और उस राजकन्या विशालिनी ने भी लज्जायुक्त होकर अपने श्वसुर के चरणों को वन्दना करी, तदनंतर अवीक्षित उस अपने अज्ञान बालक को लिये, महाराज करन्धम जो बहुतसे राजाओं के मध्य में धर्मासनपर बैठेहुए थे उनसे जाकर बोले कि–हे तात! पूर्वकाल में मेरी माता के किमिच्छक व्रत में आपसे जो मैंने प्रतिज्ञा करी थी वह सिद्धहुई अब आप अपनी गोद में बैठालकर इस अपने पौत्र का मुख देखलीजिये, इस प्रकार कहकर उस बालक को पिता की गोद में रखकर जोर वृत्तांत उस कन्या का और उस पुत्र के जन्म का था सब कह सुनाया, उस सम्पूर्ण वृत्तांत को सुनकर महाराज करन्धमने उस पौत्र को अपने हृदय से लगा या और उस आनन्द के जल से आकुल नेत्र होकर वारम्वार अपनेभाग्यको सराहने लगे कि–मैं धन्य हूँ, तदनंतर महाराज करन्धम ने जितने गंधर्वलोग वहाँ आये थे उन सबको हर्ष संयुक्त अर्घ्य इत्यादि से पूजन करके सन्मान किया. हे महामुनि ! उस नगर में घर २ आनन्द होरहा था, और सब कहते थे कि–हम सबों के बड़े भाग्य हैं कि-जो हम सबके नाथ महाराज के पुत्र उत्पन्न हुआ, उस हर्षयुक्त नगर में विलासिनी अप्सरायें गीत गाकर और बाजा बजाकर अत्युत्तम नृत्य करती थीं और महाराज करन्धम ने भी हर्षित चित्त होकर उत्तम ब्राह्मणों को बहुत रत्न, भूषण, गौ, धन और वस्त्रादिक दिया तदनंतर शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की समान वह बालक नित्यप्रति बढ़ने लगा और पितरों से प्रीति करने लगा, तथा मनुष्यों में श्रेष्ठ हुआ, हे मुनि ! पहिले उस बालक ने आचार्यों से वेद को पढ़ा फिर सब शास्त्रों को तदनंतर धनुर्वेद को पढ़ा, जब उस वीर ने खड्ग और धनुष के कर्म तथा अस्त्रों में प्रवृत्त होनेकी इच्छाकरी तब विनयके साथ शिर झुकाकर और गुरुकी प्रीति में परायण होकर शुक्राचार्य से अस्त्रविद्या पढ़ी तब वह बालक सब अस्त्रोंका गृहीता वेदोंमें पण्डित और धनुर्वेद का ज्ञाता किंतु सब विद्याओंमें निपुण और चतुर हुआ, राजा विशाल भी अपनी कन्या का वृत्तांत और उसके पुत्रकी योग्यता सुनकर बहुत हर्षित हुए. तदनंतर महा-

राजा करन्धम ने पौत्र को देखकर अपने मनोरथ को प्राप्त होकर बहुत यज्ञ करके याचकों को बहुतकुछ दिया और सब पृथ्वीका पालन करा तथा अपने बल और बुद्धिसे शत्रुओं को जीता, तदनंतर कुछकाल व्यतीत होनेपर महाराज करन्धम ने वन में तपस्या करनेको जानेकी इच्छासे अवीक्षित से कहा कि-हे पुत्र! अब मैं वृद्धहुआ वनवास करूँगा तुम इस राज्य को ग्रहण करो, मैं अब कृतकृत्य होचुका हूँ, अब केवल राज्यतिलक तुम को देना यही एक कार्य शेष है और सब करचुका इसलिये यह निष्कण्टक राज्य मैं तुमको देता हूँ ग्रहण करो, इसप्रकार कहनेपर राजकुमार अवीक्षित विनययुक्त नम्र होकर अपने वनवासाभिलाषी पिता से बोले कि-हे तात! मैं पृथ्वीपालन नहीं करूँगा मुझे अत्यंत लज्जा मालूम होती है, इसलिये यह राज्य करनेके लिये किसी दूसरे को आज्ञा दीजिये, जब मुझे समर में जीतकर राजाओं ने बाँधलिया था तब आप जाकर छुटालाये थे मैं अपने बलसे नहीं छूटा था इससे मुझे पौरुष नहीं है जो पुरुष होते हैं वही पृथ्वीपालन करते हैं, जब कि-मैं अपनी आत्मा के पालन करने में कादर हूँ तो फिर पृथ्वीपालन किसप्रकार करूँगा इसलिये यह राज्य दूसरे को देदीजिये मन्त्रीलोग धर्मात्मा पुरुष उसी को कहते हैं जो दूसरे के अधीन न हो और किसी का अपमान न सहै, आपने अपने पुत्र की ममता करके मेरा बन्धन छुटाया है मैं तो वही स्त्रीधर्मा हूँ तो जी को राज्य करनेका अधिकार नहीं है इतनी बातें अवीक्षित की सुनकर उनके पिता बोले कि-पिता से पुत्र भिन्न नहीं है दोनो एक हैं तुमको किसीदूसरे ने नहीं छुटाया है मैंनेही तुमको छुटाया है, यह सुनकर अवीक्षित बोले कि-हे राजन्! आपने जो मुझको छुटाया इसीलिये मुझको लज्जा बहुत है, हे पिता! जो पुरुष अपने पिता के संचय करेहुए धन से जीवन व्यतीत करते हैं, पिता के नाम से पहिचाने जाते हैं और पिताके बलसे कष्ट से छूटते हैं, ऐसे पुरुष मेरे कुलमें न होवैं, जो लोग अपना कमाया हुआ धन भोगते हैं, अपने नाम से विख्यात होते हैं और अपने बलसे अपना कष्ट छुटाते हैं उनलोगों की जो गति है वही मैं चाहता हूँ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रौष्टुकि! जब इसप्रकार अवीक्षित ने अपने पिता को बहुत समझाया और उनकी आज्ञा को न माना तब महाराज करन्धम ने अपने पौत्र मरुत्त को राज्यदिया, मरुत्त ने पिताकी आज्ञानुसार पितामह का दिया हुआ राज्य पाकर मित्रवर्गों को आनंद देतेहुए बहुत अच्छीतरह से राज्य करा, तदनंतर महाराज करन्धम अपनी वीरा महारानी को साथ लेकर वचन, शरीर

और ममको निवृत्त करके तप करने को वन में चलेगए. उस वन में सहस्रवर्षतक तपस्या करके समय आनेपर शरीर को त्याग करके इन्द्रलोक को चलेगए और महाराज की भार्या महारानी वीरा ने जटाधारण करके सौवर्षतक और भी तपस्या करी, फिर अपने महात्मा स्वामी के लोकमें जानेकी इच्छाकरके फल मूल आहार करतीहुई भार्गव मुनिके आश्रम पर जाकर ब्राह्मणियों के मध्य में रहकर और ब्राह्मणों की सेवा में प्रवृत्त रहकर तपस्या करी । इति एकसौ अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥

एकसौ उन्तीसवाँ अध्याय

इतनी कथा सुनकर क्रोष्टुकि ने मार्कण्डेयमुनि से बूझा कि—हे भगवन्! आप ने महाराज करन्धम और राजकुमार अवीक्षित का चरित्र तो विस्तारपूर्वक वर्णन किया परंतु अब मैं महात्मा महाराज मरुत्त की कथा सुनना चाहता हूं कहिये, मैंने सुना है महाराज मरुत्त बड़े कीर्त्तिमान् हुए थे और उन महाभाग चक्रवर्त्ती, बड़े शूर, तेजस्वी, महाबुद्धिमान, धर्मदृष्टि, और धर्मकर्त्ता ने सम्यक् प्रकारसे पृथ्वी का पालनकरा था ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि—हे क्रोष्टुकि ! उस मरुत्तने अपने पितामहका दियाहुआ राज्य ग्रहण करके औरस पुत्रके समान धर्मयुक्त प्रजाका पालन करा, उन महाराज मरुत्तने ऋत्विक् पुरोहित के आशीर्वाद से हर्षपूर्वक बहुत से यज्ञ करके ब्राह्मणों को दक्षिणा दी, उन महाराज मरुत का राज्य सातों द्वीपों में अकण्टक था और उन महाराज मरुत्त की पाताल इत्यादि सब जल थलों में गति (पहुँच) थी, उन्होंने सब से धन लेकर यथोचित क्रियाओं में तत्पर होकर महायज्ञ करके इन्द्रादिक देवताओं का पूजन करा, उन के राज्य में चारों वर्ण अपने २ वर्णाश्रम धर्म में प्रवृत्त रहकर महाराज मरुत से धन लेकर यज्ञादिक क्रिया करते थे, हे द्विजोत्तम ! उन महात्मा मरुत्तने सम्यक्प्रकार से प्रजा का पालन करा और इन्द्रादिक सम्पूर्ण देवताओं को अपने ऐश्वर्य के सामने तुच्छ करदिया सम्पूर्ण प्रजाओं को धन इत्यादि से अपने समान करदिया अन्तर इतना ही था कि-वह लोग राजा नहीं कहलाते थे, उन महाराज मरुत ने यज्ञ करके इन्द्र को भी हीन करदिया, महाराज मरुत के यज्ञ में ऋत्विक् अंगिरामुनि के पुत्र बृहस्पति के भाई तपोनिधि महात्मा संवर्तमुनि हुए थे, एक समय वह महाराज मरुत मुञ्जवान् नाम पर्वत जो सुवर्ण का है और जिसपर देवतालोग रहते हैं उस पर्वत का शृंग तोड़कर अपने यज्ञ में ले आये थे, उसीसे स्वर्णमयी यज्ञभूमिभाग इत्यादि बनवाया और उसी से यज्ञकी भूमि और मन्दिर बनवाये, मरुतके इन

चरित्रों को देखकर ऋषिलोग इसप्रकार गान करते थे कि-जिसप्रकार ब्राह्मण लोग वेदपाठ करते हैं, महाराज मरुतके समान यज्ञ करनेवाला कोई दूसरा इस पृथ्वीपर नहीं हुआ कि-जिसकी यज्ञभूमि और मन्दिर आदि सब सुवर्ण के बने हों, जिसके यज्ञ में सोमपान करके इंद्र उन्मत्त होगए और ब्राह्मणों की दक्षिणा देख कर देवताओं सहित लज्जित होरहे थे और ब्राह्मणलोग अयाचक होगए थे, जिसप्रकार मरुतके यज्ञ में ब्राह्मणों को दक्षिणा दीगई वैसी किसी राजा के यज्ञ में नहीं दीगई कि--जिस दानकरके ब्राह्मणोंका घर रत्नोंसे भरगया और सुवर्ण को उसी यज्ञस्थान में सब ब्राह्मणों ने छोड़दिया, उस यज्ञ में मन्दिर आदि जो सुवर्णके बने थे उन सब यज्ञस्थानों का सुवर्ण और अन्य वर्णके मनुष्य उठाकर लेआये जिससे वह धनवान् होगए और अनेक प्रकार के दान पुण्य किये ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रौष्टुकि, इसप्रकार उन महाराज मरुत को सम्यक्प्रकार प्रजापालन करतेहुए कुछदिन व्यतीत हुए तो एकसमय एक तपस्वी आकर उनसे बोला कि--हे महाराज ! तुम्हारे पिता की माता ने तापसमण्डली को सर्पोंके विषसे व्याकुल देखकर मेरे द्वारा जो कुछ तुमसे कहा है वह सुनो कि तुम्हारे पितामह महाराज करन्धम सम्यक्प्रकार से प्रजापालन करके स्वर्गको चलेगए और मैं और्व्वजी के आश्रमपर रहकर तप करती हूं और हे राजन् ! यह भी कहा है कि--मरुतके राज्य करने से उनके पितामह समेत उनके सब पितरों को मैं देखती हूं कि--परलोक में सबकोई विकल होरहे हैं, आप निश्चय करके भोग विलास में प्रमत्त और इन्द्रियों के अधीन होकर सदा भोग में आसक्त रहते हैं, आप अन्धे होगए हैं क्योंकि--साधु और दुष्टको नहीं पहिचानते हैं. पाताललोक से नागोंने आकर सात मुनिकुमारों को काटखाया है और सम्पूर्ण जलाशयों को विषसे दूषित कररक्खा है, जो कि मुनिलोग बहुत दिनोंसे नागबलि देते हैं उसी अपराधके कारण नागोंने मुनियों के किये हुए होममें और हविष्यान्नों में पसीना मूत्र और विष्ठा डालकर सबको दूषित कर दियाहै यद्यपि मुनिलोग सर्पों को भस्म करनेकी सामर्थ्य रखतेहैं परन्तु उनलोगों को उनके भस्म करनेका अधिकार नहीं है वह अधिकार आपही को है। हे नृप ! राजकुमार लोगों को उसी समय तक सुख होता है जबतक उनको राजतिलक नहीं होता, राजतिलक होजाने पर राजा को यह जानना चाहिये कि--कौन मेरा शत्रु है, कौन मेरा मित्र है, मेरे शत्रुओं के पास कितनी सेना है, मैं कौन हूँ और कितने राजालोग मेरे सहायक

हैं, और मेरे नगर में कौन सुखी है, कौन विरक्त है और इन लोगों में कौन कैसा मनुष्य है, कौन सम्यक्प्रकार से विषयभोग करता है, कौन धर्म कर्म में प्रवृत्त है, कौन मूढ़ है, कौन दण्ड करने योग्य है, कौन पालन करने योग्य है और किस को निकालदेना चाहिये, इन बातों का देश और काल विचारकर प्रजाओं के संग में भेद कराकर दूसरे किसी से अज्ञानी प्रजाओं को दण्ड करा कर न्यायपूर्वक सत्यमार्ग में प्रवृत्त करना चाहिये और राज्य में प्रजाओं में खबर लेने के लिये दूत भेजना चाहिये, मन्त्री आदि खबर लेने के लिये बुद्धिमान् मनुष्य को नियत करना चाहिये और इन सब कामों में राजा को चित्त लगाना चाहिये, राजा को भोगों में आसक्त होकर उन्मत्त नहीं रहना चाहिये, हे महाराज! राजा लोगों का शरीर धारण करना भोग के निमित्त नहीं है, पृथ्वी का राजा होने से राजा को अपने धर्म और पृथ्वीपालन करने में बहुत क्लेश होता है परन्तु उनको स्वर्ग में बहुत सुख प्राप्त होता है और वह सुख सदा बना रहता है, इससे आपको चाहिये कि—भोगों को त्यागकरके इन बातों को समझो चाहिये, पृथ्वी पालन के लिये आपको क्लेश उठाना चाहिये क्योंकि--आपके राज्य में आपकी उन्मत्तता से ऋषिलोगों को कष्ट हुआ है हे महाराज आप राज्य की खबर लेने में अन्धे हो, आप सर्पों के काटने और मुनिपुत्रों के मरने से अत्यंत अचेत हैं अब मैं कहांतक कहूँ यही कहती हूँ कि—उन दुष्टों को दण्ड दीजिये हे महाराज! अच्छे लोगों का पालन कीजिये जिससे उन लोगों के करेहुए धर्म में से छठा भाग आपको भी मिलै और जो आप उनलोगों की रक्षा न कीजियेगा तो वह लोग विनय छोड़कर दुष्ट होजायेंगे और वह दुष्ट जो २ पाप करेंगे वह सब पाप आपको प्राप्त होगा इसमें कुछ सन्देह नहीं है, अब इसमें जैसा आपका चित्त चाहै वैसा कीजिये आपकी पितामही (दादी) ने जो कुछ मुझको आप से कहदेने को कहा था वह मैंने आपसे कहदिया अब आपकी इच्छा है, इति एकसौ उन्तीसवां अध्याय समाप्त ॥

एकसौ तीसवाँ अध्याय

मार्कण्डेयमुनि बोले कि-हे क्रोष्टुकि! यह सब बातें तपस्वी के मुखसे सुनकर महाराज मरुत लज्जित होकर बोले कि हे तपस्वी जो मुझ ऐसा राजा राज्य कार्य से अचेत है तो उसको धिक्कार है यह कहकर और लम्बी श्वास लेकर धनुषबाण उठालिया फिर वहां से चल कर और्व्वमुनि के आश्रम में पहुँचकर अपनी पितामही को शिर झुकाकर प्रणाम करा और तपस्वी लोगोंको भी

न्यायपूर्वक प्रणाम करा, तपस्वी लोगों ने इनको आशीर्वाद देकर इनकी स्तुति करी तदनंतर महाराज मरुत ने वहांपर सात तपस्वीकुमारों को सर्पके काटने से मराहुआ देखकर बारम्बार अपने को धिक्कार दिया और कहा कि--अब मैं अपने बल और पराक्रम से ब्राह्मण के द्रोही दुष्ट सर्पों की जो दशा मैं करता हूं उसको देवता, असुर, मनुष्य और सब जगत् देखै, हे क्रौष्टुकि ! इसप्रकार क्रोध से कहकर महाराज मरुत ने पाताल और पृथ्वी में विचरनेवाले नागों को नाश करने के लिये सम्वर्त नाम अस्त्र उठा-लिया, महाराज मरुत् के अस्त्र उठाते ही उस अस्त्र के तेज से शीघ्र ही नागलोक में अग्नि लगगई यद्यपि नागलोगों ने उस अग्नि के बुझाने का बहुत यत्न करा परन्तु वह अग्नि नहीं बुझसकी किन्तु चारों ओर से नागलोक जलने लगा, उस समय अस्त्र के तेज के भय से सब सर्पलोग घबड़ाकर हाय तात हाय माता हाय वत्स कह कहकर चिल्लानेलगे, उस अग्नि से किसी सर्प की पूंछ और किसी का फण जलगया तब भूषण और वस्त्र छोड़कर नंगे होकर अपने पुत्र और स्त्रियों को साथ लेकर पाताल से निकलकर महाराज मरुत की माता भामिनी की शरण में प्राप्त हुए जिसने अपने पुत्र से रक्षा कराने का वचन सब नागोंको दिया था, इसीकारण भामिनी की शरण में प्राप्त होकर भयसे आतुर सब नागलोग यह वचन बोले कि-आपने जो वचन पहिले हम लोगों को दियाथा उसको स्मरण कीजिये अर्थात् जब हम लोगों ने आपको रसातल में लेजाकर आपकी स्तुति और पूजाकरी थी तथा अपना सब वृत्तांत कहा था तब आपने अपने पुत्र से अभय रहने का हम लोगों को वचन दिया था अब आपके उस वचन को पूरा करने का यही समय है हम सबकी रक्षा कीजिये,हे महारानी अब आप अपने पुत्र मरुत को समझाइये और हम सबके प्राण बचाइये उनके अस्त्र की अग्नि से सब नागलोक भस्म हुआजाता है, आपके पुत्र हमलोगों को भस्म करते हैं इससमय हमलोगों को सिवाय आपके और कोई बचानेवाला नहीं है, हे महारानी ! हम लोगोंपर कृपा कीजिये ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि--हे क्रौष्टुकि यह वचन नागों का सुनकर और उन सबोंको जो वचन पहिले दिया था उस को स्मरण करके महारानी भामिनी अपने स्वामी अवीक्षित से बोलीं कि--हे स्वामी ! पाताल में नागों के मांगने से जो वचन मैं उन सबको देआई हूँ यह पहिले भी आपसे कहचुकी हूं कि--मेरे पुत्रसे उन लोगोंको भय नहीं होगा अब वही नागलोग मेरे पुत्र के तेजसे दग्धहोने के भय से मेरी शरण में आये हैं क्योंकि

मैंने उनलोगों से कहा था कि—तुम लोग अभय रहो, जो लोग मेरी शरणमें हैं वह आपकी भी शरण में हैं क्यों कि—मैं भी तो आपही की शरणमें हूँ आपका और मेरा धर्माचरण एक ही है अब आप मरुत को निवारण करदीजिये आपका कहना वह मानेंगे और आपके कहनेपर जब मैं भी कहूँगी तो अवश्य उनका क्रोध शान्त होजायगा अवीक्षित ने कहा कि—नागों का अपराध देखकर मरुत को क्रोध हुआ है वह क्रोध मना करने से शान्त नहीं होगा इस बातपर नागलोग बोले कि—हे महाराज! हमलोग आपकी शरण में आये हैं, आर्त्तजन की रक्षा करने के लिये ही क्षत्रियलोग शस्त्र धारण करते हैं॥

मार्कण्डेयजी बोले कि—हे क्रोष्टुकि! यह बातें सर्पोंकी और अपनी स्त्री की सुनकर अवीक्षित बोले कि—हे भद्रे! मैं अभी जाकर सर्पोंकी रक्षा के लिये मरुत से कहता हूं, धर्म भी इसीमें है कि—जो कोई अपनी शरण में आवै उसको त्याग नहीं करै, यदि राजा मरुत मेरे कहने से अपने सम्वर्त्तक अस्त्रको नहीं खैंचलेंगे तो मैं अपने अस्त्र से मरुतके अस्त्र को शान्त करदूँगा. हे क्रोष्टुकि! तदनंतर अवीक्षित धनुष लेकर अपनी स्त्री भामिनी सहित और्व्वमुनि के आश्रम पर गए. इति एकसौ तीसवां अध्यायसमाप्त.

एकसौ इकतीसवाँ अध्याय

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि—हे क्रोष्टुकि! महाराज मरुत को धनुष लियेहुए, ज्वाला से सब दिशाओं को व्याप्त करते हुए, उनके उग्रधन्वा और अस्त्रको महा अग्नि उगलतेहुए तथा पृथ्वी को प्रकाशित करते हुए पातालपर्यंत व्याप्त,—दुःसह भयानक और महाराज का मुख अत्यन्त क्रोध से टेढ़ी भृकुटी के साथ देखकर अवीक्षित महाराज मरुत से बोले कि—हे पुत्र! क्रोध शान्त करो अपना अस्त्र खैंचलो यह बात सुनकर और पिता को देखकर महाराज मरुत कईबार बोले परन्तु शीघ्रता के साथ बोलने के कारण कोई बात अवीक्षित की समझ में नहीं आई फिर धनुप लिये हुए अपने पिता और माता के चरणों को प्रणाम करके अभिमानयुक्त बोले कि—हे पिता! इन सर्पों ने मेरा बड़ा अपराध करा है मेरे राज्य में मेरे पराक्रम का कुछ भय न करके मुनियों के आश्रम में आकर सात मुनिकुमारों को सर्पों ने काटखाया है इस के सिवाय इन आश्रमवासी ऋषियों के होम करेहुए हविष्यों को इन दुष्टों ने मूत्र इत्यादि से दूषित करदिया है और सब जलाशयों को अपने विष से दूषित करदिया है इन नागों को भस्म करदेने का यही कारण है हे पिता! इस में अब कुछ न बोलिये और इन ब्रह्मघाती नागों

को मारने से मुझे मना न कीजिये यह सुनकर अवीक्षित बोले कि—जब नागों के डसने से सब ब्राह्मण नर्क में जायँगे तो तुमको उननागों के मारने से क्या फल मिलेगा, ऐसा उपाय करना चाहिये कि—जिससे यह सब मुनिकुमार जीवित होजायँ मेरा कहना मानो अब अपना अस्त्र खैंच लो यह सुनकर महाराज मरुत बोले कि-मैं भी चाहैं नरक में जाऊँ परन्तु इन दुष्ट अपराधी नागों का अपराध मैं क्षमा नहीं करसक्ता। और इनके पकड़ने का भी यत्न नहीं करता हूँ इन सबों को अवश्य मारूँगा आप मुझको मना न कीजिये, अवीक्षित ने कहा कि—यह नागलोग मुझको बड़ा समझकर मेरी शरण में आये हैं इससे अब तुम अपना अस्त्र खैंचलो वृथा कोप क्यों करते हो, मरुत ने कहा कि-मैं इनै दुष्ट अपराधियों का अपराध क्षमा नहीं करूँगा अपना धर्म छोड़कर आपकी बात किसप्रकार मानूँ, राजा का यही धर्म है कि-दुष्ट को दण्ड देवै और साधु का पालन करै जो राजा ऐसा करता है उसको पुण्यलोक प्राप्त होता है और जो ऐसा नहीं करता है वह नरक में जाता है॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि—हे क्रोष्टुकि जब इसप्रकार राजा अवीक्षित के समझानेपर महाराज मरुत्त ने अपना अस्त्र नहीं खैंचा तब फिर अवीक्षित बोले कि यदि तुम मेरे मना करनेपर भी मेरीशरण में आयेहुए नागोंको मारतेहो तो मैं तुम्हारे लिये भी ऐसा उपाय करूँगा कि—जिससे नागलोग न मरैं,मैं भी अस्त्रविद्या जानता हूँ एक तुम्हीं अस्त्रधारी पृथ्वीपर नहीं हो हेदुष्ट!हमारे आगे तेरा कितना बल है जो इतना अभिमान करता है, इसी वार्त्तालाप में अवीक्षित के दोनों नेत्र ताम्रसदृश लाल होगए और शीघ्रता से धनुष हाथ में लेकर कालास्त्र उठालिया फिर महाज्वालायुक्त अस्त्र के संहार करनेवाले उत्तम कालास्त्र को धनुषपर चढ़ालिया. हे विप्र! उससमय अवीक्षित के कालास्त्र उठानेपर सम्वर्त्तक अस्त्र से तप्त हुई सम्पूर्ण पृथ्वी समुद्र और पर्वतों सहित कांपउठी. मार्कण्डेयजी बोले कि हे द्विजोत्तम! अपने पिताको कालास्त्र उठायेहुए देखकर महाराज मरुत ऊँचे स्वर से बोले कि--मैंने दुष्ट लोगोंके मारने के लिये यह अस्त्र चलाया है आपके मारने के लिये नहीं चलाया है आप क्यों मुझको मारने के लिये कालास्त्र चलाते हैं मैं आपका पुत्र सदा आपकी आज्ञा मानता आया हूँ और सत्यधर्मकारी हूँ. हे महाभाग! मुझको प्रजाओं का पालन करना है आप ऐसा क्यों करते हैं मुझको मारने के लिये कालास्त्र क्यों उठाते हैं. अवीक्षित ने कहा कि—मैं शरण आयेहुए नागोंकी रक्षा करना

चाहता हूं और तुम उनके मारने से निवृत्त नहीं होते तो तुमभी जीते नहीं बचोगे, तुम पहिले मुझको अपने अस्त्र और बलसे मारकर फिर नागोंको मारो अथवा मैं तुमको कालास्त्र से मारकर नागों की रक्षा करूँ जो जो शत्रु भी शरण में आवै तो उसपर अनुग्रह करना चाहिये जो ऐसा न करै तो उसके जीनेपर धिक्कार है, मैं क्षत्रिय हूँ और यह सब नाग भयभीत होकर मेरी शरण में आये हैं और तुम इन सबको मारना चाहते हो तो मैं क्योंकर तुमको न मारूँ मरुत ने ने कहा कि-राजा को प्रजापालन करने में मित्र, भाई, पिता, अथवा गुरु जो कोई विघ्न करे उसको मारना उचित है हे पिता ! मैं इसी लिये नागों को मारता हूँ आप क्रोध न कीजिये मुझको अपना धर्म पालन करना है आपपर मेरा क्रोध नहीं है ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रोष्टुकि! राजा अवीक्षित और महाराज मरुत को आपसमें मरने और मारने में प्रवृत्त देखकर भार्गव आदि मुनिलोग उस जगह आकर खड़े होगए और कहने लगे कि-हे मरुत ! तुमको पिता के ऊपर अस्त्र नहीं चलाना चाहिये और अवीक्षित को भी समझाया कि-ऐसे विख्यातकीर्त्ति पुत्र को नहीं मारना चाहिये यह बात मुनियों से सुनकर मरुत बोले कि-हे मुनिलोगों ! मैं राजा हूँ मुझको साधुओं की रक्षा करना और दुष्टों को मारना उचित है यह नागलोग दुष्ट हैं इनको मैं मारता हूं तो भला आपही बतलाइये कि-इसमें मेरा क्या अपराध है, मरुत के इतनाकहनेपर अवीक्षित भी मुनिलोगों से बोले कि-हे मुनिलोगों! शरणमें आनेवालों की रक्षाकरना मुझको अवश्य है और यह मेरापुत्र उन शरणागतों को मारता है इसलिये मैं भी इसको मारना चाहता हूं इसमें मेराक्या अपराध है, राजा अवीक्षित और महाराज मरुत की यह बातें सुनकर ऋषिलोग बोले कि—यह सब नागलोग भय से चंचलनेत्र होकर कहते हैं कि—जो ब्राह्मणलोग नागों के काटने से मरगए हैं उनको हम अभी जिलाए देते हैं तो हे राजपुत्र ! आपलोग किस लिये परस्पर लड़ते हैं, अपने २ क्रोध को शान्त कीजिये और प्रसन्न हूजिये, आप दोनों राजपुत्र धर्मज्ञानी हैं परन्तु वृथा बात में प्रतिज्ञा करेहुए हैं ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रोष्टुकि ! उससमय अवीक्षित की माता महारानी वीरा भी वहां आकर कहनेलगीं कि—तुम्हारे पुत्र मरुत मेरे कहने से नागोंको मारनेपर उपस्थित हुए हैं, जो तुम निवारण करतेहो तो कुशल इसीमें है कि वह मरेहुए ब्राह्मणलोग जीवित होजावैं नहीं तो वह नागलोग जो तुम्हारीशरण

में हैं उनका भी बचना कठिन है, तद्-नन्तर भामिनी भी उसजगह आकर अपने पुत्र मरुत्त से बोली कि--इन नाग लोगों ने पाताल में मुझसे याचना करके तुम से क्षमा करानेका वचन लेलिया है इसलिये तुम्हारे पिताको मैं यहां लाई हूं, तुम लोगोंका युद्ध से निवृत्त होना अच्छा है यह कहकर वीरा से भामिनी बोली कि--मेरे स्वामी और पुत्रका अर्थात् तुम्हारे पुत्र और पौत्रका युद्ध से निवृत्त होजाना अच्छा है ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि--हे क्रोष्टुकि! तद्नंतर नाग लोगों ने मरेहुए ब्राह्मणों को दिव्य औषधियों का रस पिलाकर और विषसंहरण मंत्रसे फाड़कर जीवित कर दिया, तद्नंतर महाराज मरुत ने अपने माता पिताके चरणों के ऊपर शिर रखकर प्रणाम करा और अवीक्षित ने भी मरुत को प्रीतिपूर्वक हृदय से लगाकर यह कहा कि-हे पुत्र! तुम शत्रुओं के घमण्ड को तोड़नेवाले होगे और बहुत दिनतक पृथ्वी का पालन करोगे तथा पुत्र पौत्र के साथ बहुतदिनोंतक आनंदसे रहोगे और तुम्हारा कोई शत्रु नहीं रहैगा तद्नंतर ब्राह्मणों से और वीरा से आज्ञा लेकर महाराज मरुत, अवीक्षित और भामिनी रथपर चढ़कर अपने नगर में चलेआये फिर पतिव्रता वीरा धर्मात्माओं में श्रेष्ठ महातप करके अपने पति के लोक में पहुँच गई, महाराज मरुत धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन करने लगे और शत्रुओं को जीत कर भोगों को भोगनेलगे, विदर्भ की कन्या प्रभावती और सुवीरा की कन्या सौवीरी उनकी भार्या हुई, राजा केकय की कन्या सैरिन्ध्री, सिन्धुपति की कन्या वपुष्मती और चेदिराजा की कन्या सुशोभना भी उनकी भार्या हुई हे द्विज! उन स्त्रियों में महाराज मरुत से अठारह पुत्र उत्पन्न हुए उनमें सबसे बड़े नरिष्यन्त हुए, महाराज मरुत ऐसे पराक्रमी और बली हुए कि--जिनका सातों द्वीप में अखण्डराज्य हुआ, महाराज मरुत की समान दूसरा कोई राजा न हुआ न होगा वह महाराज सत्वविक्रम से युक्त राजाओं में ऋपि अमित पराक्रमी हुए, हेद्विजश्रेष्ठ! इन महात्मा मरुत के चरित्र और इनका जन्म सुनने से सब पापों का नाश होजाता है. इति एकसौ इकतीसवां अध्याय समाप्त ।

एकसौ बत्तीसवाँ अध्याय

क्रोष्टुकि बोले कि--हे भगवन्! आपने महाराज मरुत्त की सब कथा कही अब उनकी संतानकी कथा सुनने की इच्छा है अर्थात् उनकी सन्तति में जो राजालोग पराक्रमी हुए हैं उनकी कथा आप से सुनना चाहता हूं ॥

यह प्रश्न क्रोष्टुकि का सुनकर मार्कण्डेयजी बोले कि--हे क्रोष्टुकि! महाराज

मरुत्त के अठारहों पुत्रोंमें बड़े और प्रधान नरिष्यन्त थे, महाराज मरुत्त ने क्षत्रियों में पचासीहजार वर्षतक सम्पूर्ण पृथ्वीका पालन करा और धर्मपूर्वक बहुत बड़े २ यज्ञ करके वृद्ध होनेपर इसी बड़े पुत्र नरिष्यन्त को राजगद्दी दी, फिर आप एकाग्रचित्त हो वन में जाकर और महा तपस्या करके स्वर्ग पातालतक अपना यश फैलाकर स्वर्गलोक को चलेगए। तदनंतर उनके पुत्र नरिष्यन्त अपने पिता का और दूसरे राजाओं का कराहुआ चरित्र विचार करके, हमारे वंश में हमसे पहिले जो बलवान् और महात्मा लोग बहुतसे यज्ञ करके धर्मके साथ पृथ्वीका पालन करगए हैं, बहुत धन ब्राह्मणोंको दिया, संग्राम में पीछे हटनेवाले कोई नहीं हुए और उन महात्माओं के चरित्र अनुसरण करने की किसको सामर्थ्य है मैं चाहता हूं कि--जो २ यज्ञ आदि उन लोगोंने करे हैं वह सब मैं भी करूँ परंतु मुझसे नहीं होसक्ता क्या करूँ, धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन होय इस में राजा को बहुत यश होता है और जो राजा अधर्म के साथ राज्य करते हैं वह पापी राजा नरक में जाते हैं इसलिये धनवान् राजाओं को यज्ञ करना चाहिये और ब्राह्मणोंको दान देना चाहिये, जो लोग दरिद्री हैं उनसे कुछ भी नहीं होसकता उनको केवल ईश्वरका ही भरोसा करना चाहिये इसमें सन्देह नहीं है, अपनी जाति पर धर्म, लज्जा, शत्रुओंपर क्रोध, प्रजाओं को अपने २ धर्म में प्रवृत्त करना और संग्राम में नहीं भागना यह सब कर्म हमारे बड़ेलोग करगए हैं हमारे पिता महाराज मरुत्त भी ऐसा ही करे थे वह कर्म करने को किसकी सामर्थ्य है, यदि पूर्वजों का कराहुआ कर्म करनेकी मुझ में सामर्थ्य नहीं है तो मैं क्या करूँ? वह लोग यज्ञ करनेवाले, श्रेष्ठ, जितेन्द्रिय और संग्राम में हटनेवाले नहीं थे बड़े २ युद्ध करनेवाले थे, जिन लोगोंके पराक्रम की चर्चा आजतक सबलोग करते हैं, उनके कर्मों के अनुसरण करने की हम क्या युक्ति करें वह सब हमसे होना कठिन है किन्तु हमारे पूर्वजों ने विना परिश्रम अपने सब यज्ञ नहींकरे थे अन्य२ लोगों से करवाये थे वैसे ही मैं भी करवाऊँगा ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रोष्टुकि! ऐसा विचार करके महाराज नरिष्यन्त ने बहुतसा धन व्ययकर एक बहुत बड़ा यज्ञकरा वैसा किसी ने नहीं करा, ब्राह्मणों के जीवन के लिये ब्राह्मणों को बहुतसा दान देकर फिर उस यज्ञमें अपने पूर्वजोंसे सौगुणा अधिक अन्नदानकरा, ब्राह्मणोंको गौएँ, वस्त्र और आभूषण आदि पृथक् २ करके दिया तदनंतर महाराज नरिष्यन्त ने जब दूसरा यज्ञ प्रारम्भ करा तब उस यज्ञ में दान इत्यादि देने के लिये और भोजन कराने के लिये महाराजको

कहीं ब्राह्मण नहीं मिला, जिसर ब्राह्मण को पुरोहित बनाने के लिये महाराज वरण देने लगे तब वह सब ब्राह्मण कहने लगे कि हम लोग अन्य जगह यज्ञ करने के लिये दीक्षित हुए हैं दूसरे किसी ब्राह्मण को ढूंढलीजिये जिसको धनकी इच्छाहो हमलोगों को धनकी इच्छा नहीं है, हे महाराज जो आपने पहिले यज्ञ में दिया है वही धन नहीं घटता है और न घटैगा हे क्रोष्टुकि! जब महाराज नरिष्यन्त को पुरोहित ब्राह्मण नहीं मिला तब उन लोगों के घर जाकर दान देनेलगे तो भी कोई ब्राह्मण उनके दिये हुए धन को ग्रहण नहीं करता था क्योंकि-उन लोगों का घर धन से खाली नहीं था कहां रक्खें फिर महाराज कहने लगे कि-यह बात बहुत उत्तम है जो इस पृथ्वी पर निर्धन ब्राह्मण कोई नहीं है परन्तु यह बात ठीक नहीं है कि--विना यज्ञ करे यह ब्राह्मणों का कोप निष्फल है क्योंकि—कोई मनुष्य यजमान ब्राह्मणों से याचना नहीं करते हैं और ब्राह्मणों का दिया दान नहीं चाहते हैं॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-हे क्रोष्टुकि तदनन्तर महाराज नरिष्यन्त ने किसी अन्य २ ब्राह्मणों को भक्तिपूर्वक बारम्बार प्रणाम करके अपने यज्ञ में लाकर पुरोहित बनाया फिर उन्हीं ब्राह्मणों ने महाराज की समान यज्ञ करे, यह बात बड़े आश्चर्यकी हुई जब महाराज का यज्ञ होचुका तब सब पृथ्वी के ब्राह्मण यजमान होगए, यज्ञस्थान में बैठनेवाला और दान लेनेवाला कोई न रहा, ब्राह्मण तो यजमान हुए और कोई २ यज्ञ करानेवाले हुए अर्थात् महाराज नरिष्यन्त ने अपने यज्ञ में जो धन दिया उसी धन से सब ब्राह्मणलोग धनी होकर यज्ञ करने लगे, पूर्वदिशा में अठारह करोड़, पश्चिम में सात करोड़, दक्षिण में चौदह करोड़ और उत्तर दिशा में पचास करोड़ यज्ञ एकबार हुए, जिस समय महाराज नरिष्यन्त ने यह यज्ञ करा उसी काल में ब्राह्मणों ने भी यज्ञ करे हे विप्र! इस प्रकार से मरुत्त के पुत्र धर्मात्मा महाराज नरिष्यन्त पूर्वकाल में अपने बल और पराक्रम से विख्यात हुए. इति एकसौ बत्तीसवां अध्याय समाप्त॥

एकसौ तेतीसवाँ अध्याय

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रोष्टुकि! महाराज नरिष्यन्त के पुत्र दुष्टों के नाशक दम नामकरके विख्यात हुए जिनका बल इन्द्र के समान और दया, शील मुनियों के समान हुआ, यह महा यशस्वी दम बाभ्रव्य की कन्या इन्द्रसेनाके उदर में नौ-वर्षतक रहकर उत्पन्न हुए, यह अपनी माता के उदर में नौवर्षतक रहे थे और उत्पन्न होनेपर दम शीलवाले होंगे इस लिये त्रिकाल के जाननेवाले पुरोहितने उनका नाम दम रक्खा, राजकुमार दमने

महाराज वृषपर्वा के पासजाकर उनसे धनुर्विद्या प्राप्त करी और तपोवन के रहनेवाले दैत्यवर्य दुन्दुभी के पास जाकर उससे नम्रतापूर्वक अस्त्र ग्रहण करा, शक्ति से सम्पूर्ण वेद वेदाङ्ग पढ़ा और आर्ष्टिषेण राजऋषि से योगसीखा, तदनंतर महात्मा दम ब्रह्मचारी को सुमना नाम कन्याने अपने पिता के रचेहुए स्वयम्वर में स्वयं अपना पति बताया, उसका वृत्तांत यह है कि--वह सुमना दशार्ण देश के राजा चारुकर्मा की कन्या थी, उस के ग्रहण करने की इच्छा करके जितने राजालोग उस स्वयम्वर में आये थे उन में से भद्रराज के पुत्र महाबली और पराक्रमी महानाद उस सुमना कन्यापर मोहित होगए इसीप्रकार विदर्भदेश के राजा संक्रदन के पुत्र और राजकुमार वपुष्मान् भी मोहित होगए, यह सब लोग दुष्टों के दमन करनेवाले दमको स्वयम्वर में देख कर परस्पर विचार करनेलगे कि--इस सुन्दरी कन्या को बलात्कार से ग्रहण कर अपने घर लेचलें नहीं तो यह कन्या इन्हीं की स्त्री होगी क्योंकि यह दम बहुत सुन्दर और पराक्रमी हैं अवश्य इनको ही ग्रहण करैगी, यह सुंदरी स्वयम्वर में दम को पति बनाना चाहती है और धर्म पूर्वक इनकी ही भार्या होगी, हम सबों में से किसी को यह सुन्दरी पति बनाना नहीं चाहती है परन्तु हम सबोंमें से जो कोई राजकुमार दम को मारैगा उसीकी यह सुन्दरी भार्या होगी ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि--हे क्रोष्टुकि! इन तीनों राजकुमारों ने आपस में यह निश्चय करके राजकुमार दम के पास जो सुमना कन्या बैठी हुई थी उसको पकड़ लिया, तदनंतर उन राजाओं में जो राजा लोग दम के सहायक थे, और जो लोग मध्यस्थ थे उन सबोंने हाहा करके कहा कि--इन लोगों को पकड़ो, यह बात बहुत अनीति की है उस समय राजकुमार दम चारों ओर देखकर और चिंतावान् होकर यह बोले कि--हे राजालोगों ! स्वयम्वर को सब लोग धर्मकार्यों में गिनते हैं तो अब आप कहिये कि--जो बलात्कार से यह लोग कन्या को पकड़ते हैं यह बात धर्म है अथवा अधर्म है यदि धर्म है तो मैं अधर्म नहीं करूंगा यह कन्या दूसरे की स्त्री होजाय इस में मुझको कुछ चिन्ता नहीं है परन्तु स्वयम्वर में यही धर्म होय कि--बलात्कार से कोई किसी की कन्या को छीनलेवै तो धर्म के लिये क्षत्रियों को अपना प्राण बचाना अनुचित है तदनंतर दशार्णदेश के महाराज चारुकर्मा सब सभासदों से बोले कि-हे राजालोगों ! राजकुमार दम जो धर्म अधर्म की बात बूझते हैं सो कहिये जिससे हमारे और दम के धर्म की वृद्धि होय ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि--हे क्रोष्टुकि !

तदनंतर उन राजाओंमें से कोई बोला कि—हे महाराज ! परस्पर के अनुराग होजाने से गान्धर्वविवाह होजाता है परन्तु यह केवल क्षत्रिओं के लिये विधि है, वैश्य, शूद्र और ब्राह्मण के लिये नहीं है, इससमय तुम्हारी कन्या का विवाह राजकुमार दम के साथ उस विधि के अनुसार होचुका अर्थात् इस धर्म से आपकी कन्या दम की भार्या होचुकी, अब जो कोई मोहसे तुम्हारी कन्या को भार्या बनाने के लिये प्रवृत्त होता है वह कामी अधर्म करता है, तदनंतर दूसरे महात्मा राजालोग और जो लोग महाराज चारुकर्मा के सहायक थे वह बोले कि—क्षत्रियोंके लिये जिन लोगोंने गांधर्व विवाह विहित कहा है वह मिथ्या है, किन्तु क्षत्रियों के लिये राक्षसी विवाह उचित है कि—शत्रुओं को मारकर बलात्कार से कन्या का हरण करले. हे महाराज ! राक्षसी विवाह से वह कन्या उसी की भार्या होजायगी, यही राक्षसी विवाह क्षत्रियों के लिये विहित है, इसी लिये महानन्द आदि क्षत्रियों ने इस धर्म को किया है ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि--हे क्रोष्टुकि ! तदनंतर जिन राजाओंने पहिले गान्धर्व विवाह की बात कही थी वह लोग फिर परस्पर अनुराग करके बोले कि—क्षत्रियों के लिये जो राक्षसी विवाह उत्तम कहा यह सत्य है परन्तु सुमना ने राजकुमार दम को अपने पिता के समक्ष में ग्रहण करा है, उसके पिता के सम्बन्ध को तोड़ कर जो कन्या बलात्कार से हरण करी जाती है वही राक्षसी विवाह कहलाता है, पति होजानेपर जो कन्या हरण होती है वह राक्षसी विधि नहीं है, सब राजा लोगों के समक्ष में इस कन्या ने दम को अपना पति बनाने के लिये ग्रहणकरा तो गान्धर्व विवाह होचुका फिर राक्षसी विवाह किसप्रकार होगा. हे राजालोगो ! विवाहिता कन्या का कन्यात्व धर्म नहीं रहता है क्योंकि—कन्या का विवाह होजाने से सम्बंध होजाता है अर्थात् वह भार्या कहलाती है और उसका पति पुरुष कहलाता है. वह लोग जो बलात्कार से इस कन्या को हरण करते हैं तो वह लोग बली हैं ऐसा करें परंतु यह बात अनुचित है ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि--हे क्रोष्टुकि ! यह बात सुनकर राजकुमार दम की क्रोध के कारण आंखें लाल होगई और धनुष उठाकर यह बात बोले कि--मेरी भार्या को जो बली शत्रुलोग मेरे सामने हरण करते हैं तो मुझ ऐसे नपुंसक को क्षत्रिय कुल में जन्म लेनेसे और मेरे भुजाके बल से क्या लाभ है ? मेरे अस्त्रों को, मेरे पराक्रम को, मेरे धनुष और बाणको धिक्कार है, और महाराज मरुत्त के कुल में मेरा जन्मलेना व्यर्थ है, जो मेरीभार्या को मूढ राजालोग बलात्कार से हरण

करके लेजायँगे तो मेरे इस धनुष धारण करने को धिक्कार है, इसप्रकार कहकर महाबली राजकुमार दम ने महानंद इत्यादि राजाओं से कहा कि-यह सुंदरी जिसकी भार्या न होगी उसका महाराज कुल में जन्मलेना व्यर्थ है, हे महाराज लोगों ! इन सब बातोंको विचार करके संग्राम में ऐसा यत्न करिये जिसमें मुझ को जीतकर इस कन्या को अपनी भार्या बनाओ, इसप्रकार राजाओं से कहकर जैसे कुहरा वृक्षको ढालता है उसीप्रकार राजकुमार दम ने बाणोंकी वर्षा करके सब राजाओं को शरोंसे घेरलिया, फिर उन राजाओंने शर, शक्ति और मुद्गर आदि उनपर चलाये उसको राजकुमार दम ने खेलकी तरह काटडाला, राजाओं ने भी दम के चलायेहुए बाणों को काट डाला और उनके चलायेहुए बाणों को भी यह काटडालते थे जिससमय राजकुमार दम उन राजाओं से युद्ध करते थे उससमय महानन्द हाथ में तलवार लेकर राजकुमार दम के समीप गए, उस महा समर में तलवार लिये महानन्द को आते देखकर जिसप्रकार इन्द्र जलकी वर्षा करते हैं उसीप्रकार दम ने बाणोंकी वर्षा करी, फिर तो दम के चलायेहुए बाणों को उसीक्षण महानन्द ने खड्ग से काटकर दूसरे राजकुमारों को बचालिया और क्रुद्ध होकर परस्पर दोनों वीर युद्ध करने लगे, तदनंतर उस युद्धमें महानन्द को कुछ निर्बल देखकर राजकुमार दम ने उसके हृदयमें कालरूप अग्नि के समान बाण मारा वह बाण महानन्द के हृदय से पार होगया परंतु महानन्दने शीघ्रतासे खैंचकर दम के ऊपर तलवार चलाई किंतु राजकुमारदम ने उस तलवार को विद्युत् के समान आकाश में आतेहुए देखकर अपनीशक्तिसे उसतलवारको दमने काटकर फिर अपनी तलवार से महानन्द का शिर काटलिया, महानंद के मरते ही वह सब राजालोग समर से पीठ दिखाकर भाग गए परंतु कुण्डिनदेश का राजा वपुष्मान् दृढताके साथ रणमें खड़ा होगया और वह दक्षिणी राजकुमार अभिमान के मद में मत्त होकर दम से लड़नेलगा, जब राजकुमार दम ने वपुष्मान् की तलवार और उसके रथ की ध्वजा तथा सारथी के मस्तक को काटकर गिरादिया, तब तलवार कटजानेपर वपुष्मान् ने बहुकण्टक गदा उठाली परन्तु जबतक वह अपना वार करने भी न पाया कि--दम ने उस की गदाको भी काटडाला, तदनन्तर जो२ शस्त्र वपुष्मान् ने उठाए उन सबों को दम ने अपने बाणों से काटकर और वपुष्मान् को भी घायल करके पृथ्वी पर गिरादिया, पृथ्वीपर गिरकर वपुष्मान् कांपनेलगा और निर्बल होकर युद्ध से निवृत्त होगया. उससमय वपुष्मान् को

युद्ध से हटाहुआ देखकर राजकुमार दम ने उसके प्राण छोड़दिये और सुमना कन्या को ग्रहण करके आनंद के साथ वहां से चलेगए फिर राजा चारुकर्मा ने सुमना का विवाह दम के साथ विधिपूर्वक करदिया, तब राजकुमार दम उस स्त्रीके साथ राजा चारुकर्मा के नगर में कुछदिन रहकर फिर अपनी भार्या सुमना को साथ लेकर अपने नगर में चलेआए और राजा चारुकर्माने बहुत हाथी, घोड़े और दास, दासी दायज में दिये, बहुतसे वस्त्र भूषण और धनुष इत्यादि उत्तम शस्त्र तथा वर्तन आदि देकर उनको प्रसन्न करके विदा करा. इति एकसौ तेतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

चौंतीसवां अध्याय ।

मार्कण्डेयजी बोले कि--हे मुनि ! वह राजकुमार दम भार्या सुमना को पाकर आनन्दयुक्त हो अपने माता पिताके चरणों की वन्दना करताहुआ, उसीप्रकार सुन्दरी सुमनाने भी प्रसन्न होकर अपने सास श्वसुर को प्रणाम करा और आनंद पूर्वक उन्होंने भी आशीर्वाद दिया, जब वह राजकुमार दशार्ण देश के स्वामी की कन्या विवाहकर घरआये उससमय महाराज नरिष्यन्तने अत्यन्त उत्सवकरा, जब यह सुना कि--दशार्ण पतिके सब सम्बन्धियों को जीतकर मेरा पुत्र, कन्या लाया तोहै अति आनन्दित हुए तदनंतर वह राजकुमार दम सुमना के साथ वाटिकाओं, वन, मन्दिरों में और पर्वतोंपर इच्छानुसार विहार करनेलगे, इसीप्रकार कुछसमय व्यतीतहुआ तो वह सुमना गर्भवती हुई, फिर उन महाराज नरिष्यंत ने भी भोगों को भोगतेहुए वृद्ध होनेपर राजगद्दी दम को देकर आप तपस्या करने के लिये वनवास अंगीकार करा, और उनकी भार्या इन्द्रसेना भी उसी प्रकार तपस्विनी होकर उनके साथ गई दोनों प्राणी तप करनेलगे. एकदिन उसी वन में वह दक्षिणीय संक्रन्दन का पुत्र दुर्बुद्धि वपुष्मान् शिकार खेलताहुआ वहां आपहुँचा और वहां महाराज नरिष्यन्त को तपस्वीरूप शरीर में भस्म आदि लगाये और उनकी भार्या इन्द्रसेना को भी तपसे दुर्बल देखकर उनसे निकट जाकर बूझा कि--तुम कौन हो ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य हो जो यहां आकर वानप्रस्थ धर्ममें प्राप्त हो यह मुझसे कहो राजा तो मौन धारण करेहुए थे उत्तर नहीं दिया परन्तु इन्द्रसेना ने सब वृत्तांत सत्य २ कहदिया ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि--हे क्रौष्टुकि जब उस वपुष्मान् को ज्ञातहुआ कि--यह मेरे शत्रुके पिता नरिष्यन्त हैं तो कोपसंयुक्त होकर शीघ्रही उनकी जटा पकड़ली, उससमय इन्द्रसेना हाय हाय करके व्याकुल हो रोनेलगी परन्तु उस दुष्टात्मा ने न मानकर एक हाथमें खड्ग

लेकर कहा कि–जो हम मुझे समर में जीतकर मेरी सुमना को लेगया है, उस के पिताको मैं मारता हूं यह रक्षा करे, फिर स्वयंवर में कन्या के निमित्त जो राज कुमार आये थे उनसबों को जीतकर जो हमने समर से भगादिया उस दुर्मति के पिताको मैं मारता हूँ और जिस दुरात्मा हमका स्वरूप देखकर शत्रुओं का दमन होजाता है वह हम आकर रक्षा करें मैं उसके पिता को मारता हूँ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि–हे क्रौष्टुकि! इसीप्रकार तीनबार कहकर उस दुरात्मा वपुष्मान् ने रोतीहुई इन्द्रसेना के सामने महाराज नरिष्यन्त का शिर काटलिया तदनंतर उस वनके रहनेवाले मुनि आदि सब कोई उस दुष्टात्मा को धिक्कार देने-लगे, वपुष्मान् राजा को मराहुआ देखकर अपने घर चलागया, तदनंतर इन्द्रसेना ने शोकसे लम्बी श्वांस लेकर एक तापस शूद्र को अपने पुत्रके पास भेजा और उस से कहा कि–तुम शीघ्रता से मेरे पुत्र के समीपजाकर मेरे स्वामीका वृत्तांत जो तुमने देखा है वह कहो मैं कहाँतक कहूँ और यह भी मेरे पुत्र से कहना कि–महाराज की यह दशा देखकर मैं अत्यंत दुःखी हूँ, फिर यह भी कहना कि–मेरे स्वामीने चारों आश्रम के पालन के लिये तुमको राज्य दिया और तुम भोगों में आसक्त हो तपस्वियों की कुछ खबर नहीं लेते हो यह बात तुम्हारे योग्य नहीं है, मेरे स्वामी तपस्वी होकर तपमें स्थित रहते थे, जब तुम्हारे ऐसा पुत्र उनके विद्यमान है तब मैं अनाथ की समान इस वनमें रहती हूँ, मेरे सामने महाराज नरिष्यंत को विना अपराध वपुष्मान ने केशपकड़कर मार-डाला तुम किस लिये पृथ्वीपति कहलाते हो और यह कहना कि–जिसमें धर्मका लोप न होय तुम वह उचित बात करो मैं तपस्विनी इस वनमें रोती हूँ, तुम्हारे वृद्ध पिता तपस्वी को विना अपराध उस वपु-ष्मान ने मारा है जिसमें उसका भी निधन हो वही बात विचारपूर्वक करो, तुम्हारे मंत्रीलोग वीर और शास्त्र के जाननेवाले हैं उन सबों की सम्मति और विचार से जो करना हो वह करो, यह अधिकार हम तपस्वियों को नहीं है तुम राजा हो तुम्हीं को यह अधिकार है क्योंकि–ऐसे समय में प्रतीकार राजा को करना उचित है, ऐसी नीति है जिसप्रकार विदूरथ के पिता को यवन ने मारा था उसी प्रकार वपु-ष्मान् ने तुम्हारे पिता को मारा है परन्तु विदूरथ ने अपने पिताका वध देखकर यवनकुलका नाश करडाला, फिर असुर-राज जम्भ के पिता को नागों ने डसा था इसलिये जम्भ ने पातालवासी सब नागों को मारडाला, इसीप्रकार पराशर जी के पिता शक्ति को राक्षस ने मारडाला तब पराशरजी ने क्रोधित होकर राक्षसकुल

को अग्नि में डालकर भस्म करदिया जो कोई अपने कुल में अपने किसीकी ऐसी दुर्गति करे तो क्षत्रियलोग नहीं सहसक्ते हैं और जिसका पिता माराजाय वह किस प्रकार सहेगा, तुम्हारे पिता को नहीं मारा है और न उनपर शस्त्र चलाया है किन्तु यह सब तुम्हारे ऊपर बीता है मैं ऐसा मानती हूँ, इसलिये इसको वध करने में मत डरो, इस महापापी ने तापसपर शस्त्र चलाया है तुम राजाओं को ब्राह्मणघात से डरना चाहिये, जिसमें भृत्य, जाति और परिवार सहित इस वपुष्मान् की भी ऐसी ही दुर्गति हो यह तुमको करना चाहिये हे क्रौष्टुकि! इसप्रकार उस तापसदूत को समझाकर और अपने पुत्र के पास भेजकर फिर इन्द्रसेना अपने स्वामी के साथ अग्नि में प्रवेश करगई और दूत ने वहाँ जाकर दम से यह सब संदेशा कहदिया इति एकसौ चौतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

एकसौ पैंतीसवाँ अध्याय.

मार्कण्डेयजी बोले कि–हे क्रौष्टुकि–जब इन्द्रसेना के भेजेहुए तापस दूत ने दम के समीप जाकर सब वृत्तांत कहा तब सुनकर दम अत्यन्त क्रोध से जाज्वल्यमान होगए जैसे हविष्य पड़ने से अग्नि प्रज्वलित होती है, हे मुनि! उस समय वह धीर दम क्रोधाग्नि से जलते हुए हाथ से हाथ मींजकर इसप्रकार प्रतिज्ञा वचन बोले कि—मेरे ऐसे पुत्र के वर्तमान होते हुए मेरे पिता को उस दुरात्मा वपुष्मान् ने मेरे कुल का निरादर करके मारडाला है यह मैं नहीं सहसकता क्योंकि-इस के सहने से सबलोग हमारा अपवाद करेंगे और नपुंसक कहेंगे फिर हमारा अधिकार दुष्टों के नाश और साधु लोगों की रक्षा करने को है, तब जो हमारे ही पिता मारेगए और उनको मृतक देखकर मेरा शत्रु वर्तमान रहे तो हातात यह बारम्बार मेरा कहना व्यर्थ है और मेरे बहुत ही विलाप करने से क्या होगा परन्तु इस समय में जो करना उचित है वह कहता हूँ कि— जो उस वपुष्मान् के शरीर के रुधिर से पिता को तृप्त न करूँ तो अग्नि में भस्म होकर मरजाऊँगा फिर उस वपुष्मान् के रुधिर से पिता का तर्पण न करूँ और वपुष्मान् को समरमें मारकर उसके शरीर का मांस राक्षस ब्राह्मणों को भोजन कराकर तृप्त नहीं करूँ तो भी अग्नि में प्रवेश करके जलजाऊँगा, जो वपुष्मान की सहायता यक्ष, गन्धर्व, विद्याधर और सिद्ध गण करेंगे तो उन लोगों को भी अस्त्रों से भस्म करदूँगा, उस अधर्मी दक्षिणी वपुष्मान् को समर में मारकर पीछे मैं सम्पूर्ण पृथ्वी का भोग करूँगा जो यह न करूँ तो अग्नि में प्रवेश करके भस्म हो जाऊँगा मेरे पिता तापस वृद्ध बनवासी

शान्तस्वरूप को उस दुर्मति ने मारडाला है, मैं इससमय उसको भाई बन्धुओं के और सेनाके सहित अवश्य मारूँगा. इसी समय हाथ में धनुषबाण और खड्गलेकर रथपर सवार हो शत्रुकी सेनामें जाकर जिस प्रकार सबका वधकरता हूँ वह मेरा पराक्रम देवता लोग भी देखें, इस युद्ध में उस दुष्टात्मा वपुष्मान् की सहायता के लिये जितने राजालोग आवेंगे उनलोगों कोभी अपनी भुजाके बलसे सकल कुल-क्षय करडालूँगा जो इस समरमें वज्र लेकर इन्द्र, कोप संयुक्त दण्ड लेकर यमराज, कुबेर, वरुण अथवा सूर्य भी आकर इस की रक्षा के लिये यत्नकरेंगे तो उन लोगों कोभी अपने उग्रबाणों से अवश्य मारूँगा क्योंकि–मेरे समान पुत्र के उत्पन्न होनेपर ज्ञानी, निर्दोष, वनवासी, फलाहारी और सबके मित्र मेरे पिता को जिस दुष्टात्मा वपुष्मान् ने मारा है इससमय मैं उसको अवश्य मारूँगा, उसका मांस खाकर और रुधिर पीकर सब गृध्र तृप्त होंगे। इति एकसौ पैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥

एकसौ छत्तीसवाँ अध्याय.

मार्कण्डेयजी बोले कि—हे क्रोष्टुकि ! इसप्रकार वपुष्मान् के मारने की प्रतिज्ञा करके क्रोध और अमर्ष से लालनेत्र करे-हुए राजकुमार दमबोले कि—हाय मैं मरगया और पिता का ध्यान करके तथा अपने भाग्य की निन्दा करके मंत्री और पुरोहितों को बुलाकर कहा कि—वपुष्मान् ने मेरे पिता को मारडाला है वह स्वर्गवास करगए यह बात एक शूद्र तपस्वी आकर कहगया है आपलोगों ने भी सुना होगा अब मुझको क्या करना उचित है सो आपलोग कहिये हमारे वह वृद्ध तपस्वी पिता वन में वानप्रस्थ व्रत मौन होकर और शस्त्र इत्यादि त्यागकर तप करते थे वहांपर वपुष्मान् ने इन्द्रसेना मेरी माता से बूझा तब मेरी माताने सत्य सत्य वपुष्मान् से कहदिया कि—यह महाराज नरिष्यन्त हैं तब वपुष्मान् ने तलवार लेकर और बायें हाथ से उन की जटा पकड़कर अनाथ की समान लोकनाथ महाराज नरिष्यन्त को मार डाला है मेरी माता मुझे दीन समझकर और संदेशा भेजकर आप अग्नि में प्रवेश करगई, मैंने सैंकड़ों रथी, सवार और सेनाओं को मारा है सो सब व्यर्थ है क्योंकि–उसमें मेरे पिताका शत्रु कोई नहीं था अब पितृघातक वपुष्मान् को बिना मारे और माता का वचन बिना सत्य किये मेरा जीवन व्यर्थ है इसलिये मैं अपना जीना नहीं चाहता. यह बात दम की सुनकर सबोंने हाहाकार के साथ शोक प्रकाशित करके प्रनमने से हो राजा की आज्ञा के अनुसार कार्य किया और अपने सेवक सेना तथा वाहनों सहित हाथों में

तलवार, मुद्गर और बरछे लियेहुए परिवारसहित चक्रदिये दम भी त्रिकालदर्शी ब्राह्मण पुरोहितों का आशीर्वाद लेकर नागराज की समान लम्बे २ श्वास लेता हुआ सीमा की रक्षा करनेवाले सामन्त गणों का बिनाश करताहुआ शीघ्रता के साथ वपुष्मान् पर वार करने के लिये दक्षिण की ओर को चला। परिवार, सामग्री और मंत्रियों के साथ योधा के वेश में दम आरहा है, यह सम्वाद पाकर संक्रन्दन के पुत्र वपुष्मान् ने भी चित्तमें चलायमान न होकर अपनी सेना को युद्ध करने के लिये आज्ञादी और नगर से बाहर आकर दूत से यह कहलाकर भेजा कि—अरे क्षत्रियों में नीच ! तू बहुत शीघ्र आ, भार्यासहित नरिष्यन्त तेरी बाट देखरहा है, अतः शीघ्र ही तू मेरे पास आ, यह सब पिता से, शिलापर तेज कियेहुए बाण मेरे भुजदण्डों से छूटकर रणभूमि में तेरे शरीर को घायल करतेहुए रुधिर पियेंगे।

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि—महाराज दम दूत के कथन को सुनते ही पहिली प्रतिज्ञा को याद करके साँप की समान श्वास छोड़तेहुए शीघ्रता से चलदिये और उसको रणभूमि में पुकारकर कहने लगे कि--जो असलियत में मर्द होते हैं वह कभी अपनी तारीफ नहीं करते हैं। तदनंतर दम और वपुष्मान् का घोर घमसान होनेलगा। रथीके साथ रथी, हाथीके साथ हाथी और घुड़सवार के साथ घुड़सवार युद्ध करनेलगे। हे विप्रर्षि ! सकल देवता, सिद्ध, गन्धर्व और यज्ञ करनेवाले देखनेलगे, उन के सामने ही ऐसा घोरयुद्ध होनेलगा। हे ब्रह्मन् ! जब दम क्रोधमें भरकर युद्ध करने में डटगए उससमय भूमि डोलगई, ऐसा कोई हाथी, घोड़ा वा रथी नहीं था जो दम के बाण को सहसके। वपुष्मान् के सेनापति दम के साथ युद्ध कररहे थे दम ने उनकी छातियों को बाणों से बेध कर अत्यन्त घायल करदिया। सेनापतियों के गिरते ही वपुष्मान् सहित सारी सेना भाग निकली। उस समय शत्रुओं की शान्ति का नाश करनेवाले दम कहनेलगे कि—रे दुष्ट ! तूने ही मेरे वैरीविहीन तपस्वी पिता का वध किया है अब कहां को भागाजाता है ? यदि क्षत्रिय है तो लौटकर आ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं कि—फिर वपुष्मान् छोटे भाई, पुत्र, सम्बन्धी और बान्धवों सहित लौटआया और रथपर चढ़कर युद्ध करनेलगा। उस समय वपुष्मान् के धनुष में से छूटेहुए बाणों से आकाश और सकल दिशा छागईं और बाणों के जाल से घोड़े और रथ सहित दम को ढकदिया, दम ने भी पिता के वध के कारण कोप में भरकर उसके

बाणों को काटडाला और बाणों से शत्रुओं के शरीरों को घायल कर-दिया, और एक २ बाण से उसके सात पुत्र, भाई, सम्बन्धी और मित्रों को यमपुरी पहुँचादिया। रथी वपुष्मान् भी पुत्र और बान्धवों का मरण होने के कारण दूने क्रोध से भरकर सर्प की समान बाणों से दम के साथ युद्ध करनेलगा। दम ने उन सब बाणों को काटडाला और वपुष्मान् भी दम के छोड़े हुए बाणों को काटनेलगा। हे महामुने ! इसप्रकार परम क्रोध के साथ एक दूसरे के प्राण लेने की इच्छा करके दोनों घोर युद्ध करने लगे। दोनों ही महाबली थे, अतः युद्ध होते २ परस्पर के प्रहार से दोनों के धनुष टुकड़े २ होगए, तब दोनों तलवार लेकर उठे और युद्धक्रीड़ा करने लगे। वन में मरण को प्राप्त हुए पिता की क्षणमात्र को चिन्ता करके दम ने केश पकड़कर उसको भूमि पर पटकदिया और उसकी गरदन को पैर से दबाकर भुजा उठाते हुए कहनेलगे कि—इस क्षत्रियों में नीच वपुष्मान् की छाती को चीरता हूं, सकल देवता, मनुष्य, सिद्ध और नाग इसको देखें। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि-इतना कहकर दम ने तलवार से उसकी छाती चीरडाली और जब उसके रुधिर से स्नान करने को तयार हुए तब देवताओं ने रोकदिया। परन्तु उसके रुधिर से इन्होंने अपने पिता का तर्पण किया। दम ने वपुष्मान् के मांस के अपने पिता को पिण्ड दिये और वह राक्षसकुल में उत्पन्नहुए ब्राह्मणों को खिलादिये। इसप्रकार पिता के ऋण से मुक्तहोकर अपने राज्य को लौटे। सूर्यवंश में ऐसे ही, बुद्धिमान, शूर, यज्ञ करनेवाले धर्मज्ञ और वेदान्त के पारगामी और भी अनेकों राजेहुए, उनकी गिनती करना सहज नहीं है, इनके चरित्र को सुनने से मनुष्य पाप से छूटता है ॥ इति एकसौ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त.

एकसौ सैंतीसवाँ अध्याय ।

पक्षियों ने कहा कि—परमतपस्वी मार्कण्डेय मुनिने इसप्रकार कहकर क्रोष्टुकी को विदा करके मध्यान्हकालका अनुष्ठान किया। हे महामुने ! जो आपसे कहा, यह अनादि सिद्ध पुराण ब्रह्माजीने मार्कण्डेय मुनिसे कहा था, हमने उनसे ही इसको सुना है, हमने जो आपको सुनाया, इस मनोहर, पुण्य, पवित्र पुराण को पढ़ने और सुनने से, आयु बढ़ती है, सकल कामनाएं सिद्धहोती हैं और मनुष्य सकल पापों से छूटजाता है। आपने पहिले हमसे जो चार प्रश्नकिये थे उनका उत्तर, पिता पुत्र का सम्वाद, स्वयम्भूकी सृष्टि, मनुओं की उत्पत्ति और राजाओं के चरित्रहमने आप से कहे, अब और क्या सुनने की इच्छा है ? मनुष्य इस सब को सुनकर और सभा में

पढ़कर सकल पापों से मुक्त हो ब्रह्म में लीनहोजाता है । पितामह ब्रह्माजी ने अठारह पुराणोंका कीर्त्तन किया है. उनमें यह प्रसिद्ध मार्कण्डेय पुराण सातवाँ है। १--ब्राह्म, २--पाद्म, ३--वैष्णव, ४--शैव ५--भागवत, ६--नारदीय, ७--मार्कण्डेय ८--आग्नेय, ९-भविष्य, १०--ब्रह्मवैवर्त्त ११--नृसिंह, १२--वाराह, १३--स्कान्द, १४--वामन, १५--कौर्म, १६--मात्स्य, १७- गारुड़ और तदनंतर १८-ब्रह्माण्ड इन अठारह पुराणों के नामोंको जो पुरुष पढता है और तीनोंकाल में जप करता है उसको अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है और उसके ब्रह्महत्यादिक पाप ऐसे नाश होजाते हैं जैसे वायु के लगने से तृण उड़जाते हैं । इन पुराणों को आदिसे अन्ततक पढ़ने अथवा सुनने से सम्पूर्ण वेदके पढ़ने से भी अधिक फल मिलता है और पुष्करतीर्थ में दान करनेका पुण्य मिलता है । इस शास्त्र को ब्रह्मा के समान समझकर पूजना और सुनना चाहिये फिर गन्ध, पुष्प और वस्त्र आदि से ब्राह्मण को तृप्त करना चाहिये, यथाशक्ति दान देना चाहिये और राजालोगों को रथ आदि वाहन वक्ता को देने चाहियें क्योंकि— वक्ता को विना कुछदिये एक श्लोक भी जो कोई सुनता है उसको पुण्य नहींहोता और वह शास्त्रचोर कहलाता है उसके ऊपर देवता और पितर प्रसन्न नहींहोते फिर श्राद्ध में पिण्ड भी ग्रहण नहीं करते और उस मनुष्यको फल नहीं मिलता है इसलिये वक्ताका अपमान करके ज्ञानियों को यह शास्त्र नहीं सुनना चाहिये जो मनुष्य उत्तम ब्राह्मण से इस शास्त्र को सुनकर फिर इस मार्कण्डेयपुराण की पूजा करै तो वह मनुष्य सब पापोंसे छूट कर अपने कुल को पवित्र करता है और आपभी पवित्र होकर सनातन विष्णुलोक को अन्तकाल में प्राप्त होगा फिर जबतक सात मन्वंतर बीतते हैं तबतक अक्षय भोग पृथ्वी में भोगकर परमयोग को प्राप्त होता है यह पुराण नास्तिकों को, वृद्ध अपमानीको, गुरु ब्राह्मणके निन्दक को और व्रतत्यागीको नहीं देना चाहिये अपने कुलकी मर्यादा त्यागनेवाले और जातिद्रोही इत्यादि को कण्ठगत प्राण होनेपर भी नहीं देना चाहिये लोभ, मोह अथवा भयसे जो कोई इन लोगोंके आगे पढता है वह नरक में जाता है । इस पुराणके श्लोकोंकी संख्या तत्व के जानने वालों ने कहा है कि—पूर्वकाल में ज्ञानी मार्कण्डेयमुनिने ६९००श्लोक नियत करे हैं। इति एकसौसैंतीसवां अध्याय समाप्त

मार्कण्डेयपुराण का भाषानुवाद समाप्त.